सरबत दा भला

(उपन्यास)

करतार सिंह दुग्गल
अनुवादक
डॉ. पुष्पपाल सिंह

पब्लिकेशन ब्यूरो
पंजाबी यूनीवर्सिटी, पटियाला

सरबत्त दा भला

सरबत दा भला

(उपन्यास)

करतार सिंह दुग्गल

अनुवादक

डॉ. पुष्पपाल सिंह

पब्लिकेशन ब्यूरो

पंजाबी यूनीवर्सिटी, पटियाला

दो शब्द

पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला का पंजाबी भाषा विकास विभाग पंजाबी भाषा, साहित्य और संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। अपनी बहुविध योजनाओं से इस विभाग ने पंजाबी साहित्य, संस्कृति और अपनी पूरी विरासत को न केवल सुरक्षित रखने अपितु इसकी संवृद्धि की ओर अभूतपूर्व कार्य किया है।

पंजाबी भाषा विकास विभाग एक ओर तो पंजाबी भाषा में बहु-आयामी साहित्य तथा ज्ञान के विभिन्न अनुशासनों से संबंधित स्तरीय साहित्य का प्रकाशन कर रहा है, दूसरी ओर पंजाबी के श्रेष्ठ साहित्य को अन्य भारतीय भाषाओं में प्रकाशित कर पंजाबी साहित्य के प्रचार-प्रसार की दिशा में ठोस पग उठा रहा है। विभाग का यह प्रयास भी रहा है कि दूसरी भाषाओं में उपलब्ध श्रेष्ठ साहित्य संपदा पंजाबी भाषा में उपलब्ध करा कर इसके भंडार को समृद्ध किया जाए। इसी क्रम में पंजाबी के सुविख्यात कथाकार करतार सिंह दुग्गल के त्रिलड़ी उपन्यास 'नानक नाम चढ़दी कला', 'तेरे भाणे, सरबत दा भला' के हिन्दी अनुवाद का बीड़ा विभाग ने उठाया। प्रथम दो उपन्यासों का अनुवाद पहले ही प्रकाशित कराया जा चुका है और अब "सरबत दा भला" के इस अनुवाद के साथ यह अनुष्ठान पूरा हो रहा है।

मुझे विश्वास है कि जिस प्रकार हिन्दी जगत ने पहली कृतियों का स्वागत किया है, इस रचना का स्वागत भी इसी भरपूर उत्साह के साथ होगा।

मैं आशा करता हूँ कि यह विभाग अपने संकल्पों को आगे बढ़ाते हुए और भी तीव्र गति से विकास की दिशा में अग्रसर होगा।

पंजाबी विश्वविद्यालय
पटियाला–147002

स्वर्ण सिंह बोपाराय
कुलपति
पद्मश्री, कीर्ति चक्र

विभागीय शब्द

पंजाबी विश्वविद्यालय की स्थापना मुख्यतः पंजाबी भाषा साहित्य तथा संस्कृति के विकास का लक्ष्य सामने रख कर हुई थी। इसी उद्देश्य की सम्पूर्ति के लिए पंजाबी भाषा विकास विभाग अस्तित्व में आया। अपनी विभिन्न प्रकाशन योजनाओं में इस विभाग ने पंजाबी की क्लासिक कृतियों को अन्य भारतीय भाषाओं, विशेषतः हिन्दी, में अनूदित कराने का संकल्प लिया। इसी योजना के अंतर्गत पंजाबी के अनेक प्रसिद्ध कथाकारों का कृतित्व हिन्दी में प्रस्तुत किया गया। प्रख्यात कथाकार डॉ: करतार सिंह दुग्गल के उपन्यास 'सरबत दा भला' के इस अनुवाद के साथ ही उनके त्रि-लड़ी उपन्यास—'नानक नाम चढ़दी कला' तथा 'तेरे भाणे'—के हिन्दी प्रस्तुतीकरण का यह महत् कार्य सम्पन्न होता है। हमारे विशेष आग्रह पर हिन्दी के प्रतिष्ठत विद्वान डॉ॰ पुष्पपाल सिंह ने यह अनुवाद कार्य किया है। 'सरबत दा भला' में 'दुग्गल' जी ने सिक्ख इतिहास के बलिदानी काल खंड को ऐतिहासिक तथ्यों, जन-श्रुतियों और अपनी ललित कल्पना से एक नए कथा-प्रयोग के रूप में प्रस्तुत किया है। हमें विश्वास है कि पाठक इस कृति का रसास्वादन कर लाभान्वित होंगे।

धनवंत कौर
अध्यक्ष

पंजाबी भाषा विकास विभाग
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला।

मुख–बंध

इस खंड के साथ उपन्यासों की यह त्रिलड़ी 'नानक नाम चढ़दी कला', 'तेरे भाणे' तथा 'सरबत दा भला' सम्पूर्ण होती है।

यह त्रिलड़ी एक ऐतिहासिक उपन्यास है। ऐतिहासिक उपन्यास, 'ऐतिहासिक रोमांस' से पृथक होता है।

उपन्यास की परिभाषा कुछ इस तरह से की गई है। 'वृतांत' में रची एक लम्बी कथा या कहानी जिसके पात्र और उनकी गतिविधियाँ समकालीन या अतीत जीवन को कहानी के पेचीदा गुंजलकों द्वारा प्रतिबिम्बित करते हैं।

उपन्यास के इन लक्षणों में पात्रों का सचमुच का जीवन और उसकी घटनाओं की प्रस्तुति, ऐतिहासिक उपन्यास के लिए विशेष महत्व रखती है।

ऐतिहासिक या समकालीन उपन्यासकार इस विशेषता को कुछ इस तरह निभाते देखे गए हैं :

(क) उपन्यास का आधार इतिहास से लिए सचमुच के पात्र होते हैं। उपन्यासकार केवल कहानी को गढ़ता है।

(ख) अतीत केवल रोमांचक अथवा तर्कसंगत रिक्थ के तौर पर मनोकल्पित गुंजल अथवा जोख़िम के लिए उपयोग किया जाता है।

(ग) पृष्ठभूमि विशुद्ध ऐतिहासिक होती है परन्तु उसमें विचर रहे पात्र मनगढ़ंत या बनावटी होते हैं।

मेरे लेखे ऐतिहासिक उपन्यास जिन्दगी के साधारण तजुर्बे को इतिहास के साथ जोड़ने का नाम है। ऐतिहासिक नावल में इतिहास की घटनाओं को कल्पपना का पुट देकर पुनः सृजित किया जाता है जिसमें पाठक का मनोरंजन हो सके। कई बार मनोरथ इतना ऐतिहासिक गतिविधियों का प्रस्तुतीकरण नहीं होता जितना ऐतिहासिक रहन-सहन या संस्कृति को दर्शाना होता है।

इस त्रिलड़ी में मैंने कुछ इस तरह ही किया है। मेरा उद्देश्य उन

मान्यताओं-मूल्यों, उन सभ्याचारक आस्थाओं, उन आध्यात्मिक विचारों, को उभारना था जो उन दो शताब्दियों में प्रफुल्लित हुए जब सिक्ख गुरु साहिबान हमारी इस धरती पर प्रकाशमान थे। इस समय के इतिहास को मैंने एक स्प्रिंग बोर्ड के रूप में प्रयोग किया है और इतिहास से कहीं प्रेरित, कहीं उच्चरित सच को समझने का प्रयत्न किया है। मेरी चेष्टा रही है कि इतिहास से अधिक इतिहास में रची-बसी भावना को चित्रित करूँ जिससे पाठक गुरुसिक्खी की परम्परा से जुड़ सकें। उन पर गर्व कर सकें। पाठक के अन्दर उस समय की अन्तःप्रेरणा जाग सके। इससे भी अधिक, अद्भुत, सत्य को वह अपनी विरासत के सत्य के साथ जोड़ सके और इस तरह अपनी धरोहर पर उसकी पकड़ मज़बूत हो।

जैसे कभी-कभी साहित्य में होता है मेरी कोशिश ऐसे हालात को परखने की नहीं रही बल्कि ऐसी समस्याओं को इतिहास के परिप्रेक्ष्य में उजागर करने की रही है, समझने की रही है, सुलझाने की रही है। इसलिए तो मैंने हर खंड में वृतांत के सूत्र को वर्तमान हालात के साथ जोड़ा है, यद्यपि वह पंजाबी प्रांत के लिए संघर्ष था ('नानक नाम चढ़दी कला'), अथवा वह पंजाबी प्रांत को स्वीकार करना था ('तेरे भाणे') या वह नीला तारा की त्रासदी थी ('सरबत दा भला')। कहीं मैंने यह भी प्रयास किया है कि पाठक अपने वर्तमान की उलझनों को अतीत के उजाले में निपटाने के लिए उत्साहित हों या इतना उसको समझ आ जाए कि कहाँ हम लड़खड़ा गए, कहाँ विचलित हो गए हैं।

बंगाली उपन्यासकार बंकिम चन्द्र का कहना है कि ऐतिहासिक उपन्यास पहले उपन्यास है, फिर इतिहास। मेरी कोशिश रही है कि इतिहास को उपन्यास जैसे रोचक बनाकर पेश किया जाए।

हमारे देश में ऐतिहासिक उपन्यास की परम्परा अत्यन्त अमीर है। बंकिम चन्द्र बंगाली में, रजनीकांत बारदोलोई असामी में, हरि नारायण आप्टे मराठी में, वसुदेवाचार्य कैरूर कन्नड़ में, के. अैम. मुंशी गुजराती में तथा सी. वी. रमन पिल्लै मलयालम में कुछ प्रसिद्ध नाम हैं।

इन ऐतिहासिक उपन्यासों में भूत को वर्तमान के साथ जोड़ने का प्रयास किया गया है। मैंने एक कदम और आगे बढ़ाया है। अतीत को वर्तमान के हालात के साथ जोड़ते हुए मेरा मुख हमेशा भविष्य की तरफ रहा है।

इस संदर्भ में मुझे पंजाबी साहित्य की महान् विरासत 'चार जनम

साखियां' की याद आती हैं। डब्ल्यू. अैच. मैकलोड् का कहना है कि प्रस्तुत 124 साखियों में से 39 साखियों को स्वीकार नहीं किया जा सकता। 17 साखियाँ ऐसी हैं जिनको परवान करना कठिन प्रतीत होता है। बाकी को मान लेना ही संभव है। प्रो॰ हरबंस सिंह के अनुसार, मैकलौड यह बात नज़रअंदाज कर रहा है कि ये साखियाँ अकीदतमंदों द्वारा रची हुई हैं। ये लोग उन पाठकों के लिए लिखा रहे थे जो इस सबमें आस्था रखते थे। जो कुछ उन्होंने कहा, उनके हाव-भाव तथा मानसिक ताने-बाने में वर्षों से घुला-मिला हुआ था। वह लोग अपने-आप को प्रकट कर रहे थे। वास्तव में वे अपनी मान्यताओं को कथा वृतांत या नाटकीय रूप में मूर्तिमान कर रहे थे, बस।

मेरी समझ में, इन साखियों की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रतीति यह रही है कि साहित्य गुरु बाबा नानक के व्यक्तित्व को अत्यंत भरपूर रूप में पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है। यह सत्य प्रकाशित करने में सफल होता है कि उस समय के प्राणी बाबा नानक को कैसे पूजते थे, सत्कारते थे। उनके जीवन को गुरु बाबा नानक की शिक्षा ने कैसे परिवर्तित किया। ऐतिहासिक उपन्यास का मनोरथ भी कुछ इसी तरह का होता है।

आधुनिक पंजाबी साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यास भाई साहब भाई वीर सिंह की देन है। 'सुन्दरी', 'बिजै सिंह' और 'सतवंत कौर' (दो भाग) भाई साहब की महत्त्वपूर्ण रचनाएं हैं। सिंध सभा लहर के दौरान भाई साहब ने इन उपन्यासों के द्वारा सिक्ख पंथ को अपनी बेजोड़ परम्परा के साथ जोड़ने का प्रयत्न किया। 'सुन्दरी' ज़करिया खान की हकूमत (1725–1745) के दौरान सिक्ख भाईचारे के साथ हुए जुल्मों की दास्तान है और उस श्रद्धा, उस हठ, उन कुर्बानियों का वृतांत है जो खालसे की महान परम्परा का हिस्सा बन गई है। जुल्म और अन्याय के खिलाफ सिक्ख शूरवीरों का संघर्ष एक बेमिसाल अवदान है।

इसके बाद मास्टर तारा सिंह रचित 'बाबा तेगा सिंह' सिक्खों की अंग्रेजों के साथ सभाराओं की जंग की दास्तां है।

सुरिन्दर सिंह नरूला का उपन्यास 'पिउ पुत्तर' ऐतिहासिक उपन्यास के–दायरे रखा जा सकता है। इसमें गदर आन्दोलन की प्रतिध्वनियाँ सुनाई देती हैं।

नरिन्दर पाल सिंह के उपन्यास 'खन्निओं तिखी, वालों निक्की', 'ऐति मारग जाणा' तथा 'इक सरकार बाझो' वास्तव में ऐतिहासिक उपन्यास है।

पहले तीन उपन्यास उस संघर्ष की कहानी हैं जो बाबा बन्दा बहादुर, सिक्ख मिसलों तथा महाराजा रणजीत सिंह ने सिक्खी स्वरूप को कायम रखने के लिए किया तथा 'इक सरकार बाझो' सिक्खों की अंग्रेजों के साथ हुई जंग की कहानी है।

'लोहगढ़', 'सभराओं' तथा 'अनूप कौर' इत्यादि अनेक ऐतिहासिक उपन्यासों का रचयिता हरनाम दास सहराई एक अद्वितीय लगन वाला लेखक है। पंजाबी ऐतिहासिक उपन्यास को उसकी देन महत्त्वपूर्ण है।

'नानक नाम चड़दी कला', 'तेरे भाणे', 'सरबत दा भला' इस क्षेत्र में एक छोटी-सी देन हैं।

पी-7, हौज़ खास, ऐनक्लेव
नई दिल्ली
17 सितम्बर, 1992

करतार सिंह दुग्गल

संरबत्त दा भला

(सबका भला)

1

पंजाबी सूबा बन गया। अकाली दल के सपनों का होमलैंड वजूद में आ गया, लेकिन जैसे दिल्ली में प्रान्त-वितरण के समय सियासी चालबाजों ने सोच रखा था बिल्कुल वैसे ही हुआ। नव निर्मित प्रान्त में सिक्ख सिर्फ 60 प्रतिशत थे और हिन्दू 40 प्रतिशत। इनमें से 71.3 प्रतिशत सिक्ख गांवों में थे और लगभग 28.7 प्रतिशत नगरों में। इसके साथ ही एक और दुखद वास्तविकता यह थी कि सिक्खों की कुल आबादी का केवल 78 प्रतिशत पंजाब में था और 22 प्रतिशत लोग पंजाब से बाहर भारत के बाकी राज्यों–हरियाणा, दिल्ली–आदि में बसे हुए थे।

इस तरह का सूबा पाने के लिए पंजाब से चण्डीगढ़ जो लाहौर के बदले पंजाब की राजधानी के रूप में पंजाबियों के धन और मेहनत से निर्मित किया गया था, छीन लिया गया। गुरदासपुर जिले में डलहौज़ी, होशियारपुर जिले में ऊना तहसील, नालागढ़ में देश नाम का इलाका, अम्बाला जिले में अम्बाला सदर के साथ लगते पिन्जौर और कालका, करनाल जिले में शाहबाद, हिसार जिले में सिरसा की तहसील पर कुछ और क्षेत्र अकालियों को यह झांसा देकर पंजाबी प्रान्त से अलग कर लिए गए थे कि ये इलाके पंजाबी बोलने वालों के हैं पर क्योंकि वे हिन्दू पंजाबी हैं, उनके पंजाबी प्रांत में शामिल करने के साथ सिक्ख होमलैंड वाली बात रह जाएगी।

जैसे उनकी कुटिल नीति ने सोच रखा था, 60 प्रतिशत के बहुमत के साथ अकाली कभी भी अपनी नई, टिकाऊ, सरकार नहीं बना सके। उनको किसी-न-किसी राजनीतिक दल से मिलकर सरकार बनानी होती तो भी केन्द्र किसी-न-किसी बहाने उनकी बनाई सरकार को गिराकर पंजाब पर राष्ट्रपति शासन स्थापित कर देता। यह नाटक एक से ज्यादा बार खेला जाने लगा।

इसके साथ सिक्ख कांग्रेसी नेता अपनी राजनीतिक पहचान बनाए रखने के लिए किसी-न-किसी तरह अकाली-दल से सिक्ख धर्म की वर्चस्वता

छीनने की कोशिश में थे। गुरु नानक देव जी का 500 वां जन्म-दिवस मनाने के समय गुरु नानक फाउण्डेशन आदि संस्थाएं बनाकर सिक्ख कौम को प्रभावित करने का प्रयास किया गया। ऐसे ही गुरु गोबिन्द सिंह जी के 500वें गुरु-पर्व के समय पंजाब में कांग्रेस सरकार ने गुरु गोबिन्द सिंह मार्ग आदि स्थापित करके सिक्ख संगतों का ध्यान अपनी ओर खींचने का प्रयास किया। इस तरह के प्रयत्न महाराजा रणजीत सिंह की शताब्दी के अवसर पर भी किए गए।

कांग्रेस का सिक्ख नेतृत्व यहीं नहीं रुका, उन्होंने कुछ सिक्ख प्रचारक नेताओं को अपने साथ लेकर सिक्खों के धार्मिक क्षेत्र में दख़ल देना आरम्भ कर दिया। दल खालसा स्थापित किया गया। सन्त भिण्डरां वाले इसके मुखिया थे। इसके पेशतर कि उन्होंने कांग्रेस सरकार के विरुद्ध आन्दोलन शुरू किया, यह एक कड़वी सच्चाई है कि उन्होंने देश के उस वर्ष के आम चुनावों में कांग्रेस उम्मीदवारों की अकाली उम्मीदवारों के खिलाफ सहायता की और उनको जिताया। ऐसा ही उन्होंने शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के चुनावों के समय किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ज्यादातर अमृत प्रचार को समर्पित सन्त भिण्डरां वाले ने अन्य राजकीय मामलों में दिलचस्पी उस समय के कांग्रेसी मुख्यमंत्री के इशारे पर लेनी शुरू कर दी थी। इरादा यह था कि कांग्रेस संगठन को और मज़बूत किया जाए। यह एक ख्याली पुलाव था जिसने न कभी पकना था और न कभी पका, बल्कि हालात और बिगड़ने शुरू हो गए गुरु सिक्ख इस मिट्टी का बना होता है कि उसको कभी भी खरीदा नहीं जा सकता, चाहे कोई मास्टर तारा सिंह हो चाहे कोई सन्त फतेह सिंह, चाहे भिण्डरां वाले।

फिर एक समय आया जब अकाली दल को इस बात का विश्वास हो गया कि जिस प्रकार का पंजाबी प्रान्त उनको बख्शा गया था, उसके द्वारा उनके साथ बिल्कुल न्याय नहीं हुआ, बल्कि उनके आन्दोलन की सजा देश में सरकार की तरफ से ऐसे हालात पैदा किए जा रहे थे, कि सिक्ख भाईचारे की पहचान बिल्कुल समाप्त हो जाए।

हिन्दू धर्म एक अथाह सागर है जिसमें बौद्ध मत जैसे धर्म विलीन हो गए थे। इसकी बजाए कि देश की आजादी की जंग में सिक्ख कौम की अद्वितीय देन का लिहाज करते हुए भारत सरकार सिक्खों की मांगों पर सहानुभूति से विचार करती, स्वीकार करती, कई सुविधाएं जो उन्हें अंग्रेज सरकार के समय से ही प्राप्त थीं उनको भी धीरे-धीरे खत्म करना शुरू कर दिया गया।

ऐसा लगता कि कांग्रेस सरकार यह भूल गई थी कि स्वतन्त्रता संग्राम से प्राप्त किए तथ्यों के अनुसार अंग्रेजों की ओर से फांसी लगाए गए 191 देश-भक्तों में 93 सिक्ख थे। 2646 स्वतन्त्रता सेनानी जिनको काले पानी उम्र कैद के लिए भेजा गया, उनमें 2147 सिक्ख थे। ऐसे ही जलियांवाला बाग में मशीनगन की गोलियों का शिकार हुए 1202 शहीदों में 799 सिक्ख थे।

इनकी कुरबानियों के कारण 1929 में लाहौर में पास किए गए सम्पूर्ण आज़ादी के प्रस्ताव में सिक्ख सम्प्रदाय को आश्वासन दिया गया था।

"कांग्रेस सिक्खों को यकीन दिलाती है कि भविष्य में किसी संविधान को नहीं स्वीकारा जाएगा जिसके द्वारा सिक्खों की पूरी तसल्ली नहीं होती।" कांग्रेस के इसी समागम में सिक्खों की पहचान को कांग्रेस के झण्डे में केसरी रंग के रूप में स्वीकार किया गया था। यह तथ्य भी ध्यान में रखने वाला है कि अंग्रेजी सरकार कायम होने से पहले पंजाब में सिक्खों का शासन था। यह भी एक कारण था कि अंग्रेज अफसर सिक्खों को उनकी आबादी के अनुपात से कहीं अधिक राजकीय प्रतिनिधित्व देते थे। सिक्ख तब देश की आबादी का केवल एक प्रतिशत और अविभाजित पंजाब में 13 प्रतिशत थे, पर अंग्रेज सरकार ने उनके लिए पंजाब विधान सभा में 19 प्रतिशत सीटें आरक्षित कर रखी थीं।

और इधर अब फौज में क्या, और प्रशासन के महकमों में क्या, सिक्खों की भर्ती पहले जैसे नहीं हो रही थी। सिक्खों की शिकायतें अधिक हो रहीं थी, उनकी मांगों की ओर से सरकार बेरुखी होती जा रही थी। सिक्खों को यह एहसास होने लगा जैसे वह दूसरी श्रेणी के नागरिक हों।

यह देखकर अकाली दल ने सिक्ख कौम की मांगों पर एक प्रारूप तैयार किया जो आनन्दपुर साहिब के समागम में 16/17 अक्तूबर, 1973 को स्वीकृत हुआ और फिर पार्टी के खुले सैशन में 28 अगस्त 1977 को सर्व सम्मति से विधिवत पास किया गया। इस प्रस्ताव की कुछ मुख्य धाराएं ये हैं–

1. वर्तमान पंजाबी प्रान्त में, पंजाबी भाषा-भाषी इलाके जो किसी कारण पंजाबी प्रान्त वितरण के समय अलग कर लिए गए थे, चण्डीगढ़ सहित पुनः शामिल कर लिए जाएं ताकि एक ऐसा राज्य अस्तित्व में आए जिसमें सिक्ख कौम का बोलबाला हो और उनकी पहचान पर कोई आंच न आ सके।

2. यह नया राज्य सुरक्षा, विदेशी मामलों, डाक-तार, परिवहन और मुद्रा प्रणाली को छोड़कर बाकी मुद्दों पर स्वायत्त होगा।
3. सतलुज-व्यास और रावी पंजाब के दरिया होने के कारण इनके पानी और बिजली आदि पर पंजाब का अधिकार है। इन नदियों के बारे में कोई कानूनी कार्रवाई पंजाब सरकार ही कर सकती है, न कोई और राज्य और न ही केन्द्रीय सरकार।
4. जैसे शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी पंजाब के ऐतिहासिक गुरुद्वारों का प्रबन्ध देखती है, वैसे ही पंजाब से बाहर देश के बाकी गुरुद्वारे भी शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के अधिकार में होने चाहिए जिसके लिए संसद में विधिवत् कानून पास किया जाए।
5. सिक्खों को कृपाण रखने का अधिकार होना चाहिए और इस पर 6 इंच वाली पाबन्दी नहीं रखनी चाहिए। गुरुसिक्ख जितनी लम्बी चाहें कृपाण रख सकते हैं।
6. देश को आजादी मिलने के समय सिक्ख फौज में 30 फीसदी से भी अधिक भर्ती किए जाते थे। अब सिक्खों की भर्ती को उनकी आबादी के मुताबिक 1.5 प्रतिशत तक ही सीमित किया जा रहा है। इस तरह सिक्ख नौजवानों में बेकारी बढ़ रही है। इस भेदभाव को दूर किया जाए।
7. हरियाणा और दिल्ली आदि राज्यों में जहाँ सिक्खों की आबादी भरपूर है, पंजाबी को दूसरी राज्य-भाषा का दर्जा दिया जाए।

आनन्दपुर साहिब के इस प्रस्ताव पर 28 अक्तूबर 1978 को अकाली दल के लुधियाने में हुए समागम में फिर विचार किया गया और कुछ परिवर्तनों के साथ पास किया गया। लुधियाने के प्रस्ताव में सिक्खों के वर्चस्व आदि का जिक्र नहीं है। इस प्रस्ताव को जत्थेदार गुरुचरण सिंह टोहड़ा ने प्रस्तावित किया और तत्कालीन मुख्य मंत्री सरदार प्रकाश सिंह बादल ने इसका अनुमोदन किया। यह मत चाहे आनन्दपुर साहिब के मत पर आधारित कहा जाता था पर इसमें केवल राजकीय पहलू उभारा गया था।

लुधियाने का प्रस्ताव जब पास किया गया, तब अकाली दल पंजाब में सत्ता में था। केन्द्र में भी उस समय के सत्ता-दल जनता पार्टी को अकाली दल का सहयोग प्राप्त था।

परन्तु इससे पूर्व कि कोई निर्णय लिया जा सकता केन्द्र में जनता पार्टी को उखाड़ कर कांग्रेस फिर सत्ता में आ गई। पहली बात, प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी ने पंजाब में अकालियों की सरकार को बर्खास्त कर दिया। यही नहीं, पानी के मामले को सुप्रीम कोर्ट से वापिस मंगवा कर अपनी मनमर्जी का फैसला दे दिया। कहते हैं, ऐसा करने में प्रधानमंत्री को केन्द्र के सिक्ख मंत्री और पंजाब, के मुख्यमंत्री दोनों को वास्तव में मनाना पड़ा। उनको आंखें दिखाकर समझौते पर हस्ताक्षर करवा लिए गए।

यह समाचार मिलते ही सिक्ख किसानों ने एस. वाई. एल. नहर को खोदना बन्द करा दिया। कपूरी नाम का यह मोर्चा कुछ समय बाद अगस्त 1982 में धर्म-युद्ध नाम के मोर्चे में बदल गया। अब सिक्खों ने आनन्दपुर प्रस्ताव की अपनी सभी मांगों पर जोर देना आरम्भ कर दिया।

धर्म-युद्ध मोर्चा क्या आरम्भ हुआ, अनगिनत सिक्ख गिरफ्तारियाँ देने लगे, सैंकड़ों, गोलियों के साथ भूने गए। पहले दो महीनों में ही 50,000 सिक्ख कैद हुए। सरकार ने जहाँ-तहाँ से पुलिस को इकट्ठा करके पंजाब में भेजा ताकि आन्दोलनकारियों को काबू किया जा सके पर हालात दिनों-दिन बिगड़ते गए। पंजाब में दस सिक्ख मर्द, औरतें बच्चों के पीछे एक सुरक्षा कर्मचारी तैनात था, तब भी मोर्चा काबू में नहीं आ रहा था।

इतने में संत जरनैल सिंह भिण्डरां वाले और उनका दल खालसा जिसको कांग्रेस ने राजनीति की ओर प्रेरित किया था, अकाल तख़्त पर काबिज़ हो गया और वहाँ मोर्चे का खुल्लम-खुल्ला नेतृत्व करने लगा। पुलिस अकालियों को झूठी सच्ची झड़पों में निशाना बना रही थी, अकाली पुलिस से बदले ले रहे थे। अकालियों और पुलिस की इस टक्कर में कई मासूम भी गेहूँ में घुन की तरह पिस रहे थे। पंजाब में अराजकता पल-पल बढ़ती जा रही थी।

फिर ऐशियाड-खेलों के समय केन्द्र सरकार ने जिस तरह सिक्खों की बेअदबी की, अवकाश प्राप्त जरनैल जगजीत सिंह अरोड़ा और अमरजीत कौर जैसे प्रतिष्ठित सिक्ख नेताओं की तलाशी ली गई, हालात बिल्कुल काबू से बाहर हो गए। आतंकवादी किसी तरह काबू में नहीं आ रहे थे। इस दौरान अकालियों के साथ समझौते के लिए प्रयत्न किए गए। हर बार कांग्रेस सरकार विरोधी पार्टियों या बिचौलियों के साथ सहमत होती, पर समय आने पर राजीनामें से मुकर जाती। यह कहानी कम्यूनिस्ट पार्टी (मार्कसिस्ट) के

प्रतिष्ठित नेता सरदार हरिकिशन सिंह सुरजीत के शब्दों में–

"अकालियों ने तीन अगस्त 1982 को अपना धर्म युद्ध मोर्चा आरम्भ किया। गिरफ्तारियाँ देने से पहले प्रकाश सिंह बादल ने सब विरोधी दलों को एक पत्र भेजा, जिसमें भिन्न-भिन्न मांगों के बारे में अकाली दल की स्थिति का स्पष्टीकरण किया गया और उसमें दस मांगें पेश की गईं जिनमें चार धार्मिक और 6 सारे पंजाबियों के साथ सम्बन्धित थीं। यह बड़ी तबदीली थी। उधर सरकार न हिली।"

"केवल उस समय जब जेल में कोई जगह नहीं रही और अकाली बड़े पैमाने पर लोगों को लामबन्द करने में सफल हो रहे थे, सरकार ने स्थिति का नोटिस लिया और समझौता वार्त्ता शुरू की। भूतपूर्व विदेश मंत्री श्री स्वर्ण सिंह जनता के साथ 2 नवम्बर, 1982 को एक समझदारी पर पहुंचे। मैंने भी इसमें कुछ योगदान किया। उधर जब 3 नवम्बर को गृहमंत्री की ओर से संसद में बयान दिया जाना था, यह उस पहुंची हुई समझदारी से भिन्न था। क्या सरकार समझौते से नही मुकरी ?"

"पर केवल 17 नवम्बर को ही अकालियों के साथ पुनः सम्पर्क किया गया। उन्होंने सही रूख अपनाया और फिर 18 नवम्बर को एक समझौते पर पहुंचा गया। अमृतसर के लिए एक हवाई जहाज तैयार रखा गया। इस समझौते से कौन पीछे हटा ? फिर यह सरकार ही थी।"

"एशियन खेलों के बाद, सरकार ने फिर अकालियों के साथ सीधे समझौता वार्त्ता आरम्भ की। एक कैबीनेट सब कमेटी का गठन किया गया और बातचीत के कई दौर हुए। उन्होंने बातचीत के सूत्र को वहाँ से पकड़ना मुनासिब न समझा जहाँ से स्वर्ण सिंह ने छोड़ा था। यह बातचीत बिल्कुल ही नए सिरे से आरम्भ की गई बातचीत टूट गई.......। सरकार से विपक्ष को बाद में विश्वास में लेना जरूरी समझा।.......यह मीटिंग हल ढूंढने के लिए विपक्ष की सहायता प्राप्त करने के लिए, नहीं थी बल्कि अकालियों के गैर जरूरी स्टैंड के बारे में विपक्ष को सूचित करने के लिए आयोजित की गई थी। इस मीटिंग में प्रधानमंत्री ने कहा कि आनन्दपुर साहिब के प्रस्ताव जिस पर अकाली जोर दे रहे थे, पर सहमत नहीं हो सकती। इस नुक्ते पर विपक्ष ने उनके साथ सहमति प्रकट की, पर मांग की कि त्रिपक्षीय बैठक आयोजित किए जाए जिससे अकालियों के पक्ष को सुना जा सके और विपक्ष भी समाधान पाने के लिए अपना योग दे सके। प्रधानमंत्री ने विपक्षी दलों की इस

सर्वसम्मत मांग को स्वीकार कर लिया और त्रिपक्षीय कानफ्रेंस बुलाई गई। विपक्ष ने अकालियों को आनन्दपुर साहिब के प्रस्ताव को ऐजेण्डे में न शामिल करने के लिए मना लिया। वे केवल राज्य के सम्बन्धों के पुनर्निर्धारण पर दृष्टिपात करने से सन्तुष्ट थे। नदियों के पानी के झगड़े के विषय पर भी सहमति हो गई थी। केवल एक ही प्रमुख समस्या, अर्थात् क्षेत्रीय झगड़ों की समस्या निपटानी रह गई थी। इस मांग के बारे में भी विपक्षीय दलों ने प्रस्तावित किया कि चण्डीगढ़ पंजाब को दिया जाए और हरियाणा को नई राजधानी बनाने के लिए अच्छी मात्रा में धन उपलब्ध करवाया जाए। पर सरकार अपने पहले 1970 वाले इस एवार्ड को स्वीकार करवाने पर अड़ी रही और टस से मस नहीं हुई, जिसका अर्थ था कि चण्डीगढ़ पंजाब को तब ही दिया जाएगा यदि फ़ाजिल्का और अबोहर हरियाणा को दिए जाएं। इन समझौतों वार्त्ताओं को तोड़ने की जिम्मेदारी सरकार की बनती है न कि अकालियों की।"

"फिर 20 अप्रैल को एक समझौते पर पहुंचा गया। इसको लागू करने की आवश्यक कार्यविधि ही तैयार करनी बाकी रह गई थी। फिर सरकार मुकर गई।"

"30 जून, 1983 को विपक्षी दलों ने क्षेत्रीय झगड़ों के बारे में सर्वसम्मति से तय किया कि चण्डीगढ़ पंजाब को दे दिया जाए और पंजाब के कुछ इलाके इसके बदले में हरियाणा को दे दिए जाएं और साथ ही उसको नई राजधानी बनाने के लिए धन उपलब्ध करवाया जाए। सरकार ने फिर इस प्रस्ताव को रद्द कर दिया।"

जब कांग्रेस सरकार एक के बाद एक समझौतों को रद्द कर रही थी, सन्त भिण्डरां वाले, जरनैल सुबेग सिंह और ऑल इण्डिया सिक्ख स्टूडैण्ट्स फैडरेशन के प्रधान अमरीक सिंह दरबार साहब के कम्पलैक्स में खुलेआम मोर्चे कायम कर रहे थे और हर तरह के हथियार और गोली बारूद इकट्ठा किया जा रहा था। उसमें छोटी व दरमियानी मशीनगनें थी, एण्टी टैंक मिज़ाइलें भी थीं, स्वचालित रायफलें, स्टेनगन, हथगोले बनाने की फैक्टरी भी थी। दरबार साहिब का अहाता एक तरह से एक किला बन गया जिसमें हर तरह के आतंकवादी जाकर पनाह लेते थे और ऐसा लगता, पुलिस उनका कुछ नहीं कर सकती थी। डी.आई.जी. अटवाल की हत्या करने वाला हत्यारा अपना काम करके दिन-दिहाड़े दरबार साहिब में घुस गया था और किसी ने उसका पीछा नहीं किया था।

यही बात इन्दिरा गांधी ने 2 जून 1984 को अपने रेडियो और टी.वी. के भाषण में भी कही। सरकार हरमन्दिर में दाखिल हो सकती है, पर वह ऐसा नहीं करेगी। चाहे इधर इसके लिए पूरी तैयारी हो चुकी थी। इसके साथ ही अगली सुबह से सारे पंजाब में 36 घंटों का कर्फ्यू लगा दिया गया। सड़कों पर हर प्रकार की आवाजाही बंद कर दी गई। टेलीफोन डैड हो गए। फौज को हुक्म दे दिया गया कि किसी भी तरह दरबार साहिब के अहाते को आतंकवादियों से खाली करवा लिया जाए। इस कार्रवाई को ऑप्रेशन ब्लयू स्टार का नाम दिया गया।

दरबार साहिब के इर्द-गिर्द सी.आर.पी. और बी.एस.एफ. के साथ फौज की एक बटालियन भी तैनात कर दी गई। घंटाघर, ब्रह्मबूटा मार्किट के क्षेत्र में निगरानी कड़ी कर दी गई और छत्तीस खुही, चौक प्रागदास, बाबा अटल, आटा मंडी आदि के सारे रास्ते बन्द कर दिए गए। अब लाउड स्पीकरों पर बार-बार एलान किया जाने लगा कि आतंकवादी अपने आप को फौज के सामने समर्पित कर दें। इसके साथ ही फौज ने आतंकवादियों के मोर्चों पर धुआंधार गोली बारी शुरू कर दी, ताकि उनको इस बात का एहसास हो जाए कि फौज की कार्रवाई का क्या रूप होने जा रहा था। इसके जवाब में आतंकवादियों ने मीडियम मशीनगनों और हैंड-ग्रेनेडों का प्रयोग किया। मीडियम मशीनगनें पानी की टंकी के पीछे छिपा रखी हुई थी। इनसे एक सैकिण्ड में 60 गोलियाँ चल सकती थीं।

4 जून की सुबह तक फौज को यह निश्चय हो गया था कि आतंकवादियों को डरा-धमका कर बात बनने वाली नहीं थी। वे लोग हथियारों से लैस हैं और उनको काबू में करने के लिए कारगर कार्रवाई करनी होगी। अब अधिक शक्तिशाली हथियार लाए गए। इनमें 25 पाउंडर, 3.87 माउंटेंन गन और जीपों पर लादी बिना धक्के वाली तोपें थीं। फौज ने पानी की टंकी को पहला निशाना बनाया और उसके पीछे छिपे गनों सहित बब्बर अकाली पुर्जा-पुर्जा होकर ऐसे उड़ गए जैसे आंधी में गूदड़ों के चिथड़े उड़ते हैं। टंकी में छेद हो गया और उसमें से पानी फूट पड़ा। टंकी की निचली मंजिल पर रखा मिलिटैण्टों का गोली-बारूद बेकार हो गया।

अब अन्दर छिपे मिलिटेण्टों ने रॉकेटों और हथगोलों से मुकाबला शुरू कर दिया। यह देखकर फौज टैंक और बख्तर बन्द गाड़ियाँ ले आई। गुरु रामदास सराय के पास जलियांवाले बाग में तोपें गाड़ दीं। हरिमन्दिर के

ऊपर उड़ रहे दो हैलिकॉप्टर फौज का फायर करने में नेतृत्व कर रहे थे। सारा दिन चारों ओर से गोली चलती रही। उस शाम को दो सौ मर्द, औरतों, बच्चों ने आत्म समर्पण किया। इनमें अधिकतर गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के कर्मचारी थे।

उधर अमृतसर के पास के गांवों में यह खबर पहुंच गई थी कि फौज ने दरबार साहिब को घेर रखा है और हज़ारों की गिनती में श्रद्धालु यह घेरा तोड़ने के लिए इकट्ठे होने शुरू हो गए। फौज को अब जो कुछ करना था, तुरन्त करना था। अगर आगे-पीछे के गांवों में से लोग इकट्ठे होकर आ गए तो नगर में खलबली मच जाती।

5 जून की रात 40 कमाण्डों दरबार साहिब के अन्दर घुसने में सफल हो गए और वे सन्त हरचन्द सिंह लोंगोवाल तथ गुरचरण टोहड़ा सहित कुछ और श्रद्धालुओं को बाहर निकाल लाए। अब कमाण्डों छोटी-छोटी टुकड़ियों में दरबार साहिब के अन्दर घुसने लगे। कदम-कदम पर उनके ऊपर गोलियों की बरसात होती। चाहे उन्होंने बुलेट प्रूफ जाकिटें पहनी हुई थीं। आतंकवादी उनकी टांगों को निशाना बनाकर उनको निढाल कर रहे थे। परिक्रमा के चारों तरफ से गोलियाँ बरस रही थीं। तहखानों के झरोखों से आतंकवादी हथगोले फैंक रहे थे। अकाल तख़्त तक पहुंचना असम्भव हो रहा था। यह देखकर फौज ने टैंक और बख्तर बन्द गाड़ियाँ ला झोंकी। अगली सुबह को कमाण्डों जवानों का एक छोटा-सा दस्ता अकाल तख़्त तक पहुंचने में सफल हो गया। आतंकवादियों पर इसका कोई असर नहीं हुआ, बल्कि गैस हवा में उड़कर फौजियों का गला पकड़ने लगी। कमाण्डों न पीछे जा सकते थे, न आगे बढ़ सकते थे और एक-एक करके ढेरी हो रहे थे। यह देखकर फौज ने अकाल तख़्त पर एक रॉकेट फैंका। आतंकवादियों ने इसकी भी परवाह नहीं की। फिर टैंक और बख्तरबंद गाड़ी को परिक्रमा में लाया गया। बख्तरबंद गाड़ी से आंखों को चुंधिया देने वाली रोशनी आतंकवादियों पर फैंकी गई। इसकी भी उन्होंने परवाह नहीं की, बल्कि टैंक को उन्होंने एन्टी टैंक मिसाइल से बेकार कर दिया अैर बख्तरबंद बाड़ी के ड्राइवर को गोलियाँ मार कर अंधा कर दिया।

आखिर फौज ने दूसरे विश्व युद्ध का सबसे घातक हथियार इस्तेमाल करने का फैसला किया। अब 3.7 पहाड़ी तोप को लाया गया। इससे तो एक बार में तीन गोले छूटते थे जिनमें से एक गोला चारों तरफ धुआं-धुआं कर

देता है। इस तोप के अकाल तख़्त पर पहले वार से अकाल तख़्त का मुंह-माथा नीचे आ गिरा। चारों ओर अत्यन्त गहरे धुंए के घटाघोप में कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। मौत की एक खामोशी छा गई।

जिस तरह दरबार साहब में नाकाबंदी करके आक्रमण किया गया, ऐसे ही पंजाब के 38 और गुरुद्वारों की बेअदबी की गई। पटियाले के ऐतिहासिक गुरुद्वारे दुःख निवारण साहब को अकाल तख़्त की तरह तड़-तड़ गोलियों का निशाना बनाया गया। ऐसे ही गुरु सिक्खों के खून की होली खेली गई।

7 जून, 1984 की सुबह सिक्ख कौम का काबा सामने तहस-नहस हुआ पड़ा था। गुरु हरगोबिन्द सिंह जी का अपने कर-कमलों से बनाया पवित्र अकाल तख़्त ढेर कर दिया गया था। तहस-नहस हुआ मुंह के बल उलटा पड़ा था। बेआसरों का आसरा, बेघरों का घर हरिमन्दिर का दर्शनी द्वार भग्न हो गया था। सब पक्ष उजड़े हुए थे। परिक्रमा उजड़ी पड़ी थी। संगमरमर की वे शिलाएं जिन पर माथा रगड़ कर गुरुसिक्खों की मनोकामनाएं पूरी होती थीं, खून से लथ-पथ थीं। अमृत सरोवर में मछलियों की जगह लाशें तैर रही थी। बेधड़क फौजियों की वहशत, दहशत-पसन्दों के हथियार डालने के बाद भी रैफ्रेन्स लाइब्रेरी, अजायब घर और गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के रिकार्ड को एक-एक करके भस्म कर दिया गया।

गुरु अर्जुन देव जी का शहीदी गुरुपर्व मनाने के लिए गुरुसिक्ख जगह-जगह गोलियों से ठण्डे हुए पड़े थे। कोई नुक्कड़, कोई कोना खाली नहीं था।

कोई तीन सौ वर्ष पहले जिस हरिमन्दिर का नींव पत्थर एक मुसलमान फकीर मियाँ मीर ने रखा था, उस हरिमन्दिर में आज दगड़-दगड़ करता एक मुसलमान लैफ्टीनेंट कर्नल, इसहाक खान अपने फौजियों के साथ घुसा और उसने सिक्ख स्टूडैन्टस फैडरेशन के जनरल सेक्रेट्री हरमन्दिर सिंह सन्धु को हिरासत में ले लिया।

पर संत भिण्डरां वाले कहाँ थे ? आगे-पीछे नीचे-ऊपर ढूंढा जा रहा था। किसी को कुछ समझ नहीं आ रही थी।

2

दिल्ली से कुछ सुख-संदेशा नहीं मिला। गुरु महाराज को आनन्दपुर से निकले हुए कई महीने हो गए थे, गुरु महलों में क्या और गुरुसिक्खों में क्या, एक रहस्य बना हुआ था और फिर उनको राह में बंदी भी तो बना लिया गया था।

उधर हिन्दुस्तान के हिन्दू सम्प्रदाय में हाहाकार मचा हुआ था। हिन्दू मन्दिरों को एक के बाद एक ढाया जा रहा था। नए मन्दिरों का निर्माण नहीं किया जा सकता था, न ही पुराने मन्दिरों की मरम्मत की जा सकती थी। हिन्दू भाईचारे के लोग न मुसलमानों के जैसी पोशाक पहन सकते थे, न ही मुस्लिम नाम रख सकते थे। हिन्दू अरबी और इराकी घोड़े की सवारी नहीं कर सकते थे। देसी घोड़े के ऊपर न काठी डाल सकते थे, न लगाम लगा सकते थे। हिन्दू कोई हथियार नहीं रख सकता था, तीर-तलवार तक लेकर बाहर नहीं निकल सकता था। हिन्दू न मुहर बनवा सकते थे। हिन्दुओं को अपना पहनावा मुसलमानों से अलग रखना होगा। हिन्दू अपने धर्म का प्रचार नहीं कर सकते थे, किसी मुसलमान के धर्म का परिवर्तन नही कर सकते थे। मुसलमान के ठिकाने के पास हिन्दू अपपना घर नहीं ना सकते थे। मुसलमानों के कब्रिस्तान के निकट अपने मुर्दे नहीं जला सकते थे। हिन्दू चाहे कितना ही धनी हो, किसी मुसलमान को न नौकर रख सकता था, न ही गुलाम बना सकता था। यही नहीं, अगर कोई मुसलमान मुसाफिर हिन्दू धर्मशाला में ठहरना चाहे तो उसे कोई रोक नहीं सकता था। हिन्दू घरों में कोई भी मुसलमान तीन दिन तक मेहमान के तौर पर रुक सकता था और हिन्दुओं को उसकी मेहमान-नवाज़ी करनी पड़ती थी। अगर कोई हिन्दू मुसलमान बनना चाहे तो उसे रोका नहीं जा सकता था। हिन्दुओं के लिए यह आवश्यक था कि वे मुसलमानों को आदर दें। अगर कोई मुसलमान चाहे तो वह हिन्दुओं की किसी भी सभा या महफिल में शामिल हो सकता था। कोई हिन्दू इनमें से अगर किसी हुक्म की अवज्ञा करे तो, उसे घर-घाट से वंचित किया जा सकता था, यहाँ तक कि जान से भी मार दिया जा सकता था।

हिन्दू प्रजा पर जजिया लगाया गया था। मुसलमान व्यापारियों को चुंगी आदि कर से मुक्त करने के लिए हिन्दुओं के ऊपर इस तरह के कर बढ़ा दिए गए थे। कई नौकरियाँ थीं जिन पर कोई हिन्दू नियुक्त नहीं किया जा सकता था। जो लोग पहले उन जगहों पर काम कर रहे थे, उनको नौकरियों से निकाला जा रहा था, लेकिन वे कलमा पढ़कर धर्म बदलकर उन पदों पर बने रह सकते थे।

औरंगजेब व्यक्तिगत जीवन में बेशक खुदा-परस्त था पर उसको तख़्त पर बैठने के लिए की गई करतूतें मानसिक तौर पर परेशान करती रहती थीं।

वह अपनी इस मैली चादर को इस्लाम के प्रचार से धोना चाहता था। सिक्ख धर्म उस समय 'चढ़ती कला' में था। सिक्ख गुरु महाराज अपने आप को उस समय हिन्दू धर्म के रक्षक समझते थे। कोई भी जिसके साथ अन्याय हुआ हो, उसका पक्ष लेते थे। सिक्ख पंथ न्यायप्रिय राज का समर्थक था। गुरु अर्जुन साहब की शहीदी, गुरु हरगोबिन्द के साथ झड़प और अब गुरु तेगबहादुर के साथ मुगल शहनशाह की शत्रुता एक न टाली जाने वाली हकीकत थी।

दिल से अल्लाह से डरने वाला, औरंगजेब सोचता अगर गुरु महाराज करामात करके दिखा दें तो उनको अल्लाह का महबूब जानकर वह उनको आज़ाद कर सकता था, नहीं तो उनको इस्लाम कबूल करना पड़ेगा ताकि बाकी हिन्दू भाईचारे के लिए ऐसा करने के लिए उसका रास्ता साफ हो सके। गुरु महाराज करामात को कहर गिनते थे। इस्लाम के साथ उनका कोई बैर नहीं था, पर उनको गुरु नानक का पंथ प्यारा था। उसको कैसे छोड़ते ?

औरंगजेब सोचता, रामराय जैसा साधारण मनुष्य चमत्कार कर-कर के दरबारियों को चमत्कृत करता रहता है, आखिर गुरु तेगबहादुर ऐसा क्यों नहीं कर सकते थे ? वह तो गुरु बाबा नानक की गद्दी पर विराजे हुए थे। हिन्दुस्तान के शहनशाह को निवाजने के लिए कोई इतना भी नहीं कर सकता था।

आलमगीर के दरबारी औरंगजेब की शरारत से परिचित थे। वे इस हकीकत से भी परिचित थे कि वह विस्फोटक स्थिति थी जिसको और अधिक टाला नहीं जा सकता था। जितना जल्दी यह कांटा निकल सके इसको वे निकालना चाहते थे। सबसे आसान तरीका था कि शाही काजी से फतवा जारी करवाया जाए ताकि शहनशाह के हाथ मज़बूत किए जाएं।

आनन्दपुर में बहुत देर से सभी सगे-सम्बन्धी और निकटवर्ती गुरुसिक्ख बिगड़े हुए हालात को देखते हुए गुरु गोबिन्द सिंह के साथ के लिए आ इकट्ठे हुए थे। इनमें से अधिकांश गुरु प्यारों ने आनन्दपुर में ही निवास कर लिया था। इनमें गुरु महाराज की बुआ के पांच बेटे थे—संगो शाह, जीत मल, गुलाम चन्द, गंगाराम और माहरी चन्द। इस तरह सूरज मल के दो पोते—गुलाबराय और रामदास थे और गुरु महाराज के मामा किरपाल थे। इनके अलावा गुरु महाराज के बचपन का साथी दयाराम था और भाई नंद चंद एक मसन्द था जो उनके अंग संग रहता था, जिस पर गुरु महाराज को

पूर्ण विश्वास था। गुरु महाराज के मनोरंजन के लिए कुछ कीर्तन करने वाले जत्थे भी आनन्दपुर में स्थायी रूप में बस गए थे।

जब गुरु महाराज इन साथियों के साथ मिलकर गाते बजाते बाहर निकलते, उनके मुखड़े का जलाल, उनकी जवानी का उभार, उनके नयनों की मस्ती की दीवानियां, नगर की लड़कियां-चिड़ियाँ अपने बनेरों पर बैठी उनका रास्ता देखा करती थीं, उनके गाए हुए बोलों में शामिल हो जाती थीं, आगे-पीछे बेहद सुहाना समय बीता जाता। गली-गली नगमें गूंजने लगते हर घर, हर आंगन में गुरु महाराज के प्रिय वचनों की धुनें सुनाई देती।

या फिर गुरु गोबिन्द अपने हमजोलियों के साथ कुश्तियाँ खेलते। महलों में ही उन्होंने अखाड़े बनाए हुए थे। तीर-कमान की निशानेबाजी का अभ्यास करते। इसलिए उनके लिए लाहौर से तेज नोक वाले विशेष तीर मंगवाये। घुड़सवारी और नेजाबाजी उनके और मनोरंजन थे या फिर साथियों के साथ मिलकर शिवालिक की पहाड़ियों में शिकार के लिए निकल जाते।

तैराकी गुरु महाराज का प्रिय मनोरंजन था। अपने साथियों के साथ सतलुज के पानी में जा बड़ते और निकलने का नाम न लेते। तैर-तैर कर एक दूसरे के ऊपर पानी के छींटे मारने का खेल खेलते उनको हार रास न आती।

ऐसे ही एक बार पानी में गोते देने की बुर्ज में से बच कर गुरु महाराज का एक साथी गुलाब राय दरिया से बाहर निकल, धूल-धूसरित हुआ, गुरु महाराज की दसतार को पकड़कर अपने सिर पर बांधने लगा। यह देखकर भाई संगो उसको रोकने के लिए आगे बढ़ा। गुरु महाराज का ध्यान उधर गया तो उन्होंने कहा, "कोई बात नहीं, गुलाबराय को मेरा साफा सिर पर रख लेने दो, किसी दिन इसे मेरी जिम्मेदारियाँ भी निभानी होंगी।" यह भविष्यवाणी शायद उस संयोग की ओर इशारा था, जब गुरु महाराज खुद दक्षिण की ओर पधारे थे और उनकी अनुपस्थिति में गुलाबराय को आनन्दपुर की सम्भाल की जिम्मेदारी बख्शी गई थी।

माता नानकी जी और माता गूजरी जी गुरु तेग बहादुर जी की याद में कभी-कभी उदास हो जातीं। बहू सास से कुछ न बोलती, पर ऐसे लगता जैसे आंसू उनकी आंखों की कोरों में छिपे हुए हों। कोई बहाना हो तो वे छल-छल गिर पड़ेंगे। न उन्हें खाना अच्छा लगता, न पीना। रात-रात भर तारे गिनते, करवटें बदलते, उनकी गुजर जाती। सास अपनी बहू-रानी से अपने मन का

क्लेश छिपाए रखती, बहू अपनी सास को न पता लगने देती कि कौन-सा संताप वह भोग रही है। एक गुरुबाणी का ही सहारा था, लेकिन इस मन की ममता का, इस दिल की लगन का कोई क्या करे ? न दिन को चैन, न रात को आराम। आंख लगती तो बुरे-बुरे सपने उनको घेर लेते।

और उधर गुरु गोबिन्द सिंह थे, जैसे दीन-दुनिया उनकी मुट्ठी में हो, उनकी दृष्टि में और ही और सपने थे। जैसे कोई उमड़ रहे तूफान को देख रहा हो, चाहे तो उसका मुंह मोड़ दे, चाहे तो उसकी मिट्टी-धूल के साथ झूलने दे। उनका बाहू-बल नित तगड़ा हो रहा था। उनका हौंसला हर दिन मज़बूत हो रहा था।

एक नजर उनको देखकर माता नानकी और माता गूजरी को जैसे सब कुछ भूल जाता। यह एक ही धैर्य बंधता। जैसे कोई बुरे सपने को मरोड़कर फेंक दे, ऐसा उनको महसूस होता।

पर एक दम से फिर उनको गश आने लगता। रात के निचाट गहरे अन्धेरे में अपने सोफे के पलंग के ऊपर बैठी माता नानकी जी सोचती, अगर उनको वापिस आना होता तो उनके बेटे को गुरुगद्दी क्यों देकर जाते। उन्होंने तो अपने सामने उसको तिलक लगवाया था। अपने आसन पर साहिबजादे को बैठाया और उसके माथे को चूमकर आशीष दी थी। जब वे ऐसे कर रहे थे तो माता नानकी को ऐसे लगा जैसे गुरु बाबा नानक का साया हो। उनके सुपुत्र के आकार में से उतर कर उनके पोते के कद-बुत में प्रवेश कर रहा हो। जोत से जोत जल रही थी। उनको वही खुशबू अपने पोते में से आने लगी भीनी-भीनी जो सुगन्ध उनको अपने बेटे में से आया करती थी।

वीरवार का दिन था, अगहन मास की पांचवी तारीख, माता गूजरी, जो भोर की जागी हुई थी, उनको लगता जैसे उनका दिल बैठ-बैठ जा रहा हो। चक्कर आ रहे थे, जैसे वह किसी अन्धेरे कुंए में गिरती जा रही हों। उन्हें स्नान करना था। फिर उनके नित-नेम का समय हो जाएगा। पर ऐसा लगा जैसे उनका सांस सत सब रुक गया हो, जैसे किसी ने उनका सारे का सारा लहू निचौड़ लिया हो। बार-बार उनकी पलकें भीग-भीग जातीं। एक टीस-सी उनके सीने में से उठती। ऐसे लगता जैसे कोई उनके मांस को काट-सा रहा हो। बार-बार चीखों का एक चित्र उनकी आंखों के आगे तैरने लगता, भभक रही आग, दहक रहे अंगारे, यह कौन जल रहा था ?

और फिर सहसा माता गूजरी जी का ऊपर का सांस ऊपर और नीचे

का सांस नीचे रह गया। जैसे उनके दिल की कोई धड़कन छूट गई हो। उनके सुहाग की सौगात अंगूठी कहीं खो गई थी, परन्तु अगले ही क्षण उन्होंने अपनी अंगूठी वाली अंगुली को हाथ लगवाकर देखा, अंगूठी तो वैसे की वैसी अंगुली पर कायम थी। चम-चम कर रहा था अंगूठी का नग। अब माता गूजरी जी का हाथ जैसे आप ही आप जैसे उनके होंठों की ओर उठ गया और उन्होंने अपनी नग वाली अंगूठी को चूम लिया। ऐसे तो पहले उन्होंने कभी नहीं किया था।

स्नान करके नित नेम से फारिग होकर धर्मशाला में साधु संगत की हाजरी भरकर, वह जब अपने महलों को वापिस आई, एक आशंका जैसे उनका पीछा ही न छोड़ रही हो। उनसे कुछ नहीं खाया जाएगा। यह रसोइया बार-बार क्यों उनसे पूछे जा रहा था ? बाहर धूप निकल आई थी। कुछ देरबार दोपहर हो जाएगी। माता गूजरी के आंसू जैसे थमने में ही न आ रहे हों। ऐसे भरे-पूरे आंगन में उनका बिना कारण रोना, कोई क्या कहेगा ? और उन्होंने सोचा वह दूर ऊपर छत पर ममटी के पीछे बैठ कर जी भर कर रो लेगी..........जी भर कर अपने आंसू बहा लेगी।

और वे सीढ़ियाँ चढ़ती गई, एक मंजिल, दूसरी मंजिल ! यह क्या, ममटी के पीछे तो माता नानकी बैठी रो रही थी।

वह दिन, उससे अगला दिन, फिर एक दिन, एक और दिन, न माता नानकी जी की आंखों में से आंसू सूखते, न माता गूजरी की पलकें सूखती। सास और बहू छिप-छिपकर लहू के आंसू बहाती रहतीं। उनको कुछ समझ में नहीं आ रहा था। वे क्यों ऐसा कर रही थीं ?

और फिर अगले वीरवार, अपने नित-नेम से निपट कर माता गूजरी जी आंगन में बैठी चिंताओं में डूबी गरम-गरम धूप सेंक रही थीं कि दिल्ली से आए भाई जैता ने उनके सरताज का शीश उनकी झोली में डाल दिया। एक नजर माता जी ने भाई जैता के मुंह की ओर देखा और फिर उनकी झोली में पड़े सरमाए की ओर। एक और खामोशी और फिर उनके होठों से ये बोल निकले—

"तुम्हारी निभ गई; मेरी भी निभ जाए !" माता गूजरी जी का शीश झुका और उन्होंने अपनी झोली में पड़े शीश को चूम लिया।

अब मजाल है कि उनकी आंखों में से एक भी आंसू गिरा हो,न उस समय न उसके बाद भी।

3

राय सेना गांव के बाहर की तरफ लक्खी शाह की हवेली में गुरु महाराज की बिना शीश की देह पहुंच चुकी थी। कपास की गठरियों में छिपाई सतगुरु जी की देह को पूरे आदर के साथ बैल-गाड़ी में से निकालकर भाई ऊदा जी और भाई गुरुदित्ता जी ने लक्खी शाह के घर ठाकुर द्वारे में ला रखा था। पहले दरी, फिर खेस, ऊपर दूध जैसी सफेद दसूती की चादर। इसको कोतवाली के बाहर उठाने के लिए लक्खी शाह की मदद उसके बेटों, निगाहिया, हेमा के अलावा धूमा और कानाह ने की थी। धूमा और कानाह लक्खी के गांव के निवासी थे।

रात गहरी होने के कारण हवेली में सोता पड़ गया था। घर में किसी को कानों कान खबर नहीं हुई। एक लक्खी शाह, उसके तीन बेटे और उनके साथी जो गाड़ियों को हांक कर लाए थे या फिर भाई ऊदा या भाई गुरुदित्ता जिन्होंने सारी योजना बनाई थीं, इस राज को जानते थे।

बाहर तूफान वैसे का वैसा ही चल रहा था। राजपुताने की रेत एक घटा-टोप की तरह आसमान पर चढ़ी हुई थी। आंधी में हर जगह चप्पा-चप्पा रेत जमी हुई थी। तूफान रुक भी गया तो भी आकाश पर चढ़ी रेत हटने में डेढ़ दिन लग जाएगा। इसलिए उनको बेशक जल्दी नहीं थी, पर इस बात को भी वे लोग जानते थे कि जैसे ही कोतवाली को खबर मिली की कत्ल-देह गायब है और अगर उनको भी इसका सुराग मिल गया कि लाश लक्खी वाले गाड़ीवान उठा लाए हैं तो वे जन-बच्चे को घाणी में पेल देंगे।

गुरु महाराज की देह का तुरन्त संस्कार जरूरी था। पहले ही देह की काफी बेअदबी हो चुकी थी। लक्खी शाह के बेटे निगाहिया की राय थी कि संस्कार फौरन कर देना चाहिए।

"ऐसे संस्कार कैसे हो सकता है ?" भाई ऊदा जी ने कहा, "गुरु महाराज की देह को स्नान करवाना होगा।"

"जपुजी साहिब का पाठ करना होगा।" भाई गुरुदित्ता जी बोले।

"मैं तो सोच रहा हूँ, अगर कहीं से हो सके तो चन्दन की लकड़ियों का प्रबन्ध करना चाहिए।" लक्खीशाह की राय थी। "स्नान कराने के लिए गुलाब का अर्क चाहिए होगा, "भाई ऊदा कुछ इस तरह सोच रहे थे।"

उधर ड्योढ़ी में अपने नौजवान साथियों के साथ हेमा और हरि चिन्तामग्न थे। इस बात से वाकिफ़ थे कि उस दुःखदायी साके के बाद केवल

लक्खी शाह की गाड़ियाँ ही उस सड़क से गुजरी थी। वह भी इसलिए कि लक्खी शाह का लाल किले में रसद पहुंचाने का ठेका था। चारों तरफ उसकी पहुंच थी। कोतवाली में इस बात की भनक लगी कि गुरु महाराज की देह अगवा कर ली गई तो वे गाड़ियों की लीक को देखकर रायसेना पहुंच जायेंगे।

उधर रात ढलती जा रही थी जो कुछ करना था तुरन्त करना होगा। अब निगाहिया भी आकर उनके साथ शामिल हो गया था। "कोई कहता है, चन्दन की लकड़ियाँ चाहिएं, कोई कहता है गुलाब का अर्क चाहिए, कोई कहता है जपुजी का पाठ, निगाहिया फिक्रमंद था। यह नहीं पता अगर पकड़े गए तो वे देह के टुकड़े-टुकड़े कर शहर के कोने-कोने में इसकी नुमाइश करेंगे।

"ऊपर से वक्त कितना हो रहा है।" हेमा बोला

"मेरा तो दिल धड़क-धड़क कर रहा है।"

"मैं सोचता हूँ, "निगाहिया अपने भाइयों और नौजवान साथियों को विश्वास में ले रहा था, "ठाकुर द्वारा इकौसा-सा है। बस अन्दर एक दो मूर्तियाँ हैं, जो कब की अपेक्षित पड़ी हैं। जब से हमारे बाबे ने गुरु हरिराय जी की दीक्षा ली है घर में किसी ने इन मूर्तियों की ओर देखा तक भी नहीं, क्यों न. ....और ऐसा बोल रहा निगाहिया एकदम रुक गया, जैसे जो कुछ वह कहने जा रहा था, उससे कहा न जा रहा हो।"

"भला क्या ?" हरी उतावला हो रहा था।

"अगर कुछ करना है जल्दी करना होगा, रात ढलनी शुरू हो गई है।" धूमा चिंतित था।

"भाइयो, मेरा नाम कान्हा है, मैं अपने हाथों से ठाकुर द्वारे जाकर चिता सजा आता हूँ। इन बाबों से पूछने की जरूरत नहीं।"

"हाँ, इन्होंने अपना मन बनाने में सवेरा कर देना है और फिर भंडा फूट जाएगा।" निगाहिया की तजवीज के साथ हर कोई सहमत था।

बहुत देर नहीं हुई थी कि लक्खी शाह के घर के चारों ओर से चिताएं उठ रही दिखाई दीं।

"यह क्या हो गया था ?" अभी तक मामले को देख रहे बाबे हक्के-बक्के रह गए। फिर हफड़ी-तफड़ी में हर कोई आग बुझाने के लिए इधर-उधर दौड़ा पर लक्खी शाह और भाई ऊदा ठाकुर द्वारे के सामने जाकर खड़े हो गए।

किसी को उधर न जाने दिया। यह एक कौतुक था, गुरु महाराज की मृतक देह के लिए स्वयं ही चिता सज गई थी, वे सोचते।

नौजवान गुरुसिक्खों ने शुक्र किया, गुरु महाराज ने उनका काम आसान कर दिया था। अगर ये लोग बुझाने लग जाते तो मुश्किल हो जाती। फिर हर कोई हाथ जोड़े हुए जपुजी साहब का पाठ करने लगा। अगले दिन गुरु महाराज के फूलों को चुनकर अब वह हवेली के बाहर अमलताश के पेड़ों की एक झुरमुट के नीचे उनकी समाधि बनाकर गए तो उनको यह जानकर कि कोतवाली के बाहर तो गुरु महाराज का शीश और देह वैसे के वैसे पड़े थे। चारों ओर उनके मुगल सिपाही संगीने ताने पहरा दे रहे थे।

यह करामात है, करामात है, हर कोई अपने आप से कहता।

बहुत दिन नहीं गुजरे थे कि भाई लक्खी शाह को सूचना मिली की गुरु महाराज का शीश भी आनन्दपुर पहुंच गया था। यह सुनकर बाबे और हैरान हुए।

"करामत है, करामात है।" बाबों में से हर कोई उठते-बैठते यही कहता।

नौजवान गुरु सिक्ख उनको याद करवाते, करामात कोई चीज नहीं होती। गुरु महाराज बार-बार कहते थे, करामात कोई चीज़ नहीं होती। अगर करामात करनी होती तो वह मुगल शहनशाह को करामात दिखाकर अपना मुरीद बना लेते ? गुरु बाबा नानक ने कहा था—सबसे बड़ी करामात इन्सान खुद है। आदमी से बड़ा चमत्कार क्या हो सकता है ?

बाबों को नौजवानों की कोई दलील समझ में नहीं आ रही थी। बार-बार कहते, यह तो हाथ पर सरसों जमाने वाली बात है।

निगाहिया और उनके नौजवान साथी कितने ही समय से अपने सीने में यह भेद छिपाए हुए थे कि उन्होंने बड़ी समझदारी से गुरु महाराज का समय से संस्कार कर दिया और उनके बड़े बूढ़े इसको चमत्कार बनाए बैठे हैं। यह सोच कर उनको अपना आपा अच्छा-अच्छा लगता।

और फिर एक दिन यह सुनकर कि गुरु महाराज के एक सिक्ख ने अपने एक और गुरुसिक्ख का सिर काटकर उस काली रात में गुरु महाराज के शीश की जगह शीश और देह की जगह देह रख दी थी, उनके हाथों के तोते उड़ गए।

इसको गुरुसिक्ख का सिदक कहते हैं। यह करामात है। अगले दिन निगाहिया अपने साथियों को साथ लेकर आनन्दपुर साहिब के लिए चल दिया। वहाँ पहुंच कर सभी के सभी गुरु महाराज की सेना में भर्ती हो गए।

4

क्या गुरु तेग बहादुर जी को दिल्ली में मुगल हकूमत ने शहीद कर दिया था और उनका शीश जैता नाम का रंगरेटा अपनी जान पर खेल कर आनन्दपुर ले आया था, जो कोई भी गुरुसिक्ख सुनता आनन्दपुर की ओर जा रहा था। दूर से, नजदीक से, पैदल, घोड़ों पर, बैलगाड़ियों पर, ठेलों पर, इक्कों पर, रथों में जैसे एक सागर उमड़ आया हो।

आनन्दपुर साहब में भले ही शोक का वातावरण था; काले साफे, काले दुप्पटे, आंखों में आंसू, दुःख भरे चेहरे, एक एहसास जैसे कुछ खो गया हो, पर हरेक के होठों पर गुरु तेग बहादुर जी के ये बोल थे :

जो नरू दुःख मैं दुःख नहीं मानै।
सुख स्नेह और भै नहीं जाकै कंचन माटी मानै ॥

(रहाउ ॥)

नहिं निदिया नहि उसतत जाकै लोभु मोह अभिमाना
हरख सोग ते रहै नियारऊ नाहिं मान अपमाना।
आसा मनसा सगल तिआगै जग ते रहे निरासा
काम क्रोध जिह परसै नहिन तिह घट ब्रह्म निवासा।
गुरु किरपा जिह नर कउ कीनी तिंह इह जुगति पछानी।
नानक लीन भइयो गोबिन्द सिंउ जिंउ पानी संग पानी।

(सोरठी महला ६)

बीच-बीच में किसी श्रद्धालु, किसी सम्बन्धी के रोने की आवाज सुनाई दे जाती जैसे कोई कटार सीने को चीरती हुई निकल जाए। कहर के मारे हुए, दुःखी-दुःखी, चुप-चाप, मर्द, औरतें, ऐसे लगता ये तो एक अंधड़ की तरह आ धमकेंगे, तहस-नहस कर देंगे, आस-पास सब कुछ नष्ट हो जाएगा।

कृपा राम अपने साथी कश्मीरी, पण्डितों के साथ वापिस नहीं गया था। उसको गुरु तेग बहादर जी ने आनन्दपुर में कलगीधर जी की संस्कृत की शिक्षा के लिए अपने पास रख लिया था। जिस क्षण से उसे दिल्ली में हुए साके के बारे में पता लगा, उसको लगता जैसे इस सारे अनर्थ का जिम्मेदार वही हो। उसी को सपने में शिवजी के दर्शन हुए थे, जब उन्होंने उसको आदेश दिया था कि वह कलियुग के रक्षक गुरु बाबा नानक की गद्दी पर विराजमान नौवें गुरु तेगबहादर जी के पास अपनी फरियाद लेकर जाएं, वही उनकी बांह पकड़ेंगे और ऐसे ही हुआ था।

बांह जिनां दी पकड़िए
सिर दाजै बांह ना छोड़िए।

गुरु महाराज ने उनकी बाजू पकड़ी थी और उनको अपना शीश कुर्बान कर दिया था।

कृपाराम सोचता और वह छोटा-छोटा महसूस करने लगता कोई ऐसे भी कर सकता है ? किसी के लिए किसी का जान-बूझकर अपने आपको आग के हवाले कर देना। मुगल सम्राट के साथ मुंह लगना आग की लपटों में अपने आप को झोंकने के बराबर था और ऐसे ही गुरु महाराज ने किया था। आप दिल्ली के लिए चल पड़े थे। उन्होंने किसी को निमन्त्रित नहीं किया था।

कृपाराम सोचता और उसको लगता जैसे वह कठघरे में खड़ा हो, वही कसूरवार था। वही अपने साथियों को आनन्दपुर लाया था। उसी के अगुवाई में वे लोग अपनी दुःखभरी दास्तान गुरु महाराज को सुनाने आए थे। कृपा राम को लगता जैसे उसके कंधों पर कितने ही मन का भार आ पड़ा हो। उसको इस हत्या की जिम्मेवारी कबूलनी होगी। उसको और सारी हिन्दू कौम को। कृपाराम के कानों में गुरु बाबा नानक की वाणी की तुकें गूंज रही थीं :

तगु कपाहहु कतीए
बामन वटे आई ॥
कहु बकरा रिन्न खाइया।
सभु को आखै पाई।
होई पुराना सुट्टीरू।
भी फिरि पाइए होरू ॥
नानक तगु न तुटई।
ने तग होवै जोरू ॥

कृपाराम सोचता, जब उन्होंने गुरु महाराज को बताया, कश्मीर का सूबेदार उनके जनेऊ उतार रहा था, गुरु महाराज कह देते भई अगर वह आपको जनेऊ उतारने के लिए कहता है तो तुम जनेऊ उतार फैंको। जनेऊ पहनने की क्या जरूरत है ? गुरु बाबा नानक ने जनेऊ नहीं पहना था और कोई कहर नहीं ढह गया था। अगर जनेऊ के बिना बाबा नानक गुरु बन सकते हैं, तो जनेऊ पहनने के झंझट में कोई क्यों पड़े ? बल्कि अच्छा ही है, इस बेकार के रिवाज़ से छुटकारा पाया जा सकता है। कोई दो सौ साल

पहले गुरु नानक देव जी ने जनेऊ डालने के हक की रक्षा के लिए अपना शीश कुरबान कर दिया था। इस तरह की कुर्बानी न किसी ने सुनी थी, न किसी ने देखी थी। अब कृपाराम के कानों में गुरु नानक देव जी की वाणी की ये तुकें जैसे सुनाई दे रही हों–

दईया कपाह संतोख सूतु
जतु गंडी सतु वटु
एहु जनेऊ जीअ का
हई ता पाड़ों धतु ॥
ना ऐहु तुटै ना मलु लगे
ना ऐहु जलै न जाई ॥

कृपाराम सोचता, हजरत ईसा सलीब पर चढ़े थे अपेन धर्म के लिए, अपने धर्म के अनुयायियों के लिए मंहसूर सूली पर लटकाया गया, अपने विश्वास, आस्था के लिए। यंह तो किसी ने कभी नहीं सुना था कि कोई पराये धर्म की रक्षा के लिए, किसी पराए की आस्था के लिए, अपने आप को कुर्बान कर दे। यह करिश्मा केवल गुरु तेगबहादुर ही कर सकते थे। 54 वर्ष की उम्र भी क्या होती है। अपने इकलौते लाड़ले लाल को छोड़कर चल पड़े थे।

कृपाराम को जैसे एक बैराग-सा हो गया हो, उठते-बैठते, उसको यही दु:ख सताता रहा, इस हत्या की जिम्मेदारी उसके सिर पंर थी और आवेश में आकर उसने अपना जनेऊ उतार कर फैंक दिया।

"जनेऊ नहीं कोई पहनेगा, जनेऊ नहीं कोई पहनेगा।" जिस किसी भी हिन्दू को जनेऊ पहने हुए देखता, उसका जनेऊ उतरवा देता। कश्मीर का पण्डित कृपाराम जनेऊ न पहननें के लिए कह रहा था, लोग स्तब्ध से उसके मुंह की ओर देखते रहते।

कृपाराम का खाना-पीना छूटा हुआ था। अपने में डूबा बैठा धरती के ऊपर लकीरें खींचता रहता, फिर उनको मिटाता रहता। कभी दीवारों पर चित्र बनाने लगता, पंछियों की लंगारों के लंगारे उल्टे हुए पड़े। मर्दों, औरतों की लाशें खून में लथपथ पड़ी हुई, उफनते हुए दरिया, बाढ़ की मार से ढेरी कर रहे। तूफान और आंधी में नीचे ऊपर हो रही। कभी चित्र दर्शाता, शेर और चीते, बाघ और भालू शहरों में रच बस रहे; कहीं इन्सान, मर्द औरतों बच्चे जंगल की खानों और गुफाओं में विचर रहे हैं।

आए-गए हिन्दुओं द्वारा उतारे हुए ढेर सारे जनेऊ लेकर उस दिन पण्डित कृपाराम एक रस्सी बनाने बैठ गया। कितने समय तक वह छिपा बैठा सूत, रेशम और ऊन के जनेऊओं की रस्सी बटता रहा। जब सभी बटी गई, अपने कोठरी की छत की शहतीर के साथ रस्सी बांध कर अपने आप को उसने फांसी लगाने की जुगत की, लेकिन जनेऊओं की बनी रस्सी ने उसका साथ नहीं दिया। घिसे-पिटे जनेऊओं की रस्सी टूट गई और पण्डित कृपाराम अपने कोठरी के लिपे-पुते फर्श पर उल्टा जा गिरा। जैसे नाक से लकीरें निकाल रहा हो, ऐसे वह उल्टा हुआ पड़ा था कि किसी की उस पर नजर जा पड़ी और बचाव हो गया।

उस दिन जब उसके शिष्य आए तो वह अपनी पोथी छोड़कर उनको नसीहत करने लगा—अब समय तेग उठाने और तीर चलाने का है। घुड़सवारी और नेजा-बाजी का है, अब समय मरने या मारने का है।

और पण्डित कृपाराम के शिष्य उसके मुंह की ओर देखकर अचम्भित हो रहे थे। यह वह पण्डित कृपाराम था जिसको मांस-मछली के नाम पर उबकाइयाँ आने लग जाती थी। मुश्किल से भी कभी जिसने इस ओर मुंह नहीं किया था।

यही नहीं, उस दिन वजीराबाद के बजर सिंह को जिसकी जिम्मेवारी गुरु गोबिन्द जी को घुड़सवारी और शस्त्र विद्या सिखाने की थी और जो खुद पण्डित कृपाराम से संस्कृत का पाठ पढ़ने आया करता था। पण्डित जी उसको दक्षिणा देकर प्रार्थना करने लगे कि इनको घुड़सवारी और शस्त्र विद्या में निपुण किया जाए। बजर सिंह यह सुनकर टुकर-टुकर पण्डित जी के मुंह की ओर देखने लगा। यह देखकर पण्डित जी ने समझाया :

इक जाम भजन।
इक जाम कथा।
दो जाम खेल ॥

5

लाल किले में शहनशाह औरंगजेब की आराम-गाह के एक तरफ शहनशाह की चहेती बेगम उदयपुरी और बड़ा शहज़ादा मुअज़म, बाग में टहल रहा था। सुबह का समय, जमना की ठण्डी मीठी समीर अंग-अंग को सरसार कर रही है, पर ऐसे लगता जैसे बेगम और वली-अहद दोनों परेशान हों।

"मुझे तो आज कितने दिनों से नींद नहीं आई ? बुरे-बुरे सपने परेशान करते रहते हैं।" बैंगम के चेहरे पर जैसे हवाइयाँ उड़ रही हों।

"मैंने आप जब से इस कहर के बारे में सुना है, मेरी नींद हराम हो गई है। मैंने सोचा, मैं खुद अब्बा सरकार के साथ बात करूंगा। इसीलिए मैं और दस काम छोड़कर दिल्ली आया हूँ।" शहज़ादा चिन्तित है, "मेरी राय यह है कि नानक-पंथियों के साथ हमें बिगाड़नी नहीं चाहिए।"

"मेरी तो वे बिल्कुल नहीं सुनते। एक ही जिद्द कि मैं इस देश को दरूल-इस्लाम बनाकर रहूँगा।" "ताकि उनका दामन जो लहू में डूबा हुआ है, धुल सके।"

"धीरे बोल, तेरी इन्हीं बातों के कारण तेरी अपने अब्बा के साथ तकरार हो जाती है।"

"कोई भी बात हो एक खुदापस्त दरवेश को पकड़ कर कत्ल कर देना ? क्यों, हमें कोई पूछने वाला नहीं ? कल हमें इस जुल्म का जवाब नहीं देना होगा ?"

"तुम्हारे अब्बा ने सरमद के खून के साथ अपने हाथ रंगे। दुनिया सुनकर खामोश हो गई। एक भी विरोध की आवाज़ सुनाई नहीं दी।"

"बाबा नानक की गद्दी किसी सूफी का तकिया नहीं। मुझे तो लगता है, हमने बर्र के छत्ते में हाथ डाल दिया। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि मुगलों को हिन्दुस्तान की यह हकूमत बाबा नानक की बख़्शी हुई है।"

"सात पीढ़ियों को राज्य करना है। तेरी हकूमत तो पक्की है ?" "जिस तरह के हालात दिखाई देते हैं, मुझे तो खतरा है बाबा नानक अपना वरदान मेरे तख़्त पर बैठने से पहले ही कहीं वापिस न ले लें।"

"बीबा तेरे तो माथे पर लिखा हुआ है तुम्हें तख़्त पर बैठना है।"

"काम बख्श मेरी कोख से जन्मा है, कोहकाफ़ की परी की कोख में से, उसकी मजाल नहीं कभी कोई घिनौनी हरकत कर जाए।"

"वह नहीं तो मेरे और भाई, मेरा लहू पीने के लिए उतावले हैं।"

"मुगल तख़्त पर बैठना हमेशा कांटों का ताज सिर पर रखने के बराबर होता रहा है।"

"आज कल तो ऐसे लगता है जैसे यह शूलों की सेज हो। तुम्हें पता है, गुरु तेग बहादुर का शीश आनन्दपुर उनके बेटे के पास पहुंच चुका है और वहाँ उसका संस्कार किया गया है ?"

"यह कैसे हो सकता है ? उनकी लाश पर पहरा लगा हुआ था।"

"शीश आनन्दपुर पहुंचा और बाकी देह का आपके शहर में संस्कार किया गया, पता नहीं इसकी जानकारी न आपको है न अब्बा हजूर को।"

वैसे तुम्हें किसी ने गुमराह किया है। शहनशाह के हुक्म के मुताबिक उनके शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके शहर के चारों चौकों पर चारों ओर लटकाए गए थे। एक जगह मैंने खुद अपनी आंखों से उनके एक हिस्से को लटका हुआ देखा और मुझे लगा जैसे मेरे दिल की धड़कन रुक गई हो।"

"ऐसे ही तो हकुमत की आंखों में धूल झोंकी जाती है। तुम्हें यह भी पता है कि जिस आदमी की लाश पर कोतवाली का आदमी पहरा दे रहा था, वह एक गुरु घर के श्रद्धालु मुसलमान की लाश थी।"

"यह कैसे हो सकता है ?" टहल रही बेगम एक दम रुक जाती है।"

"और यह भी नहीं कि वह एक मुर्दे की लाश थी। गुरु तेग बहादुर के उस दीवाने ने अपने कई साथी को मनाया कि उधर गुरु महाराज का सिर कलम किया जाए, इधर इसको कत्ल करके, उनकी लाश की जगह इनकी लाश बिछा दी जाए।"

"मैं मरी, उस दिन आंधी तूफान भी तो कहर जैसा था, जैसे कयामत आ गई हो।"

"उसी आंधी तूफान में इस सारे मनसूबे को पूरा कर लिया गया। सोचो तो सही, जो लोग ऐसे चमकती तलवारों के पहरे में से जान पर खेलकर अपने गुरु की देह को अगवा कर सकते हैं, वे और जो कुछ करें सो कम है।"

"पर अगर वह इतना ही पहुंचा हुआ दरवेश था तो कोई करामात करके दिखा देता। शहनशाह की जिद्द भी पूरी हो जाती। तेरे अब्बा तो बहाना ढूंढते हैं, कोई उनकी उंगली पकड़कर उनको पार लगा दे।"

"करामात तो उन्होंने की। एक बार नहीं, कई बार। किसी का अपने आप को आरे के साथ चिरवा लेना, यह करामात नहीं तो और क्या है ? किसी का उबलती देग में अपने आपको आलू की तरह उबलवा लेना, यह करामात नहीं तो और क्या है ? किसी को रूई में अपने आप को लिपटवा कर मशाल की तरह जल उठना, यह करामात नहीं तो और क्या है ?"

"वे तो कहते हैं ये सब कुछ गुरु महाराज के उकसाने के लिए किया गया ताकि वे अपने चमत्कार से अपने साथियों को बचा लें।"

"अब्बा हजूर आ रहे हैं।"

सामने शहनशाह औरंगजेब गुसल के बाद तैयार होकर आता है।

"अब्बा हजूर आदाब। खाकसार कोरनश बजा लाता है।" शहजादा मुअज़म औरंगजेब को झुककर सलाम करता है।

"वली अहद को सुबह-सुबह अब्बा जान की कैसे याद आ गई ?" औरंगजेब शहजादा मुअज़म की पीठ थपथपा रहा है।

"सरकार ! वली अहद परेशान है।" बेगम अपने ढंग से आलमगीर के साथ बात छेड़ती है जो उनको परेशान कर रही है।

"मुझे पता है, जब से सिक्ख गुरु का सिर कलम किया गया है, बेगम भी परेशान है और बेटा भी परेशान है।"

"क्यों अब्बा हजूर, यह परेशान होने वाली बात नहीं ? एक बेगुनाह दरवेश को ऐसे मौत के घाट उतार दिया गया है।"

"बेशक, बेशक ! परेशान तेरा अब्बा भी है। क्या तुम समझते हो, जो शख्स पांच वक्त नमाज पढ़ता है, कुरान शरीफ की नकल करके और टोपियाँ बनाकर अपनी रोजी कमाता है। अल्लाह के कहर के डर से जिसकी कमर झुकती जा रही है, उसके लिए इस तरह का फरमान जारी करना कोई आसान बात थी ?"

"पर हकीकत यह है कि अब्बा हजूर आपने एक हुकम जारी किया था। मुअज़म की आंखों में आंसू भर आते हैं।"

"तुम्हारी मां भी मुझे उठती-बैठती यही कहती रहती है। रात-रात भर इसको नींद नहीं आती, पर इसमें मेरा कोई कसूर नहीं।"

"कसूर क्यों नहीं ?" आपने इस फरमान पर अपनी मुहर लगाई थी।"

"बेशक, पर मुझे कोतवाल ने सूचना दी थी कि सिक्ख गुरु करामात दिखाने के लिए राज़ी हो गया है। मैं तो इस इंतजार में था कि कोई नया कौतक देखने को मिलेगा। मैं तो मन ही मन यह सोच रहा था कि अगर कोई पहुंचा हुआ, दरवेश, मेरे हाथ आ जाए तो मैं उसकी बदौलत जन्नत में अपना ठिकाना पक्का करवा लूंगा फिर किस बिल्ली ने छींक दिया, बेगम ने अपना आक्रोश प्रकट किया।"

"गुरु तेग बहादुर ने ऐसी चपेट शहनशाह औरंगजेब के मुंह पर मारी है कि आठों पहर मेरा गाल सन-सन करता रहा है।"

"आपको ऐसे नहीं कहना चाहिए।" बेगम उदयपुरी के बीच की औरत जैसे एकदम अपने सरताज के लिए जैसे दुःखी हो रही हो, अपनी हमदर्दी

प्रकट करती है।

"यह देख।" शहनशाह अपनी कमरबंद के साथ बन्धे एक रूमाल की गांठ को खोल, तावीज़ की तरह संभाला एक कागज़ का टुकड़ा मुअज़म, अपने बेटे को दिखाता है।

"शीश दिया पर भेद न दिया।" मुअज़म उस तावीज, में लिखे शब्दों को पढ़ता है।

"क्या मतलब ?"

"अपनी शीश कलम करवा लिया, पर अपना भेद नहीं दिया।"

"मैं मरी !" बेगम जैसे गश खाकर गिर रही हो। शहज़ादा और शहनशाह उसको संभाल लेते हैं।

"मैंने तुम्हारी मां से यह राज इतने दिन छिपा कर रखा था।" औरंगज़ेब वली अहद को बताता है।

"अब्बा हजूर, आप करामात देखना चाहते हो। यही तो करामात है। इससे ज्यादा करामात क्या हो सकती है ?"

"बेशक यह करामात है। एक खुदा रसीदा फकीर मेरे कब्जे में आया पर फुर करके मेरे हाथों में से निकल गया। शहनशाह औरंगजेब की झोली वैसी की वैसी खाली है। जिन्दगी की इस अंधेरी डगर में मुझे कोई राह दिखाने वाला नहीं। कभी दारा तो कभी सरमद, कभी तेग बहादुर तो कभी कोई, औरंगजेब एक कत्लगाह से दूसरे कत्लगाह की ओर गमन कर रहा है।"

"बड़ा कहर हुआ है।" वली अहद मुअज़म धीरे से अपने होठों में बुडबड़ाता है।"

"इस खून और खलकत की काम रूप से काबुल तक और कश्मीर से कन्या कुमारी तक हो रही हाहाकार मेरे कानों में पड़ती रहती है। इस कत्ल के छींटे ऐसे लगता है जैसे तख़्ते-ताऊस पर आ गिरें हों। उस दिन जब यह वारदात हुई, जुहद की नमाज़ पढ़ रहा, जब मैं सिज़दे में था तो मुझे ऐसे महसूस हुआ जैसे आसमान में गुरु तेग की जय-जयकार हो रही हो। बज रही बधाइयाँ मुझे सुनाई दी। सतनामी पहले ही बिगड़े हुए हैं, अब सिक्ख भी हमारे दुश्मन बन गए। राजपूत काबू में नहीं आ रहे; दक्षिण में गोलकुण्डा .... ! औरंगजेब ! तुम्हें न इस दुनिया में चैन न उस दुनिया में।" "इतने में सेवक ने आकर बताया कि नाश्ता दस्तरखान पर लग चुका था।"

6

"पहले दो बार विधवा हो चुकी हूँ, तीसरी बार अब मैं फिर विधवा नहीं होना चाहती।" वीरां वाली के ये बोल अक्सर आलम के कानों में गूंजने लगते थे। चाहिए तो यह था कि दिल्ली से वह सीधा अमृतसर जाता, पर गुरु महाराज के शीश के संस्कार में शामिल होना जरूरी था। इसलिए वह कमाल की चिट्ठी छाती से लगाकर आनन्दपुर आ गया।

क्या देखता है कि वीरां वाली तो पहले ही आनन्दपुर पहुंची हुई थी। वह तो जैसे उसकी प्रतीक्षा कर रही हो। अजीब औरत थी। किस बेदर्दी के साथ उसने आलम को अमृतसर से खदेड़ा था और फिर अपने बेटे-बेटी के साथ उसको ढूंढती हुई आनन्दपुर आ गई थी। कब से आई उसके इन्तजार में बैठी थी।

इतने दिन से सोच रहा था, वह कैसे वीरां वाली के सथ बात शुरू करेगा, कैसे उसको बतायेगा जो कुछ दिल्ली में हुआ था कैसे कमाल की चिट्ठी उसको देगा, एक नजर वीरां वाली को देखकर उसको जैसे सब कुछ भूल गया हो। उसकी सारी तजवीज़ें ढह ढेरी हो गई। उसको समझ नहीं आ रही थी; वीरां वाली जैसी एक नाज़नीन दो बच्चों की मां से उस साके का कैसे जिक्र करे जो दिल्ली में हुआ था।

वीरां वाली तो यही सोच कर बैठी थी कि कमाल इतने दिनों से लाहौर में कैद है। जिस दिन का वह इसको छोड़कर गया था; उसकी कोई खोज-खबर नहीं थी। बस इतना उसने सुन रखा था; कि लाहौर में मुगल पुलिस के साथ उलझने के कारण उसे कैद कर दिया गया था।

अब गुरु तेग बहादुर जी की शहीदी एक ऐसी घटना थी, जिसने हर गुरु सिक्ख के सामने जैसे एक ललकार ला कर रख दी हो। मुगल दरबार के साथ टक्कर अवश्य होनी थी और अपने आप को झुठलाया नहीं जा सकता था तो बाकी रह ही क्या गया था ? आम गुरु सिक्ख किस बाग की मूली है। उनको या तो अपने बाप-दादा का धर्म त्याग कर इस्लाम कबूल करना होगा या फिर लम्बे संघर्ष के लिए तैयार होना पड़ेगा।

उनकी पहचान मिटाई जा रही थी। गुरु महाराज के शीश का संस्कार तुरन्त नहीं किया जा सकता था, क्योंकि कीरतपुर, बकाला, करतारपुर, अमृतसर आदि कई स्थानों से कई निकटवर्ती सम्बन्धियों को पहुंचना था। आगे-पीछे शहरों के गुरुसिक्ख तो पहले ही ठठ्ठ के ठठ्ठ आ रहे थे। फिर

गुरु गोबिन्द डरने वाली हस्ती थोड़ी ही थे। वे तो 'सच्चे पातशाह' थे। गुरु बाबा नानक की गद्दी गुरु हरिगोबिन्द जी के अकाल तख़्त स्थापित करने के बाद केवल गुरु गद्दी ही नहीं रही थी, वह तो अब तख़्त भी थी। वह गुरुसिक्खों के मन पर राज करते थे और लाखों की गिनती में दूर-निकट बसते गुरुसिक्ख उनकी प्रजा थे, उनके सगे थे। अगला दिन, उससे अगला दिन और आनन्दपुर शहर जैसे कोई लबालब भरा कटोरा हो। तिल धरने की कहीं जगह नहीं थी। गुरुसिक्ख अब एक ही पद का गायन कर रहे थे :

"तेग बहादुर बोलिऊ, धर पइए धरम न छोड़िए।"

इतना भारी कहर मुगल साम्राज्य ने ढाया था; पर इसके बजाए कि गुरुथ्सक्खों में इस कारण कोई आतंक फैले कहीं खौफ की भावना, कोई सहम का एहसास दिखाई दे, इस तरह का कुछ भी नहीं था; गुरुसिक्ख तो बल्कि शेरों की तरह कूद-कूद कर पड़ते थे। हरेक के सिर पर जैसे कफन बंधा हो। क्या बच्चे, क्या बूढ़े, क्या जवान हर कोई मरने-मारने के लिए तैयार लगता था। चारों तरफ संगतों की भीड़ थी। आगे-पीछे सिरों से ऊंचे-ऊंचे नेज़े दिखाई देते थे और कुछ भी नहीं था फिर "तेग बहादुर बोलिऊ, धर पइए धरम न छोड़िए।"

ग़ा रहे सूरमों की तलवारों की चमक रही धारें आंखों को चौंधियाँ-चौधियाँ जाती थी।

उस दिन के समय वीरां वाली जिद्द करके आलम से दिल्ली में जो कुछ देखा सुना था पूछने लगी। आलम जानबूझ कर टाल रहा था। वह सोचता कमाल की कुर्बानली उससे कैसे छिपाई जा सकेगी और वीरां वाली को बताने का उसका हौंसला नहीं बन रहा था। जब से वापिस आया, उसकी चिट्ठी कभी कहीं छुपाता, कभी कहीं संभाल कर रखता।

बार-बार वीरां वाली आलम से कहती, "आखिर कौन-सा कहर आ जाता अगर गुरु महाराज कोई करामात करके दिखा देते।" औरंगजेब के मुंह पर चपनेट-सी बजती। आखिर ऋद्धियां-सिद्धियाँ उनके आगे पानी भरंती थीं। रामराय जैसे भटके हुए लोग करामातें करके दिखाते रहते हैं। करामात का क्या है ? करामात तो मैं भी कर सकती हूँ।

"क्या मतलब ?" आलम जैसे चौंक उठा हो।

वीरां वाली का मुंह लाल बिम्ब हो गया जैसे किसी का छिपा कर रखा कोई भेद खुल गया हो।

आलम उसे और भ्रमित करने की बजाए बताने लगा–"जिन हालातों में आज हमारा देश है, मुगल शहनशाह को सच के रास्ते पर डालने का एक ही तरीका, किसी पहुंचे हुए महापुरुष की कुर्बानी थी। गुरु महाराज ने यहाँ से चलने से पहले यह फरमाया था, जरूरत किसी भगवान् के महबूब के लहू की कुर्बानी की है। हज़रत ईसा सूली पर चढ़े थे, इसलिए नहीं कि उन्होंने कोई कसूर किया था, वह तो अपनी जन्म भूमि के संताप को भोग रहे थे। बिल्कुल ऐसे ही हमारे गुरु महाराज ने किया। पर इनकी कुर्बानी और हजरत ईसा की कुर्बानी में फर्क इतना है कि गुरु तेगबहादुर पराए धर्म के लिए जान पर खेल गए जबकि हजरत ईसा ने अपने धर्म के लिए अपना शीश कुर्बान किया। यह गौरव केवल गुरु तेग बहादुर जी को प्राप्त है। क्या तुम सोचती हो, अगर हजरत ईसा चाहते तो अपने आप को सूली पर चढ़ने से नही रोक सकते थे ?"

"उनका तो मुझे पता नहीं हमारे गुरु महाराज अगर इशारा करते तो मेरे जैसे सैंकड़ों श्रद्धालु अपनी जान उनके चरणों पर न्यौछावर कर देते।"

यह मौका था, आलम की अंतरात्मा ने कहा वह कमाल की चिट्ठी वीरां को दे सकता था! यही तो उसने किया था जो वीरां खुद करने के लिए कह रही थी।

पर नहीं, उसका हृदय नहीं हुआ। वीरां इतनी प्यारी लग रही थी जैसे पकी हुई अंजीर हो। वह वीरां जिसको वह दिल्ली में मिला था और फिर वह वीरां जिसका साथ अमृतसर में उकसा रहा था, कितना फर्क था। आज की वीरां जैसे जूही का भरपूर बूटा हो, हरी-भरी खूशबुएँ लुटाती। आज की वीरां लबालब भरी शांत अडोल झील थी जिसको देखकर आंखों को सकून मिलता, कलेजे में ठण्डक पड़ती, चमक-दमक चकाचक, भरा-पूरा लगने लगता। वह बैठती और तरह थी, वह खड़ी और तरह होती थी। वह चलती और तरह थी। वह बात करती तो जैसे नग्में छिड़ पड़ते हों। ऐसे लगता जैसे चम्बे मोतिए के फूलों की वर्षा हो रही हो। इतनी सौम्य, इतना सलीका, इतनी सहृदयता, इस उमर में आकर औरत सचमुच एक देवी बन जाती है। न इधर न उधर, इसी को तो अधेड़ उम्र कहते हैं।

उसके बाद दोपहर को बैठे वे बातें कर रहे थे कि खबर आई कि और प्रतीक्षा किए बिना यह फैसला किया गया था, अगली सुबह गुरु तेग बहादुर जी के शीश का संस्कार कर दिया जाए। इसकी तैयारी शुरू हो गई थी।

यह खबर सुनते ही आगे-पीछे सन्नाटा छा गया। एक चुप्पी का माहौल! आखिर शीश का संस्कार तो करना ही था, पर अब जब उसका समय निश्चित किया गया तो हर किसी को ऐसे लगता जैसे कोई कलेजा निकाल कर लेकर जा रहा हो।

उस शाम को आलम के घर चूल्हे में आग नहीं जलाई गई। बच्चे अपनी जगह रोने वाले हो रहे थे। इधर वीरां की पलकों से टप-टप आसूं बह रहे थे। आलम किसी बहाने बाहर निकल गया।

उस रात जब घर में सोता पड़ चुका था, वीरां अपने कमरे के अकेलेपन में जागकर दीये की मद्धम रोशनी में बैठी एक चिट्ठी लिख रही थी।

परम पियारे, एक पल न विसारे आलम, कभी मेरी तरफ बढ़े तुम्हारे हाथ को मैंने नहीं पकड़ा था और फिर वही वीरां दीवानों की तरह तुम्हें ढूंढती हुई तुम्हारे दर पर आ बैठी। तुमने मुझे दुत्कारा नहीं, यह तुम्हारा बड़प्पन है। तुमने मुझे फिर से कबूल कर लिया, मेरे बच्चों के पालन-पोषण की जिम्मेवारी संभाल ली। समुद्र के जैसा बड़ा है तुम्हारा दिल। बड़ा और गहरा, गुदाज़ और अमीर।

तुमने मुझे बहुत कुछ दिया है। बहुत सारी कुर्बानियाँ की हैं मेरे लिए। खासतौर पर जैसे तुमने मेरे बेटे धर्म और बेटी भागां को अपनी छाती से लगाया है, मेरे सिर से जैसे मनों भार उतर गया हो। मुझे अब कभी ध्यान भी नहीं आया कि इनका मायका भगवान ने इनसे छीन लिया हो। वह भी तुम्हें अपने अब्बा जैसा प्यार देते हैं। तुम्हें अन्दाजा नहीं धर्म और भागां कैसे तुम्हारे किरदार पर कुर्बान है।

मैं किस्मत वाली हूँ, मेरी जिन्दगी में समन आया। समन गया और कमाल ने मेरा हाथ पकड़ लिया। कमाल मुझे हमेशा-हमेशा के लिए कभी नहीं छोड़ सकता। उसको गलत-फहमी है कोई, किसी दिन भी वह मेरी जिन्दगी के आंगन में आ निकलेगा। जैसे चांद बादलों के पीछे छिप जाता है और फिर अचानक मूंड बाहर आ निकालता है किसी न किसी दिन वह मुझे दोबारा ढूंढता हुआ आएगा। हमारा साथ गुड़ियों और पटोलों में पल्लवित है, पनपा है।

इतने दिन जब तक कमाल नहीं लौटता और कितनी देर मुगल उसे बंदी बनाए रखेंगे—मेरे महबूब तुम्हें मेरे बच्चों की सरपरस्ती देनी है। दोनों अब बड़े हो गए हैं। भागां विवाह करवा लेगी और धर्म किसी धन्धे में पड़ जाएगा। वह सोच रहा है वह लाहौर वाले शक्ति आदि के यहाँ चला जाएगा। हमारा सबका लाहौर भाई दुनीचन्द की हवेली हमेशा ठिकाना रहा है।

तुम यह जाननें के लिए उतावले हो रहे होंगे कि मैं यह सारा ताना-बाना क्यों खिलार रही हूँ। आलम तुम्हें याद है दिल्ली में गुरु हरिकृष्ण की चिता में मैंने कूदने की कोशिश की थी पर मुझे कामयाबी नहीं मिली। मुझे निश्चय है कि गुरु महाराज ने मेरे बच्चों को जीवन-दान देने के लिए अपनी जान कुर्बान की थी। चाहे गुरु महाराज ने हज़ारों और बीमारों को मौत के मुंह से निकालकर सफा बख़्शी थी पपर मेरा दिल कहता है उनको अपने तन का वह भयानक दु:ख मेरे बच्चों की ममता के कारण लगा था। कैसे उन्होंने एक के माथे पर अपना कृपा से भरा हाथ रखा था और दूसरे की बातों को अपने प्रेम के साथ चम-चम कर रही उंगलियों के स्पर्श से पुचकारा था। मैं इस ऋण को चुकाना चाहती हूँ, उनके साथ जल कर, उनकी अर्थी के शोलों में अपने आपको भस्म करके। पर यह गौरव मेरे हिस्से में नहीं था।

अब गुरु तेग बहादुर जी की शहीदी की एक और चुनौती मेरे सामने है। अगर वह अपना शीश ऐसे कुर्बान कर सकते हैं तो मेरे जैसे को जीवित रहने का क्या हक है ? बस कुछ अन्न खराब करने के लिए जीना, इस धरती का भार बढ़ाने के लिए जीना। अपने आस-पास का जीवन मैला करने के लिए जीना। मैं इस तरह के जीवन को जीने के लिए तैयार नहीं, हरगिज़ तैयार नहीं।

मैंने फैसला किया है कि अगली सुबह जब गुरु महाराज के शीश का संस्कार हो रहा होगा, मैं उनकी चिता की परिक्रमा कर रही उसमें कूद पड़ूंगी। यह मेरा अटल फैसला है.......।"

वीरां अभी अपनी चिट्ठी को खत्म नहीं कर पाई थी, उसके सामने आलम खड़ा था।

"यह क्या भई तुम आज रात भर बैठी लिखती रही हो ? मैं कितनी देर से जागा हुआ तुम्हारे कमरे में रोशनी देख रहा हूँ।" आलम आगे बढ़ते हुए वीरां की ओर मुखातिब हुआ।

वीरां का भंडा फूट गया था। उसका इरादा था कि वह गुरु महाराज के शीश के संस्कार के लिए गई, चिट्ठी आलम के कमरे में छोड़ जाएगी और परिक्रमा कर रही अपनी मन-मर्जी कर लेगी।

आलम ने वीरां की चिट्ठी पढ़ी। एक पल के लिए उसने उसके हसीन चेहरे की ओर देखा। फिर एक दम वह अपने कमरे में वापिस गया और उसने बिना मुंह से एक शब्द बोले कमाल की चिट्ठी वीरां को ला दी।

7

कुछ भी तो नहीं हुआ था, जो कुछ आलम इतने दिनों से सोचता रहता था सोच कर डरता रहता था।

वीरां जैसे-जैसे चिट्ठी को पढ़ रही थी, उसका चेहरा जैसे हुमकता जा रहा हो। मुंदी हुई कमल की कली में जैसे प्रस्फुटन आ गया हो। चिट्ठी पढ़कर हटी तो उसकी पलकों पर ढलक आए दो मोतियों जैसे आंसू मानों किसी हार से टूट कर नीचे आ गिरे, उसके गालों से फिसल कर उसकी झोली में। फिर उसने कमाल की चिट्ठी को चूमा। एक नजर आलम की ओर देखे बिना दीवा बुझाया और चिट्ठी को छाती से लगाकर लेट गई। हैरान आलम उसकी तरफ देख रहा था कि उसने आंखें बंद कर ली। जैसे अपने महबूब की बाहों में कोई सिकुड़ रहा हो। कुछ समय तक वीरां ऐसे ही सोती रही।

"सुबह हो गई।"

पीली-पीली धूप निकल आई थी। वीरां कबसे जागी, नहा-धो कर अपने नितनेम से निपट चुकी थी। अब आलम को उठा रही थी। जुलूस का समय हो गया था। बेटा-बेटी तैयार होकर जा भी चुके थे। आलम अभी तक सो रहा था।

पिछली रात की बेआरामी, आलम ने पलकें खोली, वीरां वाली को तैयार देखकर वह जल्दी-जल्दी नहाने-धोने लगा।

आलम के चलने तक दिन एक नेज़ा और ऊंचा हो गया था।

आलम जानबूझ कर टाल-मटोल कर रहा था। क्या पता इतनी देर सोता भी इसी कारण रहा था। आलम ने मन ही मन फैसला किया हुआ था कि गुरु महाराज के संस्कार में तो उन्हें शामिल होना ही था, वीरां भी जरूर जायेगी, उसको रोका नहीं जा सकता था, पर जितनी देर हो सके, उतनी देर करके वह जाएगा। ताकि संगत की भीड़ में वह चिता तक किसी प्रकार पहुंच न सके। कुछ भी था, वह वीरां के मामले में कोई खतरा नहीं उठाना चाहता था। बड़ी भावुक औरत थी। कभी तोला, कभी माशा। पता नहीं क्या कर बैठे। और जैसे उसने मन बना रखा था, जब आलम और वीरां उस पवित्र स्थान पर पहुंचे जहाँ गुरु महाराज के शीश का संस्कार यिका जाना था, श्रद्धालुओं का जैसे सागर उमड़ पड़ा हो। जहाँ तक नज़र जाती मर्द, औरतें, बच्चे, टिड्डी दल की तरह चारों तरफ से आ रहे हों। आदमी पर जैसे

आदमी चढ़ा हो। कोई जगह खाली नहीं थी। कोठियों पर, मुण्डेरों पर, ममटियों पर, आगे-पीछे वृक्षों पर गुरुसिक्ख अपने गुरु महाराज को श्रद्धा के फूल चढ़ाने के लिए आए हुए थे। हर जबान पर गुरु तेग बहादुर जी की महिमा थी। क्या हिन्दू, कया मुसलमान, क्या सिक्ख हर कोई उनकी अद्वितीय शहीदी के बारे में सोच कर उनके गुण गा रहा था। चारों तरफ श्रद्धा। सभी की आंखें गुरु महलों की डियोढ़ी के मुख्य द्वार पर लगी हुई थी, जिधर से गुरु महाराज के शीश का जुलूस निकलना था।

आलम ने जैसे सोच रखा था, वह वीरां के साथ एक ऊंची हवेली पर चढ़कर और लोगों के साथ प्रतीक्षा करने लगा। यहाँ से जुलूस को देखा जा सकता था, दाह-संस्कार वाला स्थान भी इस इमारत से कोई दूर नहीं था।

बहुत समय उनको अपनी जगह पर जम कर बैठे हुए नहीं था कि सामने गुरु महलों में से जुलूस निकलता दिखाई दिया।

वीरां वाली जो अभी तक पूरे हौंसले से खामोश प्रतीक्षा कर रही थी, एक नज़र सामने आ रहे जुलूस को देखकर फफक-फफक कर रोने लगी। उसके आंसू अविरल बह रहे थे। जैसे झड़ी फूट पड़ी हो। आलम बार-बार उसके हाथ को पकड़ कर उसको हौंसला करने के लिए कह रहा था। बार-बार उसके हाथ को दबा रहा था, पर वीरां थी जैसे कोई बांध टूट गया हो, उसके आंसू रुकने में नहीं आ रहे थे।

आगे-पीछे हर कोई शोक में डूबा था, हर कोई दुःखी था, उदास था। पलकें भीगी-भीगी थीं, कुछ आंखें बह रही थीं। कुछ लोग ठण्डे सांस भर रहे थे। पर जैसे खून के आंसू वीरां रो रही थी, आलम को लगता कुछ समय में वह निढाल होकर ढेरी हो जाएगी।

बार-बार उसका हाथ दबा-दबा कर, बार-बार उसकी बाजू को टोह-टोह कर जब कोई फर्क न पड़ा तो आलम ने धीरे-धीरे वीरां वाली को जुलूस के बारे में बताना शुरू कर दिया। सावन की झड़ी की तरह छम-छम उसके आंसू बह रहे थे; इस हालत में उसे कम दिखाई दे रहा होगा। आलम उसके लिए उसकी आंखों का काम कर रहा था।

"विमान में शीश को तकिए के सहारे ऐसे सजाया गया है जैसे वे विश्राम कर रहे हों। सारा विमान फूलों और हारों के साथ, गुलदस्तों के साथ अटा पड़ा है। फूलों की चादरों के नीचे, फूलों की चादरों के ऊपर आगे पीछे खड़ी संगतें फूलों की वर्षा कर रही हैं। मुण्डेरों पर खड़े लोग, वृक्षों पर चढ़े श्रद्धालु

फूल-पत्तियाँ बरसा रहे हैं। मामा किरपाल चन्द इत्रदानी के साथ बार-बार गुरु महाराज के शीश पर गुलाब का इत्र छिड़क रहे हैं।"

"अब मैं देख सकता हूँ विमान को गुरु गोबिन्द जी के मित्र भाई दयाराम और मसन्द भाई नन्द चन्द ने दाएं-बाएं से उठाया हुआ है। पीछे आ रहे गुरुसिक्ख अभी दिखाई नहीं दे रहे।"

"ठण्ड कड़ाके की पड़ रही है। ककरीली हवा में दांत बज रहे हैं। पर मजाल है दर्शकों में से कोई अपनी जगह से हिल जाए। हाथ जोड़े, सिर झुकाकर हर कोई आदर दे रहा है जिधर, जिधर से भी विमान गुजरता है शिवालिक की पहाड़ियों की ओर से चल रही हवा जैसे उसे उड़ा-उड़ा फेंक रही हो।"

"हाँ, अब मुझे विमान के पीछे आ रहे गुरुसिक्ख भी दिखाई दे रहे हैं। गुरु गोबिन्द खुद पिता गुरु महाराज के शीश पर चंवर कर रहे हैं और विमान के पीछे से उनकी बुआ वीरो के बड़े दो बेटों संगो शाह और जीत मल ने दाएं-बाएं से उठाया हुआ है। अब गुलाब चन्द और गंगा राम उनके स्थान पर विमान को कंधा दे रहे हैं।"

"अब मामा सूरजमल के पोते गुलाबराय और शामदास विमान के सामने भाई दयाराम और नंद चंद से कंधा देने की बारी ले रहे हैं।"

"आसमान पर गहरे काले बादल उमड़ते आ रहे हैं। जैसे कुदरत भी शोक मना रही हो। सूरज बादलों के पीछे अलोप हो गया है। उधर नैनादेवी के मन्दिर दिखाई देने बंद हो गए हैं। इधर सतलुज अपनी धीमी चाल से बह रहा है जैसे उसका आनन्दपुर से बिछड़ कर दूर जाने का मन नहीं कर रहा हो।"

"बीच-बीच में लोग 'तेग बहादुर बोला' का जयकारा छोड़ते हैं और सामने खड़ी भीड़ में से आवाज़ आती है, "धर पइए, धरम न छोड़िए।" इस तरह का एक जयकारा, एक और जयकारा, तीसरा जयकारा ! जयकारों पर जयकारा !

फूलों की वर्षा लगातार जारी है। सारी धरती फूल-पत्तियों से भर गई है। कोई हार पिरो कर लाए हैं, कोई सेहरे गूंथ कर लाए हैं। कुछ के हाथों में गुलदस्ते हैं। दूर-नज़दीक से विमान की भेंट चढ़ाई जा रही है।

अब सबसे पीछे स्त्रियों का जत्था आ रहा दिखाई देता है। माता नानकी जी और माता गूजरी जी को बुआ वीरो जी ने दाएं-बाएं अपनी

बाजुओं में जैसे लिया हो। साथ और रिश्तेदार स्त्रियाँ हैं। गुरु घर की श्रद्धालु महिलाएं हैं। मजाल है कोई विलाप कर रही हों। सबके सिर ढके हुए हैं, बुक्कल मारे हुए। कुछ की गोद में तो बच्चे भी हैं। जैसे सारा शहर, सारा आस-पास, सारा पंथ टूटकर आ पड़ा हो। जिस-जिस ने सुना कोई भी पीछे न रहा; न मर्द न औरतें, न बच्चे।

"अब विमान शमशान के लिए निश्चित किए गए स्थान पर पहुंच गया है। चन्दन की लकड़ियों की चिता पहले ही तैयार कर रखी है। विमान को सामने सुसज्जित थड़े पर रख दिया है। भाई नंदचन्द विमान के पास जा बैठे हैं और उन्होंने जपुजी साहिब का पाठ शुरू कर दिया है।"

"माता नानकी जी आगे बढ़कर गुरु महाराज के शीश को चूम रही हैं। अब माता गूजरी जी हाथ जोड़कर शीश के सामने माथा टेक रही हैं। अब बुआ वीरो जी आगे आए हैं। उन्होंने भी शीश को चूमा है, एक बार, दो बार, तीन बार ! जैसे उनका मन न भर रहा हो ! ऐसे लगता है कि उनकी आंखों में आंसू फूट आए हों। अपने आंचल के छोर से अपनी पलकों को खुश्क कर रही हैं। अब कोई औरत बुआ वीरो जी को संभाल कर ले जा रही है। परिवार के बाकी लोग अब आगे बढ़कर बारी-बारी हाथ जोड़कर माथा टेक रहे हैं। अपनी श्रद्धा पेश कर रहे हैं। अब बारी निकटवर्ती गुरुसिक्खों की है, हर कोई बारी-बारी बढ़ता है और अपना सिर झुका कर गुरु महाराज को आदर देता है।"

"इतने में जपुजी साहिब का पाठ सम्पूर्ण हो चुका है। अब मसन्द नन्दचन्द गले में पल्ला डाल कर प्रार्थना कर रहे हैं। हर कोई हाथ जोड़े, आंखें मूंदे शांत खड़ा हो गया है। जहाँ कहीं भी कोई है अरदास के लिए सावधान हो गया है। हम भी......।" "प्रार्थना के बाद शीश को गुरु गोबिन्द जी खुद अपने कर-कमलों के साथ उठाकर चिता पर रख रहे हैं। अब वह एक तरफ जलाई जा रही ठहनियों को उठाकर चिता के चार फेर ले रहे हैं। एक, दो, तीन, चार और अब उन्होंने चिता को आग दे दी है।"

"गुरु तेग बहादुर जी की जय", "गुरु गोबिन्द राय जी की जय" के जयकारे गूंज रहे हैं। एक के बाद एक ये लोग न तो थकते हैं, न तृप्त होते हैं।

"अब एक तरफ डाढ़ी जत्थे का शबद-कीर्तन होना है, हाँ कीर्तन ही तो होने जा रहा है। सैफाबाद का नवाब सैफखान भीड़ को सामने मण्डप की

ओर कीर्तन सुनने के लिए कह रहा है। सभी श्रद्धालु उधर चल पड़े हैं। भाट और डढ सारंगियाँ पकड़ कर खड़े हो गए हैं।"

उन्होंने कीर्तन शुरू कर दिया है :

गगन दमामा बाजिउ
परिउ निसानै घाउ।
खेतु जु मांडिउ सूरमा
अब जूजन को दाय॥
सूरा सो पहचानीअै जो लरै दीन के हेत।
पुरजा-पुरजा कट मरै कबहुं न छाड़े खेतु॥

"हम भी कीर्तन में शामिल होने के लिए चलते हैं।" सुबह के पहले बोल थे जो वीरां ने बोले।

और आलम और वीरां उस मण्डप की ओर चल पड़े जहाँ कीर्तन हो रहा था।

गुरु महलों में पिछले कई दिनों से पोथी का अखण्ड पाठ जारी है। दूर-नज़दीक से गुरुसिक्खों, गुरु महाराज, माता गूजरी और माता नानकी जी को रज़ा बुलाने आते रहते हैं। माता गूजरी जी का अधिकतर समय अखण्ड-पाठ की बारियाँ देने में लगता है। इधर गुरु गोबिन्द जी ने अपनी नित्य की पहले जैसी क्रिया शुरू कर दी है। ग्रंथों का अध्ययन, कसरत, शिकार खेलना, इत्यादि।

पटना में राजा फतेह चन्द मैनी और उसकी रानी को जब दिल्ली में हुए अनर्थ की खबर मिली, पति-पत्नी, तुरत-फुरत आनन्दपुर के लिए चल दिए। रानी तो गुरु महाराज को हमेशा एक बेटे जैसा प्यार देती थी। उनके अपनी औलाद नहीं हुई थी। रानी ने साहिबज़ादा गोबिन्द को बचपन से अपना बेटा बनाया हुआ था। बात ऐसे हुई, कितने ही बरस इंतजार करके भी जब रानी की कोख हरी नहीं हुई तो राजा और रानी अपने इष्ट पण्डित शिवदत्त के पास पहुंचे। पण्डित जी ने राजा रानी की विनती सुनी और समाधिलीन हो गए। कुछ देर के बाद जब उन्होंने पलकें खोली, वे बोले, "आपकी मनो-कामना गुरु तेग बहादुर जी का साहिबज़ादा गोबिन्द ही पूरी कर सकता है और कोई नहीं।" तब गुरु गोबिंन्द की आयु केवल पांच वर्ष की थी।

नटखट, सारा दिन शहर की गलियों-महलों में हंसते-खेलते, नाटक रचाते, रौनक बनाए रखते। कभी कसरतें कर रहे हैं। कभी खेल खेल रहे

हैं, कभी अपनी उम्र के बच्चों को दो टोलियों में बांट कर झूठ-मूठ की जंग लड़ रहे हैं। कभी गंगा में डुबकियाँ लगाई जा रही हैं; काटों के पेड़ों पर चढ़ कर पानी में छलागे मारना, उछलना, कूदना, गोते लगाकर दूर-दूर तक निकल जाना, घंटों-घंटों पानी में गुजार देना; न थकना, न हारना।

और फिर उन्होंने तीर-कमान का निशाना पक्का करना शुरू कर दिया। जिस ओर ध्यान लगाते उधर के ही हो जाते। पहले गुलेल के साथ आगे-पीछे किसी को खड़े नहीं होने देते थे। मजाल है कोई कबूतर या फाख्ता कहीं मुण्डेर पर बैठी नज़र आ जाए। अब तीर कमाल लिए घूमते, कुएं पर पानी भर रही युवतियों के घड़े फोड़ देते। चाहे कोई हिन्दू हो, चाहे कोई तुरकनी हो। बेचारी औरतें परेशान होतीं। मुंह से कुछ बोल भी न सकती थी। आखिर वे गुरु तेग बहादुर जी के साहिबज़ादे थे।

और साथ ही कितने सुन्दर थे; उनकी बातें अम्बरी सेब की तरह चम-चम करतीं थीं। कुछ को तो उनके शीश के चारों ओर एक नूरानी चक्र-सा दिखाई देता था। उनके जग-मग करते हुए नैनों की तरफ देखकर मन करता कि वह उन्हें देखता रहे, आंखों से वे ओझल न हों।

साहिबज़ादों की तरह उनकी पालना हो रही थी। माता गूजरी जी क्या, दादी नानकी जी क्या, मामा किरपाल चन्द क्या, पटना शहर के गुरु सिक्ख क्या, उन सभी के जैसे गुरुबालक में प्राण बसते हों। जब से उन्होंने पटना शहर में जन्म लिया था, सारे के सारे शहर में जैसे भगवान का नूर बसता हो।

तभी तो पंजाब के घुड़ाम नाम के शहर का पीर भीखण शाह इतना लम्बा सफर कर साहिबज़ादे के दर्शनों के लिए आया था। कहते हैं, जिस दिन उन्होंने अवतार लिया, भीखण शाह को पूर्व की ओर एक रोशनी दिखाई दी। फजर की नमाज़ के लिए वजू करके हटा, पीर भीखण शाह बजाए इसके कि पश्चिम की ओर मुंह करके नमाज पढ़ता, आज उसने पूर्व की ओर मुंह करके नमाज, अदा करनी शुरू कर दी। उसके तकीये के मुरीदों को यह देखकर बहुत हैरानी हुई। पीर जब नमाज़ पढ़ कर फारिग हुए, उन्होंने इससे इसका कारण पूछा। पीर जी ने बताया, पूर्व की ओर पटना नाम के शहर में आज अल्लाह का नूर प्रकट हुआ है। आज की सुबह मैंने उसको सिजदा किया है। यही नहीं, पीर भीखण शाह अपने कुछ शिष्यों के साथ पटना के लिए चल पड़ा। मंजिलें तय करता जब वह पटना पहुंचा, उस नवजात के

सामने दो मिठाई के दोने रखे। गुरु बालक ने दोनों पर अपने हाथ रख दिए। ऐसा लगता पीर भीखण शाह की अभी भी तसल्ली नहीं हुई थी। अब उसने एक कूजे में दूध और दूसरे में पानी डालकर उनको पोने से ढका और गुरु बालक के पास रख दिया। यह देखकर उन्होंने अपने चरणों से दोनों कूजलों को उल्टा कर दिया। भीखण शाह ने गुरु बालक के चरण पकड़ लिए और अथाह श्रद्धा में उन्हें चूमने लगा। आस-पास खड़े श्रद्धालुओं ने इस सारे कौतुक के बारे में पीर जी से पूछा। उन्होंने समझाया—पहले मैंने दो मिठाई के दोने गुरु बालक के सामने पेश किए। एक दोना हिन्दुओं और दूसरा मुसलमानों की नुमाइंदगी करता था। गुरु बालक ने दोनों पर हाथ रखकर यह बताया कि वे दोनों के सांझे हैं और एक कूजे में दूध और दूसरे में पानी डालकर जब मैं उनके पास कूजे लाया तो उन्होंने अपने पवित्र चरणों से उनको उल्टा कर दिया। जसका अर्थ है कि वे नया धर्म स्थापित करने जा रहे हैं।

ठीक इसी तरह का ही कुछ राजा फतेह चन्द मैनी की रानी के साथ हुआ था। पण्डित शिव दत्त की सलाह से पति-पत्नी गुरु बालक के दर्शनों के लिए हाजिर हुए पर शहज़ादे की छवि देखकर उनको जैसे अपना मनोरथ भूल गया हो। एक बार गुरु बालक के दर्शन कर वे अक्सर उनके यहाँ आते। साहिबज़ादा गोबिन्द जी अपने साथिरों के साथ खेलते-खेलते राजा फतेह चन्द के यहाँ चले जाते। रानी हमेशा उनके साथियों की जी भरकर खातिर करती। एक आध दिन जब वे नहीं आते, रानी को अपना आंगन सूना-सूना, रूखा-रूखा लगता।

उस दिन गुरु बालक का ध्यान करते-करते रानी आंगन में बैठी जाड़ों की गुनगुनी धूप का सेंक लगवा रही थी; साहिबज़ादा गोबिन्द चुपके से, हलके-हलके कदमों से पीछे से आए और उन्होंने रानी की पीठ को अपनी बाहों में लपेट लिया और कहा 'माँ !' रानी ने सुना और उसको जैसे सातों स्वर्ग मिल गए हों। उसको बेटेकी लालसा थी और जैसे एक लाल उसकी झोली में आ गया हो। एक उन्माद में उसकी पलकें मुंद गई। उसने गुरु बालक को अब अपनी छाती से लगाया हुआ था और उसके मां के कलेजे में जैसे ठण्ड पड़ रही हो। उसकी मनोकामना पूरी हो गई थीं।

जब माता गूजरी को इस घटना की खबर मिली, उन्होंने साहिबज़ादे से पूछा, "एक बालक की दो माताएं कैसे हो सकती हैं ?"

"जैसे आंखें दो होती हैं, ? नज़र एक।" गुरु बालक ने जवाब दिया और माता जी उनके खिल-खिलाते मुखड़े की ओर देखतीं रह गईं। राजा फतेह चन्द और उनकी रानी आनन्दपुर जा रहे रास्ते में अक्सर गुरु महाराज के पटना के उन दिनों के बारे में बात करने लगते और अब उनको गुरु बालक की हर हरकत में कोई न कोई अर्थ सूझने देने लगता।

गंगा के किनारे पानी से भरा गागरों को अपने चरणों से उल्टा देते। हर रोज ही वे ऐसा करते थे। ऐसा कर रहे वे गंगा जल के उपासकों को समझाने की कोशिश करते थे कि गंगा के पानी और नदियों के पानी में कोई अन्तर नहीं। आखिरी फैसला तो उसके आचरण पर होना है।

कोई समय था, गली बाजार में से मुगलों का कुत्ता भी निकल जाए तो लोग उठकर उसको आदर देते थे। मुगल नौकरशाहों तक को प्रजा झुक-झुककर सिजदे करती थी। साहिबज़ादा गोबिन्द ने अपने साथ के बालकों को इस सब-कुछ से मना किया। अब तो वह चाहे नवाब हो, चाहे सूबेदार, उनकी बेहूदगियों पर नाक चढ़ाते थे, उनकी हरकतों का मज़ाक उड़ाते थे।

रानी फतेह चन्द को गुरु बालक का वह कौतुक तो कभी नहीं भूला था। एक बार माता गूजरी जी ने इनके लिए बहुत चाव से सोने के दो कंगन बनवाये। कंगनों में मोती औ हीरे जड़े हुए थे। कंगन पहन कर ऐसे लगता जैसे कोई आसमान से उतरा फरिश्ता हो। शहर की औरतें उनके कंगनों को हाथ लगाकर देखती। कंगनों के सोने की, कंगनों की बनावट की प्रशंसा करते उनके मुंह कहाँ थकते हैं। फिर सुनने में आया, एक दिन गंगा नदी में स्नान कर रहे बांए हाथ का कंगन गुरु बालक की कलाई से फिसल कर नदी में कहीं गुम हो गया। इतना कीमती कंगन और ऐसे हाथों में जाता रहा, माता गूजरी जी बेटे की उंगली पकड़ गंगा की ओर चल पड़ी। गंगा किनारे पहुंचकर माता जी ने गुरु बाले से पूछा, किस जगह वह कंगन गुम हुआ था। बेटे ने हल्के से दाएं हाथ का कंगन भी कलाई से फिसला कर कहा, "वहाँ, उस जगह", और दूसरा कंगन भी नदी में फेंक दिया।

अक्सर अपने साथियों में खेलों के मुकाबले करवाते और रानी फतेह चन्द या माता गूजरी से जीतने वाली टोली को ईनाम दिलवाते।

एक बार उन्होंने किसी मुगलानी का घड़ा अपनी गुलेल का निशाना बनाकर फोड़ दिया। मुगलानी ने बहुत शोर मचाया शहर के हाकिम को शिकायत करने की धमकी दी। माता गूजरी जी ने सुना और उसको उससे

भी ज्यादा सुन्दर घड़ा खरीद कर उसका मुंही बंद करवा दिया।

तुरकनी, जब नया घड़ा लेकर अगले रोज पानी भरने आई, उसके घड़े पर कहीं से तीर आ गया। घड़ा फूट गया। लेकिन घड़े की मालकिन को पता न लगा, कहाँ से वह तीर छूटा था। आगे-पीछे कोई दिखाई नहीं दे रहा था। जब ऐसे निराश वह खाली हाथ घर वापिस आ रही थी, गुरु बालक खिल-खिल हंसते-हंसते रास्ते पेड़ से नीचे उतरे। मुगलानी ने उनके निश्छल मुखड़े की ओर एक नजर देखा तो उसको जैसे सारे उल्हाने भूल गए।

गंगा किनारे जो किश्ती खाली नजर आती, अपने साथियों को उस पर बैठा कर दूर सामने किनारे पर पहुंचा देते। उस किश्ती के मालिक या किश्ती के खिवइये को शिकायत करते सुनते तो बड़े-बूढ़े उनको समझाते—ये तो पार उतारनहार हैं, आगे-पीछे इन जरूरतमंद, श्रद्धालुओं को संसार के सागर से पार उतारना है।

ऐसे गुरु महाराज की उन छः वर्षों की स्मृतियों को अपी यादों के पल्ले में समेटे राजा फतेह चन्द और उसकी रानी आनन्दपुर पहुंचे।

9

ऐसे थे, पूरे के पूरे ऐसे, मजाल है कि उनमें कोई फर्क आया हो।

"हाए, कैसे सजीले जवान निकल रहे हैं।" एक झलक देखकर रानी ने अपने पति राजा फतेह चन्द को सहज ही कहा। वह तो जैसे भूल ही गई हो कि वे लोग सैंकड़ों कोस सफर करके गुरु तेग बहादुर जी की अद्वितीय शहीदी का अफसोस करने आए थे। "जैसे कोई शहज़ादा हो", रानी के मुंह से निकला। फिर आप ही आप कहने लगी, "शहज़ादे और कैसे होते हैं। ऊँचे लम्बे ! भरा-पूरा शरीर। कसरतें कर-कर के कमाए अंग। चम-चम करता माथा, मोटी-मोटी काली आंखें। तांबे जैसा गेहुँआ रंग। चम-चम, कर रहा मुखड़ा, भरे हुए गालों पर पड़ रहे खड्डे। अभी मसें नहीं फूटी; जब मसें फूटेंगी तो कैसे लगेंगे; इनको देखने की भूख तृप्त नहीं होती। नीचे चूड़ीदार पैजामा, खुला पश्मीने का कुर्ता,कमर पर कसा हुआ। एक तरफ कटार, दूसरी ओर कन्धे पर कमान, एक हाथ में तीर। सिर पर चम-चमकर रही कलगी", रानी एक सांस होकर बोलती जा रही थी। अभी उनकी दर्शन करने की बारी नहीं आई थी। राजा फतेह चन्द को बताया गया, कई श्रद्धालु तो कई दिनों से अपने पिता की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनकी खुशकिस्मती थी, कि अभी कल ही लौटे और आज उन्हें मुलाकात का समय दे दिया गया था।

एक क्षण के लिए रानी की आंखें बंद हो गई। उसको लगा जैसे हल्के-हल्के कदम कोई पीछे से आ रहा है, वह अनदेखा करके अपने में 'माँ' कहकर उसको पुकार रहा है और उसके कलेजे में जैसे ठण्डक पड़ गई हो। उसको तो जैसे दो जहान की पातशाही मिल गई हो। रानी वैसे की वैसी आंखें बंद किए मगन-मगन हुए बैठी है।

'देख-देख !' रानी के घर वाले राजा फतेह चन्द ने जैसे उसको झिंझोड़ कर जगाया हो। सामने असम का राजकुमार रत्न राय अपनी माता के ाथ गुरु महाराज को दण्डवत् कर रहा था। असम के राजा राम का बेटा रत्न राय उसके मां-बाप को गुरु तेग बहादुर जी के आशीश की देन थी। उसके पिता के घर औलाद नहीं होती थी। पति-पत्नी गुरु महाराज के यहाँ हाजिर हुए। उन दिनों गुरु महाराज असम के दौरे पर आए हुए थे। उनकी प्रार्थना सुनी गई। पर बेटे के जन्म से कुछ देर बाद राजा राम का देहान्त हो गया। अब जब राजकुमार 12 वर्षों का हुआ, उसकी माता उसको गुरु महाराज के दर्शनों के लिए लाई थी। शुकराने के रूप में सौगातें लाई थीं। इसने पांच लाजवाब घोड़े थे जिनका समस्त साज सुनहरी था। सोने की लगाम, सोने की रबाबे, सोने के तंग, सोने की काठियां। एक छोटी उम्र का सधा हुआ हाथी भी, जो गुरु महाराज के चरण धो कर परने से उनके हाथ साफ करता था। रात को मशाल उठाकर रास्ता दिखा सकता था। एक छड़ी जिसमें से पांच हथियार बनकर निकलते थे, कभी पिस्तौल, कभी तलवार, कभी नेजा, कभी कटार, कभी कुछ। और फिर एक तख़्त जिसमें एक पुर्जे को दबाने से उसमें से कठपुतलियाँ निकल कर चौपड़ खेलने लगती थीं। ऐसे ही एक मोतियों और हीरों से जड़ा कटोरा और अनेक अमूल्य सौगातें।

रानी फतेह चन्द देख-देखकर फूली नहीं समा रही थी। उसको तो गुरु महाराज ने माता कहकर पुकारा था। वह तो उनकी 'माँ' थी। माँ को अपनी औलाद पर जितना ही गर्व हो उतना ही कम। पर रजा फतेह चन्द अपने को छोटा-छोटा महसूस कर रहा था। वे तो अपने साथ भेंट करने के लिए कोई विशेष चीज़ नहीं लाए थे।

पर राजा और रानी गुरु महाराज के पास हाजिर हुए, अपने आसन से उठकर उन्होंने रानी को आदर दिया। राजा फतेह चन्द को अपने साथ बिठाया और उनसे पटना और रास्ते के सफर के बारे में थोड़े-थोड़े विवरण पूछने लगे।

"दाई लाडो का क्या हाल है ?"

"दानापुर में जिस माई ने हमें हांडी में पकाकर खिचड़ी खिलाई थी, उसका क्या हाल है ?"

"जिस हांडी में उस माई ने खिचड़ी पकाई थी, उस को संभाल कर रखा हुआ है।, दानापुर की संगत का नाम ही 'हांडी वाली संगत' पड़ गया है।" रानी ने गुरु महाराज को बताया।

"जौनपुर की संगत को गुरु पिता ने एक मृदंग भेंट की थी", गुरु महाराज याद कर रहे चळो।

"जौनपुर की संगत का नाम भी 'मृदंग वाली संगत' पड़ गया। गुरु सिक्ख नितनेम के साथ इकट्ठे होते हैं, शब्द कीर्तन करते हैं।" राजा फतेह चन्द ने बताया।

"लखनऊ में हमने भगवान नाम के एक भक्त को तलवार निशानी के तौर पर दी थी।" गुरु महाराज पटना से आनन्दपुर के सफर की स्मृतियों में खोए हुए लगतें थे।" लखनौर के नजदीक भीखण शाह के गांव 'ठसका' पर आप नहीं गए होंगे। बड़ा पहुंचा हुआ फकीर है।

"अब रानी बोली–'लखनौर में माता गूजरी जी के नाम का एक कुआं है सिर्फ उसी का पानी मीठा है, नगर के बाकी सारे कुओं का पानी खारा हो चुका है। दाल तक नहीं गलती'। अब उस कुएं से सारा नगर पानी भरता है।"

"लखनौर में हमारे कयाम के दौरान हमारी मुलाकात सूफी फकीर आरिफदीन के साथ हुई थी।" गुरु महाराज याद करने लगे।

"जिसने हजूर को देखकर कहा था–आज ईश्वरीय खजाने की कुंजी इस बालक के पास है।" राजा फतेह चन्द बताने लगा, "लोगों को अभी तक वह घटना याद है, इसका अक्सर ज़िक्र आता है।"

अभी राजा फतेह चन्द और रानी गुरु महाराज की सेवा में विराजमान थे कि काबुल से गुरुसिक्खों की भेंटों के तौर पर भेजे गए एक शामियाने का प्रदर्शन किया गया। यह शामियाना ऊन का बुना हुआ था और इस पर काबुल और कंधार की प्रकृति के दृश्य सोने और चांदी की तारों के साथ मुखरित किए हुए थे। सुनने में आया था कि काबुल के सिपाहियों ने औरंगजेब को दो लाख रुपये का एक शामियाना भेंट किया सुनकर वहाँ के गुरुसिक्खों ने फैसला किया कि वे अपने 'सच्चे पातशाह' को ऐसा शामियाना

पेश करेंगे जो औरंगजेब को भेजे गए शामियाने को भी मात करेगा।

फतेह चन्द को देख-देखकर, सुन-सुनकर रानी, एक माँ, का दिल जैसे खुशी के मारे उसकी छाती में फूला न समा रहा हो।

यह जानते हुए कि गुरु महाराज को सौगातों में सबसे प्रिय हथियार थे, राजा फतेह चन्द और रानी भिन्न-भिन्न तरह के तीर-कमान, तलवारें, कटारें अैर नेजें, अपने साथ लाए थे। जब उनको तोहफे पेश किए गए, गुरु महाराज का मुखड़ा खिल गया। कभी किसी हथियार को उठाकर देखते कभी किसी को।

फिर गुरु महाराज उनको विशेषतः बनवाया 'रणजीत नगारा' दिखाने के लिए चल पड़े। कई नेजे की ऊंचाई पर स्थापित किया यह नगारा बेमिसाल था। भाई नन्द चन्द ने नगारा तैयार करवाया था। जब गुरु महाराज साधु-संगत में आते, नगारा बजाया जाता।

"इस तरह के नगारे तो सम्राट बजाया करते हैं।" राजा फतेह चन्द कहने लगा। आस-पास के राजाओं का क्या हाल होता होगा जब यह नगारा बजाया जाता है ?"

"उनके लिए ही तो यह नगारा बनवाया है, गुरु महाराज समझाने लगे, ये लोग जो मरे-मिटे हुए हैं, उनमें इस नगारे की चोट आत्म-विश्वास पैदा करने में सहायक होगी। कोई बात भी हुई ! कि कोई हिन्दू पालकी में नहीं बैठ सकता।" नगारा या धौंसा नहीं बजा सकता। कलगी नहीं लगा सकता। यह कहते हुए गुरु महाराज राजा फतेहचन्द और रानी को अपने साथ लंगर खिलाने चल पड़े।

सारा आनन्दपुर नगर एक स्थान पर लंगर करता था। एक स्थान पर लंगर पकता था। एक पंक्ति में बैठ कर बड़ा-छोटा लंगर खाता था। हर कोई अपनी हैसियत के मुताबिक लंगर में अपना हिस्सा डालता और अपनी जरूरत के अनुसार उसमें भागीदार होता।

"मेरे अनुसार, यह यह एक और कारण होगा, आपके पड़ौसी राजाओं की परेशानी का।" राजा फतेह चन्द कहने लगा, "ये लोग तो तथाकथित ऊंची जाति और निम्न जाति का मिलकर बैठना, मिलकर भोजन करना सहन नहीं कर सकते होंगे।"

"और तो और उन्होंने माता जी के कान आ भरे हैं। माता किरपाल चन्द को और की और पट्टियाँ पढ़ाई हैं।" गुरु महाराज ने बताया।

"मैं माता गूजरी के साथ बात करूंगी।" रानी फतेह चन्द बोल पड़ी, "यह भी कोई बात हुई, भक्त कबीर जी ने कहा है–"

जे तुं ब्राह्मणु ब्रह्मणी जाइया,
तउ आनु बाट काहे नहीं आया।"

गुरु महाराज ने सुना तो आगे बढ़कर रानी के गले लग गए। "आज मुझे पता लगा है कि मैंने दो माताएं धारण क्यों की थीं।" वे कहने लगे। और फिर खुशी-खुशी सभी लंगर में जा बैठे।

उधर नगारा डम-डमा बजा रहा था।

उधर दिन छिपा, इधर सारा शहर लंगर खाकर फारिग हो गया। लांगरी और सेवादार बर्तन साफ कर रहे थे, तंबू संभाल रहे थे।

रानी फतेह चन्द फिर पटना के दिन याद करती हुई कहने लगी, "पटना में तो हम अभी भी रात देर तक रह-रास का पाठ करते हैं, उन दिनों में हर रोज़ खेल कर आप काफी देर से लौटते थे और न आपके बिना रहारास शाम का पाठ हो सकता है, न कोई भजन कर सकता था।"

"हाँ सच, रहीम बख्श और करीम बख्श का क्या हाल है ?"

"दिन रात तुम्हारी याद में रहते हैं।" राजा फतेह चन्द ने बताया।

रहीम बख्श और करीम बख्श ने गुरु घर को अपना बाग पेश किया था जिसको गुरु महाराज के पटना से प्रस्थान के बाद गुरुद्वारे में तब्दील कर दिया गया था। वहाँ अब पटना की साधू संगत मिल कर बैठती है। दोनों समय गुरुबाणी का पाठ होता था। कीर्तन होता था। गुरु महाराज के कौतुकों को याद किया जाता था।

10

रणजीत नगारा सुबह-शाम बजाया जाता। गुरु महाराज शिकार को निकलते, रणजीत नगारा बजता, गुरु महाराज शिकार करके आनन्दपुर लौटते, रणजीत नगारा बजाता। सिक्ख पंथ के 'सच्चे पातशाह की शान-शौकत किसी सम्राट से कम नहीं थी।'

रणजीत नगारा बजाता और उसकी धमक आगे-पीछे कई-कई कोसों पर सुनाई देती। जंगली जानवरों में खलबली मचने लगती। धार के राजे चमगोइयाँ करने लगे। रणजीत नगारे की हर चोट तड़-तड़ गोलियों की तरह उनकी छाती में लगती। वे कहते, एक गुरु को क्या लगे और नगारा बजाने के साथ क्या लगे ?

पर इधर गुरु गोबिन्द भी केवल नगारा ही नहीं बजा रहे थे, वे तो अपनी निज की सेना भी भर्ती कर रहे थे। खास तौर पर मालवा के जवान खुशी-खुशी उनकी शरण में आते, पीछे हटने का नाम ही नहीं लेते थे। दूर-नजदीक से गुरुसिक्ख बढ़िया से बढ़िया अरबी और ईराकी घोड़े अपने 'सच्चे पातशाह' को भेजते थे। भांति-भांति के हथियार भेजते थे। तीर कमान और तलवारें, खण्डे और कटारें, बन्दूकें और तोपें। सुनने में आया था, गुरु महाराज ने लाहौर से तेज नोक के तीर विशेष तौर पर अपने लिए बनवा कर मंगवाए थे। यही नहीं आनन्दपुर में हथियार बनाने का एक कारखाना स्थापित कर लिया था, जिसमें दिन-रात तरह-तरह के हथियार बनाए जा रहे थे।

अब गुरु महाराज आनन्दपुर के इर्द-गिर्द किले बनवाने की सोच रहे थे। आनन्दपुर के निर्माण का काम शुरू भी हो गया था।

सबसे अधिक ललकार जो पहाड़ी राजाओं को गुरु महाराज की ओर से महसूस हो रही थी, उनका नित्य शिकार के लिए निकलना और कभी किसी ओर, कभी किसी ओर दूर-दूर तक निकल जाना और शिकार करने के लिए वे अकेले थोड़े ही जाते थे। उनके साथ गुरुसिक्खों का जत्थे का जत्था होता था। घोड़े और कुत्ते, बाज़ और शिकरे होते थे। जहाँ-कहीं कोई नया हथियार सुनने में आता, गुरु महाराज को या तो वहाँ के गुरुसिक्ख भेंट के तौर पर भेज देते या वे स्वयं मंगवा लेते। हथियार बाने वाले कई कारीगर आनन्दपुर में ही आकर बस गए थे। एक गुरु घर की सेवा, दूसरा रहने-बसने के लिए सुन्दर शहर।

आनन्दपुर में सबसे नज़दीक कहलूर की रियासत थी जिसकी राजधानी बिलासपुर थी। कहलूर का राजा भीम चन्द सबसे अधिक चिंतित था। जब भी रणजीत नगारे की आवाज़ उसके कानों में पड़ती, वह परेशान हो उठता जैसे उसके सीने में शूल उठ खड़े होते हैं। रणजीत नगारा जब भी बजता एक तहलका आगे पीछे मच जाता। जैसे कहरों के बादल गर्ज रहे हों, जैसे मस्ताए हुए जंगली हाथी चिंघाड़ने लगे। ऐसे लगता जैसे कोई लश्कर आ खड़ा हो गया हो और किसी समय भी तहस-नहस कर देगा। रणजीत नगारा बजता और राज़ा भीम चन्द को लगता जैसे सतलुज अपने किनारों को ढा-ढेरी करके सारे के सारे इलाके को जल-थल कर रहा हो। महल और हवेलियाँ बहती जा रही थीं, जैसे प्रलय आ रहा हो। पहाड़ फट रहे थे, तारे

टूट रहे थे, नीचे का ऊपर हो रहा था। आंधी और तूफान, बिजली और बारिश। गली-गली जंगली जानवर, शेर और चीते, भालू और बाघ, गुर्राते-गुर्राते फिर रहे थे।

एक रणजीत नगारे की धमक और दूसरा गुरु महाराज के शिकार की खबरें, राजा भीम चन्द को परेशान करती रहती थी। हर दूसरे रोज उसकी रियासत में शिकार के लिए आ निकलते थे। कई बार उसकी चारागाह में भी आ घुसते। उन आरक्षित जंगलों में जहाँ राजा के अलावा और कोई शिकार नहीं करता था, उनके घोड़ों की टापों के निशान देखने में आते और जंगलों के दारोगा बताते, शेर और चीते मार कर वे अपने साथ उठा ले जाते। जब आते, उनके साथ जैसे फौज की फौज होती। सारे जंगल में खलबली मच जाती।

राजा भीम चन्द बहुत परेशान था। जैसे-जैसे गुरु महाराज की गतिविधियों की खबरें सुनता, उसको लगता जैसे उसका सिंहासन डोल रहा हो। किसी दिन भी उसे गद्दी से अलग किया जा सकता था।

राजा भीम चंद को यह भी बताया जा रहा था कि आनन्दपुर की दिन-दुगनी, रात-चौगुनी रौनक बढ़ रही थी। हजारों गुरुसिक्ख गुरु महाराज की सेना में भर्ती हो रहे थे। हर छमाही को एक कुर्ता और कच्छा लेते और अपना-आप गुरु महाराज को समर्पित कर देते। दोनों समय लंगर चलता था जिसमें हर कोई मिलकर बैठता, मिलकर लंगर खाता। राजा भीम चन्द सोचता, ऐसे तो हिन्दू धर्म का सर्वनाश हो जाएगा। जाति-पाति का भेद-भाव खत्म हो गया तो हिन्दू धर्म में रह ही क्या जाएगा ?

आनन्दपुर बेशक उसकी रियासत में था पर वह जगह गुरु तेग बहादुर जी ने मोल ली हुई थी। उस पर गुरु महाराज का कब्जा था। उनको वहाँ से निकाला भी नही जा सकता था।

राजा भीम चन्द को और कुढ़ होती जब उसको खबरें मिलतीं कि दूर के राजा और महाराज गुरु महाराज के दर्शनों के लिए आते थे और ढेरों भेंट और सौगातें उनको पेश करते थे। इधर रियासत का राजा था जिसकी जैसे कोई पूछ-पड़ताल न हो।

राजा भीम चन्द बार-बार गुरु महाराज के बारे में अपने रहस्य का अपने मन्त्रियों के साथ ज़िक्र करता। हर बार उसको समझाया जाता, सिक्ख पंथ की गद्दी पर गुरु गोबिन्द राय विराजमान थे। अभी तो कल गुरु तेग बहादुर

जी ने तिलक और जनेऊ की रक्षा के लिए अपनी जान वार दी थी। इस तरह के भाईचारे का हिन्दू धर्म को कृतार्थ होना चाहिए था। अब जो सेना गुरु महाराज इकट्ठी कर रहे थे, जो हथियार वे जुटा रहे थे, हिन्दू धर्म की हिफाज़त के लिए ही यह सब कुछ किया जा रहा था।

पर राजा भीम चन्द को कोई भी बात न सूझती। उसको लगता जैसे हर पल उसके सिंहासन को ललकारा जा रहा हो। गुरु महाराज की महिमा, गुरु महाराज का रुतबा, रियासत के राजा से कैसे ऊँचा था ? आठों पहर वह कुढ़ता रहता। उसके मंत्री उसको समझाते, राजा को भूलना नहीं चाहिए था कि गुरु महाराज के दादा-गुरु हरगोबिन्द ने मुगल शहनशाह की कैद में से 52 राजाओं को छुड़वाया था। इसमें कहलूर का हुकमरान भी शामिल था और उसने खुद गुरु घर को प्रार्थना की थी कि उसकी रियासत को खुद गुरु महाराज सौभाग्य प्रदान करें। बेशक आयु में छोटे हैं पर वे साहिबज़ादे किसके हैं, राजा को यह सोचना चाहिए था। बेशक उन्होंने तलवार पकड़ ली थी, घोड़े पर चढ़ते थे, शिकार करते थे, पर गुरु बाबा नानक की गद्दी पर विराजमान थे, राजा को यह नहीं भूलना चाहिए था। आखिर राजा भीम चन्द गुरु महाराज को मिलने के लिए राजी हो गया। उसके मंत्री हमेशा उसे यही मशवरा दे रहे थे। एक बार उसको गुरु महाराज के दर्शन करके अपनी शंकाओं का निवारण कर लेना चाहिए।

गुरु महाराज के दर्शनों के लिए तो कहलूर का राजा तैयार हो गया पर उसके भीतर का अहंकार वैसे का वैसा बना हुआ था। उसके कानों में रणजीत नगारे की धमक वैसे की वैसी गूंज रही थी। उसको वैसे के वैसे वे आदमखोर शेर और जंगली जानवर याद आ रहे थे जिनका न वे खुद और न उनके कर्मचारी कुछ बिगाड़ सकते थे और गुरु महाराज आकर उनका सफाया कर जाते थे।

राजा भीम चन्द की गुरु महाराज के साथ मुलाकात उस अत्यन्त शानदार शामियाने में हुई जिसको दुनी चन्द नाम के एक श्रद्धालु ने काबुल से भेजा था। ऐसा शामियाना जिसको देखकर शाहनशाह के मुंह में पानी भर आए। इस मुलाकात के दौरान ही राजा भीम चन्द को प्रसादी नाम के हाथी को देखने का मौका मिला। यह हाथी असम के राजा रत्न राय की गुरु महाराज को भेंट थी। हाथी क्या था, अक्ल में होशियार से होशियार आदमी को मात करता था। अपने अनेक कौतुक दर्शाता रहा। गुरु महाराज ने हवा

में तीर छोड़ा। तीर आंखों से दूर कहीं जंगल में जा गिरा। प्रसादी को हिदायत दी गई कि तीर को ढूंढ कर लाए। हाथी दौड़ता हुआ गया और अगले ही पल तीर को ढूंढ कर ले आया।

गुरु महाराज का रंग रूप, गुरु महाराज की चढ़ती जवानी, गुरु महाराज की चाल-ढाल, गुरु महाराज का पहरावा, कामख्वाब और ज़रीका। गुरु महाराज की कलगी ! गुरु महाराज के आगे पीछे जांबाज सूरमे ! गुरु महाराज के शहर की उथल-पुथल, गहमा-गहमी, यह सारा ठाठ देखकर राजा भीम चन्द को इसकी बजाए कि तसल्ली होती, उनकी रक्षा के लिए एक ढाल तैयार हो रही थी, उसको तो जैसे चारों ओर आग लग गई हो। उसका मन करता अगर हो सके तो वह अगले क्षण सब कुछ हड़प कर ले। वह शामियाना क्या और वह हाथी क्या, हर सौगात को जिसे गुरु महाराज को उनके श्रद्धालुओं ने समय-समय पर भेंट की थी, किसी-न-किसी तरह हथिया ले।

पर यह कैसे मुमकिन था ?

आखिर सोच-सोच कर राजा को एक तरकीब सूझी। उसके हाथ एक बहाना आया; कैसे गुरु महाराज से वह शामियाना, हाथी और बाकी अजूबे जो उसने उनके यहाँ देखते थे, मंगवा भेजे। राजा भीम चन्द के बेटे अमर चन्द की शादी श्रीनगर (गढ़वाल) के राजा फतेह शाह की बेटी के साथ होने जा रही थी। उसने गुरु महाराज को कहलवा भेजा कि उसके बेटै की शादी के लिए शामियाना और हाथी सहित कुछ एक सौगातें उसको भेज दें ताकि उसके बेटे की शादी की शान बढ़ सके। वास्तव में उसके मन में चोर था। उसने अपने आपके साथ फैसला किया हुआ था कि एक बार वे अजूबे उसके हाथ आ गए तो फिर वह उन्हें वापिस नहीं करेगा।

इधर सर्वज्ञ गुरु महाराज के सामने जब यह मांग रखी गई, उन्होंने राजा भीम चन्द को कोई भी चीज़ भेजने से मना कर दिया, न शामियाना, न प्रसादी हाथी, न और कुछ।

जब राजा को यह बताया गया, उसने धमकी दी कि वह आनन्दपुर पर हमला करके हरेक चीज़ को हथिया लेगा।

रामा भीम चन्द सोचता, गुरु महाराज को डराना, धमकाना कोई मुश्किल नहीं होना चाहिए। यह जानते हुए कि औरंगजेब ने गुरु महाराज के पिता की हत्या करवाई थी, मुगल सम्राट इस झगड़े में दखल नहीं देगा, बल्कि

इस तरह की कोई बदतमीज़गी दिल्ली शहनशाह की प्रसन्नता का कारण भी हो सकती थी और आनन्दपुर वाले तो जाति-पाति के बंधनों को मिटाकर हिन्दू धर्म में एक प्रकार की अराजकता ला रहे थे। इसका भी खातमा होना जरूरी था। यह तो हिन्दू धर्म का सांझा संकट था जिसमें आगे-पीछे के बाकी पहाड़ी राजाओं की मदद उसमें शामिल होगी। कम-से-कम राजा फतेह शाह जिसकी बेटी को उसका पुत्र ब्याहने जा रहा था तो जरूर भीमचन्द का साथ देगा।

गुरु महाराज ने राजा भीमचन्द को कहलवा भेजा कि वे सौगातें जिन श्रद्धालुओं ने उनको भेंट की थीं, उनकी फरमाइश थी कि उनको आगे किसी और को न दिया जाए और गुरु महाराज इस वायदे पर कायम थे। सौगातें पेश करने वालों का आदर जरूरी था।

11

गुरु महाराज सत्रहवां वर्ष पार कर चुके थे, अट्ठारह के हो गए थे।

उनका चम-चम करता मुखड़ा, महकों से भरी जवानी, जहाँ से गुजरते वे रस्ते सुन्दर लगते, जहाँ खड़े होते वह जगह महक उठती, जहाँ बैठते सुगन्ध जैसे वहाँ झूमर डाल रही हो। उनके मस्तक से एक आभा फूट रही दिखाई देती। दर्शन करने वाले को राहत मिलती। नयनों का नूर आगे-पीछे अन्धकार को चीरता, भटके हुओं गुमराहों को राह, हमसफरों की गाड़ी रास्ते पर डालता। वे होंठ खोलते तो मनमोहक नगमें गूंजने लगते। वे हंसते तो फूलों की कलियाँ खुल-खुल बिखर-बिखर जातीं। हृष्ट-पुष्ट जैसे कोई फरिश्ता आसमान से उतर आया हो। उनके नीले घोड़े की धमक, उनके बाज की चमक से दुश्मनों के हाथ-पांव फूल जाते, बेआसरों के आसरे बनते दिखाई देते।

हर आंगन में उनका चर्चा रहता। हर गली में उनकी प्रतीक्षा होती। हर बाजार में उनकी कहानियाँ कहते न लोग थकते, न हारते। हर नौजवान के सीने में इच्छा होती एक नज़रद उनकी झलक मिल जाए। हर प्रौढ़ हृदय में यह ख्वाहिश रहती, उनका एक वचन सुनने को मिल जाए। हर कदम में एक उमंग होती, उनके रास्ते पर चलना मिले।

गुरुसिक्ख उनके दर पर आते, उनके दर्शन करते, नजरों ही नजरों में जैसे उनसे कह रहे होते—हमने आपका पल्ला पकड़ा है, आप हमारे मुर्शद हो, हमें आप पर जान वारनी है।

मुगल दरबार में डा़यरियाँ भरी जा रही थीं, "गोबिन्द राय ने अपने आपको गुरु नानक की गद्दी का वारिस होने का ऐलान कर दिया है।" सरहिन्द के फौज़दार को हिदायतें भेजी जा रही थीं—"गोबिन्द राय को गुरुसिक्खों को इकट्ठा करने से रोका जाए।"

इधर धार के राजा मक्कार औरतों की तरह मशवरे कर रहे थे, अपनी खिचड़ी पका रहे थे, कैसे इस नई ललकार को धूल चटाई जाए। वहाँ के लोग तो अपने देवी देवताओं को भूलकर दशम पातशाह के पीछे चल पड़े थे। बड़े क्या, छोटे क्या, अमीर क्या, गरीब क्या, किसान क्या, दुकानदार क्या, औरतें क्या, नौजवान क्या, बच्चे क्या।

उस दिन माता नानकी जी और माता गूजरी जी आंगन में बैठी धूप सेंक रहीं थीं। जाड़ों की गुनगुनी धूप मधुर-मधुर लगती थीं घर गृहस्थी के सारे काम निपटा चुके थे। गुरु महाराज शिकार के लिए निकले हुए थे, आज तीन दिन हो गए थे। एक खामोशी थी चारों ओर। कोई आवाज़ नहीं।

"पता नहीं क्यों.........." माता नानकी जी अचानक बोले। फिर अचानक चुप हो गईं।

"आप कुछ कह रहे थे ?" कुछ देर बाद फिर माता नानकी जी अपने होठों पर आई बात को बोले बिना खामोश हो गईं। इस बार माता गूजरी जी ने गौर नहीं किया। इस उम्र में कई बार ऐसा होता है, उन्होंने सोचा मुंह पर आई बात कोई मुंह से निकालने में संकोच करता है। कई बार बात करते-करते बात भूल जाती है।

फिर सामने गुरु घर के माल-जान्वर का रक्षक भाई सामने आता दिखाई दिया।" बधाई हो, बधाइयां !" दूर से ही वह बोला और फिर इससे पहले कि कोई उससे पूछे किस लिए वह इतना खुश-खुश था, बधाई दे रहा था, नज़दीक पहुंच कर स्वयं ही वह बताने लगा, "बछियाँ ब्याही हैं, बच्छा दिया है। मुशकी रंग। बहुत अच्छा बैल बनेगा।"

"यह कौन-सी बछिया है भला ? माता गूजरी जी ने पूछा।"

"वही जो दुआबे वालों ने भेजी थी।" माता गूजरी जी ने उनको याद कराया। माता गूजरी जी माल-जानवर में खास तौर पर दिलचस्पी लेती थीं फिर वे उठीं और अन्दर से गुड़ की एक भेली भाई निहाल के हाथ पकड़ाई, ताकि वह जानवर को जाकर चटवाए।

एक पल के लिए भाई निहाल के आते के कारण आंगन में जो हरकत

आई थी, उसके लौटने से जैसे आंगन और खाली-खाली, और खामोश-खामोश लगने लगा।

"मैं कहती हूँ, आजकल मेरा मन उदास रहता है", "अब माता नानकी अपने में खोई बोलने लगी, "इसका कोई उपाय नहीं हो सकता है ?"

माता गूजरी क्रोशिए से रेशमी धागे की पीढ़ियों वाली किंगरी बना रही थीं, माता नानकी जी के मुंह से उनके अन्दर का मर्म जानकर उनकी क्रोशिए में रही उंगलियाँ एक पल के लिए रुक गईं और उन्होंने माता नानकी जी के मुखड़े की ओर देखा, उन्हें उनके नैनों में कुछ दिखाई दिया जो वे खुद आजकल अनुभव करती थीं।

पर यह क्या था जो उनके अन्दर की दादी और मां को कठिनाई में डाल रहा था ? उनको जैसे आज समझ न आ रही हो। नाम, दान, स्नान करने वाले प्राणी का मन ऐसे कभी उपराम नहीं होता।

उस शाम का कीर्तन विशेष तौर पर आनन्दमय था। बड़ी भारी संगत जुड़ी हुई थी। एक विशेष जत्था लाहौर से आया था। गुरु महाराज शिकार करके अभी भी नहीं लौटे थे। उनकी प्रतीक्षा करते-करते रह-रास साहिब के पाठ को आज फिर विलंब हो गया था। कोई बात नहीं, कीर्तन बड़ा रसमय था। लाहौर का जत्था कीर्तन में मग्न था। कीर्तन कर रहे जत्थे में 12-13 वर्षों की एक लड़की ने जैसे संगत में हर किसी को मंत्र-मुग्ध कर दिया हो। जितनी सुन्दर देखने में थी, उतना सुन्दर गा रही थी। तोबा-तोबा उसने कितनी वाणी कण्ठ की हुई थी ! आप ही तानपुरा छेड़ रही थी। एक उन्माद में, ऊंची और ऊंची गा रही, एक अजीब समां उसने बांध रखा था। हर कोई तन्मय था। साधु-संगत में हरेक की जैसे लौ लग रही हो। ऐसे लगता जैसे अमृत की वर्षा हो रही हो। सारंगी और सारिन्दा एक सुर में बज रहे थे और गायन कैसे सुन्दर शब्दों में हो रहा था–

मेरा मनु लोचै गुरुदरशन ताईं।
बिलप करै चातृक की नियाई।
तृखान उतरै शान्ति न आवै।
बिनु दर्शन सन्त प्यारे जीउ।
हउ छोली जीउ छोली घुमाई।
गुरुदरशन सन्त प्यारे जीउ।

किस वैराग से गा रही थी गुरुसिक्ख कन्या ! आगे-आगे वह गाती,

पीछे-पीछे उसके जत्थे के बाकी लोग तुक को उठाते। इनमें उसके मां-बाप भी शामिल थे, बहिन-भाई भी शामिल थे। सारे का सारा परिवार गा रहा था।

संगत में हर कोई यही सोचता, इस तरह की पुकार सुनकर, इस तरह की अरज सुनकर गुरु महाराज किसी भी क्षण लौट आयेंगे। सीधे साधु संगत में प्रवेश कर जायेंगे। कितनी श्रद्धा, कितना सिदक था एक-एक बोल में जो लाहौर की इस सुन्दरी के मुंह में से निकल रहा था।

गुरु महाराज अभी भी नहीं लौटे थे, जैसे प्रत्येक हृदय में प्रतीक्षा लगी हो। आज शाम उन्हें लौटना था। यह कभी नहीं हुआ था कि वे कह कर जाएं और फिर न आयें। सभी आंखें जैसे उनके रास्ते पर बिछी थीं। अब लाहौरन गायिका अगले मुखड़े का उच्चारण कर रही थी—

तेरा मुख सुहावा जीउ
सहज धुनि बाणी
चिरू होआ देखे सारंग पानी
धन सुदेस जहाँ तू वसिया
मेरे सजन मीत मुरारे जीउ
हऊ धोली हऊ धोल घुमाई
गुरु सजन मीत मुरारे जीऊ।

एक-एक बोल के उच्चारण पर जैसे मन को चैन पड़ रहा हो। उसने सारी संगत को जैसे कील लिया हो। हर कोई एक तान महसूस कर रहा था। हर किसी को लगता, संधया गहरा रही है, गुरु महाराज को अब आना चाहिए था। अब तो वे किसी वक्त आ जायेंगे। कई पलकें भीग रही थी। गाने वाली के अपने अन्तर्मन का क्या हाल होगा ? लोग सोचते, इतनी छोटी उम्र में इतनी आस्था ! ऐसे लगता यह सारे का सारा शब्द उच्चारित ही उसी के लिए किया गया था। हरेक बोल जैसे स्पष्ट हो।

पर यह है कौन ? यह किसी को पता नहीं था। जिस दिन ये लोग लाहौर से लौटे गुरु महाराज शिकार के लिए निकल चुके थे। इस बार उनके साथ ढेर सारे और गुरुसिक्ख भी गए थे, जैसे लश्कर हो। जिस ओर निकल जाते मांस खाने वाले, खूंखार जानवरों शेरों और चीतों का सफाया हो जाता।

और जब वह लड़की गा रही थी, ऐसे जैसे उसकी आवाज़ आंसुओं के साथ निचुड़ रही हो। रोने वाली जैसे हुई, एक शून्य में, तो किसी क्षण फूट

पड़ेगी। छल-छल आंसू गिर पड़ेंगे। जैसे मोतियों का पिरोया कोई हार टूट जाता है। यह तो सिसकियाँ ले रही थी। विश्वास भर रही थी। सुबक रही थीं सिसक रही थी। जैसे कोई अनुनय दे रहा हो–

इक घड़ी न मिलतै ता कलजुगु होता।
हुनि कदी मिलिऐ प्रिय तुछु भगवन्ता।
मोहि रैनि न विहावै नींद न आवै
बिन देखे गुरु दरबारे जीऊ।
हऊ छोली जीऊ धोल घुमाई।
तिस सच्चै गुरु दरबारे जीऊ।

ये बोल उसके मुंह में ही थे कि सामने कलगीधर, अपने नीले घोड़े से आ उतरे। हाथ का बाज़ उन्होंने एक साथी को पकड़ाया, कमान और तरकश किसी और को, और जूते उतार, हाथ जोड़े साधु-संगत का अभिवादन स्वीकार करते हुए, जल्दी-जल्दी सामने सिंहासन की ओर बढ़ रहे थे। आगे-पीछे हर कोई उत्साह में था। हर चेहरा खिल-खिल गया था जैसे तप रही, भुज रही धरती पर अचानक बदली का छींटा आ पड़े। दप-दप करता मुखड़ा गालों पर फूट रही रूईं, इधर दशमेश ने आसन ग्रहण किया और उधर कृतज्ञता में विभोर लाहौरन ने गाया–

भागु हुआ, गुरि सन्त मिलाइया।
प्रभु अबिनासी घर मंहि पवाया।
सेव करी पलु चसा न बिछुड़ा।
जन नानक दास तुमारे जीऊ।
हऊ छोली जीऊ छोली घुमाई।
जन नानक दास तुमारे जीऊ।

छलक-छलक पड़ती, गिर-गिर रही, पूरी भरी कटोरी सी बार-बार इस तुक का उच्चारण कर रही थी........."सेव करी पलु चसा न बिछुड़ा।" शब्द खत्म हुआ, गाने वाली का चित्रण धन्य, उसकी आंखों की लुनाई, उसके मुख की शोभा, उसमें एक कन्या का मासूम भोलापन, गुरु महाराज ने पास बैठे भाई मनी सिंह से पूछा, "यह लड़की कौन है ?"

"लाहौर से आई है, भाई साहब ने गुरु महाराज को बताया, भाई राम सरन भिखिया की बेटी है। जीतो नाम बताते हैं।"

"सुन्दर स्वरूप है" गुरु महाराज ने सुना और उनके मुखारविंद से

निकला। अब वह लड़की गा रही थी–

"हऊ वारी वंजा भोली वंजा ।। तू परवत मेरा उला रामा।"

12

कहलूर के राजा भीम चन्द को जब गुरु महाराज की ओर से टके-सा जवाब मिला, वह सटपटा कर रह गया। उसने फैसला किया, वह उसी क्षण आनन्दपुर पर फौज चढ़ाकर काबुल से आया खेमा और आसाम के राजा का भेंट किया हाथी, आदि बहुमूल्य भेंट हथिया लेगा। पर उसके मंत्रियों ने उसको मशविरा दिया, बेटे के विवाह की तैयारियों के दौरान उसको इस तरह का कुछ नहीं करना चाहिए। साथ ही जब वह अपने बेटे अजमेर को टीढ़ी गढ़वाल के राजा फतेह शाह की बेटी के साथ ब्याह कर लायेगा, उसकी एक और बाजू हो जाएगी जिसकी मदद उसको प्राप्त होगी। उसको जल्दी नहीं करनी चाहिए।

पर भीमचन्द को न दिन में चैन आता न रात को आराम। वह सोचता वह कहलूर का हुकमरान था और आनन्दपुर उसकी रियासत का एक हिस्सा होने के कारण गुरु महाराज को उसकी जिद्द माननी चाहिए थी और इधर गुरु महाराज थे, अपने श्रद्धालुओं की फौज इकट्ठी कर रहे थे। घोड़े मंगवा रहे थे, हथियार जुटा रहे थे। किले बनवा रहे थे। बाकायदा फौजी, अभ्यास होते कवायद और निशानेबाजी। घुड़-सवारी और शिकार ! फिर गुरु महाराज का हर जाति के लोगों को अपने साथ मिला लेना, हिन्दू धर्म को बड़ी भारी चुनौती थी। इस तरह ऊंच-नीच का फर्क मिटाना एक तरह से हिन्दू-धर्म में दखल देना था। वे तथा और राजा गुरु महाराज को धर्म नाशक समझते थे।

गुरु महाराज हैरान होते, अभी तो कल उनके गुरु पिता तेग बहादुर जी ने हिन्दू धर्म के लिए अपना शीश दिया था। इतनी भारी कुर्बानी की थी। जिस धर्म के लिए किसी ने अपने पिता को गवां दिया था, उसको उन लोगों की ओर से धर्म-नाशक कहा जा रहा था।

गुरु महाराज ने रवालसर में धार के राजाओं को इकट्ठा किया। इनमें नूरपुर, गुलेर, कांगड़ा, मण्डी, सुकेत आदि के राजा थे। ऐसे ही डूंगर प्रदेश के बसोहली, जसरोटा, जम्मू, किश्तवार, भद्रवाह आदि के नरेश भी थे। कहलू का भीम चन्द जो सबसे अधिक उनके नज़दीक था इस गठजोड़ में शामिल नहीं हुआ।

गुरु महाराज ने उनको समझाया कि दिल्ली की हकूमत हिन्दुस्तान को

दारूल-इस्लाम बनाने का फैसला करके बैठी है। औरंगजेब दक्षिण की रियासतों को काबू करके जब ख़ाली होगा, वह अपने इस मनोरथ को पूरा करके रहेगा। वह अपना इरादा बदलने वाला नहीं। पहले ही उसने क्या नहीं किया। सैंकड़ों मन्दिरों को मस्जिदों में बदल दिया है जो आप लोग यह समझ बैठे हो कि आप एक एकांत गुफा में सुरक्षित बैठे हो, यह आपका भ्रम है, समय की जरूरत है कि आप मिलकर बैठो और अपने धर्म, अपनी अस्मिता, अपनी पहचान को बनाए रखो। कब तक आप मुगलों के मुंह जोहते रहोगे ? कब तक आपकी बहू-बेटियाँ मुगल महलों की जीनत बनती रहेगी ? कब तक हम अपने देश की महान् परम्परा को मिट्टी मे मिलाते रहेंगे ? सवाल यह है कि हम इस देश के वासी, अपने ही देश के बीच तिरस्कृत नागरिक होकर क्यों रहें ?

गुरु महाराज कितने ही समय तक उनको ऐसे समझाते रहे। जैसे एक कान से सुना-सुना हो, दूसरे कान से उन्होंने निकाल दिया। रूई में जैसे सुई चुभा दी जाए, उन पर कोई असर नहीं हुआ, बल्कि अक्सर उनमें से कई यह सोचते थे कि उनके अस्तित्व को ज्यादा खतरा गुरु महाराज से ही था।

इस समागम का केवल एक लाभ हुआ, राजा मेदनी प्रसाद, रियासत सिरमौर का नरेश, गुरु महाराज की प्रतिभा का कायल हो गया। महाराज को कुछ समय बाद उसने अपने राज्य में आने के लिए निमंत्रण-पत्र भेजा। इसका कारण यह भी था कि वह टीढ़ी-गड़वाल के दुश्मन का दुश्मन दोस्त राजा फतेह शाह से परेशान था। वह हमेशा उसको परेशान किए रहता था। जहाँ कहीं से दाव लगता उसकी रियासत में से किसी-न-किसी इलाके को दबोच लेता।

गुरु महाराज आनन्दपुर छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। राजा भीमचन्द के साथ उनकी तनातनी बनी रहती। रणजीत नगारा बजाने से गुरु के सिक्ख बाज नहीं आते थे और नगारे की धमक जैसे हर बार भीमचन्द की छाती में जाकर बजती थी। साथ ही गुरु महाराज की शोभा, उनका तेज़, उनका स्वभाव, उनका रहना सहना, भीमचन्द देखता, सुनता और जल-भुन जाता।

माता गूजरी जी तथा और सम्बन्धियों की मर्जी थी कि नित्य की झक-झक से यह अच्छा था कि वे लोग कुछ समय के लिए सिरमौर चले जाएं। राजा मेदनी प्रसाद बार-बार संदेशे भेज रहा था, निवेदन कर रहा था। साथ ही उसकी मदद ही हो जाएगी।

जब बेटे को राजी होते हुए न देखा तो माता गूजरी और माता नानकी

जी ने अपना पलड़ा भारी करने के लिए गुरु महाराज का विवाह करने का फैसला किया। यह सौभाग्यवती लड़की लाहौर के भाई रामसरन की पुत्री थी, जिसका कीर्तन सुनकर कुछ दिन हुए गुरु महाराज के मुखारविंद से निकला था 'सुन्दर स्वरूप है।'

शादी के लिए तो राजी हो गए, पर शादी करने के लिए उनका लाहौर जाना मुनासिब न समझा गया। मुगल हकूमत ने आतंक फैला रखा था और अभी वे उसके साथ लोहा लेने के लिए तैयार नहीं थे।

13

तो फिर क्या ?

धेतियाँ को गुरु महाराज जैसा दामाद मिला था, वे तो कुछ भी करने के लिए तैयार थे। फैसला यह हुआ कि आनन्दपुर से कोई आठ कोस की दूरी पर लाहौर बसाया जाए जहाँ गुरु महाराज की बारात ठहरेगी। उधर विवाह की तैयारियां, इधर गुरुसिक्खों की श्रद्धा, एक नया नगर बसाया गया। सड़कें, मकान, बाजार, धर्मशाला सब कुछ ही तो प्रस्तुत कर दिया गया। उधर से गुरुसिक्ख गुरु महाराज के विवाह का सुनकर दूर-नजदीक से इस समागम में शामिल होने के लिए आने लगे। ढेर सारी सौगातें और चढ़ावा इकट्ठा होने लगा। गुरु घर की ओर से कई विशेष मेहमानों को निमंत्रण-पत्र भेजे गए। जो कोई सुनता इस अवसर को हाथों से न गंवाता। असीम शोभा होगी, साथ ही गुरु महाराज के दर्शन हो सकेंगे। साथ ही पुण्य, साथ ही प्राप्तियां।

गुरु महाराज की बारात एक देखने वाला दृश्य था। सबसे आगे तूतनियों वाले थे; भेरियाँ और शहनाइयाँ बज रही थीं। साज़ वालों के अपने-अपने वस्त्र थे। रंग-बिरंगे जैसे इन्द्रधनुष हो। शोख साज, शोख रंग। कानों में नगमें गूंजते। आंखें चौंधिया-चौंधिया जातीं। अंग-अंग थिरकने लगता। बाराती क्या और दर्शक क्या हर कोई उत्साह में महाराज की महिमा गाने लगा, दशमेश के गुण गाने लगता।

इनके पीछे प्रसादी हाथी था जिसके हौदे पर गुरु महाराज विराजमान थे। विवाह करने जा रहे दूल्हे की चढ़ती जवानी ! उसकी आंखों का खुमार, उसके मुखड़े की आभा, उसके माथे पर नूर, उसका सोने चांदी के तारों का सेहरा, जिसमें सच्चे मोती पिरोए थे, जिसकी पट्टी पर हीरे और जवाहरात जड़े थे। उसके शीश पर मुकट, उसके हाथ में सुनहरी मयान वाली शमशीर थी। गुरु महाराज के हाथी के पीछे सिरमौर के राजा मेदनी प्रसाद का हाथी था।

उसके पीछे अरबी और इराकी घोड़े थे, जिन पर बाराती सवार थे। सौ, दो सौ, चार सौ सूरमे, जहाँ तक नजर जाती गुरु महाराज के शैदाई खुशी-खुशी अपने घोड़ों की लगामों को खींच-खींच उनको काबू में रखे हुए थे। इनमें सिक्ख भी थे, हिन्दू भी थे, मुसलमान भी थे, नौजवान भी थे, वृद्ध भी थे।

इसके बाद रथ थे जिनमें स्त्रियाँ सवार थीं। रंग-बिरंगे रेशमी वस्त्र, रंग-बिरंगे शृंगार, खुशबुएं, लुटाती एक स्वर में मल्हार के गीत–गा रही थीं।

जितने दिन बारात गुरु के लाहौर रही, ? नेता बाजी और घुड़सवारी के मुकाबले होते रहे, तीर अन्दाजी और कुश्तियाँ होती रहीं। एक शाम रागी जत्थे संगीत दरबार में शामिल हुए। एक और शाम कवियों के लिए विशेष रखी गई। इस कवि-गोष्ठी में संस्कृत, ब्रज, हिन्दी, पंजाबी और फारसी आदि अलग-अलग भाषाओं के कवियों ने भाग लिया। देर रात गए तक कवि अपनी रचनाओं से श्रोताओं को निहाल करते रहे। फिर एक कवि ने फारसी की अपनी यह नज़्म पेश की–

हवाएं बन्दगी आबुरद दर वजूद मरा।
वगरना जोके चुंनी आमदन नबूद मरा।
खुश असत उमर की दर याद बिगुरज़द वरना।
चि हासिल असत अज़ीं गुम्बन्दे कबूद मरा।
दरिया ज़मां कि निआई बयाद मैं मीरम,
बगैर यादे तू ज़ीन जीशतन कि सूद मरा।
फिदा असत जानो दिन मन बखाक मुकद्दमें पाक।
हर आं कसे कि बसूए तू हर नमूद मरा।
नबूद हेच निशान हा ज़ि आसमां व ज़मीन,
कि शोके रूए तू आबूरद दर सजूद मरा।
बगैर यादे तू गोया नमी तू आनम ज़ीस्त,
बसूए दोस्त रिहाई ए दिहेद जूद मरा।

फारसी की यह नज़्म सुन कर कितनी देर चारों और वाह-वाह होती रही। हर कोई पूछता–यह कौन है ? नौजवान शायर को आनन्दपुर आए हुए कुछ ही दिन हुए थे। अभी गुरु महाराज के वह हाजिर भी नहीं हो सका था।

गुरु महाराज स्वयं यह नज़्म सुनकर अत्यन्त प्रभावित हुए भाई मनी सिंह से पूछने लगे, 'यह कौन है ?'

"नन्दलाल नाम है। 'गोया' उपनाम है। मुलतान से हज़ूर के दर्शनों को आया है।" भाई मनी सिंह को इससे ज्यादा उस शायर के बारे में स्वयं और कुछ नहीं पता था।

उसके बाद कुबरेश नाम के कवि ने अपनी रचना पेश की—

सुना निथावन को तुम थान, सदा निमान न को बडमान
अहो नितानण को तुम त्राण, अस सोभा को कथै जहान।
तुर्क तेज ते, बिल बल हिन्दू, धर्म बिनासत मेल बिन्दू।
महाँ त्रास ते मैं चल आयो, रहित अपने धर्म बचायो।

अब सारदा कवि की बारी थी। उन्होंने गुरु महाराज के हाथ में पकड़ी एक छड़ी को बांसुरी के अलंकार के साथ पेश किया—

कुंज-कुंज गलिनि बजाई बन बांसुरी सी,
उन्हीं के संग सई सारदा करत है।
जमना के तट, बंसी बट के निकट सोई।
तट सतद्रव आन साहिबी करत है।
देखे भूप भूपन के भूमि के भगत लोगोह।
भाग या धरीके मोसो कहिबे बनत है।
कान्ह हूनके ओतरयो तो मुख ही रहित लागी, गोबिन्द हूँ
ओतरयो ते हाथ ही रहित है।

गुरु महाराज ने सुना और कवि को याद करवाया, 'जो मझको परमेसर उचर है। ते सब नरक कुण्ड महि परि हैं।'

यह सुनकर सभा में रुकता छा गया।

फिर गुरु महाराज के मुख से यह तुक सुनाई दी—

मो को दास तवन का जानहूँ। या मैं भेद न रंच पछानहूँ
मैं हो परम पुरख का दासा। देखन आयो जगत् तमासा।

बीजी जीतो काढोला क्या आया, गुरु महलों में एक प्रफुल्लता, एक रौनक आ गई। एक नया रंग भर गया। एक मनमोहक गहमा-गहमी रहने लग पड़ी। आंगन एक दम भरा-भरा लगने लगा। हर चीज़ सजी-सजी प्रतीत होती। दरों-दीवारों पर एक दुल्हन के चाव, एक दुल्हन के सपने, एक दुल्हन की उमंगें चित्रित की जाने लगीं। दुल्हन जीतो जी आईं और मेहलों में जवान-जहान लड़कियों का आना शुरू हो गया। जवान-जहान लड़कियों की मधुर हंसी की धुनें सुनाई देने लगीं। नए-नए पहरावे दिखाई देने लगे। कहीं

चरखा धरे बैठीं, कहीं खेल रही हैं, कहीं ढोलक पकड़ कर गा रही हैं, एक हुलार, एक उबलते जोश का अहसास रहता। टोलियाँ की टोलियां-चिड़ियों की लंगार की तरह महलों में आ घुसी, भोली हिरनियों की तरह अठखेलियाँ करती हुई निकल जातीं।

सबसे अधिक खुश माता नानकी जी थीं। उनकी जैसे मनो-कामना पूरी हुई। ईश्वर ने उनकी प्रार्थना सुन ली थी। इस ज्यादा उम्र में उनकी एक यही अभिलाषा बाकी थी। उनके साहिबज़ादे गोबिन्द ने कितनी प्रतीक्षा करवाई थी। कैसे-कैसे नहीं उन्होंने हाथ जोड़े थे। अब बस उनकी एक यही चाहत थी, इससे पहले के वे आंखें मूंदे, वे अपने आंगन में पोता खेलते हुए देखना चाहती थी। उधर से जीतो जी का डोला उनकी ड्योढ़ी में आ गया, इधर यह आशा उनकी छाती में मचलने लगी।

और जीतो जी की खातिरें भी ऐसे होतीं जैसे आसमान से उतरी कोई हूर हो। सुन्दर भी वे कितनी थीं। हिरनी जैसी मोटी-मोटी काली आंखें, कंधारी अनार जैसे होंठ, बन्द भी सुन्दर लगते, खुले भी सुन्दर लगते। चम-चम करते दूध जैसे सफेद दांत जैसे किसी जौहरी ने मोती पिरोए हों। पतले कान, रेशम के लच्छों जैसे गज-गज लम्बे बाल, उनकी चोटी संभाले नहीं संभलती, ऊंचा, लम्बा कद; अन्दर बाहर आ जाते तो दरवाजों की चौखटें छोटी-छोटी प्रतीत होतीं।

और वे सुगढ़ कितनी। कभी क्रोशिआ लेकर बैठ जातीं, कभी सलाइयाँ पकड़ लेतीं, कभी चरखा होता, कभी कैंची लेकर कुछ काट रही हैं, कभी सुईं धागा लेकर कुछ सी रही हैं। नियम से तारपुर के साथ शास्त्रीय संगीत का रियाज़ करतीं। नियम से दोनों समय गुरुबाणी का पाठ करतीं। गुरुबाणी का पाठ करतीं सभी महलों में उनकी आवाज गूंजती रहती। हर किसी के हाथ जुड़ जाते हरेक शीश झुक जाता। क्या नौकर-चाकर, क्या गुरुसिक्ख, क्या आया-गया, क्या घर वाले।

इतना सदाचरण, इतनी सुन्दरता कि क्या माता नानकी जी और क्या माता गूजरी जी, हर कोई उनको सुन्दर कहकर पुकारने लगा। जैसे उनका असली नाम घर वाले भूल ही गए हों। उनके सरताज तो उनको बुलाते ही सुन्दर-स्वरूप थे, वे बोल जो एक साथ उनके मुखारबिंद से निकले थे, जब उन्होंने जीतो जी को माझ राग में वे शबद गाते हुए सुना था–'मेरा मनु लोचै गुरु दर्शन ताईं।'

कई बार जब वे अपने सिरताज के मुखड़े के तेज की ओर देखते, उनकी आंखों के सामने कृष्ण का चित्र घूमने लगता। एक से अधिक बार ऐसे हुआ कि उनके होठों से अपने आप 'श्याम' निकल गया। गुरु महाराज इसको अनसुना कर देते। कभी न बोलते। ऐसे लगता जैसे उनको जीतो जी को यह कहकर पुकारना अच्छा न लगता हो, पर दुल्हन को टोका भी तो नहीं जा सकता था। नव-निवाहिता को विवश भी तो नहीं किया जा सकता था। गहरी सूझ रखने वाले कोमल-चित्त यह नहीं कि जीतो जी इससे अनभिज्ञ हों, उनको इसका अहसास न हो।

उनका विवाह हुए, गुरु महलों में आए हुए बहुत दिन नहीं हुए थे कि एक शाम अपने सिर के साईं के पास बैठीं जीतो जी कहने लगीं,

"मुझे पता है, आपको मेरा 'श्याम' कहकर संबोधित करना अच्छा नहीं लगता।"

गुरु महाराज ने सुना और मुस्कराने लगे। "बेशक आप भगवान नहीं हो, पर भगवान के भेजे हुए तो हो।" जीतो जी अपनी बात जारी रखे हुए थीं, "भगवान और भगवान के रसूल में क्या अन्तर होता है ? मुझे तो हमशो आपमें ईश्वर नज़र आता है।"

"हर स्त्री के लिए उसका पति भगवान होता है।" गुरु महाराज ने मुस्कराते हुए कहा।

"यह भी ठीक है। पर गुरु बाबा नानक जी ने आशा दी वार में फरमाया है–"

सतगुरु विचि आपु रखिअनु
करि परगटु आखि सुनाईया।

कोई जिसका कहा माने, गुरु बाबा नानक का या अपने सिरताज का, बाबा नानक के दसवें स्वरूप का ? मुझे याद है, हमारे विवाह वाले कवि दरबार में आपने बेचारे कवि सारदा को डांट दिया था। इतना प्यारा कवित्त उन्होंने सुनाया था।"

गुरु महाराज बिना कोई जवाब दिए, जीतो जी की गुरुबाणी की सूझ पर चकित हो रहे थे।

"गुरु बाबा नानक ही नहीं पांचवें पातशाह गुरु अर्जुन देव, आपके पड़दादा ने भी तो कहा है–"

गुरु परमेश्वर ऐको जान,
जो तिस भावे, ? सो प्रवाण

"तोबा ! तोबा !!" आपने गुरुवाणी कितनी कण्ठ की हुई है।"

गुरु महाराज ने यह कहते हुए, इस बहस को जैसे एक पल में टाल दिया।

बीबी जीतो जी में गुरु घर की बख्शीश थी एक साहित्यिक रुचियाँ रखने वाली, कला-प्रेमी के साथ, गुरु महाराज का आजकल अधिक समय पुरातन ग्रन्थों के अध्ययन, कवियों और साहित्यकारों की संगत में गुजरता था। दूर नजदीक से जैसे-जैसे लोग गुरु महारजा के साहित्य-प्रेम, उनके अन्दर बैठी कवि की प्रतिभा के बारे में सुनते, भेड़ों की तरह आनन्दपुर में इकट्ठे होते जा रहे थे। हरेक की खातिर होती। ऐसे लगता जैसे उन्होंने उनको सिर पर ही उठा लिया हो।

क्योंकि आजकल गुरु महाराज का अधिकतर समय लिखने-पढ़ने में बीतता था, शास्त्रार्थी, विद्वानों, कवियों का उनका साथ रहता, जीतो जी गुरु महाराज के फुफेरे भाई संगो शाह के साथ घुड़-सवारी, तीर-अंदाजी में दक्षता हासिल करने लगी। उनको खास तौर पर बन्दूक का निशाना लगाना अच्छा लगता था। हर दूसरे, चौथे रोज वे जंगल में निकल जातीं। ढेरों शिकार करके लातीं।

एक तरफ तेग और तलवार दूसरी तरफ कलम और किताब !! गुरु महाराज के गृह में एक अनोखा मेल देखने में आ रहा था। एक तरफ संस्कृत के ग्रन्थों को देखतीं, दूसरी तरफ फारसी की किताबों की उन्हें तलाश रहती। एक तरफ विद्वानों के साथ वार्तालाप, दूसरी तरफ आनन्दपुर की किला बंदी। एक तरफ काव्य-उड़ान, दूसरी तरफ अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष।

उस दिन अजीब घटना घटी। बीबी जीतो जी संगो शाह के साथ शिकार पर गई थीं। एक झील के किनारे वे लोग सुस्ता रहे थे कि अचानक आकाश में मुरगाबियों की एक लंगार झील में उतरने के लिए आ रही दिखाई दी। बीबी जीतो जी ने एकदम अपनी बन्दूक उठाई और निशाना साध कर घोड़ा दबा दिया। अगले क्षण एक घायल मुरगाबी नीचे आ गिरी। वे लोग मुरगाबी को उठा कर घर लौट आए। अगले दिन चौके में बैठी जीतो जी दूध मथ रही थीं कि उनको लगा जैसे मुरगाबी का जोड़ा उनके महलों में मंडरा रहा हो। उन्होंने सोचा, ऐसे ही उनका भ्रम है। पिछली शाम ुरगाबियों की कतार पर गोली चलाना उनको अच्छा नहीं लगा था। कैसे बेचारी एक जख्मी

हुई मुरगाबी लहू-लुहान नीचे आ गिरी थी। कुछ समय बाद फिर उनको लगा जैसे उनके आंगन में कोई परछाई चल रही हो। एक ही परछाई एक बार, दो बार, तीन बार उनके ऊपर से होकर गुज़र रही थी। ऐसे ही उनके मन का बहम था, जीतो जी ने सोचा, उनको शिकार की हुई मुरगाबी याद आ रही थी। अपने आपको कहकर वे इस घटना को भूलने की कोशिश में थीं कि उन्होंने देखा, एक हृदय-विदारक चीख जैसे सुनाई दी और थड्ड करके मुरगाबी का जोड़ा सामने आंगन में गुत्थम-गुत्था हुआ नीचे आ गिरा। बेजान, उदास हुआ पड़ा था, पर बिटर-बिटर खुली आंखें जैसे अपने जोड़े ढूंढ रहा हो। बीबी जीतो जी ने देखा और दूध मथ रहे उनकी मधानी वैसे की वैसी हाँडी में रह गई मुरगाबी के जोड़े को उठाकर उन्होंने उसकी आंखों में देखा। एक तलाश उनमें शैल-पत्थर हुई पड़ी थी। उनकी आंखों के सामने पिछली शाम मुरगाबी का उनकी चलाई गोली से घायल होकर नीचे गिरना एक मूर्ति की तरह फिर चित्रित हो उठा। "उसी का जोड़ा है, जो अपने साथी की तलाश में हमारे आंगन में गिरा है।" जीतो जी अपने आपसे कहने लगीं।

वे इसी प्रकार भावुक हो रहीं थी कि गुरु महाराज उधर आ निकले इस तरह का कुछ गुनगुना रहे थे।

> भांत भांत बन खेल शिकारा,
> मारे रीझ रोझ झंकारा।

बीबी जीतो जी को ऐसे उदास देखकर उन्होंने इसका कारण पूछा।

उनके दोनों हाथों में पकड़ी मुर्दा मुरगाबी देखकर वे चकित हो रहे थे। अब जीतो जी की आंखों में आंसू भर आए। उन्होंने सारी बात गुरु महाराज से कह डाली। हिंसा और अहिंसा के जोड़-तोड़ में वे जैसे पिसी जा रही थीं। उनके मुखड़े पर जैसे चित्रित था—मुझसे अब कभी बन्दूक को हाथ नहीं लगाया जाएगा। मैं अब कभी तीर-कमान की ओर लौटकर नहीं देखूंगी, मैंने तो कभी किसी को ऊंचा बोल भी नहीं बोला था।

गुरु महाराज ने जीतो जी की मानसिक अवस्था को समझते हुए इस सवैये का उच्चारण किया—

> धन जीऊ तिह को जग मैं सुख ते हरि चित में जुधु बिचारै।
> देह अनित न नित रहै जस नाव चढ़े भव सागर तोरे।
> धीरज धाम बनाइ इहै तन बुद्धि सु दीपक जिऊ उजिआरे।
> गिआनहि की बढ़नी मनहु हाथ लै कातरता कुतवार बुहारै।

14

राजा भीमचन्द को लाहौर के सूबेदार और सरहिंद के नाजिम की शह थी। वह गुरु महाराज के लिए कोई-न-कोई समस्या खड़ी करके रखता। कभी कोई तो कभी कोई, भांति-भांति के ताने देता। उसका मंत्री परमानन्द उसको समझाता, उसको वैसे ही बेकार वैर-विरोध नहीं बढ़ाना चाहिए, पर यह जानते हुए कि दिल्ली दरबार सिक्ख सम्प्रदाय के खिलाफ था, भीमचन्द को चिढ़ लगी हुई थी। पहाड़ी राजाओं में हीनता का अहसास और उनकी आपस में फूट, एक दूसरे की बदगोई भीमचन्द सोचता, गुरु महाराज को वह सांझा वैरी जतला कर धार के नरेशों को अपने पीछे लगा सकेगा और इस तरह का कुछ हो रहा दिखाई भी देने लगा था।

एक दिन शिकार खेल रहे गुरु महाराज की नाहन के महाराज मेदनी प्रसाद से मुलाकात हो गई। शिकार खेलते-खेलते कलगीधर धनोले तक निकल गए थे। मेदनी प्रसाद दसवें पातशाह का शैदाई था, उनके विवाह में भी शामिल हुआ था। वैसे भी एक से अधिक बार दर्शन कर चुका था।

बातों-बातों में भीमचन्द का ज़िक्र आ गया। मेदनी प्रसाद कहने लगा, "सच्चे पातशाह, आप हमारे यहाँ क्यों नहीं आ जाते ? कुपथ पर पड़े इन बेदीन लोगों को क्यों मुंह लगाना ? हमारे धन्यभाग होंगे अगर आप इस रियासत में चरण डालो। साहिब गुरु हरिराय जी हमारे यहाँ 18 साल रहे थे। उनकी कृपा के कारण ही हमारे भाग्य जागे हुए हैं।"

मेदनी प्रसाद कितनी देर इसे तरह की प्रार्थनाएं करता रहा।

गुरु महाराज ने नाहन के नरेश की प्रार्थना सुन ली पर किसी प्रकार का कोई वायदा नहीं किया। न हाँ की, न नहीं की।

राजा के जाने के बाद, जीतो जी जो यह सारा वार्तालाप सुन रही थीं, हजूर से पूछने लगी, "आपने क्या फैसला किया है ?" नीले घोड़े का सवार खामोश रहा।

दरअसल गुरु महाराज, घट-घट की जानने वाले, इस बात से वाकिफ थे कि नाहन का राजा मेदनी प्रसाद क्यों उनको अपने पास आकर बस जाने के लिए आमन्त्रित कर रहा था।

1654 के आखिर में शहजहान ने अपने एक फौजदार खलील उल्ला खान को 8,000 सिपाही देकर भेजा ताकि गढ़वाल के नरेश से देहरादून छीन ले। इस मुहिम में सिरमौर के जमींदार सुभाष प्रकाश ने मुगल हमलावर की

मदद की थी। गढ़वाल की जब हार हुई तो शहनशाह ने सुभाष प्रकाश को राजा का खिताब अता फरमाया और गढ़वाल का कुछ हिस्सा भी छीन कर जमींदार सुभाष प्रकाश को दे दिया। इसके बदले में सिरमौर का राजा गर्मियों के सारे महीने फरवरी से सितम्बर तक दिल्ली दरबार को बर्फ पहुंचाने लगा था।

भगवान की करनी शाहजहान के जीते जी तख़्त के लिए छीना-झपटी शुरू हो गई। शाहजहान के बड़े पुत्र द्वारा शिकोह की हार हुई। उसका बेटा सुलेमान शिकोह भाग कर गढ़वाल में जा छुपा। गढ़वाल के नरेश ने उसको पनाह देने की बजाए, बेसहारा शहजादे को औरंगजेब के हवाले कर दिया। इस कारण गढ़वाल के राजा की मुगल हुकमरान के साथ एक तरह से दोस्ती हो गई और अब उसकी मर्जी थी कि उसकी रियासत का जो हिस्सा उससे छीन कर सिरमौर से मिलाया गया था, उस पर वह फिर काबिज़ हो जाएं नाहन के राजा को यह स्वीकार नहीं था। पर यह भय उसको हर समय लगा रहता था कि एक तरफ कहलूर का राजा भीमचन्द, दूसरी तरफ उसका नया-नया बना समधी गढ़वाल का नरेश फतेह शाह कभी भी उस पर हमला करके उसका हथियाया हुआ इलाका उससे छीन लेंगे। इससे बचने का एक ही इलाज यह था कि दशमेश उसके यहाँ आ जाएं फिर ऐसे किसी की मजाल नहीं होगी कि उसकी तरफ आंख उठाकर देख जाए।

गुरु महाराज बेशक नाहन नरेश की मदद करना चाहते थे, पर वे आनन्दपुर को त्यागना भी नहीं चाहते थे।

इधर माता नानकी जी क्या, माता गूजरी जी क्या और मामा किरपाल जी क्या, हर कोई यही मशवरा दे रहा था कि उनको कहलूर के राजा को और मुंह नहीं लगाना चाहिए। अब जब जीतो जी के साथ घर भरा-भरा लगता था, अब जब आशाएं पूरी हो रही थीं और सपने करवटें लेते दिखाई दे रहे थे, उनको एकान्त की जरूरत थी जहाँ वे सुख की सांस ले सकें, ईश्वर का स्मरण कर सकें, मुगलों के अत्याचार भूल सकें।

गुरु महाराज इस सब कुछ को समझते थे, पर उन्होंने तो आनन्दपुर को एक राजधानी बनाना था। उनकी नज़रों में आनन्दपुर का शहर एक छावनी बनने जा रहा था, जिसके आस-पास कोस-कोस पर किले होंगे। कुछ किले बन भी रहे थे। वह तो आने वाले समय की जद्दो-जहद में सिर हाथ में रखे सूरमाओं की एक सेना तैयार कर रहे थे, इस सब कुछ का क्या बनेगा ? इधर

दशमेश के अन्दर एक कवि के सपने भी मचल-मचल उठते थे। सिक्ख संगत की यह भी जरूरत थी कि उसको अपनी विरासत के साथ पहचान करवाई जाए लोगों को अपनी महान परम्परा के साथ जोड़ना भी जरूरी था। गुरु बाबा नानक, गुरु अर्जुन देव जी के बताए जिस रास्ते को गुरु हरगोबिन्द जी ने नया मोड़ दिया, उसके झड़-झंखाड़ को समेटना था, गोबर को हटाना था, मैल को धोना था, उसको सुगम राह बनाना था।.

आजकल कलगीधर जैसे इस उलझन में फंसे हुए प्रतीत होते। जीतो जी से अधिक इस जोड़-तोड़ को कौन पहचानता था। कलम और तलवार का संघर्ष था। एक तरफ जिन्दगी की कड़वी असलियतें उनको जैसे चुनौती दे रही हों, दूसरी तरफ भान्ति-भान्ति के छन्द उनके बीच के कवि के आस-पास पंख पसारने लगते। उन्होंने तो अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठानी थी। उन्होंने गरीब तबके को इन्साफ दिलाना था। वे गाय और गणेश, तिलक और जनेऊ के रखवाले गिने जाते थे। मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट किया जा रहा था। हिन्दुओ को हर इन्सानी हक से धीरे-धीरे वंचित किया जा रहा था। उनके पड़दादा को कष्ट दे-दे कर खत्म किया गया था, उनके दादा को बन्दी बनाया गया था। यह भी कोई जीना था, जो भारत के हिन्दू जी रहे थे और इधर पहाड़ी राजा थे जैसे आत्मसम्मान की बू ही उनमें न हो, बुजदिल, दब्बू, डर के मारे सिर नहीं उठाते थे। इसकी बजाए के मुगल के साथ लोहा लेते आपस में कुत्ते बिल्लियों की तरह एक दूसरे के साथ झगड़ते रहते थे।

उनको तलवार उठानी होगी। उनको इस चुनौती का मुकाबला करना पड़ेगा। ऐसे सोच रहे बाजधारी का धून खौलने लगा। उनके होठों पर थिरक रहे नगमें ऐसे लगते जैसे तेग और तलवार खड़क रही हो। उनकी वाणी में से सरसता टपक-टपक पड़ती। ऐसे लगता जैसे जुझारू सिपाही एक दूसरे को ललकार रहे हों !! खंडे से खंडा टकराता था। तलवार के साथ तलवार टकराती थी। उनकी कविता में से आजकल घोड़ों की टाप सुनाई देती थी। सिर हथेली पर रखे, सूरमों की ललकार का आभास होता था। ऐसे लगता जैसे बादल गरजते हों, जैसे हाथी चिंघाड़ते हों, लशकर चल रहे हों। भेरी बज रही हो, झण्डे झूल रहे दिखाई देते।

अब नीले घोड़े के सवार ने तलवार में ईश्वर को देखना शुरू कर दिया और तलवार को भगवती का नाम देकर अपनी कविता के जरिए उसको नमस्कार किया। एक नई लीक डाली। एक नये शाही रास्ते को उकेरा।

कलम और तलवार का, धर्म और राजनीति का, कवि और सूरमा का, इतिहास में यह एक अनोखा समन्वय था।

इस अद्वितीय अनुभव को परवान चढ़ाना था और फिर उस दिन इसका फैसला हो गया।

उस सुबह रोज से कहीं पहले माता गूजरी जी तड़के ही सो कर उठ गईं। उन्होंने चौके को अपने हाथों से लीपा। कुछ देर बार माता नानकी जी भी जाग गईं। दोनों स्नान करके रसोई में कुछ खटर-खटर कर रहीं थीं। इतने में सूजी के भुनने की खुशबू आई। कड़ाह-प्रसाद तैयार कर रही थीं। गुरु महाराज जी की आंख खुल गई थी। उन्होंने सोचा शायद आज संकरांत (संक्रांत) है, पर संक्रांत तो नहीं थी। उन्होंने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। जीतो जी अभी भी विश्राम कर रही थीं। कलगीधर स्नान आदि अपने नित्य-कर्म में लग गए। सचमुच माता गूजरी जी, कड़ाह प्रसादी तैयार कर रही थीं। साथ-साथ पाठ कर रही थीं।

अब जीतो जी भी उठ गई और जल्दी-जल्दी तैयार होने लगीं। जब परिवार धर्मसाल आसा की वार की चौंकी के लिए चला, माता गूजरी जी ने कड़ाह प्रसादी की परात पकड़ी हुई थी। पा कर रहे गुरु महाराज ने उन्हें छेड़ा नहीं।

चौथा दिन निकल आया था जब परिवार धर्मसाल से कीर्तन में शामिल होकर लौटा।

अब गुरु महाराज ने देखा माता नानकी जी गरीब-गुराबे को कपड़े और सामग्री बांट रही थीं। उनके साथ माता गूजरी जी भी खुशी-खुशी जरूरतमंदों में मिठाई और फल बांट रही थीं। अब गुरु महाराज से रहा न गया। इस बार जब जीतो जी, उनकी 'सुन्दर स्वरूप', उनके कमरे में आईं, उन्होंने इस सबका कारण पूछा। सुबह, सरगी के समय उठकर धर्मसाल ले जाना अैर अब सास-बहू का गरीब गुरबे, जरूरतमंदों को ऐसे कपड़ा-लत्ता, मिठाइयाँ और फल-फूल बांटना।

"यह सब कुछ अनहोनी आज क्यों हो रही है ?" दशमेश ने जीतो जी से पूछा।

और सामने खड़ी उनके हाथ जुड़ गए, प्रफुल्लित आँखें झुक गईं, पूर्ण आदर में उनका सिर झुक गया।

और फिर गुरु महाराज ने आगे बढ़ कर अपनी 'सुन्दर-स्वरूप' के नैनों

में देखा। कितनी देर जीतो जी अपने सरताज के मुखड़े की ओर देखते हुए मगन होती रहीं। उनका अंग-अंग कृतज्ञता में प्रफुल्लित हो रहा था।

कुछ समय बाद गुरु महाराज के मुखारविंद से ये शब्द निकले—

तुमहिं छाड़ कोई अवर न धिआऊँ
जो बल चाहों सु तुम ते पाऊँ।

जीतो जी हाथ जोड़े, सिर झुकाए, आँखें मूंदे उनके सामने खड़ी थीं। अब गुरु महाराज ने उनके सर पर हाथ रखा और फरमाया—

खड़क केतु मैं सरणि तिहारी, आप हाथ दै लेहु उबारी,
सरब लोह मो होहु सहाई, दुष्ट दोख ते लेहु बचाई

वह सुबह कैसी सुहावनी थी।

चैत के दिन, जाड़ा धीरे-धीरे जा रहा था; गर्मियाँ धीरे-धीरे आ रही थीं। इतने पक्षी तो आकाश में उडारियाँ भरते कभी नहीं देखे गए थे और कैसे यह चाहा थे। समूह के समूह इधर से उधर, उधर से इधर उड़ान भर रहे थे। जैसे गुरु महलों की परिक्रमा कर रहे हों। नहाए-धोए, रंग-बिरंगे पक्षी जैसे पलोटिआ भर-भर गुरु घर को सलामी दे रहे थे। ऐसे तो कभी नहीं हुआ था।

इनको कैसे पता लगा था कि इस गृह में खुशी आई थी ? हवा में एक दम एक खुशगवार ऊष्मा महसूस होने लगी थी। हलका-सा सेंक, भीनी-भीनी खुशबू, न पूर्व की ओर से, न पश्चिम की ओर से, आज की हवा जैसे धौलाधर की ओर से आ रही हो, पल्ले में बर्फ की स्वच्छता, आगोश में नए वर्ष की धूप का गुनगुनापन। बीच-बीच में हवा जैसे मस्ती करने लगती, अठखेलियाँ करने लगती, लहंगे उड़ते, चुन्नियाँ फड़फड़ातीं, दुपट्टे ढलकते, सरकते उतरने को होते।

खेतों में सरसों फूल रही थी। जहाँ तक नज़र काम करती केसरी रंग के गलीचे जैसे बिछे हों। गेहूँ की बालियाँ झूम-झूम पड़ती थीं। जैसे जोबन के शिखर पर हों। सिर उठाए सूरज की किरणों को आगोश में ले रही मन्द-मन्द मुस्कराती कानाफूसी कर रही हों। एक दूसरे से अठखेलियाँ करतीं, अनसुने-मधुर संगीत पैदा करतीं।

पेड़ों के कल्ले फूट रहे थे, नए पत्ते निकल रहे थे। हर डाली पर शगूफे थे। फूल खिल-खिल कर जैसे बेसुध हो रहे हों। रंग-बिरंगे फूल', ऐन, लाल बिम्ब, काले शाह, पहीले ज़र्द, नीले आसमानी, हरे कचूर, सफेद दूध, गुलाबी, क्रिमची, सलेटी, तरबूजी, कासनी, तीतरबन्नी।

गालियों में लोग गा रहे थे, बाजारों में नाच-कूद रहे थे। खेतों में भंगड़े की तैयारियाँ हो रही थीं, और आंगन में गिद्दे की। सम्मी डालने वाले छड़ियाँ घड़वा रहे थे। इसी बरस खेतों में खलिहानों में प्रभु की कृपा बरसने वाली थी।

गुरु महलों के पड़ोस आमों के पेड़ों की ओट में कोई बैठा अपने में खोया गा रहा था–

हम घरि साजन आए।
साचे मेलि मिलाए।
सहजि मिलाए, हरि मनि भाए पंच मिले सुखु पाइया।
साई वस्तु प्राप्ति होई, जिस सेती मनु लाया।
अनुदिनु मेलु भइया मनु मानया, घर मन्दर सोहाए।
पंच शब्द धुनि अनहद बाजे, हम घर साजन आए ॥ 1 ॥
आवहु मीत पिआरे।
मंगल गावहु नारें
सचु मंगलु गावजु, तां प्रभु भावहु सोहिलड़ा जगु चारे।
अपनै घरि आइया थानु सुहाइया, कारज शबदि सवारे।
गिआन महा रसु नेत्री अंजनु त्रिभुवन रूप दिखाया।
सखी मिलहु रसि मंगलु गावहु हम घरि साजनु आया ॥ 2 ॥

(राग सूही, महला 1, छन्द घर 2)

इतना सुन्दर कौन गा रहा था ? दशम पातशाह अपने आसन से उठकर देखने लगे, यह कौन था जो इतना प्यारा गा रहा था, हरेक बोल उसका हृदय को छू लेता था, मोह रहा था, जैसे पकड़-पकड़ कर बहा रहा हो। प्रेम से बुला रहा था, अपनी ओर निमन्त्रित कर रहा था। अपने कमरे के झरोखों में से उन्होंने बाहर झांका तो क्या देखते हैं कि साथ के कमरे में खड़ी जीतो जी भी इस शब्द को सुन रही थीं और दाएं हाथ खिड़की में माता गूजरी खड़ीं इसी शब्द को सुन रहीं थीं, उनके साथ माता नानकी जी भी खड़ी थीं।

उस दोपहर इससे पहले कि वे विश्राम करने के लिए जाने लें, गुरु महाराज ने नाहन के नरेश को उसका निमंत्रण-पत्र स्वीकार कर लेने की सूचना देने के लिए हिदायत की। और परिवार को सलाह दी कि वे तैयारी शुरू कर दें और दो-चार हफ्तों में वे नाहन के लिए चल पड़ेंगे।

उस दिन रहरास साहिब के पाठ के बाद कितनी देर अन्तर-ध्यान माता

नानकी जी अपने कमरे में अकेले बैठी रहीं। भोजन का समय हो गया था। प्रतीक्षा कर-कर के माता गूजरी जी अन्दर उनके भवन में गई। सोच में डूबी माता नानकी जी बैठी थीं।

"क्या बात है, आज आप ऐसे क्यों बैठी हैं ?" माता गूजरी जी ने पूछा।

माता नानकी जी जैसे किसी धारा में बह रही हो, उन्होंने जवाब नहीं दिया।

"आपकी तबीयत तो ठीक है ?" माता गूजरी जी ने फिक्रमंद होकर पूछा।

"क्यों, तुम्हें मेरी तबीयत खराब लगी है ? पुत्र, मैं खुश हूँ। आज मैं बहुत खुश हूँ। इतनी खुश तो मैं कभी नहीं हुई। तुम्हें मेरे चेहरे से नहीं लगता, जैसे कोई अपनी मंजिल पर पहुंच गया हो। जैसे किसी की झोली भरी हो।"

"बाबा नानक ने कृपा की है। खुशियाँ इस घर के कण-कण में से उमड़ रही हैं, जैसे रिमझिम फुहार पड़ रही हो।"—माता गूजरी जी बोल रही थीं।

"तुम्हें याद है, जब मेरे सिरताज का शीश भाई जैते ने झोली में आ डाला था तो मेरे मुंह से निकला था—"आपकी निभ गई, मेरी भी निभ जाए।" आज मुझे लगता है कि जैसे ईश्वर ने मेरी अरदास सुन ली हो। ऐसे लगता है जैसे मेरी भी निभ गई। अब मैं अपने सिर के साईं के पास जा सकती हूँ। अब उनको ओर प्रतीक्षा नहीं करनी होगी।" माता नानकी जी भावुक हो रही थी।

"आप ऐसे क्यों कहती हो ? युग-युग आप जीओ, अभी तो आपने लाखों खुशियाँ लाखों मलहार देखने हैं।" यह कहते हुए माता गूजरी जी उनको उठा कर अपने साथ भोजन के लिए चल पड़ीं। लंगर में उनकी प्रतीक्षा हो रही थी।

उस सांझ लंगर के बाद गुरु महाराज अपने निकटवर्ती गुरुसिक्खों को अपने पास बिठा कर अपनी योजना की जानकारी देते रहे। उन्होंने सिरमौर के नरेश के आमंत्रण पर नाहन जाने का फैसला कर लिया था। पर इसका यह मतलब हरगिज नहीं था कि वे आनन्दपुर को बिल्कुल खाली करके जा रहे थे। उनके साथ केवल पांच-सौ गुरुसिक्ख चलेंगे। बाकी संगत वैसे की वैसी आनन्दपुर में ही रहेगी। किलों के निर्माण का काम जो चालू था, वैसे का वैसा जारी रहेगा। वैसे की वैसी गतिविधियाँ चलती रहेंगी, कवायदें होती रहेंगी। आनन्दपुर साहब की सुरक्षा में कोई ढील नहीं होगी। अब फैसला करना था कौन से 500 गुरुसिक्ख गुरु महाराज जी के साथ जायेंगे, कौन से पीछे रहेंगे। पीछे रहने वालों का नेतृत्व करना गुलाब राय की जिम्मेवारी होगी।

इस तरह के वार्तालाप में देर रात हो गई। जब दशमेश अपने महलों

में लौटे, सोता पड़ चुका था। जीतो जी की भी आंख लग गई थी, नहीं तो ऐसे कभी नहीं हुआ था कि वह अपने सिरताज से हाथ जोड़े, आज्ञा लिए बिना विश्राम के लिए लेटी हों।

रात पूरे चांद की थी। सामने झरोखें मेंसे चांद की चांदनी जैसे जोरा जोरी अन्दर आ रही हो। जीतो जी के पलंग पर जैसे चमेली के फूलों की चादर बिछी हो। चांदनी उनके सुगन्ध से गुथे केशों में, चांदनी उनके गोर गुलाबी मुखड़े पर, चांदनी उनकी चंदन के पेड़ के तने जैसे शरीर पर। उनके अंग-अंग से चांद-चांदनी जैसे खेल रही हो; अठखेलियाँ कर रही हों। चांद की चांदनी उनके आगे पीछे नाच रही थी, गिद्दा डाल रही थी। चांद की चांदनी उनके पोर-पोर को सहला रही थी, टटोल रही थी, थपक रही थी।

कुछ देर से चांद-चांदनी की चिलकोन जैसे आंखों को चुंधिया रही हो। दशमेश की पलकें मुंद-मुंद जा रही थीं और फिर उनको लगा जैसे चांद-चांदनी का एक टुकड़े का टुकड़ा उनके विश्राम कक्ष में आ घुसा हो। चांद-चांदनी की परियां, चांद-चांदनी के फरिश्ते। यह तो जीतो जी के पलंग के चारों तरफ खड़े बिटर-बिटर उनकी सुन्दरता, को उनके रूप को निहार रहे थे। जैसे एक दूसरे से उनकी स्तुति में कुछ कह रहे हों, बलि-बलि जा रहे हों--

"मैं !"

"नहीं मैं !!"

"मैं, मैं, मैं !!!"

मैं, और और कोई नहीं। जैसे हंस के रूप में एक फरिश्ते ने हर किसी को अपने पंखों से पीछे किया और खुद आगे बढ़ता-बढ़ता धीरे से जीतो जी की कोख में समा गया हो।

और अब आगे पीछे खड़े फरिश्ते, परियाँ और हूरें नाच रही थीं, गा रही थीं, यह कौन-सा संगीत छिड़ पड़ा था। यह ताल कौन दे रहा था ? नाच-नाच कर जैसे थकान उनको रास न आ रही हो। बाहों में बाहें डाल नाच रहे थे। सुर से सुर और टेक से टेक मिलाकर गा रहे थे।

अब उनकी ताल और तेज हो गई थी। और तेज़ हो गई थी। और तेज़। उनकी टेक ऊंची हो गई थी। ऊंची हो गई थी और ऊंची।

ऐसे तो जीतो जी की आंख खुल जायेगी। ऐसे नाच रहे, गा रहे, किसी की आंख तो खुल ही जाती है और बाजों वाले ने आगे बढ़कर झरोखे के पट बंद कर दिए।

16

उस वर्ष बैसाखी गुरु महाराज ने आनन्दपुर में ही मनाई। माता गूजरी जी को तसल्ली थी कि गर्मी बढ़ने से पहले जीतो जी नाहन पहुंच जायेंगी जहाँ मौसम सुहाना होग। माता नानकी जी कहतीं, कुछ दिन रास्ते में कीरतपुर भी रुकना होगा। गुरु महाराज़ के साथ जा रहे 500 गुरुसिक्खों में कुछ खुश थे कि नाहन में शिकार की मौज सुनी गई थी। चीते, बाघ, जंगली सुअर, रीछ और नील गाय। कुछ और खुश थे, सिरमौर रियासत के एकान्त में लिखने-पढ़ने का काम शान्ति से हो सकेगा, इनमें अमृत राय, चन्दन, कुविरेश, हंस राम, मंगल और सैनापत थे।

मेदनी प्रसाद ने जब गुरु महाराज के आगमन का सुना तो कई मंजिलें चलकर उनके स्वागत के लिए चल कर आया। उसका तकाज़ा था कि गुरु महाराज परिवार सहित उसके महलों में रुकें। यह मुमकिन नहीं था। कोई दो सप्ताह उसके पास रहकर गुरु महाराज ने नाहन से लगभग 43 किलोमीटर दूर जमना के दाएं किनारे पर एक जगह को चुन कर वहाँ बसने का फैसला किया। पाऊंटा नाम का यह शहर गढ़वाल की सीमा पर होने के कारण कुछ समय से उजड़ता जा रहा था, लगातार गढ़वाल के राजाओं की आपस में बनती जो नहीं थी।

पर यह जगह अत्यन्त मनमोहक थी। जमना यहाँ पहाड़ियों से निकल कर अपने स्वच्छ, बिलौरी पानी के साथ मस्त होकर बहती थी। सामने बर्फ से लदे पहाड़, आगे-पीछे घना जंगल, दरिया किनारे का एकांत होंठों पर नगमें गूंजने लगते। सामने जंगल के घने पेड़, झाड़-झंकाड़, खाइयों-खड्डों में इतना शिकार था कि गुरु महाराज का नीला घोड़ा क्या, उनके बाज क्या और शिकारी साथी क्या, जैसे मस्त होते रहते।

पहले अपनी चुनी हुई जगह पर गुरु महाराज ने अपने लिए, अपने साथ लाए समूह के लिए, मकान बनवाए, फिर उसी आबादी को एक किले में तब्दील कर दिया।

जितने समय मकानों का निर्माण होता रहा, किले का निर्माण होता रहा। गुरु महाराज का अधिक समय शिकार में गुज़रता था। हिरनों और बारहसींघों, चीतों, बाघों, रीछों और जंगली सुअरों के समूह लाये जाते। आगे-पीछे के गांव निवासियों ने सुख की सांस ली। अब न चीते और बाघ उनके जानवरों का नुकसान करते थे; न सुअर और गाय उनकी फसलों को

हानि पहुंचाते थे।

लक्ष्मण नाम का एक नौजवान जो गुरु महाराज से भी कोई चार-एक बरस छोटा था, शिवालिक की पहाड़ियों में गुरु महाराज के साथ शिकार करता था। पाऊंटा के निकट किसी गांव का होने के कारण, वह इस इलाके के चप्पे-चप्पे से वाकिफ था। लक्ष्मण इतना बढ़िया शिकारी था कि मजाल है उसका निशाना कभी चूके क्योंकि शिकारी बढ़िया था, गुरु महाराज उसको हमेशा अपने साथ रखते और प्रेम भी बहुत करते थे।

"इस शहर का नाम पाऊंटा कैसे पड़ा ?" एक दिन गुरु महाराज लक्ष्मण्या से पूछने लगे।

पाऊंटा हमारी ओर एक गहना होता है जो टखनों के ऊपर पहना जाता है। झूमर के नाच के लिए औरतें इसे पहनती हैं पर जब झूमर शुरू होता है तो इस गहने में से आवाज़ आनी बन्द हो जाती है। पैरों के घुंघरू वैसे के वैसे बजते रहते हैं। पाँवटा खामोश हो जाता है जमना के किनारे यह जगह इतनी शांत है कि इस शहर का नाम पाऊंटा ही पड़ गया है। आगे-पीछे घुंघरुओं की रौनक, इस रौनक के बीच पाऊंटा की खामोशी।

इस तरह के शांत वातावरण में गुरु महाराज ने कोशिश की कि नहान के राजा मेदनी प्रसाद और गढ़वाल के नरेश फतेह शाह में सुलह हो जाए। उन्होंने दोनों राजाओं को बुलाकर समझाया, लेकिन फतेह शाह अपने छीने हुए गांवों को लिए बिना समझौता करने के लिए तैयार नहीं था। उसको कहलूर के भीम चन्द की भी शह थी। उन्होंने नया-नया रिश्ता बनाया था, तो भी जितनी देर उनके बीच बिगाड़ा हो टाला जा सकता था, गुरु महाराज की मध्यस्थता से बिगाड़ टलता रहा।

जिस तरह गुरु महाराज के नगारे बजते थे, झण्डे झूलते थे, जिस तरह के बढ़िया से बढ़िया; नस्ल के घोड़े गुरु महाराज को भेंट किए जा रहे थे, नए से नए हथियार उनके यहाँ प्राप्य थे, जिस तरह के शीश भेंट करने वाले सूरमा उनके आसपास इकट्ठे हो रहे थे, जिस तरह के किलों का आनन्दपुर में निर्माण हो रहा था, जिस तरह का किला पाऊंटा में निर्मित किया गया था, अगर पहाड़ी राजाओं को ईर्ष्या होती थी तो यह कोई अनहोनी बात नहीं थी। इससे भी अधिक चिन्ताजनक जो बात थी, वह पहाड़ी राजाओं के अन्दर हीन भावना का अहसास था। सारे के सारे दब्बू थे, सभी के सभी बुजदिल थे। ऊपर-ऊपर से बेशक झकियाँ मारते थे, पर गुरु महाराज इसको ज़ानते थे

कि अन्दर से लोग खोखले थे। कर्म-काण्ड और भ्रमों में ग्रसित थे। इसका उपचार करना जरूरी था।

वास्तव में गुरु महाराज के प्रशंसक सढौरे के पीरी बुद्धू शाह ने 500 पठान फौजी गुरु महाराज की सेना में आ भर्ती कराए। बात यह थी कि करनाल के निकट डामला नगर की छावनी में तैनात पठान सिपाहियों और उनके सरदारों से खफ़ा होकर दिल्ली सरकार ने उनको नौकरी से बर्खास्त कर दिया। वे लोग शिया थे और औरंगजेब सुन्नी थे। अपने-अपने घर लौटने से पहले वे पीर बुद्धू शाह के पास फरियाद ले कर आए। पीर जी का बड़ा नाम था, हिन्दू-मुसलमान दोनों उनके अनुयायी थे। पीर जी कुछ सप्ताह पहले गुरु महाराज के दर्शन करके गए थे। उनके प्रताप, उनके तेज, उनके परमार्थ के ज्ञान से अत्यन्त प्रभावित हुए थे। पीर जी ने गुरु महाराज को सलाह दी कि 500 पठानों की उस टुकड़ी को वे अपनी सेना में शामिल कर लें क्योंकि सढौरे के पीर बुद्धूशाह उनकी सिफारिश कर रहे थे, गुरु महाराज ने पठान फौजियों की भर्ती कर लिया। घोड़े उनके अपने थे, यह तय हुआ कि पांच रुपये रोज़ हर सरदार को और एक रुपया हर रोज़ सिपाही को तनख्वाह के तौर पर मिलेगा। इनके चार सरदार थे—भीखन खान, काले खान, नजाबत खान और हयात खान।

जैसे पहाड़ी राजाओं के मान-मर्दन के लिए यह सब कुछ काफी न हो, कुछ दिनों में ही गुरु हरिराय जी के बड़े पुत्र श्रीराम राय जी जिनको सातवें पातशाह ने एक तरह से त्याग ही रखा था, गुरु महाराज को मिलने के लिए बार-बार सन्देश भेज रहे थे। पिछले 20-22 वर्षों से वे देहरादून में रह रहे थे। देहरादून पाऊंटा से कोई 50 किलोमीटर के अन्तर पर था।

गुरु हरिराय जी ने बेशक उनको गुरु घर से खारिज कर रखा था। गुरुगद्दी से भी उनको वंचित रखा था, इधर गुरुसिक्ख उनको मुंह नहीं लगाते थे, पर उनको गुरु-अंश होने से जो ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त थी, वह उनकी वैसे की वैसी बनी हुई थी। मुगल दरबार से छुट्टी पाकर जब वे देहरादून आकर रहने लगे, छोटी-मोटी करामातें करके वह आगे-पीछे लोगों को प्रभावित करते रहते, एक तरह से वे अपना ठाट-बाट बनाए हुए थे। पर अब उम्र का तकाज़ा, साथ ही दशमेश के प्रताप की कहानियाँ सुन-सुनकर जैसे उन्हें अपने किए पर ग्लानि होने लगी। उन्हें लगता जैसे उन्होंने गुरु घर की अवज्ञा करके भारी गलती की थी। उन्हें मुगल दरबार की ऐसी चापलूसी नहीं करनी चाहिए

थी। गुरुबाणी का इस प्रकार निरादर नहीं करना चाहिए था। उन्होंने बेसमझी में नहीं जानबूझ कर 'मिट्टी मुसलमान की' की जगह 'मिट्टी बेईमान की' बता कर मुगल सम्राट की प्रशंसा पानी चाही थी। गुरु मर्यादा से ना-इंसाफी थी।

दो कारण और भी थे। आजकल औरंगजेब का दिल्ली छोड़कर दक्खन में अधिक रहना, राम राय को लगता जैसे कठिनाई के समय उनकी मदद के लिए आगे-पीछे कोई नहीं था। दूसरे गुरु महाराज के नाहन में आकर बस जाने के कारण जो नरेश गुरुघर के श्रद्धालु थे, वह राम राय को आजकल महत्त्व नहीं देते थे।

राम राय यह भी सुन चुके थे कि गुरुघर से विमुख धीरमल की रणथंबोर के किले में चुपके से पहुंच कर हत्या कर दी गई थी। उनके बड़े बेटे बाबा रामचन्द को भी दिल्ली की कोतवाली में नज़रबंदी के दौरान खत्म कर दिया गया था। साथ ही जिन मसंदों के तुफैल राम राय ने अपनी सिक्खी-सेवकी बनाई हुई थी, वे अब उन्हें आंखें दिखाने लगे थे। उनको यह डर खाता रहता था कि किसी दिन उनके मसंद उनकी गिच्ची पर हाथ रखकर उनका काम तमाम कर देंगे।

बार-बार राम राय के संदेशे आ रहे थे। आखिर दशमेश का मन पसीजा और वे उनको मिलने के लिए राजी हो गए। उनके आगे-पीछे गुरुसिक्ख बेशक उनको अभी भी मुंह लगाने के लिए तैयार नहीं थे। फैसला यह हुआ कि वह एकान्त में किसी जगह मिलेंगे जिससे इसकी अधिक चर्चा न हो। सातवें पातशाह के हुकुम की अवज्ञा करना कोई आसान नहीं था। कहते हैं, जब उनकी मुलाकात हुई गुरु महाराज की सेवा में जो गुरुसिक्ख थे, वे अपने इष्ट के आदेश का पालन अवश्य कर रहे थे, पर उन्होंने राम राय की ओर पीठ की हुई थी। भले ही उम्र में राम राय जी उनसे बड़े थे, पर दशमेश गुरु गद्दी पर विराजमान थे, राम राय को पछतावा हुआ और गुरु महाराज को दसवीं पातशाही स्वीकार किया। बिछड़ने से पहले राम राय ने अपने मन का भेद खोला। उनको अपने मसंदों से बहुत खतरा था। उनको डर था कि वे उनको खत्म करके उनकी पत्नी पंजाब कौर से औरंगजेब द्वारा उनके नाम की गई जागीर को छीन कर आपस में बांट लेंगे।

कुछ दिनों बाद बिल्कुल ऐसे ही हुआ। राम राय जी समाधि में थे, उन्होंने अपने श्वास दसवें द्वार चढ़ाए हुए थे कि उनके निकटवर्ती मसंदों ने

उनको मर चुका कह कर अंगीठे की भेंट कर दिया।

गुरु महाराज को जब यह खबर मिली, वे खुद देहरादून गए और कसूरवार मसंदों को दण्ड दिया।

देहरादून से जब गुरु महाराज लौटे, एक कश्मीरी सौदागर गुरु महाराज के लिए 100 श्रेष्ठ नस्ल के घोड़े ले कर हाजिर हुआ। कई राजा उसके साथ घोड़ों का सौदा करते रहे पर उनका भाव नहीं बन पाया; कश्मीरी सौदागर तो गुरु महाराज के लिए ही वे घोड़े लाया था। गुरु महाराज ने देखते ही कम मूल्य में ही घोड़े खरीद लिए। पहाड़ी राजा मुंह देखते रह गए।

फिर एक घटना घटी जिससे कलगीधर का मन बड़ा खट्टा हुआ। रघुनाथ नाम के एक पण्डित को जो संस्कृत का सुविख्यात विद्वान माना जाता था, गुरु महाराज ने निमन्त्रित करके कहा कि वह गुरुसिक्खों को संस्कृत सिखा दे। रघुनाथ राजी नहीं हुआ। यह कह करके संस्कृत जैसी भाषा का ज्ञान केवल ऊंची जाति के लोगों को ही दिया जाता है। इस बात को जानते हुए कि वाराणसी जैसे शहरों में औरंगजेब के कोप से डरते हुए कितने ही संस्कृत के विद्वान अपने घरों में खाली बैठे हुए थे। गुरु महाराज ने पांच गुरुसिक्खों को चुनकर वाराणसी भेजा जिससे वे संस्कृत की ऊंची से ऊंची शिक्षा प्राप्त कर आएं। ये गुरुसिक्ख थे—भाई गण्डा सिंह, भाई वीर सिंह, भाई राम सिंह, भाई सोमा सिंह और भाई करम सिंह, यही लोग थे। जिन्होंने लौटकर सिक्खों में विद्या का प्रचार किया। सफेद बुर्राक वस्त्र धारण करते थे और उन्होंने सिक्ख पंथ में निर्मल-प्रभा जारी की।

गुरु महाराज कभी-कभी परेशान होकर सोचते इस तरह के दकियानूसी समाज का कोई क्या कर सकता है।

17

एक मुर्दा कौम में रूह फूंकनी थी। रूढ़िवाद की कीचड़ से लोगों को निकालना था। गलत रस्मो-रिवाजों, भ्रमों और बहमों से छुटकारा दिलाना था। गुमराह लोगों के गलत मूल्यों से उन्हें परिचित करवाना था। नए दृष्टिकोण, नए मापदण्ड प्रचलित करने थे। देश की राय मोड़नी थी। जनता के मानसिक, बौद्धिक और शारीरिक स्वास्थ्य को निर्मल करने के लिए उपाय करने थे।

शिवालिक पहाड़ों की गोदी में घने जंगलों के कछार, अनछुई, कुंवारी यमुना के निर्मल तट पर; पाऊंटा के सुहावने मौसम में दशमेश ने एक विशाल

योजना परिकल्पित की, फिर उसकी रूपरेखा में रंग भरने आरम्भ कर दिए।

ज़रूरत इस बात की थी कि एक खत्म हो चुके, जीर्ण भाईचारे को दोबारा सजीव किया जाए। उसमें शक्ति भरी जाए। शक्ति सोचने की, शक्ति कर्म की, शक्ति इल्म की, शक्ति बाहु-बल की। 'ईश्वर' को उन्होंने 'सर्वव्यापी' कहकर याद किया। गुरु नानक से भी पहले वे तलवार को ध्याने जा रहे थे। इस सब कुछ के लिए दशमेश को तैयारी करनी थी। वे तो भगवान का बिम्ब बदल रहे थे।

पहला कदम अपने विरसे की पहचान थी। इसको आम लोगों तक पहुचांना था। इस बात की सावधानी रखनी थी कि उसको कैसे पेश किया जाए जैसे वक्त की जरूरत थी। निरोग मूल्यों को उजागर करना था। इस तरह का उपाय कलगीधर ने आनन्दपुर में ही शुरू कर दिया था, पाऊंटा में आकर इस बात की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा।

इसकी पूर्ति के लिए उन्होंने अपने दरबार में 52 कवि और साहित्यकार इकट्ठे कर रखे थे। कई प्रतिष्ठित विद्वान उनकी महिमा सुनकर आते, दशमेश उनको पूरा आदर देते, उनके रहन-सहन का उचित प्रबन्ध करते। नित गोष्ठियाँ होतीं। कवि दरबार होते, हर किसी को अपनी रचना पेश करने का मौका मिलता। इस तरह की गतिविधि न कभी किसी ने सुनी थी, न कभी किसी ने देखी थी। वेदों, पुराणों और उपनिषदों के ज्ञाता विद्वान रामायण और महाभारत जैसे प्रामाणिक ग्रन्थों का पुनर्मूल्यांकन करने, उनको जन-साधारण के लिए आम बोली में पेश करने जा रहे थे। इसमें खुद गुरु महाराज ने स्वयं पहल भी की, अपने दूसरे साहित्यकार साथियों का नेतृत्व भी किया।

इसके साथ-साथ नए विषयों पर ग्रन्थ भी तैयार करने थे। उन समस्याओं पर जिनकी जानकारी की समकालीन भाईचारे को आवश्यकता थी।

जहाँ तक सम्भव होता इस सबके लिए कविता को माध्यम बनाया जाता।

ब्रज और पंजाबी को प्राथमिकता दी जाती, इन बोलियों की उत्तरी भारत में अधिक पहुंच थी। लिपि गुरुमुखी थी जिसका इस्तेमाल पंजाब में गुरु बाबा नानक के समय से किया जा रहा था।

आम तौर पर लोग यह कहते सुने जाते थे कि संस्कृत पढ़ते हुए उनका मन उकसाता था; इसके विपरीत अवधि और पंजाबी, ब्रज आदि प्रचलित

बोलियों में उनका मन लगता था और साथ ही संस्कृत पर तो ब्राह्मणों ने अपना एकाधिकार बनाया हुआ था। वे इस भाषा के ज्ञान से शूद्र कही जाने वाली नीची जातियों को वंचित रखे हुए थे और गुरु महाराज का उद्देश्य इन पिछड़ी हुई जातियों का उत्थान करना था। वे तो चिड़ियों को बाजों से लड़ाने जा रहे थे।

पाऊंटा में गुरु महाराज भोर में जाग कर अपने नित-नियम से फारिग हो जाते। फिर जमना के किनारे दूर तक एकांत स्थान पर विराजते जहाँ वे घंटों तक अकेले बैठे किसी-न-किसी रचना के निर्माण में अपने आप को तल्लीन रखते। एक बार ऐसे कोई सोलह घंटे लगातार गुरुबाणी का उच्चाण करते रहे। कुछ इस तरह से उनके द्वारा उच्चरित वाणी का प्रभाव होता जैसे बाढ़ आ जाती है। कलकल करती हुई जैसे कोई पहाड़ी नदी बह रही हो। उमड़ रही, उभर रही, उछल रही, खड्डे भर रही, टीले गिरा रही, एक अवर्णनीय वेग से जो कुछ सामने आता, उसको अपने साथ बहा कर ले जा रही थी। कभी ऐसे लगता जैसे घमासान युद्ध में कोई शूरवीर जूझ रहे हों, वार पर वार, तलवारें भिड़ रही हैं, खण्डे चमक रहे हैं, घोड़े हिनहिना रहे, हाथी चिंघाड़ रहे हैं। जैसे–

किसी वीर जूटे, किसी शीश फूटे।
तुफंगै तड़ाकै सौ गोरी सड़ाकै।
चलै तीर तीखे, बिखीचै सरीखै।
करै पूंज रेला, महाँ रस मेला।
हल्का हल माची, लहू धूल राची।
भाई लोभ-पोथे, बिना प्राण थोथै।

(रसावल छन्द–ऋतु-444)

आगड़दंग अरड़े गागड़दंग गाज़ी।
नागड़दंग नाचे तागड़दंग ताज़ी।
जागड़दंग जूझे लाड़दंग खेन्त।
रागड़दंग रहिसे पागड़दंग प्रेन्त।
मागड़दंग मारे, बागड़दंग भीरै।
पागड़दंग प्राणे, भागड़दंग भीरै।
धागड़दंग धाओ, रागड़दंग राजा,
गगड़दंग रणके, बागड़दंग बाजा।

और कभी ऐसे शान्त, गंभीर, कोई सोई-सोई झील हो, सुनकर पढ़ कर आनन्द में हाथ जुड़ जाते, सिर झुक जाता, चित्त एकाग्र हो जाता। तन्मय मन, एक प्रार्थना, एक अरदास, एक सरूर, एक उन्माद, एक वैराग, एक रीझ, एक उल्लास, होंठों पर एक याद, आंखों में एक प्रतीक्षा, मुखड़े पर एक उमंग। एक बार ईश्वर का स्मरण करने लगे। कितना समय 'तू ही' 'तू ही' का जाप करते रहे हों। 'तू ही तलवार में तू ही तीर में, तू ही जती में, तू ही योग में, तू ही वेद में, तू पुराण में, तू ही रूप मैं तू ही रंग में।

तू ही खड़ग धारा तू ही बाड़ वारी,
तू ही तीर तलवार काती कटारी।
हलबी जनबी मगरबी तू ही है,
निहारों जहाँ आप ठांडी वही है।
तू ही जोग माथा तू ही बाक बानी,
तू ही आपु तू ही श्री भवानी।
तू ही विष्णु ब्रह्मा तू रुद्र राजै,
तू ही विश्व माता सदा जै बिराजै।
तू ही देव तू दैत तै छज उपाए,
तू ही तुर्क हिन्दू जगत् मैं बनाए।
तू ही पन्थ हवै अवतारी शिसटि मांही,
तू ही बकतू ते ब्रह्म बादों बकाही।
तू ही विक्रत रूपा तू ही चारू नैनां,
तू ही रूप बालां तू ही बक्र बैना।
तू ही बक्र ते बेद चारों उचारे,
तू ही सुम्भ नै सुम्भ दोनों संधारे.....।

(भुयंगछन्द त्रन प्रसादि)

कहीं दैन्य विनय, लाचारी, कहीं अर्चना, वन्दना, निवेदन। कहीं रक्षा के लिए पुकार, कहीं मनोकामना की पूर्ति के लिए अनुनय–

हमरी करो हाथ दे रछा
पूर्ण हुई चित्त की इच्छा
तव चरनन मन रहै हमारा
अपना जान करो प्रतिपारा

* * *

तुमहि छाड़ कोई अवर न धियाऊं।
जो बर चाहों, सु तुमते पाऊं।

(कबयो बाच बेतेती ॥ चौपाई)

जब आवेश में आकर कविता उच्चरित करते मात्र एक भाषा जैसे उनका साथ न दे पाती हो। संस्कृत में, फारसी पंजाबी में ब्रज का अनुपम समावेश उनकी वाणी में प्रतिबिम्बित होता—

पा न पाइ सकै पादमापति।
बेद कतेब अभेद उचारै।
रोज़ी ही राज़ बिलोकत राज़क,
रोख रूहान की रोज़ी न टारै।

(तव प्रसादि सवैया)

समसतुल सलाम है,
सदैवल अकाम है।
निर्बाध सरूप है।
अगाध अनूप है।

* * *

तमींजुल तमामै,
रुजूअल निधानै।
हरीफुल अजीमै,
रज़ाइक यकीनै।
अनेकुल तरंग है,
अभेद है। अभंग है।

(चारची छन्द)

ईश्वर के स्मरण में जैसे उनके पास उपमाओं का, अलंकारों का, प्रशंसा का अक्षय भण्डार हो। एक के बाद एक, एक के बाद एक रूपक पेश करते हुए न थकते, न हारते। कभी भगवान को किसी रूप में देखते, कभी किसी में, कभी ईश्वर को किसी भाषा में याद करते, कभी किसी में—

कलंक प्रणाम हैं।
समसतुल निवास हैं।
अंगजुल गनीम हैं।
रज़ाइक रहीम हैं।

(भगवती छन्द)

पाऊंटा में रची कविता में नज़ाकत भी है, ताकत भी है, उत्साह भी है, मस्ती है। यह कविता भक्ति की भी है। इस कविता में करुणा भी है; इस कविता में कहर भी है। वे ईश्वर से नामदान भी मांगते हैं और बाहुबल भी। इस कविता में भगवान केवल कोमलता का करिश्मा नहीं; वह स्पात की मूर्ति भी है, सम्पूर्ण लौह। उनके लेखे ईश्वर और शमशीर अभेद हो जाते हैं।

जहाँ उन्होंने ईश्वर को तेग और तलवार से तुलित किया। वहाँ उसके करुणा और दया का रूप भी दर्शाया। तलवार उनकी वाणी में केवल जोर-जबरदस्ती का प्रतीक नहीं, न्याय और हमदर्दी का प्रतीक भी है उनके हाथ में तलवार बड़प्पन के लिए नहीं, सच्चाई के लिए उठाई जाती हैं। किसी पर जुल्म ढाने के लिए नहीं;किसी की जुल्म से रक्षा करने के लिए चलाई जाती है। किसी का हक छीनने के लिए नहीं, किसी को हक दिलाने के लिए चलाई जाती है। किसी को गिराने के लिए नहीं, उठाने के लिए इस्तेमाल की जाती है।

पाऊंटा साहिब में दशमेश द्वारा रचे या उनके दरबारी कवियों के द्वारा तैयार किए गए ग्रन्थों को एक दिन उन्होंने तराजू पर तोला और इस सारी सामग्री का वजन 9 मन निकला। इसमें पुरातन कथाएं थीं, रामायण और महाभारत की कहानियाँ थीं। साधारण भाषा में, प्रचलित मुहावरों की सहायता से नायक, नायिकाओं को जीते-जागते संसारी, व्यावहारिक रूप में भी पेश किया गया था। कृष्ण को आसमान से उतरे नहीं, धरती से उत्पन्न हुआ दर्शाया है। राम योद्धा हैं। लड़ाइयाँ जातियों में नहीं होती, वर्गों में होती हैं। औरतों और बच्चों की वीरता के अनेक चित्र प्रस्तुत हुए हैं।

पाऊंटा साहिब में निवास के दौरान कलगीधर ने 'बचित्र नाटक', 'चौपाई', 'बेनती', 'स्त्रबलोह', 'चण्डी चरित्र' के 227 छन्द और 'वार भगवती' आदि कई मौलिक ग्रन्थ तैयार किए। महाभारत को अमृतराय, हंस राम आदि उनके निकटवर्ती कवियों ने दशमेश की देख-रेख में रूपांतरित किया। ऐसे ही सैनापत ने 'चाणक्य नीति'का अनुवाद तैयार किया। लखन और भोजराज ने 'हितोपदेश' को साधारण बोली में प्रस्तुत किया। दरबारी कवियों के तैयार किए ग्रन्थों को 'विद्या-सागर' का नाम दिया गया।

पाऊंटा में रचित कलगीधर की वाणी में 'चण्डी की वार' इधर सबसे अधिक प्रचलित हुई है। एक कारण यह था कि यह रचना पंजाबी में है। दशमेश ने इस वार को पहले हिन्दी में वर्णित किया, फिर पंजाबी में, शायद

यह सोचकर कि इस तरह के महत्त्वपूर्ण विषय पर पंजाबियों पर अपनी बोली में इसका प्रभाव अधिक प्रबल होगा। हिन्दी और पंजाबी रूप में कथावस्तु का भी फर्क है। हिन्दी की चण्डी कथा का शीर्षक 'चण्डी चरित्र उक्ति विलास' है। पंजाबी वाली का नाम 'वार श्री भक्ति' है, भले ही यह 'चण्डी दी वार' शीर्षक से अधिक प्रसिद्ध हुई।

हिन्दी रूप 'दुर्गा सप्तशती' का स्वतन्त्र काव्यानुवाद है। 'दुर्गा सप्तशती' भी अपने-आप में मौलिक रचना नहीं थी; वह भी मार्कण्डेय पुराण के एक भाग पर आधारित थी। इस भाग को 'दुर्गा सप्तशती' के नाम से जाना जाता है।

गुरु महाराज का उद्देश्य जाति के हीनता भाव को खत्म करना था और यह दर्शाना था कि और जाति भी इस तरह की वीरता दिखा सकती है जो अधिकतर पुरुषों से जोड़ी जाती है। मूल पौराणिक कथा को गुरु महाराज का दिया रूप नई उपमाओं, नए अलंकारों और नए दृष्टांतों से अधिक रोचक बन पड़ा है। इस तरह के कुछ अलंकार और रूपक पंजाबी रूप में भी इस्तेमाल हुए हैं। जैसे जंग में घायल दैत्य ऐसे लगते थे जैसे बढ़इयों के द्वारा काटे गये पेड़ के तने हों। खून की होली, या पहाड़ पर वर्षा होने से बहती लाल नदी। महिषासुर के सिर में चण्डी की तलवार का वार उसकी खोपड़ी, घोड़े काठी में गुजरती धौल के सिंहों को चीरती, कछुए के सिर पर जा टकराती है। बड़े-बड़े दैत्य खंभों की तरह दर्शाए गए हैं जिनको दुर्गा बिजली की तरह ढह-ढेरी करती है। घोड़ों के खुरों से उड़ती धूल से ऐसे लगता है जैसे धरती इन्द्र को पुकार रही हो।

'चण्डी चरित्र उक्ति विलास' की कहानी शुरू करने से पहले गुरु महाराज ईश्वर का यह कहते हुए मंगलाचरण करते हैं कि देव और दानव अकाल पुरुष के अपने ही बनाए हुए हैं, और इनमें से अगर भगवान की कृपा हो तो वे चण्डी की वार्ता का व्याख्यान करना चाहेंगे, साथ यह भी कहते हैं कि चण्डी की शक्ति अकाल पुरुष की शक्ति का ही मूर्त रूप है—

कृपा सिन्धु तुमहरी कृपा, जो कछु मो पर होई
रचनों का चण्डिका की कथा, वाणी सुभ सभी होई।

(दोहिरा)

फिर चण्डी के गुण उपमा में देकर सारी कहानी को आठ अध्यायों में बयान किया गया है। पहले चार अध्यायों में मधुकैटभ, महिषासुर, धूम्रलोचन और चण्ड तथा मुण्ड का दुर्गा के हाथों से वध का वर्णन है। पांचवें अध्याय

में रक्तबीज की चढ़ाई का ज़िक्र है; कैसे उसके लहू के कतरे में से और ही और दैत्य प्रकट होते हैं। अब चण्डी क्रोध में आती है और उसके माथे में से काली देवी का प्रकाश होता है। काली देवी रक्तबीज के लहू की बूंदों और छींटों से और दैत्यों को उत्पन्न होने से रोकती है। इसमें रक्तबीज का चण्डी द्वारा वध किए जाने का वृतान्त है। ऐसे ही आठवे अध्याय में चण्डी माता की जय-जयकार होती है।

गुरु महाराज का उद्देश्य पहाड़ों में छिपे योगियों और संन्यासियों को उनकी परम्परा याद करवाकर, उनके भीतर जुल्म और ज़बर, के विरुद्ध विद्रोह पैदा करना था। अगर उनके देवता ऐसे युद्ध में कूद सकते हैं, मर सकते हैं, मार सकते हैं तो उनके जीवन के ऐसे कटु यथार्थ से बचकर पहाड़ों में जाकर बैठ जाना, कहाँ तक उचित था :

सिंह चढ़ी मुख बजावत, जिउ थट मै। तड़िता छुति मंडि।
चक्र चलाई गिराई दयो, अरि भाजत दैंत बड़े बरबंडी।
भूत पिसाचन मास अहार करै, किलकार खिलार कै झंडी।
मुण्ड के मुण्ड उतार दयो, अब चण्ड को हाथ लगावत चण्डी।

पंजाबी में इस रचना का नाम 'चण्डी की वार' या 'वार भगवती जी की' प्रचलित है। इसकी कहानी कुछ इस तरह है :

दैत्यों से दुःखी होकर इन्द्र देवता कैलाश पर्वत पर दुर्गा की मदद के लिए आते हैं। इन्द्र जैसे महान् देवता को ऐसे दुर्गा के आगे हाथ जोड़कर गिड़-गिड़ाता देख वह उसकी सहायता के लिए तैयार हो जाती है।

इधर दुर्गा अपने शेर पर सवार तलवार पकड़ कर मैदान में उतरती है कि दैत्यों का वध शुरू हो जाता है। एक केबाद एक राक्षस मारे जा रहे हैं। आखिर महिषासुर भी दुर्गा की शमशीर के वार की ताव न ला सका और समाप्त हो जाता है। यह देखकर दुर्गा इन्द्र को उसका राज्य उसके हवाले करके कैलाश वापिस लौट जाती है। दुर्गा को लौटे हुए बहुत समय नहीं हुआ था कि शुम्भ निशुम्भ, अपने साथ धूम्र-लोचन, चण्ड मुण्ड और सरोणबतीज को लेकर इन्द्रपुरी पर हमला कर देते हैं। दुर्गा फिर आती है और एक-एक करके सबकी हत्या कर देती है। सरोणबतीज के लहू की बूंदों में से रक्तबीज के खून के कतरों की तरह दैत्य उत्पन्न होते दिखाई देते हैं। यह देखकर दुर्गा काली को आदेश देती है कि वह सरोणबतीज का बह रहा खून साथ के साथ पीती जाए। इस प्रकार सरोणबतीज न और दैत्य पैदा कर सकता

है और न ही दुर्गा के हाथों से बच सकता है। इसके साथ ही शुम्भ तथा निशुम्भ का वध करके दुर्गा इन्द्र के शत्रुओं का दंभ समाप्त कर तेजोदीप्त होती हैं।

इस वार का साहित्यिक सौन्दर्य इसमें वीर रस की अद्वितीय प्रस्तुति है। युद्ध में जैसे चण्डी या दुर्गा (कहीं-कहीं गुरु महाराज ने उन्हें दुर्गा शाह भी कहा है) वैरियों के शीश उतारती है, जैसे बार-बार दशमेश ने युद्ध के दृश्य प्रस्तुत किए हैं, वैसे पुनः कोई पंजाबी साहित्यकार नहीं कर पाया। एक अकेली औरत राक्षसों की पंक्ति की पंक्तियों को समाप्त करनी चली जाती है।

इस वार की सफलता इसमें है कि हमारे निहंग सिंह आज तक इस वार का पाठ करके इससे उत्साहित होते हैं। यह भी माना जाता है कि इस वार को अगर सुबह पढ़ा जाए तो उस दिन जरूर लड़ाई-झगड़ा होकर रहता हैं इस तरह का वर्णन पढ़कर सचमुच पाठक का खून खौलने लगता है :

जंग मुसाफा बजिया, रण धुरे नगारे चावले।
झूलन नेज़े बैरकां, नीसाण लसनि लसावले।
ढोल नगारे पउन दे, उघन जानू जटावले।
दुर्गा दानों देह रण, नाद, वजनि खेत भीहावले।
वीर परोते बछि में जणा ढाल चमुंट आंवले।
एक बड़े तेगों तड़फीअनन, मद पीते लोटनि बावले।
एक चुनि चुनि झाड़उ कड़ीअन, रेत विचों सुईंना, डावले।
गदा, त्रिशूल, बरछीयां, तीर वगन खरे उतावले
जण डन्स भुजेंगम सांवले, मन जावनि बीर रूहावले ॥ 8 ॥

... ...

आहर मिलिया आहरीयाँ सैन सूरीयाँ साज़ी।
चले सउंहे दुर्गा शाह जणु काबै हाजी।
तीरों, तेगी, जमधड़ी, रणि वण्डी भात्ती।
इक घाइल घुमन सूरमे, जणु मकतब काज़ी।
इक वीर प्रोते बरछीए, जिउं झुक पउन निमाज़ी।
इक दुर्गा सउहे खुनसके, सुनसाई ताज़ी।
इक सावन दुर्गा सामने, त्तिंऊ भुखियाए पात्ती।
कदे न रज्जे जुद ते रत्ति होए राज़ी।

'चण्डी की वार' में दुर्गा को कई नामों से याद किया गया है जैसे दुर्गाशाह, चण्डी, भवानी, महामाई, जगमाता, रानी आदि। दुर्गा की आठ भुजाएं बताई जाती हैं। वे विष्णु की जाई थीं, जब कतम्बा नाम के राक्षस ने ब्रह्मा पर हमला किया और अपने माथे के पसीने को पौंछा तो एक कतर समुद्र में जा गिरा, जिसमें से एक और दैत्य प्रकट हो गया। इसका नाम जलन्धर था। इन दोनों दुष्टों से भागकर ब्रह्मा विष्णु की शरण में आए। विष्णु उस समय समाधि में थे। जैसे ही ब्रह्मा विष्णु की ओर बढ़े, विष्णु की पसली से दुर्गा प्रकट हो गई और उनकी मदद के लिए चल पड़ीं।

एक और कथा के अनुसार दुर्गा उज्जैन के राजा की बेटी थीं। इकलौती सन्तान होने के कारण वह अपने पित. के बाद तख़्त पर बैठीं। अत्यन्त सुन्दर और वीरांगना होने के कारण जब देवता कैलाश पर्वत पर सहायता के लिए फरियादी होकर आते, वह उनकी मदद करती थीं।

लड़ाई देवताओं में है, पर लड़ाई के हथियार मुलतान से आते हैं और हारे हुए दैत्य के मुंह में घास लेकर युद्ध-क्षेत्र को खाली करते दिखाए गए हैं।

लड़ाई देवताओं और दैत्यों में होती है, पर हथियार वे सत्रहवीं सदी में प्रचलित इस्तेमाल करते हैं। दुर्गा बहुत-सी तेग, खण्डा या गदा से काम लेती हैं और दैत्यों के पास हर तरह के घातक हथियार दर्शाए गए हैं, जैसे तीर-तलवार, त्रिशूल, तुफंग, गदा, चक्र, बरछे, नेजे आदि। लड़ाई का समय निश्चित करने के लिए नगाड़े और दमामें बजते हैं। धौंसे और दमामे बजाये जाते हैं। शंख और भेरियाँ सुनाई देती हैं।

इसमें कोई शक नहीं कि 'चण्डी की वार' ने गुरुसिक्खों में एक नया जज़्बा पैदा किया, जिसके बोलों को याद करके सिक्ख शूरवीर मैदानों के मैदान मारने लगे। कम-से-कम उन्हें मृत्यु से कभी भय नहीं लगा।

19

जैसे दशमेश को पता हो कल क्या होने वाला है। जो कुछ उन्होंने 'चण्डी की वार' में दर्शाया, बिल्कुल वैसा ही गुरुसिक्खों की आंखों के सामने घटित होने लगा। अभी वे पाऊंटा में ही थे।

बात ऐसे हुई। राजा भीमचन्द्र को गुरु महाराज से पुरानी खुनस थी। वे उसकी रियासत में रहते थे, पर उसके प्रभुत्व को स्वीकार नहीं करते थे। जो उसने यह सोचा था कि वे आनन्दपुर खाली करके पाऊंटा हमेशा के लिए

चले गए थे, यह भी गलत सुना था। गुरु महाराज पीछे अपने गुरुसिक्खों का जत्था छोड़ गए थे और अब आनन्दपुर लौटने की सोच रहे थे। यही नहीं, सुनने में आया था, जो किले वे आनन्दपुर के आस-पास बनवाना चाहते थे, उनमें से आनन्दगढ़ और लौहगढ़ बन भी चुके थे। बाकी के निर्माण का काम शुरू हो चुका था। गुरु महाराज उनको पूरा करने की योजना बना रहे थे।

और इधर बेशक उन्होंने कवियों और विद्वानों को अपने इर्द-गिर्द एकत्रित कर लिया था; खुद अधिक समय लिखने-पढ़ने में बिताते थे; अक्सर कवि दरबार और संगीत गोष्ठियाँ होती थीं, पर इस सब कुछ से शस्त्र वैसे के वैसे एकत्रित किए जा रहे थे। घोड़े भी वैसे ही खरीदे हा रहे थे। पीछे कश्मीर से कोई व्यापारी सौ घोड़े लाया, उसका और किसी से सौदा नहीं हो सका और गुरु महाराज ने उन्हें रोककर उचित मूल्य पर खरीद लिया था।

इसके साथ उनके श्रद्धालु वैसे की वैसे कसरत, कवायद करते थे। वैसे ही वैसे नगाड़े बजते थे। झण्डे झूलते थे। पाऊंटा साहिब बढ़ता-बढ़ता कहाँ से कहाँ पहुंच गया था, किले का किला बन गया था और गुरु महाराज वैसे के वैसे शिकार को निकलते थे। जैसे कोई लश्कर आ गया हो, जिधर मुंह करते, सफाया करते जाते, न कोई चीता न कोई बाघ बचता। अब तो उनके बाज़ों ने जंगली पक्षियों का भी सफाया करना शुरू कर दिया था।

बेशक गुरु महाराज ने आप बीच में पड़कर फतेहशाह और राजा मेदनी प्रसाद में सुलह-सफाई करवाई थी, पर भीमचन्द के बेटे को अपनी बेटी ब्याह देने के बाद राजा फतेहशाह की मजाल नहीं थी कि भीमचन्द से किनारा कर जाए।

यही नहीं गुरु महाराज का तेज और प्रताप देख-देख, सुन-सुन आस-पास के बाकी राजा भी उनसे सहमत थे कि उन्हें गुरु महाराज के नित्य बढ़ते प्रभाव को रोकना होगा। जो वे वह सोचते थे कि मुगल दरबार उनको काबू कर लेगा, वह कुछ तो हो नहीं रहा था। औरंगजेब दक्षिण में लड़ाई लड़ रहा था। उधर मराठे भी उसके काबू में नहीं आ रहे थे। धार के पहाड़ी राजा सोचते उन्हें स्वयं ही सिक्ख सम्प्रदाय को नकेल डालनी होगी।

कितने समय से अन्दर ही अन्दर यह खिचड़ी पक रही थी और फिर उन्होंने अचानक गुरु महाराज पर चढ़ाई कर दी। इस तरह के हमले का सुन कर गुरु महाराज के साथी एक-एक करके अकृतघ्नता करने लगे। सिरमौर

का राजा जिसको उन्होंने बगलगीर होकर आमन्त्रित किया था, कन्नी कतराने लगा। बेशक उसने हमलावर राजाओं का साथ नहीं दिया, लेकिन गुरु महाराज की मदद करने के लिए भी वह राज़ी नहीं हुआ। ऐसे ही पांच सौ पठान सिपाही जो पीर बुद्धू शाह की सिफारिश पर गुरु महाराज ने अपनी सेना में भर्ती कर लिए थे, वे भी वक्त बे वक्त किनारा कर गए। यही नहीं वे दुश्मन की फौजों के साथ जा मिले। केवल काले खान अपनी टुकड़ी के साथ गुरु महाराज का साथ देने के लिए पीछे रह गया। गुरु महाराज ने उसको भी धन्यवाद सहित विदा कर दिया। काले खान की शराफत, वह दुश्मन राजाओं के साथ नहीं मिला बल्कि कहीं और चला गया।

उदासियों का जत्था जो आनन्दपुर से जबरदस्ती गुरु महाराज के साथ पाऊंटा आया था, वह भी चवुपके से पाऊंटा छोड़कर चले गये। अगली सुबह उनका अखाड़ा सूना पड़ा था। केवल किरपाल दास, उनका बुजुर्ग, पीछे रह गया। उसने गुरु महाराज का पल्ला पकड़े रखा।

पठानों के यूं भागने के बाद, पीर बुद्धूशाह अपने चारों बेटों, अपने पिता और 500 मुरीद लेकर गुरु महाराज के साथ आ मिला। मुसलमान फकीर दशमेश के लिए अपने पिता, अपने बेटों और मुरीदों के साथ जंग में कूदने के लिए तैयार थे।

छोटे पिल्ले साथ छोड़ रहे थे, पर 'दिल से मुहब्बत रखने वाले, वे जिनको कलगीधर की चमत्कार की झलक मिल चुकी थी, अपनाशीश हथेली पर रखकर अपने इष्ट के साथ थे। इनमें आम शहरी थे जिन्होंने कभी तीर और तलवार को हाथ नहीं लगाया था, जिन्होंने घोड़े की रकाब में कभी पैर नहीं रखा था, जो बस 'चण्डी की वार' का पाठ करते थे, सुनते थे और जिनका लहू खौल-खौल पड़ा था।

गुरु महाराज ने पाऊंटा से कोई चार कोस पर भंगानी के स्थान पर अपने मोर्चे बना लिए। उनकी मदद के लिए सैंकड़ों शूरवीर आ शामिल हो गए। इनमें हलवाई भी थे, कायस्थ वर्ग भी था, साधू भी थे, सन्त भी थे।

इतने में मुगल दरबार को इसकी खबर मिली, दिल्ली की ओर से भी पहाड़ी राजाओं को शह मिली। उनकी मदद का वायदा किया गया। यही ईर्ष्या कि सिक्खों का गुरु जो अपने आप को 'सच्चा पातशाह' कहलवाता है, उसको खत्म करना ज़रूरी है।

पहाड़ी राजाओं का संगठन विराट था। इसमें भीमचन्द और फतेहशाह

को छोड़कर मण्डी, सकेत, चम्बा, भम्बोर, हन्डूर, जसवाल, किश्तवार, नूरपुर, कुटलोड, ढडवाल, नादौन और चन्दौर के राजा शामिल थे। गुरु महाराज की सेना से विद्रोह करके गए पठान नवाब खान और हयातखान उन्हें बार-बार बताते कि सिक्खों की फौज में कम्मी-कुम्मी और नीची जातियों के चूड़हे-चमारों का हजूम इकट्ठा हुआ पड़ा है। उन्हें हराना कोई मुश्किल नहीं होगा।

इतने में वाराणसी से एक सिक्ख लकड़ी की तोप बनाकर ले आया। उसके साथ की और तोपें बनाई जाने लगीं।

दशमेश की फौज कोई 2000 जवानों से अधिक नहीं होगी। उसके मुकाबले में पहाड़ी राजा 10,000 की फौज लेकर गिरि और जमना के बीच के खुले मैदान में आकर डट गए।

यह देखकर सिक्ख सेना ने मोर्चे सम्भाल लिए। गुरु महाराज की बुआ वीरों के पांच बेटे संगों शाह के नेतृत्व में सबसे आगे थे। इनके अतिरिक्त पण्डित दयाराम और महन्त किरपालचन्द, जो कुछ भी उनके हाथ में आया लेकर लड़ाई के मैदान में कूद पड़े। महन्त किरपाल चन्द के हाथ में बस एक झण्डा था और जब लड़ाई शुरू हुई वे हयात खान पठान को ललकार रहे थे। कितनी देर नाशुक्रे हयात खान की तलवार के वार अपने डण्डे पर रोकते रहे, फिर उन्होंने दाव लगाकर इस जोर के साथ डण्डे की चोट मारी कि हयात खान की खोपड़ी दो फाड़ हो गई। ऐसे मसन्द दीवान चन्द और मामा किरपाल चन्द ने अपनी-अपनी तलवार के साथ वह जौहर दिखाए कि अच्छे-अच्छे तजुर्बेकार फौजी हैरान रह गए। ऐसे साहिब चन्द खत्री सिर-धड़ की बाज़ी लगाकर लड़ा। संगो शाह की टक्कर नजावत खान के साथ हुई। दोनों शूरवीर कितने ही समय जूझते रहे। कभी संगों शाह का पलड़ा भारी हो जाता, कभी नजावत खान का। आखिर नजावत खान संगो शाह के वारों की ताब न झेल सका और ढेरी हो गया।

विचित्र दृश्य था। एक तरफ लालचन्द नाम का माहीगीर लड़ रहा था, दूसरी और लालचन्द नाम का हलवाई अपने जौहर दिखा रहा था। उधर पीर बुद्धू शाह और उसके पुत्र गुरु महाराज के लिए जूझ रहे थे।

आखिर गुरु महाराज खुद जंग के मैदान में उतरे। जिस तरफ गुरु महाराज के तीर बरसते, पहाड़ी राजाओं की फौज का सफाया हो जाता।

अब संगों शाह का दुश्मन पर जोर बढ़ रहा था। फतेह शाह खुद उसके साथ हाथापाई कर रहा था। दुश्मन का ख्याल था कि संगो शाह की शहीदी

के साथ सिक्ख फौज की कमर टूट जाएगी। फतेह शाह की मदद के लिए हरीचन्द और गोपाल भी आ मिले। जब उनके घोड़े तीरों से बींधे गए, वे लोग एक-दूसरे के साथ गुत्थम-गुत्था होने लगे। इतने में फतेह शाह दरिया पार करके भाग गया। उसके साथ मधुकर डडवालिया और जसवालिया भी थे।

अब हरीचन्द ने गाजीचंद और पठान सिपाहियों के साथ मिलकर संगो शाह को घेरना चाहा, पर नाकाम रहे। इतने में नजावत खान ने आगे बढ़कर संगो शाह को ललकारा। दोनों शूर एक-दूसरे पर टूट पड़े। तलवारें खड़कने लगीं। आखिर नजावत खान ने दांव लगाकर ऐसे वार किया कि संगो शाह घायल होकर गिर पड़ा। पर इससे पहले कि उसने आंखें मूंदीं, अपना तीर कमान पकड़कर ऐसा तीर छोड़ा कि नजावत के सीने में जा लगा और वह धड़ाम से लहू से लथपथ धरती पर गिर पड़ा।

इधर गुरु महाराज का मुकाबला हरीचन्द कर रहा था। हरीचन्द का निशाना हमेशा अचूक होता था। जिधर-जिधर भी वह तीर छोड़ता, हाहाकार मच जाती। गुरु महाराज उसके कहर को देख रहे थे। सारे, जंग के मैदान में हूकें और चीखें सुनाई देती थी।

जगह-जगह वीर ढेर हुए पड़े थे। कहीं लहू के फुहारे छूट रहे थे, कहीं खून की लहरें बनी हुई थी। एक चिल्ल पौं थी चारों ओर। आकाश गिद्दों से भरा था; वे झपट्टा मारते-मारते, नोच-नोच कर मुर्दों को खा रही थीं। कहीं घोड़ों पर सिपाही उल्टे पड़े थे; कहीं घोड़े सिपाहियों के ऊपर उल्टे पड़े थे जो घायल हुए थे उनकी नज़रें दशमेश पर लगी हुई थी। यदि एक दृष्टि गुरु महाराज की उन पर पड़ जाए तो उनका जन्म सफल हो जाएगा। इतने में हंडूर के हरीचन्द ने निशाना साधकर एक तीर छोड़ा जो गुरु महाराज के घोड़े की छाती में आ लगा। यह देखकर गुरु महाराज ने अपना घोड़ा छोड़ दिया। इतने में हरीचन्द ने एक और तीर उनकी ओर छोड़ा जो कलगीधर के कान के पास से सर्र से निकल गया पर कोई नुकसान नहीं हुआ। अब हरीचन्द ने तीसरा तीर छोड़ा। यह तीर दशमेश के जिरहबख्तर को चीरता हुआ उनकी नाभि तक जा पहुंचा, पर जैसे अकालपुरुष ने हाथ देकर उन्हें रख लिया हो। तीर की नोक उनके पवित्र शरीर को छू तक न सकी। यह देखकर गुरु महाराज ने कमान चढ़ाई और ऐसा तीर छोड़ा कि हरीचन्द की गर्दन बिंध गई। वह उल्टा जा गिरा और उसने तड़प-तड़प कर अपनी जान दे दी।

हरीचन्द को गिरता देख, पहाड़ी राजाओं की समूह सेना मैदान छोड़कर भाग गई।

जीत महाराज की हुई।

दशमेश की यह पहली बड़ी जंग थी। इस लड़ाई में जो 16 अप्रैल, 1686 में लड़ी गई सब से बड़ी कुर्बानी पीर बुद्धू शह ने दी। उसने चार में से तीन बेटे, सैय्यद अशरफ, मुहम्मद शाह और बख्श शहीद हुए। उनके साथ पीर जी का पिता सैय्यद गुलाम शाह भी जान पर खेल गया। बुआ वीरो के पांच में से दो पुत्र संगों शाह और जीत मल लड़ाई में काम आए। गुरु महाराज ने पहले शहीदों को श्रद्धांजलि पेश की और फिर जीत की खुशी मनाई।

20

फारसी का वह शायर जो गुरु महाराज के दर्शन के लिए मुलतान से आया था और दशमेश के विवाह के समय गुरु के लाहौर में हुए कवि दरबार में एक नज़्म पढ़कर हर किसी को अपना मुरीद बना गया था, आजकल फिर गुरु महाराज को ढूंढता हुआ उनकी शरण में आया हुआ था।

कलगीधर को उसकी शायरी ने अत्यन्त प्रभावित किया था और वे खुश थे कि पाऊंटा में कवियों और साहित्यकारों की मंडली में वह भी आकर शामिल हो गया था।

भाई नन्दलाल 'गोया' के पिता छज्जू राम जाति के खत्री थे। फारसी के आलम। वे रोज़ी की तलाश में गज़नी जा बसे थे। वहाँ वे गज़नी के हाकिम के मीर मुंशी नियुक्त किए गए। गज़नी में उनके घर 1633 ई. में भाई नन्दलाल जी का जन्म हुआ। घर का वातावरण पढ़ने-लिखने का होने के कारण भाई नन्दलाल भी समय पाकर फारसी अरबी के आलम हो गए। साथ ही उन्होंने शेर भी कहने शुरू कर दिए थे। जब 12 वर्षों के हुए, उनके पिता ने अपने कुल की रीति के अनुसार नन्दलाल जी को वैष्णव धर्म की दीक्षा दिलवाने की सोची पर होनहार शायर ने यह कहकर इन्कार कर दिया—जब तक मैं स्वयं तसल्ली न कर लूं मेरे भीतर से किसी के लिए श्रद्धा न जागे, मैं किसी को अपना गुरु धारण नहीं करूंगा।

भाई नन्दलाल जी जब 19 वर्षों के हुए, उनके माता-पिता दोनों का देहान्त हो गया। पहले उनकी माता का और फिर पिता का।

गज़नी के हुकमरान ने उनको उनके पिता के स्थान पर नौकर रखने की बजाय किसी और छोटी पदवी पर तैनात करना चाहा। शायद नन्दलाल

को यह मंजूर नहीं था। उन्होंने उस नौकरी को कबूल करने से इन्कार कर दिया और कुछ समय बाद गज़नी छोड़कर अपने बाप-दादा के देश पंजाब लौट आए। यहाँ उन्होंने मुलमान में अपना कयाम कर लिया। उनका घर दिल्ली दरवाजे में था। समय बीतने के साथ उस मोहल्ले का नाम आगापुर पड़ गया, क्योंकि गज़नी से उनके साथ आया, उनका मुलाज़म उनको 'आगा' कहकर मुखातिब होता। मुलतान में ही उनका एक गुरुसिक्ख घराने में विवाह हुआ। उनकी पत्नी सुबह शाम गुरुबाणी का पाठ करती थी, जिसको सुनकर भाई नन्दलाल भी निहाल हो जाते। अपने पिता के दिए हुए संस्कारों वश परमार्थ की राह पर तो वे पहले ही चले आ रहे थे, गुरु बाबा नानक की वाणी का जादुई असर, वे गुरु घर से और भी जुड़ने लगे। समय बीतने के साथ उनके घर दो बेटे लखपत राय और लीला राम पैदा हुए।

पर गुरु घर के लिए चाह, मुलतान में उनका दिल न लगता। वे तो बाबा नानक की गद्दी पर विराजमान दशमेश पिता के दर्शन करना चाहते थे। अब जब बच्चे जवान हो चुके थे, वे अपना घर-बार उनके हवाले करके आनन्दपुर के लिए चल दिए।

आनन्दपुर पहुंचकर उनको गुरु महाराज के गुरु के लाहौर विवाह का पता लगा। वे विवाह की खुशी में आयोजित कवि दरबार में शामिल हुए, अगले दिन गुरु महाराज का आशीष प्राप्त करके नौकरी की तलाश में आगे निकल गए।

आगरे में वे शहनशाह औरंगजेब के बेटे शहज़ादा शाह बहादुर के मीर मुंशी के तौर पर तैनात किए गए। आलम-फाजिल तो वे थे ही, इस निष्ठा और वफादारी के साथ उन्होंने शहजादे की खिदमत की कि वह नन्दलाल जी का प्रशंसक हो गया। उठते-बैठते इनकी योग्यता और सूझ-बूझ के गुण गाता रहता।

एक दिन दिल्ली औरंगजेब के दरबार में कुरान शरीफ की किसी आयत पर बहस शुरू हो गई पर औरंगजेब को तसल्ली नहीं हो रही थी। ईश्वर की नियति, शहजादा मुअज़म भी उस दिन दिल्ली दरबार में हाजिर था। आगरे लौटकर उसने भाई नन्दलाल जी के साथ उस बहस का ज़िक्र किया। मीर मुंशी ने उस आयत की जो व्याख्या की, शहजादा सुनकर शर्मसार हो गया। अगली बार जब दिल्ली गया, शहजादा मुअज़म ने भाई नन्दलाल की व्याख्या का शहनशाह औरंगजेब के साथ ज़िक्र किया। शाह आलम ने सुना

और उसकी आंखें खुली की खुली रह गईं। उसने सोचा वह व्याख्या शहजादे की थी। पर शहजादे ने शहनशाह को बताया कि वह व्याख्या तो मीर मुंशी की थी, उसकी अपनी नहीं थी और मुंशी नन्दलाल 'गोया' एक हिन्दू था।

शहनशाह औरंगजेब का यह सुनकर चेहरा मुर्झा गया। इसकी बजाए कि वह खुश होता कि अरबी में कुरान शरीफ की आयत की व्याख्या एक हिन्दू विद्वान ने की थी जो उसके दरबार के किसी विद्वान की पकड़ में नहीं आ रही थी, उसको रोष आ गया। वैसे मन-ही-मन यह फैसला किया कि वह व्याख्या करने वाले को इनाम-इकराम देगा, पर औरंगजेब की तंग-नज़री से अब उसने अपना हाथ रोक लिया।

इस तरह के विद्वान् को इनाम-इकराम ही नहीं, आलमगीर और कुछ भी ढेर सारा देना चाहता था। कोई बड़ी बात नहीं वह उसको अपना दरबारी ही बना लेता। पर नन्दलाल को मुसलमान होना पड़ेगा। उसको कलमा पढ़कर एहले सुन्नत में शामिल होना पड़ेगा।

यह भाई नन्दलाल को कैसे मंजूर हो सकता था ? भाई नन्दलाल जिसको दशमेश पिता की कृपा प्राप्त हो चुकी थी, उनके दरबार पर झुक चुका सिर और किसी के सामने कैसे झुक सकता था ?

शहजादा मुअज़म भाई नन्दलाल का स्वामी ही नहीं था, प्रशंसक भी था। वह जानता था कि नन्दलाल जैसे कोमल-चित्त शायर के लिए इस तरह की कोई शर्त कबूल करना मुमकिन नहीं होगा। आखिर उसने अपने मीर मुंशी को मशवरा दिया कि अगर उसको शहनशाह की पेशकश मंजूर नहीं थी तो वह चुपके से नौकरी छोड़कर जहाँ चाहता जा सकता था। इससे अधिक एक कट्टर फिरकापरस्त बाप के बेटे के लिए कर पाना मुमकिन नहीं था।

और अब भाई नन्दलाल गुरु महाराज की सेवा में आ हाजिर हुए थे। उनकी तो जैसे भगवान ने सुन ली हो, उनको बहाना मिल गया था। अपने इष्ट के चरणों में रहकर अपने ज्ञान और अपनी प्रतिभा विकसित कर सकें।

नौकरी और रुतबे के लिए वे कैसे अपना धर्म छोड़ सकते थे ? वह धर्म जिसके लिए नौवें पातशाह ने कहा था—'शीश दिया पर सिरर न दिया।'

इतना वैराग्य, इतनी श्रद्धा, सारी राह वे गुरु महाराज की शान में एक के बाद एक रूबाइयाँ और नज्में रचते रहे थे। पाऊंटा में जब पहुंचे, उन्होंने अपनी यह पूंजी गुरु महाराज के चरणों में अर्पित कर दी। इसका नाम उन्होंने 'जिन्दगी-नामा' रखा था। गुरु महाराज ने उसके कलाम को एक नज़र देखा।

कलगीधर की नज़र इस रूबाई पर पड़ी :

दिले मन दर फशके यार बिसोखत।
जाने मन बहिरे आं निगार बिसोखत।
आं चुनां सोखतम अज़आं आतस।
हरकि बुशानीद चूं चिनार बिसोखत।
मन न तनहा बिसोखतम दर इश्क,
हमा आलम अजीं शहार बिसोखत।
आफरी बाद बर दिले गोया,
कि उमीद रूए यार बिसोखत।

रूबाई पढ़ चुके तो दशमेश ने भाई नन्दलाल की ओर देखा। विनय की जैसे मूर्ति हों, उनके चेहरे पर श्रद्धा और विरह चित्रित था। आंखों में आंसू, ऐसे लगता जैसे किसी समय भी वे कलगीधर के चरणों में गिर पड़ेंगे और उनको अपने आंसुओं से धो देंगे।

गुरु महाराज ने भाई नन्दलाल के कंधे पर अपना पवित्र हाथ रखकर उनको एक शायर का मन दिया। एक कवि दूसरे कवि को दाद दे रहा था। इस तरीह से वे दोनों एक ही मंजिल के यात्री थे।

यह देखकर भाई नन्दलाल जी ने अपनी पुस्तक का एक और पन्ना पलट कर गुरु महाराज को देखने के लिए पेश किया। गुरु महाराज पढ़ रहे थे :

सोहबते नेकां अगर बाशद नसीब,
दौलते जावद याबी अै हबीब।
महरमे हक मुरशदे कामल कुनन्द,
दौलते जावेद रा हासिल कुनन्द।

यह पढ़कर गुरु महाराज ने इस तरह से नन्दलाल की ओर देखा जैसे उसको अपनी मण्डली में आमंत्रित कर रहे हों। नन्दलाल नेअब एक और शेर की ओर इशारा किया :

मुरशदे कामल चों बाश्याद रहिलुमा,
बा खुदाए खीश गरदी आशना।
मुरशदे कामल इलाजे दिल कुनद,
ईं मुरादें दिल-ब-दिल हासिल कुनद।

यह पढ़कर गुरु महाराज ने भाई नन्दलाल को अपन छाती से लगा

लिया। फिर क्या था ? आंसुओं की जैसे लड़ी बह निकली हो। जैसे उसको सात स्वर्ग मिल गए हों, भाई नन्दलाल 'गोया' ने एक शेर फिलबदीह कहा–

नाकिसां दर नजरें कामिल भी कुनन्द।
बे दिलां रा साहिबे दिल मी कुनन्द।
ईं वजूदश तुरा साजो तिला,
ईं तिला आलम आज यादे खुदा।

गुरु महाराज की कृपा से भाई नन्दलाल को सतगुरु के चरणों में हमेशा-हमेशा के लिए स्थान प्राप्त हो गया।

21

जब से गुरु महाराज आनन्दपुर को खाली करके पाऊंटा गए थे, ऐसे लगता जैसे आनन्दपुर दिनों-दिन निखरता जा रहा हो। बेशक गुरु महाराज पीछे धर्मसाल में नित्य के कथा कीर्तन के लिए, आए-गए गुरुसिक्खों की रिहाइश लंगर आदि का इंतजाम करके गए थे, बाजार वैसे के वैसे थे, आगे-पीछे खेत-खलिहान वैसे-के-वैसे थे, तो भी गुरु महाराज के बिना नगर सूना-सूना लगता। प्रतिदिन रौनक घटती जा रही थी। जैसे-जैसे यह खबर फैलती कि गुरु महाराज आनन्दपुर में हीं थे। यात्रियों की आवाजाई कम होनी शुरू हो गई। बाहर से क्योंकि यात्री नहीं आते थे, बाजारों में पुरानी चहल-पहल दिखाई नहीं देती थी।

गुरु महाराज क्योंकि आनन्दपुर में नहीं थे। अब रणजीत नगाड़ा भी न बजाया जाता जैसे सुबह शाम बजता था कि अब गुरु महाराज शिकार के लिए निकल रहे हैं। न नए घोड़े आते थे, न उनकी नुमाइश होती थी। न नए हथियार आते थे, न उनको आजमाया जाता था।

गुरु महाराज होते थे तो कभी कोई कवि-गोष्ठी होती, कभी संगीत-दरबार। कभी बाजीगर अपने करतब दिखाते; कभी सभी नृत्य करती, कहीं गिद्दा, कहीं भंगड़ा, वारां गाने वाले नए-नए जत्थे आते और रात-रात भर रौनक लगाए रखते। दशमेश ने आनन्दपुर में नाटक मण्डली भी बनाई हुई थी। आए दिन नाटक खेले जाते। कई बार मसन्दों की ओछी हरकतें, कट्टर पंथियों के तंग नज़रिये का मज़ाक उड़ाया जाता।

यह सब कुछ आनन्दपुर में से जैसे पंख लगाकर उड़ गया हो। बस बाहर एक किला बन रहा था। वह बन चुका और एक अन्य के निर्माण का कार्य शुरू हो गया। इसके अतिरिक्त नगर में नितनेम के अलावा और कोई

गतिविधि नहीं थी।

कुछ महीने हुए वीरांवाली का बेटा धर्म पढ़ने का बहाना करके दिल्ली चला गया, आलम का रसूख, उसको सफदरजंग के मदरसे में दाखिला मिल गया था। वहाँ अरबी फारसी की पढ़ाई अच्छी होती थी एक बार गया, लौटने का नाम ही नहीं ले रहा था।

कितने अरसे बाद आजकल वह मां-बाप से मिलने-जुलने आया हुआ था। पीछे उसकी बहन अपने भाई को याद करके बेहाल होती रहती, आए-गए के हाथों उसे सन्देश भेजती रहती थी।

जवान भाई-बहन कैसे सुन्दर निकल आए थे। उनको देखकर जैसे देखने का चाव तृप्त न हो। एक दम कद निकल आया था। बड़ी-बड़ी काली आंखें, मुश्की रंग, जवानी की एक महक मुंह और माथे पर खिली हुई, खुश रहते, हर समय मुस्कराते रहते। भागां कहती, "इस बार मैं दिल्ली जाऊंगी, वहाँ पढ़ूंगी।"

धर्म आगे से उसे छेड़ता, "तुम्हें पढ़ने की आवश्यकता नहीं, तुम्हारा विवाह किसी पढ़े लिखे के साथ कर देंगे।"

इसमें ज़ियादती भी कोई नहीं थी। वीरांवाली को तो कब की चिन्ता लगी हुई थी। जब वह भागां के कद-काठ की ओर देखती, उसकी अल्हड़ जवानी, उसके नयनों के खुमार, उसकी खुली-डुली हरकतें, उसके दिल को जैसे हौल पड़ता हो। वह सोचती वह अपनी लड़की का कोई अच्छा-सा मुहूर्त ढूंढ कर उसके हाथ पीले कर देगी। लड़कियाँ पराया धन होती हैं, वह अपनी इस जिम्मेदारी से जल्दी से जल्दी मुक्त होना चाहती थी।

और इधर भागां थी कि जवान लड़कों के जैसी हरकतें, कभी घोड़े की सवारी कर रही है और कभी तीर अन्दाज़ी का अभ्यास हो रहा है। कभी किसी ने सुना है, किसी लड़की ने बाज पाला हो, भागां थी कि अपनी सखी सहेलियों के साथ बाज लेकर आगे-पीछे शिकार करने के लिए निकल जाती।

पिछली बार जब आलम पाऊंटा गुरु महाराज के यहाँ गया था, वह दो नई पोथियाँ अपने साथ लाया था। इनमें एक 'शस्त्र नाम माला' थी और दूसरी 'चरित्र पाखयान'। 'शस्त्र नाम माला' को तो वीरां ने सामने आले में एक बस्ते में लपेट कर रखा हुआ था। उसको आप तो इसमें कोई खास दिलचस्पी नहीं थी, बस आलम ने एक-दो बार उसका पाठ किया था, पर

भागां थी कि हर रोज उसको लेकर बैठ जाती। अब जब से धर्म दिल्ली से लौटा था, उसको भी पढ़-पढ़कर सुनाती रहती है।

शिकार की शौकीन, शिकार करने के हथियारों की चाहवान, भागां सवाद ले-लेकर, 'शस्त्र नाम माला' का पाठ करती पर इस बात की उसे समझ नहीं आ रही थी कि आखिर कलगीधर ने शस्त्रों की व्यवस्था पर इतनी सारी कविता क्यों लिख डाली थी।

अपनी इस समस्या का समाधान अपने आलम से नहीं करवाया था। गुरु घर के लिए उसकी श्रद्धा, उसको कोई अधिक सवाल करे तो वह चिढ़ जाता था। अब धर्म के साथ बैठे भाई-बहन इसको विचार कर रहे थे।

"पहली बात तो यह कि गुरु महाराज को हथियारों के साथ बड़ा मोह था, धर्म समझा रहा थ। जो गुरुसिक्ख हथियारबन्द उनके सम्मुख पेश होते हैं, उनको अच्छे लगते हैं।"

'उनको अधिक आदर दिया जाता है, यह तो मैंने खुद देखा है,भागां बोली।

गुरुसिक्खों के लिए समय-समय पर जो फरमान गुरु साहिब भेजते हैं, उनमें भी शस्त्रों का जिक्र किया जाता है "जो सिक्ख हथियार बनि के दरशन आवगु जो निहाल होगु।"

"पर हथियार पर ही इतना ज़ोर क्यों ?" भागां पूछ रही थी।

"इसका जवाब तुम्हें अपने आापसे मांगना चाहिए। एक गुरु प्यारे की बेटी, तुमने इतने हथियार आगे-पीछे क्यों इकट्ठे किए हुए हैं ? तुम, जब तुम्हें मौका मिलता है शिकार करने निकल जाती हो ?"

'यह तो मैंने कभी सोचा ही नहीं।' भागां अपने को भीतर से टटोलती हुई बोली।

'इसलिए कि आज के हालात में हथियार ही हमारा कल्याण कर सकते हैं। अगर हम अपनी पहचान, अपने अस्तित्व को बनाए रखना चाहते हैं, तो हमें हथियारों से प्रेम करना पड़ेगा। सबसे पहला प्यार।'

'क्या मतलब ? भगवान् से भी अधिक भगवती से प्रेम ? भगवती से अधिक शक्ति से प्रेम ?'

'शक्ति के बिना भक्ति संभव नहीं; कमजोर और बुज़दिल, हारे हुए और टूटे हुए, दबे हुए और सहमें हुए किसी के हिस्से में भक्ति नहीं आया करती। ईश्वर सर्व-शक्तिमान है। शक्ति की चाहत, शक्ति के लिए उपाय शक्ति ग्रहण

करना भक्ति के लिए तैयारी है। तभी तो कलगीधर ने कहा है :

"काल तू ही काली तू ही, तू ही तेग अरतीर।
तू ही निशानी जीत दी, आज तू ही जगबीर।
तू ही सूल, सैहबी तबर, तूं निरवंग अरू शान।
तू ही कटारी सैल सभ, तूह ही करद किरपान।"

'दूसरी पंक्ति में 'आज' का शब्द विशेष तौर पर महत्त्वपूर्ण है। गुरु बाबा नानक और महाराज के पड़दादा गुरु अर्जुनदेव जी तक भक्ति पर जोर दिया गया। भक्ति का मार्ग ही कल्याणकारी बताया गया, लेकिन जब किसी बेकसूर को पकड़ कर कोई गर्म तवे पर बिठाए, कोई उबलती देग में डुबकियाँ दे तो दांव बदलना पड़ता है। भक्ति के लिए शक्ति की उपासना करनी पड़ती है। यही तो गुरु महाराज के दादा गुरु हरगोबिन्द जी ने दो तलवार धारण करके किया था। एक तलवार पीरी की और एक तलवार मीरी की।'

मैं ! मरी, तभी तो दशमेश ने कहा है :

प्रिथम उयावहु जगत् तुम, तुमही पंथ बनाई,
आप ही तुम झगड़ा करो, तुमहीं करो सहाई।

मैं तो '–शस्त्र नाम माला' को शस्त्रों की जानकारी के लिए पढ़ती रही हूँ।'

"गुरु महाराज की दृष्टि में शस्त्र महा-शक्ति का प्रतीक है, कहते हैं :"

'जिनको तुम कृपा करी, भग भगत् के भूप।'

वे तो यह भी मानते थे कि तलवार का धनी होने वाले के लिए शक्ति के द्वार खुल जाते हैं :

'मुक्त जाल जमके कटे, जिने गह्यों एक बेर।'

'अब मुझे समझ आई है, जब मैं ध्यान में बैठती हूँ, क्यों मेरी आंखों के सामने कलगीधर नीले घोड़े पर सवार, हाथ में बाज़, कन्धे पर तीर, पीठ पर तरकश–इस तरह का कोई चित्र घूमने लगता है ?'

वह तो साफ कह रहे हैं :

"कवच शबद प्रिथमें कहो, अन्त शबद अर देहू।
सबही नाम किरपान के, ज्ञान चतुर जीए लेहू।
सत्र शबद प्रिथमे काहे, अन्त दुष्टपद भाखु
सभौ नाम जग नाथ के, सदा हिरदें में राखू।"

"यह 'शस्त्र नाम माला' कोई कोश नहीं, कोई शब्दकोश नहीं, यह तो ब्रह्म ज्ञान है। ज्ञान शक्ति होता है। शक्ति भगवान है। शक्ति तलवार है।"

"और कृपाण में, तीर-कमान में, नेजे में, कटार में, और बन्दूक में।" उन्होंने कहा तो है :

"असि कृपाण खण्डों खड़ग, तुपक तबर अर तीर।
सैफ, सरोही, सैहथी, यही आरे पीर।
तीर तुही सहथी तूही, तूही तबर तरवार।
नाम तिहारे जो जपे, भए सिन्ध भव तार।"

यदि शक्ति हो तो कमज़ोर की मदद हो सकती है, धर्म समझा रहा था। 'अन्याय के साथ टकराया जा सकता है। बेआसरों को आसरा दिया जा सकता है। ऊंच-नीच का भेद मिटाया जा सकता है। शक्ति हो तो कोई किसी के साथ लूट-पाट नहीं कर सकता। सत्य का मार्ग साफ किया जा सकता है। बाबा नानक का स्वराज राज्य कायम किया जा सकता है।'

"कायरता पाप है, डरना गुनाह है। गुरु नानक ने निर्भय होने की शिक्षा दी है। शक्ति प्राणी का भय दूर करती है। जब भय दूर होता है प्राणी की अच्छाइयाँ उभर आती हैं।"

'हिंसा के शिकार लोग न अच्छा खा सकते हैं, न स्वाद पा सकते हैं। सहम कर ईश्वर की भक्ति भी नहीं हो सकती।

"दशमेश का कहना है कि ईश्वर ने इस संसार की उत्पत्ति करके इससे अपने आप को अलग नहीं कर लिया। ईश्वर इसमें समाया हुआ है।" ईश्वर को उन्होंने महाशक्ति कहा है शस्त्र शक्ति होता है; चाहे तलवार हो, चाहे तीर कमान, महाशक्ति का अंश शमशीर ईश्वर है।"

'वे तो शस्त्रों को प्रणाम करते हैं।' भागां बोली और फिर उदारहण देने लगी :

सैफ सरोही सत्र अरि सारंगारि जिहनाम
सदा हमारै चित वसे, सदा करो मम काम।

और खूबसूरती यह है कि इस तरह तकनीकी विषय को कलगीधर ने पद में प्रस्तुत किया है और कविता भी वह जिसमें अलंकारों का भी प्रयोग किया गया है। तलवार उनकी दृष्टि में 'शस्त्रपति' है (शस्त्रों की रानी) या फिर 'शस्त्रदुष्ट' है। (शस्त्रों की वैरी) कोई सोच सकता है कि इस तरह के विषय पर ऐसे काव्य की रचना की जा सकती है ?

"तिमरउ चर हाँ, भगन बखानहु।
सुत चर कहि पति शबद प्रमानहु।
शमरू शबद तिह अन्त भणीजै।
नाम 'तुपक' के सभी लेहि लीजै।"

वाह ! वाह !! हाँ सच एक ग्रन्थ और भी है। बीबी ने उसे सन्दूक में बंद करके ताले में रखा हुआ है। मैंने एक दो बार उसके विषय में पूछा और कहने लगे, तुम्हारे पढ़ने योग्य नहीं, भागां कह रही थी।

'यह क्या बात हुई ? कलगीधर की कौन-सी रचना है, जो किसी के पढ़ने योग्य नहीं ? मैं उनके साथ बात करूंगा।'

22

उस दिन धर्म दिल्ली में रायसेना गांव में गुरु तेगबहादुर जी की समाधि का जिक्र कर रहा था। कुछ गिने-चुने गुरुसिक्खों को इसका पता था और वे चोरी-छिपे वहाँ इकट्ठे होते थे। शबद-गायन होता। पाठ तो एक गुरुसिक्ख दोनों समय करता था। शाम को दीया भी जलता था। किन्तु यह सब कुछ लुक-छिप कर होता था। औरंगजेब को कहीं पता लगता तो वह जो कुछ भी कर गुजरता, वही थोड़ा था। सफदरजंग मदरसे जाते हुए रायसेना गांव राह में पड़ता था। एक पहाड़ी-सी की गोद में था।

और तो और गुरु पियारे दिल्ली में कोतवाली के सामने चांदनी चौक में, वह स्थान जहाँ गुरु तेग बहादुर जी की शीश गिरा था, फूल भेंट कर आते थे। पता नहीं किस समय, किस तरह स्वयं अपनी श्रद्धा के फूल उस पवित्र स्थान पर छोड़ जाते। सुबह कोतवाली वाले देखते तो सटपटा कर रह जाते। लाख पहरे बिठाते, वैसे भी कोतवाली के बाहर रात-दिन पहरा रहता था, पर शहीदी वाले दिन तो जैसे फूलों की ढेरी लगी होती, जैसे कोई गठरी भर कर छोड़ गया हो। फूल होते और कागज के टुकड़े जिन पर चित्रित होता 'शीश दिया पर सिरर न दिया, और यह पढ़कर मुगल कर्मचारियों को लगता जैसे उनके चेहरे पर किसी ने थप्पड़ मार दिया हो।

यह सब कुछ सुनकर भागां का अंग-अंग कसमसा उठता। वह क्यों नहीं इस तरह का कुछ कर सकती थी ?

उस दिन बैठी-बैठी वह कहने लगी, धर्म वह ग्रन्थ पढ़ने का मेरा मन हो रहा है, जो बीबी ने सन्दूक में छिपा कर रखा हुआ है।

'क्योंकि बीबी ने कहा है, तुम्हारे पढ़ने का नहीं ?'

'हाँ, पता नहीं इसीलिए। चोरी का फल मीठा होता है न।'

'मुझे पता है, वह 'हकायता' होगी। मैंने इस संग्रह को पढ़ रखा है। दिल्ली में एक गुरुसिक्ख उसकी एक पोथी बनवाकर ले गया था।'

'क्या है इसमें जो बीबी हमसे छिपा-छिपा कर रखे हुए है ? तुम्हें भी तो पढ़ने के लिए उन्होंने नहीं दिया। कहती है जवान-जहान लड़कों-लड़कियों के पढ़ने की चीज़ नहीं।"

'हकायतां' में कहानियाँ हैं'। धर्म बताने लगा, 'कोई ग्यारह कहानियाँ क्योंकि ये कहानियाँ फारसी में बयान की गई हैं, इनमें फारसी शायरी का मुहावरा इस्तेमाल किया गया है। शायरी का रंग है।'

'फारसी मैंने भी पढ़ी है, इसमें जवान-जहान लड़के-लड़कियों से छिपाने वाली कौन-सी बात हुई ?"

'फारसी शायरी की परम्परा के अनुसार इसमें शराब का ज़िक्र है। बार-बार 'सब्ज रंग' का चित्रित किया गया है, चाहे गुरु महाराज इसको इलाही मस्ती के अर्थों में लेते थे। जैसे :

बिदेह साकीया सागरि सबज़ गूं।
कि मा रा बकारसत जंग अन्दरूं।
लबालब बकुन दम बदम नेश कुंन,
गमि हर दो आलम, फारामोश कुंन।

(हकायत)

इसमें भी लड़ाई का ज़िक्र है। जंग को दशमेश कभी नहीं भूलते प्रतीत होते। भागां ऐसे शौक से अपनी राय दे रही थी जैसे उसको गुरु महाराज का ऐसा करना अच्छा लगता हो।

सातवीं 'हकायत' में भी वे इस तरह का विचार पेश करते हैं :

बिदिह साकीया सुर्ख रंगों फरंग।
खुश आमद खश वकति ज़द तेग जंग।

इस तरह ही कुछ छठी 'हकायत' में फरमाया है :

बिदिह पिआला फीरोज़ रंगीन रंग,
कि मा रा खुश आमद बसे वकति जंग।

यही बात फिर दोहराई गई है पहली 'हकायत' में।

बिदिह साकीया, सागरि सबज़ रंग,
कि मारा बकारसत, दर वक्त जंग।"

'ऐसे लगता है कि भंगाणी में जो जंग गुरु महाराज अभी-भी जीत कर हटे हैं, इसका उनको इल्म था, उसी की तैयारी कर रहे थे।' भागां ने निष्कर्ष निकाला।

बिदिह साकीया पिआला फीरोज़ फाम।
कि मारा बकारसत वकति तुआम।
ब मन दिह कि खुशतर दिमागि कुनम।
कि रोशन तबाअ चूं चरागि कुनम।

(हकायत–4)

'वाह, वाह।' भागां जैसे पुलकित हो रही हो। 'तुम्हारे हाथ कभी यह पोथी लग जाए तो तुम अवश्य पढ़ना, फारसी का कलगीधर का बयान अनुपम है। पर कहानियाँ लिखने का काम किसी और पर भी छोड़ा जा सकता था।

'तुम सही कहती हो। मैंने भी यही सोचा था। मसलन पहली हकायत ही लो। यह कहानी मानधाता नाम के एक राजा की है जिसके चार पुत्र थे। यह फैसला करने के लिए कि कौन उसकी गद्दी का सबसे अधिक योग्य हकदार है, वह बड़े बेटे को बहुत सारे हाथी देता है, उससे छोटे को बहुत सारे घोड़े। तीसरे को बहुत सारे ऊंट और चौथे बेटे को सिर्फ आधा दाना चने का और एक दाना मूंग का दे दिया। समय आने पर तीन बड़े भाई अपने हाथी, घोड़े, ऊंट बेच कर बराबर कर देते हैं पर चौथा पुत्र जिसको डेढ़ दाना अनाज मिला था, उसको बीज कर अपनी मेहनत और लगन द्वारा एक के बाद एक फसल उगाता है और अच्छा-खासा जमींदार बन जाता है। आखिर जब गद्दी देने का समय आता है, इसी को राजगद्दी पर बिठाया जाता है। यह कहानी पढ़कर मैंने भी सोचा था कि यह काम गुरु महाराज किसी और कवि पर छोड़ सकते हैं। अब तो उनके पास नन्दलाल 'गोया' जैसा फारसी का आलम आया सुना है।

'मैं सोचती हूँ, दशमेश ने ये कहानियाँ लिखने का कष्ट उठाया है तो इनका कोई मनोरथ ज़रूर होगा।'

'बेशक हर कला पर साहित्य का अर्थ ज्ञान देना या संज्ञान में वृद्धि करना होता है।' अच्छा जीवन व्यतीत करने के लिए मनोरंजन की भी आवश्यकता होती है। कलगीधर जीवन के इस पहलू की अवहेलना नहीं होने देते। जो कड़वाहट, जो भ्रष्टाचार, जो गंदगी हमारे समाज में है, पाऊंटा के पर्दोदारी के जीवन में गुरुसिक्खों को उसकी भी जानकारी देते हैं। अच्छा

बनने के लिए बुराई से भी दो-चार होना पड़ता है। मसलन एक हकायत एक कुलक्षणी औरत की है जो अपने पति का सिर काट कर अपने महबूब को मिलती है। मिलकर दोनों परेशान होते हैं। एक और कहानी में कोई बदचलन औरत अपने दिलदार के लिए अपने दो पुत्रों का वध करती है और फिर फकीरनी होकर अपने प्रेमी से मिलती है। एक और कहानी में एक रानी अपने महबूब का सिर-मुंह मुंडवा कर अपने साथ रखती है और उसका मालिक राजा सोचता है कि वह उसकी सहेली है। एक और कहानी किसी चाण्डाल औरत की है जो पति के अचानक घर लौटने पर अपने चाहने वाले का मांस पकाकर उसको खिलाती है।'

'सचमुच इन कहानियों के बिना क्या छूटा जा रहा था ?' भागां के मुंह का स्वाद जैसे कसैला हो गया हो।

'पर ज़िंदगी में ऐसा होता है। जीवन की यह कड़वी सच्चाई है, जो आस-पास के ओछेपन से वाकिफ हों, उनकी सोच में अधिक समझ होती है, जिन्होंने लड़ाई देखी हो उनको अमन की अधिक आकांक्षा होती हैं जिन्होंने जीवन को सच्चा-सुच्चा बनाना होता है, वे पहले उसके कोने-अंतरों को साफ करते हैं। जिन फोड़ों में मवाद भर जाती है, उनको अक्सर चीरा देना पड़ता है। अगर ज़र्राह को फोड़े का ज्ञान ही न हो, तो वे फोड़े नासूर बन जाते हैं।'

'नासूर तो हमारी परम्परा में बहुत अधिक आगे-पीछे बने हुए हैं।' इनका इलाज करना होगा और यही बात दशमेश को परेशान कर रही है। यही बात नानक को परेशान रखती थी और वे कभी पूर्व, कभी पश्चिम, कभी उत्तर और कभी दक्षिण के दौरे करते रहते थे।"

"पर सारा जीवन तो ऐसा नहीं। हर औरत और हद मर्द तो इस तरह की कुटिलता करने वाला नहीं।" 'बेशक, मैं कब कहता हूँ, हकायतों की सारी कहानियाँ इस तरह की बुनावट की हैं। इसमें अच्छे लोगों के चरित्र भी पेश किए गए हैं। एक कहानी में राजा से उसके मंत्री ने पूछा, उसके बाद किसको तख़्त पर बिठाया जाए। राजा ने कहा 'वह जिसको हाथ न हों, पैर न हों, आंख और जुबान न हो।' "क्या मतलब ?" मन्त्रियों को जैसे बात समझ न आई हो। राज़ा ने कहा, 'वह जो किसी का हक न छीने, वह जो बुरे काम की ओर कदम न बढ़ाए, वह जो बुरी नज़र से किसी की ओर देखता नहीं, वह जो किसी को बुरा नहीं बोलता, वह आदमी राजगद्दी का हकदार समझा जाना चाहिए।' एक और हकायत में प्रेम करने वाली औरत अपने महबूब के

लिए लाखों जाल बुनती है। शेरशाह के तबेले में से उसकी खुशी के लिए घोड़े चुरा कर उसे पेश करती है।

'साथ ही बुराई बेशक अपने आप में बुरी होती है, बुराई के पास ही कहीं सांस रोके अच्छाई भी दुबकी रहती है। कोई प्राणी बिल्कुल बुरा नहीं होता, उसमें अच्छाई का अंश भी होता है, जो कुचला हुआ, अनदेख पड़ा रहता है। चंगेज खां ने लाखों लोगों को मौत के घाट उतारा। वह एक जालिम और खूंखार हुकमरान था। बहशी और निर्दयी। जैसे जनता का वैरी हो। तो भी कहते हैं, उसमें कई खूबियाँ भी थीं। कई लोग उसको 'शमन' (श्रमण) कहकर याद करते थे। 'शमन' (श्रमण) धर्म में साधू को कहते हैं। चंगेज ईश्वर में आस्था रखता था। यह कहा जाता था कि सारी दुनिया खुदा का घर है। इबादत कहीं भी की जा सकती है।

हिलाकू खान ने बगदाद की ईंट से ईंट बजा दी पर हज़रत अली की मज़ार को हाथ नहीं लगाया, बल्कि उसकी हिफाज़त की।

चंगेज के पोते कबलई खां ने पोप को चिट्ठी लिखकर इसाई पादरियों को उसके दरबार में भेजने के लिए कहा। उसने दुनिया भर के धर्मों की एक सभा बुलाई जिसमें बौद्ध, इसाई और मुसलमान शामिल हुए।

तैमूर को दुनिया भर के लोग एक दरिन्दे की तरह देखते हैं, कौन-कौन से जुल्म उसने नहीं ढाए ? जिधर उसकी फौजें जातीं, तहस-नहस करती जातीं। पर कहते हैं, असल में एक सूफी था। जंग के मैदान में भी वह अपने साथ कोई-न-कोई दरवेश जरूर रखता था। रात-भर उसके तम्बू में शेरो-शायरी होती रहती, उसके मुंशी किताबें पढ़-पढ़ कर उसको सुनाते थे। तैमूर अपने खेतों में अपने-आपको 'बन्दा-ए-खुदा' लिखता था।

23

धर्म को दिल्ली लौटे कई दिन हो गए थे। पिछले पखवाड़े से आलम और वीरांवाली भी पाऊंटा गुरु महाराज के दर्शनों के लिए गए हुए थे। घर में भागां अकेली थी।

कभी-कभी उसका दिल बहुत घबराने लगता था। घर के सारे धंधे करने होते थे। नितनेम पूरा हो जाता था। पढ़ने के लिए आगे-पीछे एकत्रित की गई सामग्री खत्म हो जाती थी और फिर भी काफी समय उनके पास बच जाता। इस खाली समय का वह क्या करे ? उसे कुछ समझ न आ रही थी।

आजकल धर्मसाल-यात्री भी कोई इतने नहीं आ रहे थे जिनके लिए

लंगर तैयार करना हो, उनकी किसी और सेवा आदि का अवसर मिले। फिर भी जब उसे समय मिलता, भागां धर्मसाल के पास एक चक्कर नित्य मार लेती। पता नहीं कोई जरूरतमंद निकल ही आए।

उस दिन जब भागां धर्मसाल गई, उसने देखा एक नौजवान नंगी खाट पर धूप में पड़ा कराह रहा था। बुखार में तप-तपा रहा चेहरा। नीम बेहोशी में निढाल हुआ पड़ा था। 'तपता हुआ कढ़ाह' जैसे चढ़ा हो और आगे-पीछे कोई था भी तो नहीं, उसकी बात पूछने वाला। पता नहीं धर्मसाल के भाई साहब कहाँ गए हुए थे।

भागां को उस बीमार ने देखा और हाथ जोड़कर पानी का घूंट मांगा। उसका मुंह सूख रहा था। ज़बान तालू के साथ लग रही थी। भागां ने सुना और जल्दी ही पानी का कटोरा भर लाई। पानी पीकर जैसे उस यात्री की जान में जान आई हो। कितनी देर भागां की ओर हाथ जोड़े टुकर-टुकर देखता रहा, जैसे उसका रोम-रोम शुक्रगुज़ार हो।

'आपको तो बुखार लगता है, आपका चेहरा लाल बिम्ब-सा हो रहा है' भागां ने अजनबी से पूछा।

'हाँ, ताप बहुत तेज़ है।' परदेसी मुश्किल से बोल पा रहा था।

'आपने कोई दवाई ली है ?' भागां ने पूछा।

'नहीं, भाई साहिब दवाई लेने सुबह के गए हैं। अभी तक नहीं लौटे। अब तो दोपहर होने लगी है। उनको आना चाहिए।

यह कहते हुए वह नौजवान जैसे मूर्च्छित हो रहा हो। उसकी आंखें ऊपर को लगी हुई लगती थीं।

भागां ने आगे बढ़कर उसके माथे पर हाथ रखा जैसे वह न्यौछावर जा रही हो। इसका ताप तो सिर को चढ़ रहा है। भागां घबरा उठी। यह तो हाथों से जा रहा है। भागां ने उसके माथे पर हाथ रखा और बीमार की पलकें बन्द हो गईं। ऐसे लगता जैसे वह किसी कुएं में धंसता जा रहा हो। भागां को कुछ समझ नहीं आ रही थी। आगे-पीछे कोई भी नहीं था जिसको आवाज़ देकर वह मदद के लिए बुलाए।

करे भी तो क्या ? भागां परेशान 'धन्य निरंकार', 'धन्य निरंकार' करने लगी। 'धन्य बाबा नानक', 'धन्य निरंकार' कर रही थी। उसने अपने नर्म-नाज़ुक दोनों हाथों से बीमार नौजवान का तपता मुंह ढक लिया था। जैसे अपनी बांहों में उसे भर लिया हो। भागां को लगा जैसे परदेसी का ताप उसकी रंगों

में, उसके पट्ठों में उतर रहा हो। धीरे-धीरे उतर रहा था।

भाई जी थे कि आने का नाम ही नहीं ले रहे थे। धर्मसाल में इस तरह का सोता तो कभी नहीं पड़ा था। चिड़िया का पर भी नहीं फड़क रहा था। न कोई माथा टेक रहा था न प्रसाद चढ़ा रहा था। भागां न मरीज को छोड़कर जा सकती थी, न उसको और कुछ सूझ रहा था जो वह करे।

बेबस छल-छल उसके आंसू गिरने लगे। 'धन्य बाबा नानक', 'धन्य निरंकार' करती जा रही थी और आंसुओं के हार जैस पिरो रही हो। भाई साहब पता नहीं कहाँ चले गए थे। उस शाम भागां को ताप चढ़ गया और परदेसी नौजवान के होशो-हवास ठीक थे। भागां अजनबी को अपने घर ले आई थी। लोग क्या कहेंगे। उसको लोगों की रत्ती-भर की परवाह नहीं थी। जिस शहर की धर्मसाल का भाई ऐसे किसी बीमार को अपने आंगन में लिटाकर कहीं जाने जा बैठ सकता था, उसके आस-पड़ोस की उसे कोई परवाह नहीं थी।

एक दिन, दो दिन, चार दिन, हफ्ता वह परदेसी भागां के घर ही टिक गया।

दयाराम नाम था। कैसा सुन्दर नौजवान था। ऊंचा लम्बा, गोरा रंग, हल्की नीली आंखे। बोलता तो जैसे आस-पास नगमें छिड़ जाते। लाहौरिए कितना मीठा बोलते हैं और साथ ही कितने सलीके वाले। सदाचार में उनका कोई मुकाबला नहीं था। गुरु घर का दीवाना, ढेर सारी गुरुबाणी उसने कण्ठ की हुई थी।

और फिर भागां को बातों-बातों में पता लगा वह तो लाहौर के भाई दूनीचन्द की बेटी शक्ति का दोहता था। मां-बाप का सबसे छोटा पुत्र। घर से भाग कर गुरु महाराज के दर्शनों के लिए आया था। किसी ने उसको बताया कि गुरु महाराज पाऊंटा से आनन्दपुर लौट आए थे। यहाँ आकर जब उसे पता लगा कि उसकी सूचना गलत थी और उसको कुछ इस तरह की निराशा हुई, इस तरह का धक्का लगा कि उसे बुखार आ गया। पर शक्ति तो उसका सुना हुआ नाम था। लाहौर वाले भाई दुनीचन्द का भी कभी-कभी उनके यहाँ जिक्र आता था। भागां को सही-सही कुछ नहीं पता था और दो-चार दिनों में उसकी मां आ जाएगी, उसको ज़रूर इसकी जानकारी होगी।

फिर दयाराम ने भागां को भाई दुनीचन्द की एक सुनी-सुनाई बात

सुनाई। बार-बार कहता पता नहीं सच है, पता नहीं झूठ, पर मेरी मां हमें सुनाया करती थी।

कहते हैं, जब बाबा नानक भाई दुनीचन्द ने यहाँ आए, उसके घर भण्डारा चल रहा था। 'यह किस लिए ?' बाबा जी ने सहज स्वभाव से पूछा। भाई दुनीचन्द ने बताया, 'आज मेरे पिता का श्राद्ध है। मैं उनकी याद में हर साल 365 ज़रूरतमंदों को भोजन करवाता हूँ ताकि वर्ष भर उनकी आत्मा शान्त रहे। गुरु नानक ने सुना और कहने लगे, तुम्हारा पिता तो लाहौर शहर के बाहर भेड़िए की जून में भूखा-प्यासा फिरता है, आज तीन दिनों से उसके हाथ कोई शिकार नहीं लगा। यह सुनकर दुनीचन्द के पसीने छूटने लगें बाबा जी ने कहा, घबराने की ज़रूरत नहीं, तुम मेरे साथ चलकर स्वयं देख लो। भाई दुनीचन्द बाबा जी के साथ शहर के बाहर गया। वहाँ सचमुच उनकी भेंट एक भेड़िए के साथ हुई जिसे दुनीचन्द अपने साथ ले आया और उसे तुआम खिलाया। जब भेड़िए का पेट भर गया तो गुरु बाबा की करामात, भेड़िया फिर आदमी के रूप में आ गया और उसने बताया कि जब मेरी सांस निकल रही थी, मुझे लालसा हुई कि मैंने सारी उम्र गुज़ार दी पर कभी मांस नहीं खाया। तभी मुझे भेड़िए की जून मिल गई। यह कहकर भाई दूनीचन्द का पिता फिर भेड़िया बन गया।

कहानी बताकर भागां का हसीन अजनबी बार-बार कहता, गलत हो सकती है। यह बात गलत ही होगी शायद। बस कुछ इस तरह की सुनी-सुनाई है। हमारे परिवार में यूं प्रचलित है।

जब वह यह कह रहा होता भागां को उस पर बड़ा लाड़ उमड़ता। कितन सीधा था, जैसे अंगूठी में जड़ा आरसी का टुकड़ा हो।

उस दिन बैठे-बैठे भागां को कहने लगा, तुम्हें एक बात बताऊं ?' और फिर चुप हो गया।

एक पल प्रतीक्षा करके भागां ने कहा, तुम कोई बात बताने जा रहे थे। हाँ सच्ची, मैंने तुम्हें इतने दिन नहीं बताई। और फिर वह चुप हो गया। उसका चितचोर परदेसी। भागां की उत्सुकता बढ़ रही थी।

अच्छा, फिर कभी सही। बेकार की बात है। बेकार खाली दास्तान और फिर उसने चुप्पी साध ली खाली तो हम हैं, बाहर रिमझिम फुहार पड़ रही है। हल्का-हल्का अन्धेरा हो रहा है। जाड़ों की झड़ी लगी हुई है, अंगीठी में आग दहक रही है। सामने सूखी मूड़यों का ढेर लगा है, चाहे आग सारी रात

जलती रहे।

तुम्हारे हाथ में सलाइयाँ तेज़, बहुत तेज़ चल रही हैं। परदेसी ने मुस्कराते हुए बात आगे बढ़ाई, क्योंकि मैं तुम्हारे लिए दास्ताने बना रही हूँ। ठण्ड और बढ़ेगी और तुम घर से चलते समय गर्म कपड़े लेकर नहीं आए हो।

फिर दोनों हंस पड़े। हंसते रहे, हंसते रहे। कोई हंसने वाली बात नहीं थी, पर वे हंसते रहे। वे ऐसे बातें कर रहे थे। जैसे कोई दोगाना गाया जा रहा हो।

जब हंसी खत्म हुई भागां ने पूरी संजीदगी से कहा, 'अब तुम वह बात बता सकते हो।'

'हाँ, हाँ जरूर।' और भागां का अजनबी गला साफ करने लगा।

उस दिन धर्मसाल के आंगन में बिल्कुल अकेला बुखार में निढाल जब वह नीम बेहोशी की हालत में पड़ा था, उसको लगा जैसे वह उड़ता-उड़ता कहीं सातवें आसमान पर पहुंच गया हो। वह क्या देखता है, वह तो किसी बगीचे में था। फूलों से लदे हुए बूटे। फलों के भार से झुके पेड़। रंग-बिरंगे पक्षी चहचहा रहे थे। कहीं खरगोश छलांगे मार रहे थे। कहीं हिरन कुलांचे भर रहे थे। कल-कल करते पानी के झरने। सोई-सोई झीलें। झीलों के किनारे ऊंचे घने पेड़, पेड़ों पर पड़ी पींग। पींगों पर बैठी परियां, हंस रही थी, झूले ले रही थीं। दूर कोमल-कोमल घास पर, गुनगुनी धूप में, अलसाए हुए सुस्ता रहे, खड़ामा-खड़ामा आ रहे हैं और फिर सारे मिलकर नाचने लगते हैं। बाहों में बाहें डाले वे नाच रहे हैं। फरिश्तों को पुकार रही हैं और फिर वे न थकते हैं न हारते हैं और फिर एक तरफ बिल्कुल अकेले खड़ा उसको देखकर मंद-मंद मुस्करा रही कोई उसकी तरह बढ़ती है। अगले क्षण वह उसे अपने आलिंगन में ले लेगी और उसकी आंख खुल जाती है और धर्मसाल के आंगन में नंगी खाट पर पड़ा, वह भागां को एक घूंट पानी के लिए कह रहा था। उसको बहुत प्यास लग रही थी। उसका गला सूख रहा था।

भागां ने सुना और खिलखिला कर हंसने लगी। हंसती रही, हंसती रही और इसका यह मतलब हुआ, मैं तुम्हें जन्नत से निकाल कर ले आई हूँ।

जन्नत से निकालकर स्वर्ग में। उसके परदेसी अतिथि ने कहा और फिर वे कितनी ही देर एक-दूसरे की ओर देखते रहे। बिटर-बिटर खुली पलकें जैसे उनकी पलकें एक दूसरे से समा गईं हों।

सामने अंगीठी में जल रही आग पता नहीं कब की मंद पड़ गई थी।

बाहर अन्धेरा गहरा हो गया था। रात पल-प्रतिपल बढ़ रही थी। हवा और तेज़ हो गई थी। यह तो ऐसे लगता था जैसे तूफान हो। ठण्ड हर पल-दिन बढ़ती जा रही थी। भागां ने अंगीठी में और बालन डाला और टहनियाँ जलाई और फिर देखते-देखते आग दहकने लगी, क्षण में ही आग पर्याप्त हो उठी। अन्धेरा छंट गया था। अंगीठी की आग रोशनी भी कर रही थी, सेंक भी पहुंचा रही थी।

भागां और उसका परदेसी पास-पास बैठे रहे थे।

कुछ समय से परदेसी के होठों से गुरु तेग बहादुर जी की कही यह तुक थिरक रही थी :

नर अचेत पाप से डर रे।

भागां ने भी यह तुक सुन रखी थी। वह हुमकती हुई उठी और अंगीठी के सामने दरी और दसतरखान बिछाकर खाना परोसने लगी।

24

उस दिन परछत्ती की सफाई करती वह क्या देखती है, एक आले में चाबियों का एक गुच्छा छिपा कर रखा था। भागां ने देखा और उसका अंग-अंग मचल उठा। गुच्छे में संदूक की चाबी होगी और सन्दूक में वह पोथी थी जिसको उसकी मां ने उसको पढ़ने से रोका हुआ था।

यह अवसर था चोरी करने का। चोरी के बेर कितने मीठे होते हैं। साथ ही आजकल तो उसका हसीन परदेसी भी उनके ठहरा हुआ था। दोनों मिलकर पढ़ेंगे। जवान-जहान लड़कियों के पढ़ने वाली यह रचना नहीं थी। इस तरह का कुछ उसकी मां ने कहा था।

चाबियों का गुच्छा पकड़े हुए एक स्वाद-स्वद में भागां की पलकें मुंद गईं। वह तो उस ग्रन्थ को जरूर पढ़ेगी। क्यों न पढ़े ? जो बात लिखत में आ जाए, वह पढ़ने के लिए ही तो होती है। पर उसकी मां ने मना किया था। उसको कौन-सा मुंह वह दिखायेगी ? और भागां का मुंह दपदपाने लगा। वह पसीना-पसीना हो गई। उसने सोचा चाबियों का गुच्छा वह दोबारा वहाँ रख देगी जहाँ से उसने उठाया था। वह अपनी मां का कहा मानेगी और फिर उसका मन कहता–उसकी मां ने कभी किसी का कहना नहीं माना था ? हमेशा अपने मन की थी। आखिर वह जवान-जहान थी। अपने नफे-नुकसान की उसे समझ थी। ढेर सारे ग्रन्थ उसने पढ़ रखे थे। उसने फारसी पढ़ी थी, संस्कृत पढ़ी थी। पढ़ने से क्या होना है ? वह पढ़कर पोथी को वैसे के वैसे

संदूक में संभाल कर रख देगी। कोई कहर नहीं गिरने वाला और वह जल्दी-जल्दी चाबियों का गुच्छा पकड़े संदूक की ओर चल दी। परले खाने में होगी।

इतने में सामने आंगन में उसका परदेसी आ गया, सुबह का धर्मसाल गया हुआ था। जैसे हर रोज वह करता था। भागां की तबियत थोड़ी खराब थी और वह पीछे घर रह गई थी।

नर अचेत पाप ते डरू रे।

आंगन में कदम रखते हुए वह गाता सुनाई दिया। भागां की उसांस निकल गई। वह सिर से लेकर पांवों तक कांप गई। जैसे किसी ने उसे गले से पकड़ लिया हो। चाबियों का गुच्छा उसके हाथ में से फर्श पर जा गिरा।

"क्यूं तुम परेशान लग रही हो ?" उसके मेहमान ने पूछा।

'कुछ नहीं कुछ नहीं। जल्दी-जल्दी भागां ने चाबियों का गुच्छा फर्श से सम्भाला और सामने रसोई की ओर चल पड़ी। उनके नाश्ते का समय हो गया था।

चौके में बैठे नाश्ता कर रही, भागां अपने परदेसी से पूछ रही थी, 'अगर गुरु साहिब अचेत में भी पाप से बचने के लिए कहते हैं और फिर जो कोई जान-बूझ कर, देखते-सुनते पाप करे उसका क्या हाल होता होगा ?'

कई बार ऐसे होता है, जिसको हम पाप समझते हैं, वह पाप होता नहीं है। धर्म उसे बता रहा था, 'कई बार एक जगह जिसे पाप जाना जाता है, दूसरे स्थान पर वह पाप नहीं समझा जाता। आज का पाप शायद कल पाप न हो। कई बार पाप करना पड़ता है, कोई बड़ा पुण्य कमाने के लिए। मेरी नज़रों में जो पाप है, शायद तुम्हारी नज़रों में पाप न हो। हो सकता है तुम्हारी मां जिस बात को पाप कहती हो वो बात करके तुम्हें राहत मिलती है। साथ ही सन्त रविदास ने जो यह कहा-'जउ पै हम न पाप करन्ता, अहै अनन्ता, पतित खण्डन नाम कैसे हुन्ता ? यह एक बड़ा सहारा है। हमारे जैसे गुनहगार प्राणियों के लिए। साथ ही.......।"

'जरा रुक, वह मां वाली बात तुमने कही थी ज़रा फिर से कहना', भागां का निवाला उसके हाथ में पकड़ा रह गया।

'मैंने कहा था, हो सकता है, तुम्हारी मां किसी बात को पाप कहती हो, जो बात करके आपको राहत मिलती है।'

'क्या जिस बात से राहत मिले, वह पाप नहीं होती ?'

'देखना होता है राहत कैसी है। राहत के लिए ही तो आदमी सब-कुछ करता है। गुरु महाराज ने शीश गंवा दिया तांकि हिन्दू जगत् को जनेऊ पहन कर राहत मिले।'

और गुरु बाबा नानक ने वही जनेऊ पहनने से इन्कार किया था।' भागां जैसे टूटकर पड़ी हो। जैसे उसने बाज़ी मार ली हो। उसके दाहिने हाथ की उंगलियों में पकड़े निवाले को उस थाली में रखते हुए, थाली के पास रखी चाबियों के गुच्छे को उठा लिया।

उसका परदेसी मेहनमान नाश्ता कर रहा था। साथ-साथ वह अपनी दलील जारी रखे हुए था। कई बार किसी बड़े पाप से बचने के लिए आदमी को कोई छोटा पाप करना पड़ता है।

और फिर छोटे पाप करता-करता आदमी बड़े पाप करने लगता है। भागां को समझ नहीं आ रही, कभी उस तरफ से, कभी उस ओर से दलील देने लगती।

इतने में मेहमान नाश्ता कर चुका था। एक परांठा बच गया था। 'यह भी खा लीजिए नहीं तो चूहा जी महाराज आकर इसको खत्म कर देंगे।

तुम इसे चूहे को पकड़ने के लिए पिंजरा क्यों नहीं लगाती ? चूहे का तो कोई इलाज करना होगा।

'हाँ, पर मुझे पाप से डर लगता है। बिचारे की रोज़ी बनी हुई है।'

'वाह, यह भी कोई बात हुई।'

'साथ ही पकड़कर उसका क्या करेंगे ?'

'पकड़कर उसको मार देंगे। चूहे को मारने का सबसे आसान तरीका है, पिंजरे को नदी के पानी में डुबो दो। कुछ समय बाद चूहा मरा हुआ निकलता है, न हींग लगे न फिटकरी और काम हो जाता है।'

'क्यों यह पाप नहीं, किसी की जान ले लेना ?' यही तो मैं बार-बार कह रहा हूँ, इस तरह के पापों के बिना जिन्दगी चलती नहीं।

न बाबा, मुझसे तो यह नहीं हो सकेगा। तो फिर आपको अपने घी डालकर बनाए लुस-लुस करते पराठें अपने घर के चूहों को खिलाने पड़ेंगे।'

तुम्हें पता है, मेरी मां कभी चूहे का नाम मुंह से नहीं निकालती। चूहों का ज़िक्र करना हो तो वह हमेशा 'घर वाले' कहकर उनको याद करती है।'

इसका मतलब हुआ घर के मालिक वे हैं और घर में रहने वाले मेहमान हैं। मेहमान ने हंसते हुए कहा और फिर वे उठ खड़े हुए।

रसोई घर से बाहर निकले ही थे कि उन्होंने देखा, बाहर आंगन में चूहे को अपने जबड़े में पकड़े बिल्ली तेज़-तेज़ सामने वाली मुंडेर कूद गई। आंगन में टप-टप बह रही लहू की बूंदों की लीक खींची हुई थी।

'ले भाई तेरे पाप और पुण्य का तो फैसला बिल्ली ने कर दिया है। चूहा अपना पेट पालने के लिए तेरी रसोई में डाका डालता है, बिल्ली ने अपना पेट पालने के लिए चूहे को खा लिया है।

और भागां बीबी, अभी तक इस जोड़-तोड़ में फंसी हुई है। चूहे को पकड़ना पाप है। चूहे को मारना उससे भी बड़ा पाप है। यह कह रही भागां अपने हाथ में पकड़े चाबियों के गुच्छे की ओर गौर से देख रही थी। शायद यह देखने के लिए कि कौन सी चाबी के साथ वह सन्दूक खोलेगी जिसमें वह पोथी रखी थी, जिसको पढ़ने के लिए उसकी मां ने उसे बरज़ रखा था।

'नर अचेत पाप से डरू रे, 'पुनः अपने होठों में गुनगुनाता हुआ उसका परदेसी मेहमान सामने अपने कमरे की ओर जा रहा था भागां का मन किया उसको पुकार कर कहे—तुम कहाँ जा रहे हो ? मुझे तुम्हारी जरूरत है। तुम्हारे साथ की मैं एक पाप करने जा रही हूँ। मुझे अकेली से यह सब कुछ नहीं हो सकेगा।

पर फिर भागां सोचती, जो आदमी बार-बार यह जता रहा था, 'नर अचेत पाप ते डरू रे', उसने उसकी क्या मदद करनी थी ? जिसको अनजाने में किए गुनाह से भी डर लगता है, उसने उसकी क्या मदद करनी है।...... इसका नाम दया क्यों है।' अब भागां सोच रही थी, इसका नाम कुछ और क्यों नहीं हो सकता था ? यह कैसा लाहौरिया है ? लाहौर वाले तो बड़े रंगीले सुने जाते हैं। खाने के शौकीन, गाने के शौकीन, नाच देखकर खुश होने वाले। यह है कि मां-बाप को नाराज़ करके, उनसे चोरी गुरु महाराज के दर्शनों के लिए निकल आया है।........मां-बाप से तो उसने कपट किया है। मां-बाप को नाराज़ किया है और इधर मैं हूँ, इतनी जुर्रत नहीं कि अपनी मां का संदूक खोल कर वह पोथी पढ़ लूं जिसको पढ़ने से उसने मना किया है।'

और भागां तेज़-तेज़ सामने सोफे की ओर चल पड़ी जिसमें वह संदूक रखा था। उस मरे में तो परदेसी मेहमान था। कुंजियों के गुच्छे को भागां ने बड़े जोर से पकड़ा हुआ था जैसे ही उसने अपनी पकड़ ढीली की ओर गुच्छा उसके हाथ में से गिर पड़ेगा। पंख लगाकर उड़ जायेगा। अभी उसकी मां आंगन मं आ धमकेगी और देखते ही गुच्छा उससे छीन लेगी। उसकी

मजाल कैसे हुई चाबियों को हाथ लगाने की ? जिस बात से उसे बरज रखा था, एक बेटी का उस बात को करना, उसकी हिम्मत कैसे पड़ी थी। उस कमरे के पास पहुंची भागां के पसीने छूटने लगे, यह आदमी तो अभी तक उसी तुक का जैसा स्मरण कर रहा था।......नर अचेत पाप ते डरू रे।

'मैं पाप करूंगी !' मैं पाप करूंगी !! मैं पाप करूंगी !!! जोर-जोर से पुकारती भागां सामने सोफे में जा घुसी जहाँ उसका परदेसी मेहमान पलंग पर लेटा आराम कर रहा था। इस तरह उसे अंट-शंट बोलता हुआ देख, वह पलंग से उठ खड़ा हुआ। भागां का चेहरा लाल बिम्ब हो गया था। आंखे फटी-फटी। चुन्नी सिर से ढलकी हुई। उसके बाल बिखरे हुए। उसके कदम लड़खड़ा रहे थे। हैरान वे एक कदम आगे बढ़ा। इस लड़की को पल के पल में क्या हो गया था ? 'मैं पाप करूंगी, मैं पाप करूंगी चीख-चीख कर पुकार रही भागां अगले क्षण उसकी बाहों में ढेरी हुई पड़ी थी।

दयाराम ने उसे पलंग पर लिटा दिया। पलंग पर लेटे भागें की पलकें नीम-बेहोशी सी में मुंद गईं।

कभी कुछ, कभी कुछ—परदेसी भागों का उपचार करता रहा। फिर ऐसे लगता जैसे वह गहरी नींद सो गई हो। वह साधारण लम्बे-लम्बे सांस ले रही थी। उसके पास एक चौकी पर बैठा दया अपनी किताब पढ़ने लगा।

दोपहर हो गई थी, जब भागां ने पलकें खोली। ठण्डी-ठार, जैसे कभी कुछ हुआ ही नहीं हो। एक मधुर हंसी उसके होठों पर थी।

दयाराम ने उसे इलायची वाले औटे हुए दूध का कटोरा पीने के लिए दिया और फिर उससे पूछने लगा, 'यह तुम्हें हो क्या गया था ?'

भागां अपने स्वप्न-दृश्य सुनाने लगी 'सतलुज के किनारे में सैर कर रही थी कि अचानक एक लहर उठी और मुझे अपने-साथ बहाकर ले गई। जैसे किसी के बाजुओं में कोई जकड़ा हो, मैं गोते खाने लगी। फिर मैं मदद के लिए पुकारने लगी। हाथ जोड़े फरियाद करने लगी। इतने में तुम छलांग मारकर दरिया में आ गिरे और मुझे आगोश में लेकर किनारे पर ले आए। जब मेरी आंख खुली, मैं पलंग पर लेटी थी।'

'कभी तुमने मेरी बाजू पकड़ी, कभी मैंने तुम्हारी मदद की।' दयाराम ने आहिस्ता से कहा और फर्श पर गिरा चाबियों का गुच्छा जो उसने उठाकर सम्भाल रखा था, भागां को पकड़ा दिया।

'संदूक में जो पोथी मेरी मां ने मुझे पढ़ने से बरजा हुआ था, आज

नौजवान लड़का-लड़की उसको हम पढ़ेंगे। भगों ने मुस्कराते हुए कहा। ऐसे उसे लगा जैसे वह सारी सूत दी गई हो।

'बड़े पाप से बचने के लिए छोटा पाप।' दयाराम ने अपने मन ही मन में कहा, पर वह मुंह से कुछ नहीं बोलता।

उसके चेहरे की ओर देखकर भागां कहने लगी, 'आप क्या सोच रहे हो ?'

'कुछ भी नहीं, कुछ भी तो नहीं। उसका परदेसी घबरा गया। मैं बताऊं तुमने मन-ही-मन क्या सोचा है ?

'क्या भला ?'

'कोई बड़े पाप से बचने के लिए छोटा पाप कर रहा है', भागां ने कहा और चाबियों का गुच्छा पकड़े पलंग से उठ खड़ी हुई।

25

भागां बाज नहीं आई।

अगली सुबह वह फिर दया के साथ धर्मसाल नहीं गई। 'तबियत मेरी आज भी ढीली है।' उसने यह कहकर अपने-आप को सुरखुरू कर लिया। उधर उसका परदेसी घर से चला, इधर भागां ने मां का संदूक खोलकर वह पोथी जिसे वीरांवाली ने उसे पढ़ने से रोका हुआ था, निकाल कर संदूक को फिर वैसे का वैसा बन्द कर दिया।

चरित्रोपख्यान नाम का ग्रन्थ था। पहले पन्ने पर ही कातब की ओर से मोटे अक्षरों में लिखा था—यह ग्रन्थ सम्पूर्ण नही। गुरु महाराज ने इसे पूर्ण करना है। कुछ अध्याय छूट गए हैं। कुछ अध्याय अभी लिखे जाने हैं। जो अध्याय इस पोथी में शामिल नहीं किए गए, उनका दशमेश ने अभी परिमार्जन करना है।

तो भी जो कुछ था, भागां जैसे-जैसे पढ़ रही थी, उसका स्वाद और बढ़ रहा था, उसके मुंह का स्वाद जैसे खट्टा-मीठा हो रहा था। ऐसे लगता, यह ग्रन्थ तो लिखा ही नौजवान लड़के-लड़कियों के लिए था। भागां हैरान हुई। उसकी मां ने यह क्यों कहा था, यह उसके पढ़ने योग्य नहीं था। कहीं कोई गलत-फ़हमी ज़रूर थी। यह सब कुछ तो हर नौजवान लड़के-लड़कियों को जानना चाहिए। यही सब तो सभी नौजवान लड़के-लड़कियों को पढ़ना चाहिए।

जैसे-जैसे भागां पढ़ रही थी, वह सोचती उसके लाहौर के मेहमान को

भी यह पोथी जरूर पढ़नी चाहिए, पर पहले वह स्वयं पढ़ेगी और फिर उसे हाथ-पांव पड़ने लगते, कहीं वह आ ही न जाए। वह जल्दी-जल्दी पन्ने पलट के सारी रचना जो उसके हाथ आई थी, उसको जैसे अपने में समो रही थी, बीच-बीच में चख रही हो। ऐसे जैसे डंगर पराई खेती में जल्दी-जल्दी मुंह मारते, आगे निकलते जाते हैं। खाते भी हैं, स्वाद भी लेते हैं, डरते भी हैं कहीं ऊपर से खेती का मालिक न आ जाए। कुछ इस तरह भागां की मनोदशा थी।

एक बैठक, दो बैठकें, चार बैठकें, जब तक भागां उस पोथी का पूरा पाठ नहीं कर चुकी, उसने सांस नहीं ली। बेशक, वह एक बार, दो बार और इस ग्रन्थ को पढ़ेगी। पर पहले वह अपने मेहमान को पढ़ाना चाह रही थी। उसके साथ उसने इस ग्रन्थ का ज़िक्र तो किया हुआ था। और पिछले दो दिन जो वह अलग अपने कोठे में बंद इसको पढ़ती रहती थी, दया इस बात को जानता था कि वही पोथी पढ़ रही होगी जिसको पढ़ने से उसकी मां ने उसे रोका हुआ था।

दयाराम ने जैसे ही उस रचना को पढ़ना शुरू किया तो जैसे खाना-पीना भूलकर, एक ही बैठक में उसे खत्म कर लिया। सारी रात उसके कोठे की बत्ती जलती रही थी। अगली सुबह वह उनींदों आंख लिए भागां के कमरे में आया और जुज़दान में लपेटी हुई पोथी भागां को देते हुए कहने लगा, 'यह गुरु महाराज की मौलिक रचना हरगिज़ नहीं हो सकती।'

भागां उसके मुंह की ओर देखती रह गई। उसके चेहरे से ऐसे लग रहा था जैसे वह कहना चाह रहा हो, ऐसे ही उसने बेकार अपना समय नष्ट किया था उस रचना को पढ़कर। यह आप कैसे कह सकते हो कि यह गुरु महाराज की रचना नहीं ? भागां अनमने-से अन्दाज में बोली। उसको अपने मेहमान से जैसे प्रतिक्रिया की उम्मीद नहीं थी।

'इस तरह की रचना मेरे दशमेश पिता कभी नही कर सकते।'

उसकी पलकें आवेश में सामान्य से अधिक खुली थी। होंठ कांप रहे थे, नाक की नोक लाल हो गई थी।

पर यह तो पाऊंटा से लाई गई है। अमृतराय नाम के एक गुरु महाराज के दरबारी कवि की सहायता से आलम चाचा के लिए विशेष तौर पर इसकी नकल तैयार की गई थी। मैंने आप सुना था, चाचा मेरी मां को बता रहे थे।'

जो कुछ भी है, इस तरह की रचना कलगीधर की कलम की नहीं हो

सकती। उनको और कोई काम नहीं ?'

कहते हुए दया बाहर जाने के लिए चला पर भागां ने उसे रोक लिया।

मैं भी तो जानूं आपको इस रचना में एतराज क्या है ? भागां आवेश में आ गई थी, आखिर मैंने भी तो इसे पढ़ा है, मुझे तो कोई बात इसमें ऐसी नहीं लगी जो लिखी नहीं जानी चाहिए थी।

"आपकी माता जी ने सच कहा था, यह पोथी नौजवान लड़के-लड़कियों को नहीं पढ़नी चाहिए।"

"मैं तो सोचती हूँ, यह लिखी ही हमारे लिए गई है।"

"आपके लिए लिखी गई होगी, मेरे लिए नहीं। मुझे अपने में शामिल न करो।"

"और जनाब सारी रात जागकर इसे पढ़ते क्यों रहे हैं ? क्या मैं यह पूछ सकती हूँ ?"

भागां की आवाज़ ऊंची हो गई थी।

"इसलिए कि मैं देखना चाहता था कि आज़ादी ले रहा कोई साहित्यकार कितनी आज़ादी ले सकता हैं।"

"या फिर यह कि आपको यह सब कुछ पढ़कर मज़ा आ रहा था ?"

"मैं तो बाबा लाहौर लौट रहा हूँ। अगर कोई साथ मिलता है तो वह भला, नहीं तो अकेला ही निकल जाऊंगा। मुझे किसी से क्या कहना है ?"

"तुम गुरु महाराज की प्रतीक्षा नहीं करोगे ? सुना है, वह लौटने वाले हैं।"

"उनका कोई पता नहीं, कब आएं।"

"तुम तो पाऊंटा जाने की भी सोच रहे हो।"

"अब मैंने अपना मन बदल लिया है।"

"बेशक तुम जा सकते हो, पर इससे पहले हम पढ़े-लिखे लोग यह तो विचार सकते हैं, कि पोथी में एतराज़ वाली कौन-सी बात है।"

"अगर एतराज वाली कोई बात नहीं होती तो तेरी मां क्यों तुम्हें इसको पढ़ने से रोकती।"

"अब मैं सोचता हूँ, यह तुम्हारी ज़्यादती थी, तुमने अपनी मां की चोरी से इस पोथी को निकाल कर पढ़ा और फिर मेरी भी रात खराब की।"

वाह, एक तो जनाब मगन-मगन हुए सारी रात पढ़ते रहे और अब एतराज़ किया जा रहा है। भागां जैसे बहस को टालने की कोशिश कर रही हो।

"जो कुछ भी है, आपकी पोथी आपको मुबारक फिर भी बैठकर इसको विचारने में तो कोई हर्ज़ नहीं। कहानी तो ऐसे ही है न ?......."

"नहीं, नहीं नहीं !" एक दम भावुक होकर दया पुकार उठा। उसकी आंखों में झर-झर आंसू गिर रहे थे। जैसे किसी का शिवाला ढह गया हो। जैसे किसी का इष्ट उल्टा जा गिरा हो।

भागां ने अपने मेहमान को बिठा लिया। कितनी देर इधर-उधर की बातें करतीं, उसका मनोरंजन करती रही। न दया धर्मसाल गया, न भागां। इतने में उनके नाश्ते का समय हो गया। मिल कर दोनों ने नाश्ता तैयार किया। रसोई में बैठे, नाश्ता करते रहे, अवसर पाकर भागां ने फिर 'चरित्र पखयान' के बारे में चर्चा छेड़ी।

मेरे मुताबिक इस ग्रन्थ की कथा कुछ इस तरह है—चित्र सिंह नाम का एक राजा एक अप्सरा को हर लाता है। अप्सरा हनुवन्त नाम के राजकुमार को जन्म देती है। जब उसका बेटा बड़ा होता है, अप्सरा अपने इन्द्र लोक जहाँ से वह आई थी, वापस चली जाती है। राजा चित्र सिंह उसके विरह में परेशान रहता है। आखिर उसके दरबारी राजा को ओड़छा के राजा की बेटी को ब्याहने के लिए राजी कर लेते हैं। ओड़छा की राजकुमारी के लिए चित्रवती के राजा को ओड़छा पर फौज चढ़ानी पड़ती हैं पर वह राजकुमारी को ब्याह लाता है। इतने में हनुवन्त एक सुन्दर नौजवान निकल आया था। नई दुल्हन शहजादे को देखकर उस पर मोहित हो जाती है। पर शहजादा हनुवन्त दुल्हन से मुहब्बत निभाने के लिए राज़ी नहीं होता। राज़ी हो भी कैसे सकता था ? एक तरह से ओड़छा की राजकुमारी उसकी मां थी। सौतेली मां, पर मां तो थी। इस बात से नाराज़ होकर हनुवन्त ने उसके प्यार को ठुकराया था, दुल्हन राजा से शिकायत करती है कि राजकुमार हनुवन्त ने उसकी अस्मत लूटने की कोशिश की है। यह सुनकर राजा के तन-बदन में आग लग जाती है और वह बिना सोचे समझे, बिना पूछताछ किए, शहज़ादा को कैद करवा देता है। यह भी मुमकिन है कि उसको फांसी भी लगा दी जाए। असलियत से वाकिफ राजा के मंत्री उस को समझाते हैं और ऐसे कर रहे वे औरत जात के चल्हत्तर, राजा को एक-एक करके सुनाते हैं इनमें सारी करतूतें औरतों की नहीं, मर्दों की बेहूदगियाँ भी शामिल हैं। औरतों के मुकाबले में कम सही, पर हैं ज़रूर।

औरत जात को ऐसे मंड़ना, मैं तो पढ़-पढ़ कर हैरान ही होता रहा हूँ।'

लाहौरी मेहमान अपना एतराज़ प्रकट कर रहा था।'

"मैं नहीं समझती इसमें कोई बात औरत जात के खिलाफ़ है। दशमेश बाबा नानक की गद्दी पर विराजमान हैं जिन्होंने फरमाया है :

"सो क्यों मन्दा आखिऐ, जित जंमहि राजानु।"

(आसा-वार)

'एक से बढ़कर एक औरत बदचलन है।'

"बेशक पर इस तरह की औरतें आस-पास हैं।"

"और इस तरह के मर्दों की भी कमी नहीं।"

"उनका भी ज़िक्र है। ऐसे लगता है कि आपने ध्यान से ग्रन्थ को नहीं पढ़ा।"

"मेरा विरोध इस बात पर है कि यह गंदगी कहाँ नहीं है ? धर्म अपने भीतर के एक कट्टर गुरुसिक्ख का बयान ले रहा था।"

"इसका जवाब मैं बाद में दूंगी।" भागां पूरी तरह बहस के लिए तैयार हो गई, "पहले यह बताओ इस तरह की कहानियाँ आपको बैताल पचीसी, सिंहासन बतीसी, कथा सरित सागर, पंच तन्त्र और अलिफ लैला में नहीं मिलती ? उस दिन आप कह रहे थे कि यह सारी किताबें आपने पढ़ रखी हैं।"

"फिर भागां उठी और सामने अलमारी में से 'बागो बहार' निकालकर दया को दिखाने लगी। इसमें क्या है ? वह कह रही थी, हमारी मुश्किल है, हम पराई भाषा में तो यह पढ़ सकते हैं, पर अपनी भाषा में इस तरह का साहित्य हमें चुभने लगता है।"

दया के पास इसका कोई जवाब नहीं था।

"साथ ही गुरु महाराज मज़ाक कितना उड़ाते हैं ?" भागां अपनी दलील जारी रखे हुए थी, मुझे, आपको, आम आदमी को बुरा पेश नही करते, वह तो राजा-रानियां, सेठ, सरमायेदार, जागीरदार और कपटी मसन्दों, झूठ-मूठ के साधु-सन्तों की निन्दा करते हैं।

बेशक, पर काम के इस तरह के ज़िक्र की क्या ज़रूरत थी ? सच्ची बात तो यह है कि मैं यह कुछ नहीं पचा सका। दया की तसल्ली हुई नहीं लग रही थी।

काम ज़रूर है, पर पराई बहू-बेटी के साथ काम से बचने की चेतावनी है। जिस तरह का हमारा आज का समाज है, मैं तो सोचती हूँ, गुरु महाराज

ने जान-बूझ कर यह ग्रन्थ तैयार किया है। अगर इस तरह की चीज़ें पढ़ने के लिए आपको दूसरों की भाषा की ओर जाना पड़ता है, तो अपनी बोली में ही यह सब कुछ क्यों नहीं उपलब्ध करवा दिया जाए ? मैं नहीं सोचती इस तरह की नसीहत में कोई हर्ज़ हैं :

"सुध जब ते हम धरी, बचन गुरदए हमारे।
पुत, यहै पण तोहि, प्राण जब लग घट थार।
निज नारी के संगि, नेहु तुम नीत बड़इअहू।
पर नारी की सेज, भूमि सुपने हूँ बजईअहू।"

"कई स्थान पर इससे भी आगे गए हैं, दया की जैसे तसल्ली न हुई हो।"

साथ ही ये कहानियाँ कोई काल्पनिक मनघड़ंत कथाएं नहीं, सुनी-सुनाई हैं। कुछ तो गुरु महाराज की आप-बीती हैं। कुछ घटनाएं तो आनन्दपुर में घटी हैं। अगर हमारे समाज में गलाज़त है तो उसे दर्शाने में संकोच क्यों ?" मुगल पहले ही चिढ़े हुए हैं। यह पोथी कहीं उनके हाथ आ गई तो और बिगड़ पड़ेंगे।" दया बोला।

आपका इशारा शायद इस तरह के दोहों की ओर है :

"शाहजहाँ जब ही मर गए, औरंगजेब पातशाह भए।
सैफुदीन संगिया को पयारा। पीर अपन करताहि बिचारा।
ताके संग रोशना गई बिबिध बिबिध तन प्रीति उपजाई।
काम भोग तिह संग कमायो, तांहि पीर अपनो ठहरायो।"

"जनाब को यह भी पता है कि औरंगज़ेब की इस बहन रोशन आरा के बारे में तो यह भी कहा जाता है कि वह अपने पिता शाहजहाँ से लगी हुई है। मुमताज महल के बाद इसी ने तो शाहजहान का दिल लगा रखा है। हमारे आलम चाचा से कोई उसकी कहानियाँ सुने, वह तो मुगल दरबारी रहे हैं।"

"हिन्दू राजाओं को कौन-सा उन्होंने माफ किया है।" दया कहने लगा।

अगर शिवाजी का बेटा सम्भा जी अपने दरबारी कवि कलस की बेटी के साथ मुंह काला करने लगा तो उसका भंडा फोड़ने में क्या हर्ज़ है। इस तरह के लोगों में भ्रष्टाचार सारी कौम को ले डूबता है। यही हाल सम्भा ज़ी के साथ हुआ। मुगलों के काबू आ गया और उसकी अनख खत्म कर दी गई।

"मैं तो हैरान हूँ, गुरु महाराज दुनिया भर की ये कहानियाँ कहाँ से

इकट्ठी करते रहे हैं।" पटना से आनन्दपुर वह और तो कहीं कभी गए नहीं। दया अपना एक और रहस्य प्रकट कर रहा था।

वह नहीं जाते, लोग तो उनके पास आते हैं। इतने व्यापारी और अन्य दूर नज़दीक से श्रद्धालु उनके दर्शनों को टूट-टूट पड़ते हैं।

कई जगह इतिहास को उलट-पुलट किया हुआ है। मसलन सिकन्दर ब्यास के आगे नहीं बढ़ा था, उसको सारे हिन्दुस्तान का विजयी बताया है। दया की अभी तसल्ली सानहीं हुई लगती थी।

इस तरह के उदाहरण और भी होंगे, काव्य में कवि को इस तरह की छूट जायज होती है। भागां हारने वाली नहीं थी। "असली शिकायत मेरी अश्लीलता के विषय में है। मैं नहीं सोचता गुरु महाराज को यह शोभा देता है, वह कुछ लिखना जो उन्होंने कहीं-कहीं लिखा है। दया उसी नुक्ते पर फिर आ गया था, जहाँ से उन्होंने बहस छेड़ी थी।"

मैं समझती हूँ आपको क्या तंग कर रहा है। पले यह बताओ, इस तरह के दोहों पर तो आपको शिकायत नहीं ?

"बदण दिखाणा सानू छाती नाल लाणा अते
नैणा नाल नैण जोड़ वेग नेहू लावणा।"

... ...

"नैन पिया पालने, कर राखे करतार।
जिन जन झूलहि घने, हम से बेठे हजार।"

... ...

"नारिन के कजासरन के दुःख का टारन है कियो नींद निहारे
नेहू जगे किरंगे रंग कांहू के, मीर के नैन सखि रसियारे।"

यह तो सुन्दर काव्य है। इसके खिलाफ किसी को क्या शिकायत हो सकती है। मैं तो इन अंशों का ज़िक्र कर रहा हूँ।' अब भागां के हाथ से पोथी पकड़कर जिसमें से वह पढ़-पढ़कर काव्यांश सुना रही थी, दया ने एक पन्ना खोलकर उसके सामने रख दिया।

भागां ने देखा तो एक क्षण के लिए उसका चेहरा दमक गया, पर फिर सहसा सम्भालते हुए वह बोली—

"जहाँ से खुशी फूटती है, जहाँ से रस बढ़ता है, उस बात का ज़िक्र अश्लील कैसे हुआ ?"

हमारे पूर्वजों ने सबसे सुन्दर पुरुष को देवता कहा, सबसे सुन्दर औरत

को देवी का दर्जा दिया है।

गीता में कृष्ण कहते हैं–'मैं काम हूँ।'

अर्जुन घूम रहे चक्र में लगी मछली की आंख को उसकी पानी में पड़ रही परछाई को देखकर अपने तीर से निशाना बनाता है। किसलिए ? द्रोपदी को अपनी पत्नी बनाने के लिए और फिर उसको अपने बाकी चार भाइयो के साथ सांझी कर लेता है। मोक्ष के लिए धर्म, अर्थ के साथ काम जरूरी समझा गया है। मैंने तो देखा नहीं पर खजुराहो के शिव, विष्णु और जैन मन्दिरों में क्या दिखाया गया है ? हमारे बुजुर्गों को देवदासी की परम्परा की क्यों जरूरत पड़ी ? काम और धर्म साथ-साथ बह रही दो धाराएं हैं। काम बिना धर्म का पालन कठिन हो जाता है। दो टहनियों की रगड़ में से आग फूटती है। दो बूतों को घिसने से फूल खिलते हैं। हीर-रांझा, सस्सी-पुन्नू, सोहनी-महीवाल, मिर्जा-साहिबां की मुहब्बत की कहानियाँ सुनकर मुझे कभी बुरे सपने नहीं आए, बल्कि हमेशा मेरा सिर झुक जाता है। एक-दूसरे के लिए यह लोग जान देते रहे, क्या यह केवल काम-वासना के लिए था ? अगर यह काम था तो यह काम ईश्वर भक्ति जैसा पवित्र है। इस तरह का इश्क शरीरों के मेल को शोभा प्रदान करता है और प्रेमी युगल देवता बन जाते हैं। पुरुष जब प्रेम की प्रतिमा हो जाता है, स्त्री जब चाह की कटोरी बन जाती है, फिर उसमें प्रेम का अमृत बूंद-बूंद झरने लगता है। मेरी दृष्टि में काम, शरीर और आत्मा का संयोग है। शूद्रक के अपने नाटक 'मृच्छ कटिक में बसन्त सेना एक कोठे वाली को नाटक की नायिका बनाकर, काम का आदर किया गया है। जयदेव ने अपने 'गीत-गोविन्द' में अपनी और अनी नर्तकी पत्नी की दास्तान पेश की है। विद्यापति, सूरदास, केशवदास ने आत्मा और शरीर, पुरुष और स्त्री की काम लीला को अनेक रूपों में चित्रित किया है। 'सुर-सुन्दरी' की प्रसिद्ध मूर्ति पैरों में से कांटा नहीं निकाल रही, अपनी जिन्दगी में से पीड़ा को किनारे करके, आनन्द के लिए तैयारी कर रही है। इस तरह के वर्णनों से जिसके बारे में आप परेशान हो, मेरे जैसी पाठक की पलकों में सपने पिरो देती है और हर सपने के सामने जैसे आरसी रखी हो।

"तौबा-तौबा ! अब चुप भी करेगी तुम ?" उसका परदेसी कहता हुआ उठ खड़ा हुआ। दोपहर हो गई थी, वह धर्मसाल तक नहीं गया था।

जैसे दया ने सहसा बहस खत्म की थी, ऐसे लगता उसकी तसल्ली हो गई थी। बहस खत्म करते ही वह बाहर निकल गया। भागां ने सोचा वह

धर्मसाल माथा टेकनें गया होगा, आज उसको नितनेम चढ़ गया था।

बहुत समय हो गया, संध्या हो गई, दया की कोई खबर नहीं थी। भागां जूती पहन कर जल्दी-जल्दी गई, वह वहाँ भी नहीं था। लौटते समय वह बाजार का चक्कर लगा आई। दया कहीं नज़र नहीं आया। इधर-उधर जहाँ उसका उठना-बैठना था, उसकी खबर में कोई सफलता नहीं मिली। रात हो गई। प्रतीक्षा कर-करके भागां ने आखिर बाहर ड्योढ़ी की कुण्डी लगाई।

पर सारी रात उसकी आंख नही लगी यदि कहीं आ जाए तो बन्द दरवाजा देखकर वह परेशान होगा।

अगले दिन फिर प्रतीक्षा, फिर मायूसी।

उसके अगले दिन फिर इन्तजार।

वह चला गया थ। परदेसी अपने शहर लौट गया था। अब उसे नहीं आना था। जैसे आया था, वैसे ही चला गया था।

उसके कागज़-पत्र वैसे के वैसे पड़े थे। जो छोटी-मोटी सौगातें उसने इकट्ठी की थी, सम्भाल कर रखी थी। भागां उसके लिए ऊन का गुलुबन्द बना रही थी। अभी वह खत्म नहीं हुआ था। इतनी ठण्ड आजकल पड़ रही थी। उन्हीं चार कपड़ों में जो उसने पहने हुए थे, निकल गया था। ईश्वर का इतना शुक्र था कि उसने गर्म शाल लिया हुआ था। भागां ने उसे आलम का शाल ओढ़ने के लिए दिया हुआ था क्योंकि उसके पास कोई भारी कपड़ा नहीं था।

आज तीसरा दिन था दया को गायब हुए। बिल्कुल अकेले आंगन में बैठी अचानक भागां की आंखों में आंसू भर आए। हाय रब्बा ! वह तो उसे प्रेम करती थी। भागां को इस बात का अहसास उसे खोकर हुआ। उसे लगता जैसे उसके दिल का कोई कोना वीरान हो गया हो। फूल तोड़े हुए पत्ते झड़े हुए, पौधे रूंड-मुंड। उसे ऐसे लगता जैसे झुलसाने वाली लू चल रही हो। कहरों की ठण्ड पड़ रही थी और भागां में जैसे लपटें उठ रही हों। उसका मन करता अपने तन-बदन के कपड़ों के बंधन खोल दे। गिरों फाड़कर कहीं निकल जाए। जंगल से गुजरती अपने परदेसी को ढूंढ ले।

उसकी सुहानी सूरत उसकी आंखों के आगे आकर खड़ी हो जाती। अपनी डबडबायी पलकों को पल्ले से फिर-फिर पौंछती। अपने लाहौरिए मेहमान को वह देखना चाहती थी जैसे उसने इतने दिन कभी नहीं देखा था, ऊंचा-लम्बा, सफेदा-गोरा, कोमलांग, तीखी नाक। फूल पत्ते के जैसे होंठ।

कितना मीठा बोलता था। कोई भी तो बात लाहौरियों के जैसी नहीं। न वह चाल ढाल, न वह तड़क-भड़क, न वह चिक-चाक्य, न वह खान-पीन। सादा खाना, सादा पहनना।

भागां ने कहा, "तुम दाल-सब्जियों के शौकीन हो, तुम्हारे गुरु महाराज तो जंगल के जंगल शिकार कर-करके खाली करते हैं। जवाब में कहने लगे, 'जब गुरु महाराज मुझे अपने जैसा सूरमा बना लेंगे, मैं भी मांस खाया करूंगा, शिकार किया करूंगा।"

भागां उसके कमरे में जाती तो उसके पलंग का खालीपन जैसे उसे खाने को आता हो, उसका हौंसला न होता,उसके कागज, पत्रों को सम्भाल दे। शाम को वैसे-का-वैसा उसका बिस्तर करती। अगली सुबह समेट लेती।

धर्मसाल जाती तो चारों ओर आंखे खोल वह किसी को जैसे ढूंढ रही हो। भागां बार-बार अपने-आपको समझाती, परदेसी चला गया था। इतने दिन हो गए थे, वह तो अपने लाहौर भी जैसे पहुंच चुका हो।

जान-पहचान हो गई होगी।
राह आसान हो गई होगी।

कोई साथ मिल गया होगा। शायद कोई सवारी ही मिल गई होगी। मंजिल-दर-मंजिल निकल गया होगा। घर से लगाव, मां-बाप की ममता, लाहौर शहर का वासी। लाहौरने तों टोने करने वाली होती हैं।

पर वह वैसे गया क्यों था जैसे वह गया था ? इस बात पर खफा कि गुरु महाराज का 'चरित्र पखियान' वैसे क्यों था जैसे उन्होंने लिखा था। उसके बीच के पवित्र नौजवान को उसके बीच अश्लीलता नज़र आई थी। जिन्दगी की सच्चाई पर यूं पलकें बन्द कर लेनी, कोई कबात भी हुई। घर का दसतरखान भी होता है, पर घर का सोने का कमरा भी तो होता है, घर के मर्द की सेज भी तो होती है।

क्यों कोई भूल जाता है, यह भी तो गुरु महाराज की वाणी है ?—

"रे मन ऐसो कर संनि आसा,
बन से सदन सभै कर समझहू,
मन ही माहि उदासा   रहाउ
जत की जटा जोग को मजन,
नेम के नखन बड़ाउ।
गिआन गुरू आतम उपदेशहु,

नाम विभूत लगाउ।
अलप अहार सुलप सी निंद्रा,
दया छिमा तन प्रीति।
सील, संतोख सदा निरबाहिबो,
हुबे त्रिगुण अतीत।
काम क्रोध हंकार, लोभ हठ,
मोह न मन सिउ लिआवै।
तब ही आतमतत को दरसे,
परम पुरख कह पावै।"

(शबद हजारे)

और मेरे कलगी वाले ने यह भी तो लिखा है :

कहा भयो जो दोउ लोचन मूंद कै,
बैठ रहिउ बक ध्यान लगाइउ।
नात फिरिउ लिए सात समुद्रनि,
लोक गइउ परलोक गवायो।
बास कीउ बिखिआन सो बैठ कै,
ऐसे ही ऐसू बैस बितायो।
साच कहो सुन लेह सभै,
जिन प्रेम कीउ तिन ही प्रभु पायो।

(त्रप्रसादि सवैया)

मेरे दशमेश जो भगवान को कण-कण में देखते हैं उनकी कलम को अश्लीलता का फतवा देना मेरी समझ में तो यह अश्लीलता है। कलगीधर तो कहते हैं :

जले हरी, थले हरी।
उने हरी, बने हरी।
गिरे हरी, गुफ़े हरी।
छिते हरी, नभे हरी।
इहाँ हरी, उहाँ हरी।
जिमी हरी, जुमां हरी।
अकाल हरी, अपाल हरी।
अलेख हरी, अभेख हरी।

अदेख हरी, अद्वैष हरी।
अकाल हरी, अपाल हरी।
अछेद हरी, अभेद हरी।
अजंत्र हरी, अमंत्र हरी।
सुतेज हरी, अतंत्र हरी।
उजात हरी, अमात हरी।
अरोग हरी, अशोक हरी।
अभरम हरी, अकरम हरी।
अजै हरी, अभै हरी।
अभेद हरी, अछेद हरी।
अखंड हरी, अभंड हरी।
अडंड हरी, प्रचण्ड हरी।
अतेव हरी, अभेद हरी।
अजेव हरी, अछेव हरी।
भजो हरी, थपो हरी।
तपो हरी, जपो हरी।........

(त्रप्रसादि। लघु नगाज़ छन्द)

जैसे-जैसे दिन बीत रहे थे, परदेसी के लौटने की आस निराशा में बदलती जा रही थी। अब वह कभी नहीं आयेगा। उसको अब वह कभी नहीं देख सकेगी। भागां सोचती, जो इस तरह उसके साथ इसका लगाव हो गया था, तो इसे पहले क्यों नहीं पता लगा था ? उसको प्रेम के रेशमी धागों के साथवह लपेट कर रख लेती।

न खाने की सुध, न पीने की सुध, भागां की सब सहेलियाँ छूट गईं थी। बस एक धर्मसाल, और फिर वापिस धर। माथे रगड़-रगड़, प्रार्थना कर-कर, मिन्नतें मांग-मांग, वह हार गई थी। उसे अपने जीवन में नीरसता काटने को दौड़ती। जिसके साथ के लिए उसने धीरे-धीरे सारे साथ छोड़ दिए थे, कैसे उसे बताए बिना चला गया था ?

"परदेसी कब किसी के साथ बंध कर रहे हैं ?" उसके भीतर से आवाज़ आती और भागां का मन करता वह कपड़े फाड़ कर कहीं निकल जाए।

इस तरह वह बेहाल हो रही थी कि जैसे ईश्वर ने उसकी सुनी हो, एक शाम अभी वह फैसला नहीं कर सकी थी कि वह बत्ती जलाए या वैसे ही

अंधेरा झेलती रहे कि उसके आंगन में उसकी मां और आलम आ पहुंचे दीवारें और कोढ़े एकदम जगमग-जगमग करने लगे।

पहली बात अगली सुबह उनकी थकान उतरी, भागां ने 'चरित्र पखियान' की पोथी अपनी मां को ला पकड़ाई। इसमें नौजवान लड़के-लड़कियों के न पढ़ने वाली कौन-सी बात है ?" बेटी मां से पूछने लगी, "मेरे दशमेश की रचना, यह तो गुरुवाणी है।"

वीरां वाली फटी-फटी आंखें, भागां की ओर देख रही थी

वीरां वाली आई। आलम आए। पर सबसे अधिक सुहानी खबर यह थी कि गुरु महाराज भी आ रहे थे। एक सप्ताह और दस दिन और, फिर वे पहुंच जायेंगे, आलम बता रहा था। कुछेक निकटवर्ती सिक्ख अपने साथ रखकर, बाकी सैनिकों और श्रद्धालुओं को गुरु महाराज ने आनन्दपुर पहले ही भेज दिया था।

वीरां वाली और आलम गुरु महाराज के साथ ही पाऊंटा से चले थे। तभी तो उन्हें इतने दिन लग गए थे। गुरु महाराज मार्ग में कई जिम्मेदारियाँ निपटा कर आ रहे थे। साथ ही जब मौका मिलता, शिकार का अपना शौक भी पूरा करते रहे। अब भी वह शिकार को निकले थे, जब ये लोग आनन्दपुर के लिए चले। पीछे भागां अकेली थी। आज कितने दिन उन्हें आनन्दपुर को छोड़े हुए हो गए थे।

आलम पाऊंटा के वातावरण की कहानियाँ कहता रहता। कैसे गुरु महाराज कवियों और विद्वानों की संगत में कविता पढ़ते, कविता सुनते, दिन-रात इस धुन में गुजारते थे। जब कवि-गोष्ठी में बैठे कविता सुन रहे, सना रहे होते तो कोई सोच भी नहीं सकता था कि वे तलवार के बेजोड़ धनी हैं। उनके जैसा निशाना किसी का नहीं था। अभी उस दिन भंगानी के युद्ध में उन्होंने पहाड़ी राजाओं के दांत खट्टे किए थे और कोई बड़ी बात नहीं आजकल मन ही मन मुगल साम्राज्य से टक्कर लेने की सोच रहे हों, किसी और झड़प के लिए तैयारी कर रहे हों। जद्दो-जहद उनके जीवन का अंग था।

एक शाम कवि-गोष्ठी में हंसराम नाम के एक कवि पर खुश होकर कलगीधर ने 60,000 रुपये उसे ईनाम के तौर पर दिए। आगे पीछे बैठे श्रद्धालु यह सुनकर देखते रह गए। इस तरह की दरिया-दिली तो मुगल दरबार में भी नहीं देखने को आई थी। कवि हंसराज ने गद-गद होकर फटाफट यह कवित्त गाया :

चारों चक्क सेवै गुरु गोबिन्द तिहारे पाई
मेरे जानै अज तूही दूजो करतार है।
प्रबल प्रचण्ड खण्ड, खण्ड महि मण्डल मैं
साचो पातशाह जानो साथे सिर भार है।
कामना दे दानि, बान जांकि हंस राम कहै,
परम धर्म देखे बिबंद विचार है।
परम उदार, पर पीर को हरनहार,
कौन जांनै, भांति, लीनो अवतार है।

(दोहरा)

प्रिथम कृपा राख कर, गुरु गोबिन्द उदार।
टका कीउ बखशीस तबै मोकउ साठ हजार।

ऐसे ही किसी कवि को हाथी, किसी को घोड़ा इनाम के तौर पर देते। एक बार पाऊंटा शहर में बाजों-गाजों से कवि का जुलूस निकाला गया, तूतणियाँ और नगारे बज रहे थे। जैसे रजवाड़ों का अभिनन्दन हो रहा हो।

पाऊंटा से अचानक आनन्दपुर के लिए चलने का बड़ा कारण यह था कि गुरु महाराज भीमचन्द जैसे पहाड़ी राजाओं को बताना चाहते थे कि आनन्दपुर उन्होंने छोड़ा नहीं था। वह शहर उन्होंने बसाया था और उसमें वे रहने जा रहे थे। यही नहीं आनन्दपुर के आस-पास एक से अधिक किले बनाकर वे उस शहर को एक छावनी का रूप देने वाले थे।

ऐसे गुरु महाराज का अचानक पाऊंटा से चल देना, सब से अधिक सिरमौर के नरेश को अच्छा लगा। कलगीधर उसकी रियासत से लौट रहे थे। कायदे से उसे आकर गुरु महाराज से आशीर्वाद लेना चाहिए था कि उन्होंने उसके राज्य में आकर उसे कृतार्थ किया था, लेकिन अपने पड़ोसी राजाओं से डरता वह ऐसे करने में झिझक रहा था। गुरु महाराज उसके जोड़-तोड़ को समझते थे और उन्होंने ऐसा करके उसे इस दुविधा से मुक्त कर दिया।

आनन्दपुर साहिब लौट रहे वे सिधौरा अपने मुरीद साई बुद्धू शाह के जाना चाहते थे। पीर बुद्धू ने गुरु महाराज के लिए भंगानी के युद्ध में अपने सारे खानदान को झोंक दिया था। इस जंग में पीर जी के तीन बेटे, एक भाई और एक भतीजा जान पर खेल गए थे। पीर जी के यहाँ जाकर शुक्रिया करना जरूरी था।

पर पहला बड़ा पड़ाव गुरु महाराज का कपाल मोचन का मेला था। यहाँ गुरु महाराज उन कुछ शूरवीरों को सिरोपा देना चाहते थे, जिन्होंने भंगाणी के युद्ध में बहादुरी दिखाई थी।

कपाल मोचन में उन्होंने देखा, यात्री पवित्र तालाब के आगे-पीछे हाजत रफा करने बैठ जाते थे। इस तरह तो कोई भयानक बीमारी फैल सकती थी। गुरु महाराज ने अपने अंगरक्षकों को हुक्म दिया कि यात्रियों को ऐसे करने से रोका जाए और अगर यात्री फिर भी बाज न आएं और जो भी तालाब के आस-पास गन्दगी फैलाता हुआ दिखाई दे, उसके सिर से पगड़ी उतार ली जाए। इस तरह गुरु महाराज ने कितनी ही पगड़ियाँ इकट्ठी कर लीं।

गुरु महाराज कपाल मोचन में ही थे कि रायपुर की रानी उनके दर्शनों के लिए आई। रानी अपार श्रद्धा से गुरु महाराज को रायपुर चलने के लिए निवेदन कर रही थी। गुरु महाराज को तो कोई एतराज नहीं था। पर वे यह भी जानते थे कि उसका पति राजा फतेह सिंह उर का मारा शहर छोड़कर भाग जाएगा और वही बात हुई, जब सतगुरु रायपुर पहुंचे राजा गायब था। रानी ने इसकी प्रवाह न करते हुए, अपने बेटे को गुरु महाराज के चरणों में लगाया। गुरु महाराज को आशीष देने के लिए निवेदन किया। गुरु महाराज ने फरमाया, "बच्चे के केश रखने होंगे। यह सुनकर रानी जरा झिझकी पर गुरु महाराज का आदेश था, उसने सिर झुका दिया। रायपुर से चलते समय गुरु महाराज ने एक तलवार और एक ढाल राजकुमार को बख्शी जिसका अर्थ था कि वह अपने-आपको आने वाले समय की परीक्षा के लिए तैयार करे।"

रास्ते में एक पड़ाव पर रात को जब हर कोई सो रहा था, उस इलाके का बदनाम डाकू दशमेश पिता के काफिले के कुछ ऊंट खोलकर ले गया। गुरु महाराज जानते थे कि यह काम रंघड़ा का था और किसी की मजाल नहीं थी कि इस तरह की हरकत कर जाए, पर रंघगड़ा का चौधरी पैरों पर पानी ही पड़ने देता था। आखिर गुरु महाराज ने साथ के गांव में से एक दरवेश को रंघड़ा के गांव भेजा, जिसने ऊंटों की टोह निकाल ली। गांव में जिस रंघड़ के घर ऊंट छिपाकर रखे हुए थे, उससे वे बहाल कर लिए गए।

गुरु महाराज के आगमन का सुनकर आनन्दपुर वासी उल्लसित हो उठे। ढोलकियों-छैना लिए पूरी एक मंजिल आगे जाकर गुरु महाराज को श्रद्धापूर्वक अनेक स्वागत द्वारों के बीच में से उनकी सवारी को निकाल कर

लाए। वह आनन्दपुर का शहर जो उनकी गैर हाज़री में उजड़ता-उजड़ता एक मामूली कस्बा बन गया था, एकदम हुमक उठा। पता नहीं कहाँ से इतने लोग उमड़ पड़े थे। बाजारों में, गली मुहल्लों में फिर चहल-पहल दिखाई देने लगी।

इतने लोग थे, ढेर सारे। भागां आगे-पीछे कुछ खोजती दिखाई देती, हर चेहरे में झांकती प्रतीत होती, कहीं उसका परदेसी नज़र आ जाए, पर वह कही भी नहीं था।

वीरां वाली जो आते ही अपनी बेटी की हमराज बन गई थी। ऐसे अपनी जाया को कलप रहा देखती तो उसके कलेजे को जैसे हाथ पड़ता हो।

जिस दिन गुरु महाराज पधारे,उनके सम्मान में एक विशाल कवि दरबार का आयोजन किया गया, कई नए कवि भी इस गोष्ठी में शामिल हुए।

पहले 'हंसराम' ने एक सवैया सुनाया। फिर 'अमृत राय' ने एक कवित्त पेश किया। फिर 'चन्दन' नाम के कवि की बारी थी। 'चन्दन' को अपने पाण्डित्य पर बड़ा गुमान था। कहने लगा मैं एक कवित्त सुनाने जा रहा हूँ, अगर इसके गहरे भाव को श्रोतों में से कोई समझा सके तो मानूंगा, यह कहते हुए 'चन्दन' ने यह कवित्त पेश किया :

"नवसात तिये, नव सातकिये, नवसात पिये, नवसात पियाए।
नवसात रचे, नवसात बचे, नवसात पिय पैदा यन पाए।
जीत कला नव सातन दी नवसातन के मुख अन्दर छाए।
माने मैघ के मण्डल मैं कवि चन्दन चन्द कलेवर छाए।"

(ऋतु 5, अस्सू 36)

गुरु महाराज ने कवित्त सुना तो धन्ना नाम के अपने एक घसियारे को जो श्रोताओं में कहीं पीछे बैठा था, बुलाकर कवि चन्दन के कवित्त का भाव बताने के लिए कहा।

धन्ना हाथ जोड़कर बोला, 'हजूर इस कवित्त में एक 16 वर्षों की सुन्दरी का ज़िक्र है, जिसने 16 श्रृंगार किए हैं। उसका 16 साल का पति, 16 महीनों के बाद परदेश से लौटा है। पत्नी ने 16 घरों वाला चौपड़ा रचा और 16 घरों को विचार कर अपने घर वाले पर सोलहवां दांव प्रयोग किया। पति फिर भी जीत गया और उस सुन्दरी ने अपना मुंह आंचल में छिपा लिया, जैसे चांद बादलों में छिप जाता है।

कवि चन्दन ने यह व्याख्या सुनी तो उसका सिर झुक गया। कहने लगा,

"हजूर यह आपकी संगत का परिणाम है और कुछ नहीं।"

अब धन्ने ने अपना एक सवैया सुनाया जिसमें उस कवि 'चन्दन' के मन के भेद को जैसे खोलने की कोशिा की गई हो :

कौल मरे रवि के परसे, कबहू न मरे ससि की छबि पाए।
मित्र परे मित्त के मिलबे, कबहू न, मरे जब दूर सिधाए।
सिंह मरे जब मांस मिले, कबहूँ न मरे जब हाथ न आए।
गूहड़ मैं बात करी विज राज, विचार सके न बिना चित्त लाए।

उस रात घर लौट रही भागां अपने होठों में गुनगुना रही थी :

"मित्र मरे मित्त के मिलबे कबहूँ न मरे, जब दूर सिधाए।"

उसके साथ-साथ चल रही वीरां वाली बार-बार कोशिश करती भागां के चेहरे की ओर देखती,द उसकी पलकों में आंसू तो नहीं गिर रहे थे। पर रात इतनी गहरी थी कि उसको कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। पर भागां की आवाज़ ऐसे लगता जैसे आंसुओं से भीगी-भीगी हो।

28

पहली बात गुरु महाराज ने अगली सुबह आनन्दगढ़ के किले का मुआयना किया। उनकी अनुपस्थिति में उसके निर्माण का काम होता रहा था। केसगढ़ अभी पूरा होना था, पर गुरु महाराज का इरादा आनन्दपुर के बाहर किलों का जाल बिछा देना था। सतलुज के किनारे वह निरमोहगढ़, होलगढ़ और लोहगढ़ नाम के किले बनाने जा रहे थे। ऐसे ही चरण गंगा के किनारे फतेहगढ़ का निर्माण किया जाना था।

गुरु महाराज की नीति यह थी कि न पहाड़ी राजाओं के साथ, न मुगल रियासतदारों के साथ जंग टाली जा सकती थी और उस हालत में वे आनन्दपुर से जितना दूर हो सके, दुश्मन का मुकाबला करना चाहते थे। आनन्दपुर दुश्मनों के तीरों और तोपों की पहुंच से दूर होना चाहता था।

इसके साथ ही उन्होंने आनन्दपुर में तोपों और बन्दूकों, तलवारों और खण्डों के कारखाने कायम किए ताकि हथियारों की ओर से वे समर्थ हों, किसी के आगे उन्हें हाथ न फैलाने पड़ें। उधर मालवा और माझा, धन्नी और पोठोहार से गुरुसिक्ख धड़ा-धड़ दशमेश की सेना में भर्ती हो रहे थे। हर छिमाही एक कच्छा और एक कुर्ता और प्रशाद में लंगर। घोड़े चढ़ने के लिए, शस्त्र लड़ने के लिए और सबसे बड़ी बात कलगीधर की शरण, उनके नित्य दर्शन। यह जन्म भी सफल, अगले से भी बन्दा निश्चिंत।

आज और, कल और, गुरु मूहाराज आनन्दपुर में क्या आए, वह नगर जो उनकी कोई पांच वर्षों की अनुपस्थिति में उजाड़ जैसा बनता जा रहा था, फिर से हुमक-हुमक उठा। बाजार भरे-भरे रहते, गली-मुहल्लारें की रौनक ही अद्भुत थी। चारों तरफ गहमा-गहमी, चारों ओर उथल-पुथल। कहीं कीर्त्तन दरबार हो रहे हैं और कहीं कवि गोष्ठियां। कहीं नाटक खेले जा रहे हैं, और कहीं नेजाबाजी। कहीं कवायदें हो रही हैं और कहीं चांद मारी। कुछ बढ़-चढ़कर शिकार के लिए जा रहे हैं और कुछ लदे-फदे शिकार खेल कर लौट रहे हैं।

गुरु महाराज मुगल साम्राज्य के साथ टक्कर लेना चाहते थे ताकि भारतीय जनता को फिर वे आत्म-सम्मान दिलवाया जा सके। लोगों में स्वाभिमान को पैदा किया जा सके। हिन्दुओं के मन्दिरों को गिराकर मस्जिदें न बनाई जाएं। गुरु अर्जुन और गुरु तेग बहादुर जैसे महापुरुषों को जान का बलिदान न देना पड़े। इसके लिए तैयारी की आवश्यकता थी और जिस प्रकार हिन्दू समाज वर्णों, जातियों में बंटा हुआ था, इस सबको मिटाकर सबमें एक सांझ पैदा करनी थी।

गुरु महाराज देख-देखकर हैरान होते, देश के ब्राह्मण समाज ने त्यौहारों तक को बांटा हुआ था। वैसाखी का मेला ऊंची जाति के ब्राह्मणों ने अपने लिए निश्चित कर रखा था। जब वे नव वर्ष के आगमन को मनाते थे, एक दूसरे को उपहार देते थे। ऐसे ही दशहरा अच्छाई को बुराई पर विजय, क्षत्रियों का त्यौहार माना जाता था, वे लोग जो शस्त्र रखते थे, शस्त्रों का प्रयोग जानते थे कि श्री राम ने श्रीलंका पर हमला करके रावण को पराजित किया था, इस विजय को वही लोग याद कर सकते हैं, मान सकते थे जिनका कार्य लड़ना था, देश की रक्षा करनी थी। इसी प्रकार दीवाली का त्यौहार जिसें लक्ष्मी की पूजा होती थी, वैश्य जाति के लोगों की दिलचस्पी का त्यौहार समझा जाता था। बस वही इसे शौक से मनाते थे और ऐसे ही होली जिसमें रंग घोले जाते हैं और एक दूसरे पर पिचकारियाँ छोड़ी जाती हैं, मदिरा का पान किया जाता है और नशे में नाचा-गाया जाता है, सबसे नीचे समझी जाने वाली जाति को समर्पित था।

गुरु महाराज इस भेदभाव को समाप्त करना चाहते थे। उस वर्ष आनन्दपुर में होली के त्यौहार के तुरन्द बाद उन्होंने होला मुहल्ला मनाने का फैसला किया। यह त्यौहार सभी वर्णों जातियों का सांझा होना था। कोई

ऊंची जाति का नहीं, कोई नीची जाति का नहीं और इसकी बजाए कि भांग और गांजा पीकर उत्पात किया जाए, इसी दिन गुरु महाराज नाटक रचाने जा रहे थे, नेजा-बाजी, तीर-अंदाजी के मुकाबले, अखाड़ों में कुश्तियां, आम लोगों में प्रचलित कबड्डी जैसे खेल खेले जायेंगे। सबसे अधिक दिलचस्पी का खेल झूठ-मूठ की जंग होनी थी। गुरु महाराज ने अपनी सेना को दो टुकड़ियों में बांट दिया। फिर कितने-कितने दिन इसकी तैयारी होती। मनोकल्पित दुश्मन पर हमला, हमले के बचाव के उपाय, रणनीति का बनाना, काल्पनिक वार तथा और कितना कुछ।

झूठ-मूठ की इस जंग के बाद, दोनों ओर के शूरवीरों को ईनाम दिए गए और जीत-हार के कारणों पर बहस की गई।

ऐसे होला मुहल्ला के अवसर पर नाटक मण्डलियों और बहरूपिए हर तरह के नाटक खेलते। लोगों का मनोरंजन भी होता और कई कुरीतियाँ जो भाईचारे में देखने को आती, उनको सुधारा भी जाता। इस तरह नाटकों में अक्सर मसंदों के भ्रष्टाचार को दर्शाया जाता, और तथाकथित ऊंची जाति वालों के अहंकार का मज़ाक उड़ाया जाता, मुगलों के चापलूसों की मिट्टी पलीत की जाती।

कवि गोष्ठियाँ और संगीत दरबार तो किसी-न-किसी बहाने होते ही रहते। पाऊंटा से लौटा आलम आजकल गुरु महाराज की सेना में रंगरूटों की सिखलाई में स्वयं को अधिक व्यस्त रखता था। भागां सभ्याचारक काम में अपना मन लगाने की कोशिश करती। पर लाहौरिए परदेसी की याद एक घुन की तरह उसको खाती जा रही थी। भागां से अधिक इस क्लेश का दुःख वीरां वाली को था। वह आजकल इसकी तलाश में थी कि कोई योग्य वर मिले और वह भागां की ओर से सन्तुष्ट हो जाए। कोठे का कोठा नौजवान लड़की आंगन में बैठी, वीरां वाली को देखकर हौल पड़ते।

उधर उसके बेटे की भी दिल्ली से खोज-खबर नहीं थी। पर इसकी उसे कभी चिन्ता नहीं हुई थी। मर्द-जात जैसे चाहे कर ले। कहता था मैंने दिल्ली में बसना है। वीरां वाली को कोई एतराज नहीं था। कहीं-न-कहीं उसने दिल लगा लिया होगा। इतना सजीला नौजवान, इतना सुघड़, इतना पढ़ा-लिखा, उसे तो दिल्ली की लड़कियां-चिड़ियाँ सांस नहीं लेने देती होंगी।

दुःख वीरां को तो भागां का था, जैसे वह खोई-खोई रहती थी, जैसे वह बात-बात में अपने परदेसी की कहानियाँ लेकर बैठ जाती थी, जैसे

उसकी छोटी-छोटी निशानियों को सम्भालती रहती थी, वीरां वाली के भीतर की मां को उसे देख-देखकर अपनी जवानी के दिन याद आने लगते और वह अपने-आप से कहती–मुहब्बत कर रही औरत की हालत तरस लायक होती है। मुहब्बत कर रही औरत के लिए ईश्वर से बस दुआ ही मांगी जा सकती है। मुहब्बत कर रही औरत की मदद उसके महबूब और ईश्वर के अलावा और कोई नहीं कर सकता। हाय, मुहब्बत कोई न करे। मुहब्बत की पीड़ा गहरी है। इस रोग का कोई उपचार नहीं, बस घुट-घुट कर मरना और कुछ नहीं।

इस तरह का एक और नाटक आनन्दपुर में खेला जा रहा था, इससे भी कहीं गंभीर, इससे भी कहीं और दिलचस्प। इस नाटक में गुरु महाराज स्वयं एक नायक थे।

नूपकुंवर नाम की एक सुन्दरी ने दशमेश की छवि की कहानियाँ सुन रखी थी। हृष्ट-पुष्ट वृक्ष जैसा कद-काठ। दप-दप दमकता नूरानी मुखड़ा। माथे का तेज, जिसकी कोई ताब नहीं ला सकता। नथनो का अथक जादू, आए-गए को रोमांचित कर देना। उनके जैसा शूरवीर नहीं था कोई। तलवार के धनी, शिकार के शौकीन। कभी उनका निशाना नहीं चूका था, चाहे तीर हो, चाहे तोप हो। अरबी, फारसी, हिन्दी, संस्कृत के विद्वान्, वेदों और उपनिषदों के ज्ञाता। उनके जैसा कवि नहीं था कोई। बाबन कवि उनके दरबार में उनके गुण गाते थे, स्तुति करते थे। कलगी लगाते थे, पातशाह कहलाते थे; किसी सड़ी सल्तनत की बजाय दिलों पर राज करते थे और उनके अधिकार की सीमा कहीं काबुल कंधार और कहीं बंगाल, असम तक फैली हुई थी।

नूपकुंवर जिसकी सुन्दरता की चर्चा आस-पास फैली हुई थी, जिसके यौवन के प्रशंसक राजा, महाराज पानी भरते थे। जिसका रंग, जिसका रूप, जिसका नृत्य जिसका गायन हर किसी की चर्चा का विषय था, एक नजर पर उड़ते पक्षियों को गिरा लेती थी, उसके डसे पानी नहीं मांगते थे। यह सुन्दरी दशमेश की प्रशंसा सुनकर अपना हृदय उन्हें दे बैठी। बिना दर्शन किए उनकी दीवानी हो गई। बदकिस्मत औरत, इसकी बजाए कि सतगुरुओं की शरण जाकर अपना जन्म सुधारती, वह तो उनकी जवानी, उनके बीच के मर्द की आभा की प्रशंसक हो गई थी।

न उसे खाना अच्छा लगता, न पहनना अच्छा लगता। हार-सिंगार सब

उसे भूल गए। गहन-गट्टे के साथ कोई सरोकार नहीं। आठों पहर यही धुन कि कैसे वह आनन्दपुर पहुंचे और दशमेश को अपने एक मनमोहक जाल में फंसा ले, गुरु गोबिन्द या फिर और कोई नहीं। ये लोग जो उनकी पूजा करते हैं, सभी मेरे अनुयायी हो जायेंगे।' वह सोचती, एक नजर अपने यौवन को देखकर वह कहती, इस सुन्दरता की कोई ताब नहीं ला सकेगा।

किसी तरह नूपकुंवर अपने भाई हंसराज और मगनदास और अपने चाकर को लेकर आनन्दपुर आ गई। शहर में सबसे आलीशान मकान खरीदकर उसमें रहने लगी।

और फिर उसने कलगीधर के दर्शन किए। यह तो उससे भी सवाये सुन्दर थे। जितना उसने सुन रखा था। यह तो उससे भी कही अधिक सजीले थे जैसे उसने सोच रखा था। जैसे कोई घायल अबाबील हो, वह गोते खाती आई और अपने पलंग पर उल्टी जाकर लेट गई। वह जिसे लोग एक नज़र देखने के लिए तरसते थे, वह जिसके मुंह से एक बोल सुनने के लिए लोग मन्नतें मांगते थे, वह जिसकी एक मुस्कान के लिए लोग तन-मन-धन कुर्बान करने को तैयार थे जैसे मीठी-मीठी सुलगती हवन की अग्नि हो, आनन्दपुर का स्वामी तो कोई और है ही नहीं।

लाख उसने हार सिंगार किए; लाख उसने बातों के फंदे बनाए, लाख उसने सुर्खी और उबटन लगाए, दंदासा घिसाए, उसके रंग-बिरंगे वस्त्रों की शोखी, उसके मोतियों हीरों-गहनों की चमक, उसके इत्र-फुलेलों की खुशबू, लोग उसकी चर्चा करते न थकते, पर मजाल है कि दशमेश ने कभी आंख उठाकर भी उसकी ओर देखा हो।

नूपकुंवर ने जादू टोने किए, पीर मनाए, मन्नतें मांगी, हाथ जोड़े, व्रत रखे, जप किए, हर उपाय किया, हर बहाना किया, कोई सफलता उसे नहीं मिली।

दिन-रात कलगीधर की मन मोहिनी मूरत उसकी आंखों में बसी रहती। सुबह-शाम उनके दर्शनों को जाती। संगत में बैठ बजाय इसके कि गुरुवाणी सुनती, अपना मन ईश्वर के चरणों में लगाती, एकटक दशमेश की ओर देखती रहती। दीवानों की तरह और ही और बहमों में अपने आप को डुबोए रखती। जिन गलियों से गुरु महाराज ने गुजरना होता, उनमें जाकर खड़ी हो जाती, घंटों तक प्रतीक्षा करती रहती।

उसका भाई हंसराज परेशान था। उसके नौकर मगन को कुछ समझ

नहीं आ रही थी, इस खुराफात का क्या इलाज था ? एक ही इच्छा में दशमेश जैसे बच्चे की मां बनना है। यह भी कोई बात हुई।

आखिर नूपकुंवर ने एक चलित्तर दिखाया। बहुत अधिक अमीर औरत, वह कुछ भी र सकती थी। किसी को भी खरीद सकती थी। अच्छे-अच्छे लोग उसकी सेवा में हाजिर रहते थे। उसने एक योगी का भेष बनाया और मशहूर कर दिया कि वह मन की जानती है, दिल की पूरी करती है। आगे-पीछे लोगों ने पास आना शुरू कर दिया। अपने चेलों चाटियों की सहायता से वह उनकी झूठ-सच मनोकामनाएं पूर्ण करने लगी। यह खबर चलती-चलती गुरु महाराज तक भी पहुंची और उनको यह समझा भी दिया गया कि वह उस ज्योतिषी को मिल कर देखें तो सही, जिसकी चारों ओर इतनी चर्चा हो रही थी, कि यह जो जोगन कितने पानी में थी।

कलगीधर से कोई बात छिपी नहीं थी। वे चाहते थे कि नूपकुंवर ने आनन्दपुर में आकर जो गंद डाला था, इसको समाप्त करना होगा। नहीं तो कई नगरवासी कुपथ पर पड़ जायेंगे। एक रात शाम के दीवान की समाप्ति पर गुरु महाराज के कुछ निकटवर्ती गुरुसिक्ख अपने साथ लिए और नूपकुंवर के ठिकाने के लिए चल पड़े। उसके आवास के अन्दर जाने से पहले, उन्होंने अपने साथ लाए गुरुसिक्खों को कुछ दूरी पर एक एकांत जगह पर रूक जाने के लिए कहा। नूपकुंवर के घर की रखवाली के लिए उसका नौकर था, उसके कमरे के बाहर उसका भाई जैसे पहरे पर खड़ा था।

गुरु महाराज को आया देख, उनके धरती पर पैर नहीं पड़ते। दरवाजे खुलते गए, पर्दे हटते गए और अब नूपकुंवर की किसी महारानी की तरह सजी हुई बैठक में दशमेश जी ने अपने चरण डाले। उसके ईरानी गलीचे, उसके तकिए, उसकी छत के फानूस। उसके यहाँ धूप और अगरबत्तियों की खुशबू। एक नशे-नशे का वातावरण था। गुरु महाराज को उसकी बैठक में बैठे हुए एक क्षण-भर हुआ था कि नूपकुंवर घुंघरू छनकाती साथ के कमरे में से पर्दे के पीछे से निकली और दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम कर एकदम नाचने लगी। हीरे और मोतियों के आभूषणों से लदी हुई, महीन रेशमी चोली, अतलस का घाघरा, परियों जैसा सिर की चोटी पर फूलों से सजाया जूड़ा, वह नाचती जा रही थी जैसे कोई हाल में आ गया हो। कैसे उसका अंग-अंग थिरकता था। कैसे उसका बंद-बंद फड़कता था। उसके एक-एक मुद्रा, उसके एक-एक पैंतरा, उसका एक-एक घुम्भर। और अब जैसे वह मुस्कान

लुटा रही थी। कैसे, आंखों से, होठों से इशारे फेंक रही थी। उसकी ताल, उसकी थाप, उसके टुकड़े। कभी लगता जैसे वह उड़ ही हो। कभी लगता जैसे वह हवा में तैर रही हो। कभी लगता जैसे वह छन-छन करती हंस रही, मुस्करा रही, धीरे से किसी की गोद में आ गिरेगी।

गुरु महाराज वैसे-के-वैसे तटस्थ, वैसे-के-वैसे शान्त, वैसे-के-वैसे अडोल यह सारा नाटक देख रहे थे।

अब नूपकुंवर ने एक और खेल खेलना शुरू कर दिया था। वह हाथ जोड़ रही थी। बार-बार सिर झुका रही थी, निवेदन कर रही थी। बिछ-बिछ जा रही थी। प्रार्थनाएं कर रही थी, अनुनय कर रही थी। जैसे अपने-आपको समूचा अर्पित कर कुर्बान कर रही हो, जैसे किसी की ईश्वर ने सुनी हो। किसी की मुराद पूरी हुई हो। किसी के आंगन में चन्द्रमा आ गया हो।

गुरु महाराज इस सब कुछ के पीछे कपट को जानते हुए टस से मस नहीं हुए। वैसे-के-वैसे शान्त, गम्भीर, सामने दीवान पर विराजमान थे जैसे कोई दो जहान का मालिक हो। निर्लिप्त, निर्विकार।

और अब नूपकुंवर अपने समूचे सौन्दर्य के साथ, अपने कहर ढाने वाले यौवन से काम की ज्वाला-सी दहक रही, गुरु महाराज के चरणों में आ गिरी थी। उसकी काम में ऐंठ रही उंगलियाँ कलगीधर के चरणों को पकड़ने ही लगी थी कि उन्होंने स्वयं को पीछे खींच लिया और उसके चेहरे के कपट को भांपते हुए वे उठ खड़े हुए।

नूपकुंवर जिसकी सुन्दरता की चर्चा आसमान तक फैली सुनी थी, जिसके द्वार पर राजा और महाराज पंक्तिबद्ध हाथ बांधे खड़े रहते थे, जिसकी एक अदा के लिए, एक मुस्कान के लिए राजा अपना राजपाट न्यौछावर करने के लिए तैयार हो जाते थे। अभी तक किसी ने इन्कार नहीं किया था। आसमान से तारे तोड़कर लाने के लिए वे तैयार रहते थे। उसका यह निरादर, अगले क्षण वह एक विषैली नागिन बनकर दांत किटकिटा रही थी। वह तो कुछ भी कर सकती थी। सामने के शमादान में से मोमबत्ती निकाल स्वयं को भस्म भी कर सकती थी, किसी को जला भी सकती थी।

यह देखकर गुरु महाराज ने अपनी मयान में से तलवार निकाल ली। चम-चम कर रही उनकी तलवार को देखकर नूपकुंवर हवा में उड़ रहे पक्षी की तरह थड़प से धरती पर आ गिरी, बेबस 'चोर', 'चोर' करके चिल्लाने लगी।

उसकी पुकार सुनकर उसका भाई, उसका नौकर, दौड़ते हुए अन्दर आए। उनकी यह पूर्व निश्चित साजिश थी कि जरूरत पड़ी तो वह गुरु महाराज को बदनामी का भय दिखाकर अपनी मनमर्जी करवा लेंगे। पर इतने में गुरु महाराज के साथ आए गुरु सिक्ख, जो थोड़ी दूरी पर छिप कर प्रतीक्षा कर रहे थे, मौके पर पहुंच गए और उन्होंने नूपकुंवर के अमले की खूब ठोक-पिटाई की और गुरु महाराज को साथ लेकर वहाँ से निकल आए।

इस अफड़ा-तफड़ी में गुरु महाराज का रेशमी दुपट्टा नुपकुंवर के ही रह गया। अगली सुबह नूपकुंवर दुपट्टे को देखकर खुश हो रही थी, कि वह उस दुपट्टे को लेकर दशमेश को बदनामी की धमकी देगी, जब वह कपटी औरत यह सोच रही थी, गुरु महाराज ने सुबह के दीवान के बाद यह ऐलान किया कि उनका फलाने रंग का रेशमी दुपट्टा किसी ने उठा लिया है, जो कोई भी उसे ढूंढ कर लायेगा, उस पर उनकी कृपा होगी। साथ ही गुरु महाराज ने यह चेतावनी भी दी कि चोर को बिना कोई चोट पहुंचाए उनके सामने पेश किया जाए।

ईश्वर की कृपा जिन गुरुसिक्खों को रेशमी दुपट्टा दिखाकर नूपकुंवर कलगीधर को बदनाम करना चाहती थी, वही उस दुपट्टे की तलाश में निकले हुए थे। दुपट्टे सहित वे नूपकुंवर को पकड़कर गुरु महाराज के यहाँ ले आए।

नूपकुंवर की आंखें अब खुल गई थी। अन्त में वह सतगुरु के चरणों में गिर पड़ी।

गुरु महाराज ने उसे समझाया :

पाई परत मेरे सदा, पूज कहि है मोहि ॥
तासो रींझ रमयो चहित लाजे न आवत तोहि ॥

(चरित्र 2)

वह अभी भी बाज़ नहीं आ रही थी। यह सुनकर नूपकुंवर अपने अन्दाज में बोली :

कृष्ण पूजा जग के भए कीनी रस बनाई
भोग राधिका सो करे, परे नरक नह जाए।

यह सुनकर गुरु महाराज ने उसे समझाया :

सूध जब हम धरी बच गुर दए हमारे।
पूत इहै प्रण तोहि प्राण जबै लग घट थारे।

निज नारी के सथ नेह तुम नित्य बड़ेयहु।
पर नारी की सेज भूल सुपने हूँ न जैयहु।

(त्रिया-चरित्र-पखिआन)

29

दशमेश का आनन्दपुर लौट आना, उनका आनन्दपुर के आस-पास किलों के निर्माण का फैसला, गुरुसिक्खों को एक नई भूमिका देने का प्रयत्न, इस बात की साक्षी देते थे कि मुगल हकूमत औरंगजेब की इस्लामी कट्टरता के कारण, हिन्दू प्रजा को दिल्ली दरबार से विमुख कर रही थी। दक्षिण में मराठों के खिलाफ मुहिम के कारण औरंगजेब की लम्बे समय तक दिल्ली से गैर-हाज़िरी, पंजाब का प्रबन्ध और इस सारे प्रदेश के अमन-चैन की जिम्मेदारी औरंगज़ेब के बेटे मुअज़म की होगी, जिसने दूर काबुल को अपना ठिकाना बना रखा था और सबसे महत्त्वपूर्ण यह सच्चाई है कि गुरु महाराज सच के पुजारी थे और जुल्म और हिंसा के खिलाफ उन्होंने हिन्दू धर्म की बाह पकड़ी थी और इस भावना को वे बनाए हुए थे। ये कुछ कारण थे कि समय रहते पहाड़ी राजा गुरु महारा को पराया न समझ कर उनके प्रशंसक बनते जा रहे थे।

सबसे पहले भीमचन्द ने दशमेश की इच्छा मानी, ताकि उसे नित्य रणजींत नगारे की धमक न परेशान करे, उसने अपनी रियासत की राजधानी सतलुज के बाएं किनारे अन्दर की ओर वर्तमान विलासपुर के स्थान पर कायम कर ली। यही नहीं उसने कांगड़े के नरेशों को मुगल हुकूमत के चंगुल से छुटकारा दिलाने के लिए गुरु महाराज को राज़ी कर लिया था। उसके साथ जो पहाड़ी राजा मिली, इनमें अधिकतर गुलेर का प्रतिष्ठित गोपाल चन्द, जसवान का रामचन्द, जसवाल का केसरी चन्द, पृथ्वीचन्द, ददवाल और जसरोटे का सुखदेव थे। उन्होंने मिलकर फैसला किया कि वह मुगल हकूमत को खत्म करेंगे और उन्होंने कर देना बंद कर दिया।

यह देख शहज़ादा मुअज़म ने जम्मू के सूबेदार को हिदायत की कि बागी पहाड़ी राजाओं के दमन के लिए कार्रवाई करे। जम्मू के सूबेदार 'मियाँ खान' ने अपने एक फौजदार अलिफ़ खान को कांगड़े पर हमला करने के लिए भेजा। अलिफखान ने कांगड़े से कोई 32 मील दूर व्यास के किनारे निदौन पर अपनी फौज इकट्ठी कर ली। इससे पहले कि मुगल फौज आगे बढ़े, गुरु महाराज ने निदौन से ही अलिफखान का मुकाबला करने का फैसला

किया। इतने में कांगड़े का राजा कृपालचन्द और भिझखाल का राजा दयाल अलिफखान के साथ जा मिले। इस विद्रोह ने गुरु महाराज के साथियों को भारी चोट दी, तो भी दशमेश के नेतृत्व में अलिफ खान की करारी हार हुई और उसकी फौज अपना सारा गोली-बारूद पीछे छोड़ कर मैदान छोड़ गई। दुश्मन हार चुका था। पहाड़ी राजाओं की जीत हो चुकी थी। इसकी बजाय कि भीमचन्द गुरु महाराज का धन्यवादी होता, उनकी सहायता से ही वे लोग युद्ध जीते थे, विलासपुर के नरेश ने बिना गुरु महाराज से पूछे कृपालचन्द के साथ पुनः राजीनामा कर लिया। यह देखकर गुरु महाराज को पहाड़ी राजाओं के चरित्र का कुछ अन्दाजा हुआ कि वे लोग कितने अवसरवादी थे। उन्होंने मन-ही-मन फैसला किया कि मुगलों की चुनौती वाली चढ़ाई उनको अकेले ही अपने गुरुसिक्खों के बल पर करनी होगी। पहाड़ी राजाओं की ओर से किसी मदद की आशा नहीं की जा सकती थी। यही नहीं, हफ्ता-दस दिन निदौन रुक कर जब गुरु महाराज के शूरवीर आनन्दपुर लौट रहे थे, मार्ग में पहाड़ी नरेशों के द्वारा बहकाए गांव वाले सिक्ख सिपाहियों को अनाज पानी मूल्य पर देने के लिए राजी नहीं हो रहे थे। यह देखकर गुरु महाराज को और मायूसी हुई। जरूरत इस बात की थी कि आम जनता में जागृति लाई जाए। आवश्यकता इस बात की थी कि आम लोगों को भय से मुक्त किया जाए। आवश्यकता इस बात की थी कि पहाड़ी प्रदेश के निवासियों को उनकी गुलाम मनोवृत्ति से, नरेशों से, छुटकारा दिलाया जाए।

उधर जब औरंगजेब को खबर मिली कि कैसे मुगल हमले को पछाड़ा गया था, गुरु गोबिन्द सिंह की कमान-नीचे लड़ रही पहाड़ी राजाओं की सेना ने कैसे कुछ घंटों की लड़ाई में अलिफखान की फौज को खदेड़ दिया था, वे तो अपनी तोपें तथा गोली बारूद तक युद्ध के मैदान में छोड़कर लौट आए थे। शहंशाह ने आग बबूला होकर पंजाब के सूबेदार को पुनः फरमान जारी किया कि जैसे-तैसे हो सिक्ख गुरु जो अपने आपको 'सच्चा पातशाह' कहलवाता है, उसको पकड़कर दिल्ली दरबार में पेश किया जाए। उसके शहर को तहस-नहस कर दिया जाए, उसके घर-बार को लूट पीट कर बर्बाद कर दिया जाए।

इस बार दिलावर खान का बेटा रूस्तम खान फौज लेकर आनन्दपुर पर हमला करने के लिए बढ़ा। बिना किसी को कानों-कान खबर हुए, उसकी फौज आनन्दपुर से कुछ दूरी पर एक सूखे नाले में आकर जम गई। उनका

इरादा था अगली सुबह आनन्दपुर पर अचानक आक्रमण करके दशमेश को गिरफ्तार कर लेंगे।

ईश्वर की करनी उस रात ऊपर वाली पहाड़ियों पर अचानक बरसात होने के कारण, सूखे पड़े नाले में बाढ़ आ गई। इस कारण ढेर सारी मुगल सेना बह गई। उनके बारूद और हथियारों का भी बहुत नुकसान हुआ। उस दिन पहरे पर आलम खान था। जैसे आनन्दपुर की मर्यादा थी, सुबह तीन बजे रणजीत नगारा बजाया गया और गुरु सिक्ख सरगी के समय स्नान करने के लिए सतलुज दरिया की ओर चल दिए। आलम खान ने मुगल सैनिकों को देखकर गुरु महाराज को इसकी सूचा दी। वे तो हमेशा इस तरह के अवसर के लिए तैयार रहते थे। उन्होंने उसी क्षण नाले की बाढ़ से बर्बाद किए मुगल फौज पर हमला कर दिया और दुश्मन के बुरी तरह दांत खट्टे कर दिए। इसकी बजाय के रूस्तम खां का देशवासी गुरु महाराज पर हमला करता, उनका अपने ऊपर अचाकन हमला हुआ देखकर रूस्तम खान बौखला गया। जाड़ों की कड़कड़ाती सर्दी में रणजीत नगारे का बज उठना और सिक्ख सैनिकों के जयकारे और फिर तलवारों की धमक, मुगल सैनिकों ने इस तरह की लड़ाई न कभी देखी थी और न कभी सुनी थी। गुरु महाराज ने उस नाले का नाम जिसके किनारे यह लड़ाई हुई थी 'हिमायती' नाला रखा था। नाले ने सिक्ख सेना की मदद की थी।

कुछ समय बाद दिलावर खान का एक सिपहसालार हुसैन खान फौज लेकर आनरन्दपुर पर चढ़ाई करने के लिए आया। उसके साथ बिलासपुर का राजा भी जा मिला। पर इससे पहले के हुसैन खान आनन्दपुर की ओर बढ़ता, उसकी गुलेर के राजा गोपाल से झड़प हो गई। गुलेर नरेश ने कर देना बन्द किया हुआ था।

जसवाल के राजा राम सिंह और सात और गुरुसिक्खों ने जो उन दिनों में गुलेर किसी समझौते के लिए आए हुए थे, गोपाल की डटकर मदद की। हुसैन खान की मदद कटोच और विलासपुर के राजा कर रहे थे। घमासान युद्ध हुआ जिसमें हुसैन खान और राजा कृपाल दोनों मारे गए। गुलेर के राजा और उसके हिमायतियों की जीत हुई। मुगल फौज को एक बार फिर मुंह की खानी पड़ी। गुलेर के ाजा ने जीत के जश्न को सज-धज से मनाया और गुरु महाराज को धन्यवाद के तौर पर ढेरों भेंटें पेश की।

दिलावर खान ने एक बार फिर आनन्दपुर को लगाम डालने की

कोशिश की। इस बार भी आनन्दपुर पहुंचने से पहले जसवाल का राजा मुगल फौज से जूझ पड़ा।

यह सब कुछ देखकर औरंगज़ेब ने अपने बेटे मुअज़्म को हुक्म दिया कि वह स्वयं फौज लेकर गुरु महाराज पर चढ़ाई करे। शहजादा स्वयं तो लाहौर छावनी लगाकर बैठ गया, उसने मिर्जा बेग को शिवालिक के हुक्मरानों के दमन के लिए भेजा। मिर्जा बेग ने पहाड़ी राजाओं की खूब ठुकाई की, पर गुरु महाराज की ओर वह नहीं बढ़ा।

इसका कारण भाई नन्दलाल 'गोया' थे। वह किसी समय शहज़ादा मुअज़्म के साथ काम कर चुके थे। मुअज़्म के दिल में भाई नन्दलाल जी के लिए बहुत आदर था। जिस हस्ती को भाई नन्दलाल जैसे शायद ने अपना गुरु माना हुआ था, उस पर शहज़ादा मुअज़्म की फौज कैसे हमला कर सकती थी।

इस बार आनन्दपुर पर बेशक आक्रमण नहीं किया गया, पर गुरु महाराज इस हकीकत को भली प्रकार जानते थे कि आज नहीं तो कल उनको मुग़ल फौज़ के साथ जूझना पड़ेगा। इसलिए उन्होंने बड़े पैमाने पर तैयारी शुरू कर दी।

चारों ओर गुरुसिक्खों को हुक्मनामे भेज कर यह आदेश दिया गया कि अगली बैसाखी के मेले पर गुरुसिक्ख आनन्दपुर में इकट्ठे हों। आने से पहले केशों और दाढ़ी की बेअदबी न करें। दाढ़ी बढ़ी होनी चाहिए, केशों को जूड़े में गांठ मारकर सम्भाला जाए।

दशमेश पिता का हुक्म हो तो किसकी मजाल थी कि यह न करें ? लोग झुण्ड के झुण्ड आनन्दपुर के लिए चल पड़े। मार्ग में मुगल सिपहसालार उनको रोकते, परेशान करते, पर गुरु प्यारों को कौन रोक सकता था ?

जैसे-जैसे बैसाखी का त्यौहार निकट आ रहा था, आनन्दपुर में तिल धरने की जगह कहीं नजर नहीं आ रही थी। कन्धे पर कन्धा चढ़ा हुआ, संगत पर संगत चढ़ी हुई थी। 'सत श्री अकाल' के जयकारे दिन-रात गूंजते रहते।

गुरुसिक्ख श्रद्धा में हृदय से पुलकित हो-होकर आए, गुरु महाराज के लिए भान्ति-भान्ति के शस्त्रों के अम्बार लग गए।

इस भीड़ में भागां आंखें फाड़े किसी को ढूंढती फिरती। सारा सिक्ख सम्प्रदाय जैसे टूटकर आ पड़ा हो। पर वह नहीं आया था। 'उसे आना तो चाहिए', भागां का दिल बार-बार उससे कहता।

पिछले कुछ दिनों से भागां किसी-न-किसी बहाने घर से निकल जाती और सारा-सारा दिन यात्रियों के तम्बुओं में छोलदारी के नीचे जुड़े जत्थों में, कीर्तन सुन रहे, लंगर छक रहे, गुरु-प्यारों में किसी सूरत को ढूंढती रहती। शाम को हार-थक कर घर पहुंचती।

अपनी जाया के क्लेश को जानते हुए, वीरां पलकों में उतरे आंसुओं को छिपाती रहती, कभी किसी बहाने, कभी किसी बहाने।

उस दिन मां-बेटी से रहा नहीं गया। यह गीले उपलों का धुआं नहीं था, यह गीले उपलों का धुआं नहीं', भागां कह रही थी और वे एक-दूसरे के गले लगकर झर-झर आंसू रो रही थीं।

30

समकालीन हिन्दू धर्म की अधोगति के कई कारण थे। सबसे बड़ा कारण उनका अन्धविश्वास था। सदियों से भ्रम और वहम, सैंकड़ों वर्षों से चले आ रहे कर्म-काण्ड, देवियां और देवते, जाति-पाति के भेदभाव इतने बढ़ गए थे कि आदमी कदम-कदम पर बंध कर रह जाता।

यह माना जाता था कि आनन्दपुर के निकट नैना देवी के मन्दिर में देवी प्रकट होती है। हजारों यात्री दूर निकट से मन्दिर के दर्शनों के लिए आते और जैसे आते, वैसे ही खाली हाथ लौट जाते। तो भी परम्परा के संस्कारों की पकड़ इस प्रकार पक्की थी कि श्रद्धालु झुण्ड के झुण्ड टूट-टूट पड़ते और यह सब कुछ धर्म के नाम पर हो रहा था।

बड़ा अनर्थ यह था कि यह नाटक केवल गुरु महाराज के द्वारा बसाए हुए आनन्दपुर के पड़ोस में ही नहीं खेला जा रहा था, शिवालिक की पहाड़ियों के नीचे आनन्दपुर के पूर्व अेर पश्चिम दोनों तरफ दुर्गा के उपासकों ने कई मन्दिर स्थापित किए हुए थे। यह माना जाता था कि दुर्गा की छः और बहनें हैं। इन सात बहनों का इस प्रदेश पर एक तरह का राज था। क्या जम्मू, क्या कांगड़ा, क्या होशियारपुर, क्या अम्बाला। जम्मू में वैष्णव देवी थी, कांगड़ा में ज्वालामुखी थी, होशियारपुर में चिंतपूर्णी थी, मनीमाजरा में मनसा देवी थी, नैना देवी आनन्दपुर के पास और बाकी की दो चण्डी और कालका अम्बाले के ऊपर की ओर स्थापित थीं और आम जनता का यह विश्वास था कि होमयज्ञ से दुर्गा प्रकट की जा सकती है। उनके हाथ में तलवार होगी और उनकी सवारी के लिए शेर होगा। दुर्गा दुष्टों का दमन करती है। उसको युद्ध की देवी माना जाता है; बुराई का नाश करती है। सत्य का साथ देती

है।

अगर यह बात थी तो हिन्दू जगत दुर्गा को प्रकट करवाकर अपनी हर रोज़ की जिल्लत से छुटकारा क्यों नहीं पा लेते थे ? उनके मन्दिरों की बेइज्ज़ती होती थी। उनके जनेऊ उतारे जा रहे थे, तिलक मिटाए जा रहे थे। वे ऊंचा गा नहीं सकते थे, ऊंचा रो नहीं सकते थे। अनगिनत हिन्दू बहू-बेटियाँ मुगल महलों का श्रृंगार बन रही थीं। अभी उस दिन औरंगजेब जो इतना पाकबाज़ बनता था अपने बेटे शहज़ादा मुअज़म के लिए राजा रूप सिंह की बेटी की डोली अपने महलों में लाया था। तब उसका इस्लाम कहाँ चला गया था ?

तिलपट के गोकुल ने मथुरा के साम्प्रदायिक गर्वनर अब्दुल नबी का वध किया था। चाहे बुरी बात थी, पर औरंगजेब ने जाटों पर चढ़ाई करके पांच हज़ार जाट मौत के घाट उतार दिए, सात हज़ार जाटों को कैदी बना लिया। गोकुल के टुकड़े-टुकड़े करके उसके मांस को कुत्तों को खिलवाया। जाटों की बहू-बेटियो को पकड़ कर मुसलमानों में बांट दिया, जैसे रेवड़ियाँ बांटी जाती हैं।

सतनामियों के किसी किसान से झगड़ कर इसके बद दिमाग मुगल नौकरशाह का सिर फोड़ दिया ? सतनामियों ने विद्रोह किया। नारनौल शहर को लूटा। शहर की मस्जिद को ध्वस्त कर दिया। यह सुन औरंगज़ेब ने फौज भेजकर सतनामियों के सारे-के-सारे कबीले का सफाया करवा दिया। बीज डालने योग्य भी कोई सतनामी बाकी नहीं रहा।

अहमदाबाद में कई और हिन्दू मन्दिरों के साथ चिन्तामणि नाम के नवनिर्मित मन्दिर में गाय का वध कर मन्दिर को मस्जिद में बदल दिया गया।

मथुरा का केशव राय मन्दिर गिरा कर उसके स्थान पर मस्जिद का निर्माण किया गया। इस मन्दिर को राजा नरसिंह राय ने 33 लाख रुपये खर्च कर बनवाया था। मथुरा शहर का नाम इस्लामाबाद रखा गया।

बनारस के विश्वनाथ मन्दिर का भी वही हाल हुआ जो मथुरा के केशवराय मन्दिर का हुआ था। उसकी जगह पर भी मस्जिद बनाई गई।

इस तरह की अनेक घटनाओं को याद करके गुरु महाराज इस नतीजे पर पहुंचे कि इस तरह के अत्याचार करना बेशक पाप है, पर इस तरह के अत्याचारों को सहना इससे भी बड़ा पाप है। बेशक गुरु पिता तेग बहादुर जान पर खेल गए थे पर इस धक्केशाही का मालिक और लहू मांगता था।

इसलिए सारे पंथ को एकजुट होकर लड़ना होगा, कुर्बानियाँ देनी होंगी। अगर राजा कुपथ पर पड़ जाए तो जनता का हक बनता है कि विद्रोह करे। राजकीय सत्ता, बिना बाहु-बल के हाथ में नहीं आती।

"कोई किसी को राज न देहै,
जो लए हैं निझ बल सो लए हैं।"

अब जब तिलपट के जाट नहीं रहे थे, अब जब सतनामियों का बीज नाश कर दिया था। अब जब राजपूतों के विद्रोह की कमर टूट चुकी थी। अब जब शिवाजी काल-कवलित हो चुके थे, उसके बेटे शम्भू जी का वध कर दिया गया था। शम्भू का पुत्र शाहू बन्दीखाने में सड़ रहा था। इधर सिक्ख भाईचारे में गुरु अर्जुन शहीद किए गए थे। गुरु हरगोबिन्द को ग्वालियर के किले में कैद भुगतनी पड़ी थी। गुरु तेग बहादुर को शीश की कुर्बानी देनी पड़ी। मतीदास को आरे से चीरा गया, उनके साथियों को जीते जी भून दिया गया। तो भी इस जुल्म का अन्त नहीं हुआ। समय आ गया था कि कोई और राह ढूंढी जाए, कोई और नीति अपनाई जाए।

और यह बोझ उन्हें स्वयं उठाना होगा। पहाड़ी राजाओं को अजमाया जा चुका था। उन्होंने हार स्वीकार कर ली थी। सभी के सभी राजा अधोमति प्राप्त कर चुके थे। अब तो अगर कहीं से मदद मिल सकती थी तो वह लोग थे। अब जनता का साथ ही इस सितम को रोक सकता था। लोगों को इकट्ठा करना होगा। बिना ऊंच-नीच, जाति-पाति और भेदभाव से एकजुट होकर लड़ना होगा।

पहले भी एक बार दशमेश के सामने यह सवाल आया था। तब भी उन्होंने अपने आस-पास के दैवी उपासकों से पूछा था कि जो नैनां देवी पर माता प्रकट होती है तो उसको क्यों नहीं पुकारा जाता। अगर शेरांवाली की तलवार ने कभी भी किसी की सहायता की थी तो अब समय था औरंगजेब के कहर का मुकाबला किया जाए और देवी उपासकों ने कहा था देवी के प्रकट होने के लिए होम यज्ञ करना होगा।

गुरु महाराज उनके अन्धविश्वास का भण्डा फोड़ना चाहते थे। वे कुपथ पर पड़े लोगों को सच्चाई के मार्ग पर डालना चाहते थे।

अगर होम यज्ञ करने से देवी प्रकट होती है तो होम यज्ञ किया जाए। कलगीधर ने फैसला किया। इसके लिए बनारस से किसी पण्डित को बुलाना होगा, देवी के अनुयायी कहने लगे।

बिल्कुल, गुरु महाराज बोले, 'बनारस से सबसे महान् पण्डित को आमन्त्रित किया जाए। गुरु महाराज जैसे एक नाटक रच रहे हों। वे हिन्दू अन्ध-विश्वास की फफूंद उतारना चाहते थे।

पण्डित केशोदास को बुलाया गया और दुर्गा अष्टमी वाले दिन होम यज्ञ आरम्भ किया गया। अब पूरा वर्ष बीतने को था, इस होम यज्ञ को आरम्भ हुए। मनो-मन घी और सामग्री जल चुकी थी। ब्राह्मणों की टोलियाँ दिन-रात भजन गा-गाकर, पाठ कर करके गला फाड़ती रही थीं। लाखों रुपये खर्च हो चुके थे। खाना भी नहीं कम था जिसके साथ पण्डितों की खातिर की जाती थी।

बैसाखी से कोई तीन दिन पहले गुरु महाराज स्वयं नैना देवी पहुंचे। हवन जारी था, अग्नि की लपटें उठ रही थीं, बार-बार घी की करछी और सुगन्धित साम्री की समिधाएं हवन कुण्ड में डाली जा रही थीं। पण्डित केशवदास और उसके साथी ब्राह्मण एक स्वर में दुर्गा का पाठ कर रहे थे। पर कुछ भी तो नहीं हो रहा था, कहीं कोई आसार नहीं थे कि देवी प्रकट होने वाली थी। इधर-उधर श्रद्धालु प्रतीक्षा करते थक-हार रहे थे।

गुरु महाराज को अपने बीच देखकर पंडित केशोदास कहने लगा, 'देवी खून मांगती है, कोई बलवान खून देना होगा तो ही देवी प्रकट होगी।' कलगीधर ने सुना और आदेश दिया, 'मेरे चीते-संगतों की कुर्बानी दी जाए।'

कुछ समय के बाद कलगीधर के पालतू चीते संगतों को आग में झोंक दिया गया और घी हवन कुण्ड में डाला जा रहा था। और-और सामग्री चारों ओर से डाली जा रही थी। पण्डित ऊंचे और ऊंचे स्वरों में दुर्गा की स्तुति कर रहे थे। इन सबसे ऊंची आवाज़ चीते की थी जो अग्नि में भुन रहा था। आग की लपटें ऊंची और ऊंची हो रही थीं। चारों और उच्चारण किए जा रहे भजन-पाठ, श्लोकों के कारण कान पड़ी आवाज नहीं सुनाई दे रही थी। हवन-कुण्ड के गिर्द पूरे वर्ष से जलाई जा रही सुगन्धित सामग्री का घना धुएं में हाथ पर हाथ मारने पर भी दिखाई नहीं देता था।

पण्डित केशवदास और उसके साथी ब्राह्मणों के पाठ का उच्चारण एक स्वर में कानों में पड़ रहा था, लोग मस्ती में सिर हिला रहे थे। जल रही सामग्री की भीनी-भीनी सुगंध, एक नशा-नशा सा था आस-पास में। हवन-कुण्ड में खाली किए जा रहे घी के घड़े, अग्नि की लपटें जैसे आकाश को छू रही हों। मुट्ठियों भर-भर के लगातार हवन कुण्ड में भेंट की जा रही सामग्री का

धुंआ और अधिक घना हो रहा था।

चीते का चीत्कार कब का समाप्त हो चुका था। अब तो केश्वदास के साथी पण्डितों का गायन, हर क्षण ऊंचा और ऊंचा हो रहा था। हवन-कुण्ड में से निकल रहे अग्नि के अंगारे, भड़कते उठते, उछलते, ऊंचे-ही-ऊंचे जा रहे थे। सरघी का अन्धेरा था और धुंए की ऊसर रही दीवारें थीं और जल रही सामग्री की भीनी-भीनी नशा कर देने वाली सुगन्ध थी, उन्मत्त कर रही थी, पलकें जुड़-जुड़ जातीं। सिर घूम-घूम जाता। दुर्गा स्तुति के गायन से अंग थिरक-थिरक जाते; कूल्हे लरज़-लरज़ जाते।

आज की रात होम की आखिरी रात थी। एक वर्ष से चल रहे पाठ, एक वर्ष से भेंट चढ़ रही सामग्री, एक वर्ष से भड़क रही ज्वाला, पण्डित केशोदास और उसके साथी पूरा जोर लगा रहे थे।

ढोलकियाँ और छैने, खड़तालें और चिमटें, अब गायन और अधिक ऊंचा हो गया था। केशवदास और उसके साथी सिर मार-मार कर एक ही सांस में भजन गा रहे थे। आंखें मूंदे, भुजाएं उठाए, सिर घुमा रहे थे।

और फिर हर किसी को लगा जैसे अन्धेरे के गुबार में कोई तलवार चमकती हो। देवी प्रकट हो गई थी। पण्डित केशवदास सहसा पुकार उठे, दुर्गा माता की जय ! जयकारे ऊंचे और अधिक ऊंचे हो रहे थे। क्या भजन गा रहे ब्राह्मण, क्या मन्दिर के प्रबन्धक, क्या श्रद्धालु जो हज़ारों की गिनती में आसपास बैठे थे, खड़े हो, गद्-गद् हो रहे थे, देवी माता पर बलिहारी जा रहे थे, कि इतने में सामने पहाड़ के पीछे सबेर की पहली किरण फूटी और किसी की आंखें खुली-की-खुली रह गई, यह तो दशमेश थे, चम-चम करती अपनी तलवार को घुमा रहे सामने दिव्य मूर्ति खड़े थे।

देवी के उपासक हक्के-बक्के एक-दूसरे की ओर देखने लगे। ये तो दशमेश थे, ये तो कलगीधर थे और उनमें से कोई सहसा पुकार उठा, 'कलगीधर की जय।' 'दशमेश पिता की जय। बाज वाले की जय !!—' और पण्डित केशवदास क्या और उसके साथी ब्राह्मण क्या, हर कोई गुरु महाराज के चरणों में गिर पड़ा, चारों और श्रद्धालुओं के सिर झुक गए।

अब गुरु महाराज ने हवन-कुण्ड के गिर्द इकट्ठे हुए श्रद्धालुओं को सम्बोधित करते हुए कहा, शक्ति प्रत्येक प्राणी के अपने भीतर होती है। हर नारी दुर्गा है। हर मर्द सिंह है। हमें केवल अपने भीतर झांकना होता है। शक्ति इस शमशीर में है शक्ति इन भुजाओं में है। शक्ति मेरे संकल्प में है।

और फिर गुरु महाराज ने एकत्रित जनसमूह को तीन दिन बाद बैसाखी वाले दिन आनन्दपुर में आयोजित सम्मेलन में शामिल होने के लिए आमन्त्रित किया। इस तरह का चमत्कारी गुरु आवाज दे तो कौन उसके पीछे नहीं चल देगा ?

31

'कोई इस कौम का क्या करे ?' सुबह-सुबह बाहर से सैर करके लौटा आलम हाथ में पकड़ी छड़ी को एक तरफ रखते हुए बुड़-बुड़ा रहा था।

'क्यों, अब कौन-सी बिल्ली छींक गई ?' वीरां चौके में बैठी नाश्ता तैयार कर रही बोली।

जो गुरु महाराज ने कल सरघी के समय नैना देवी के मन्दिर पर नाटकीय ढंग से देवी के उपासकों की आंखें खोली थीं, उसके और ही मतलब निकाले जा रहे थे।

'इसमें और कोई अर्थ निकालने की क्या गुंजाइश है ?' वीरांवाली साथ चूल्हे-चौके का काम भी किए जा रही थी।

'बीबी, मैं तो खुद वहाँ था। मैंने यह सारा नाटक अपनी आंखों से देखा है।' आलम ऐसे कह रहा था, जैसे कोई चिढ़ा हुआ हो :

'पर ये लोग क्या कहते हैं ?'

'कहते हैं, गुरु महाराज ने नैना देवी के मन्दिर में देवी प्रकट की है।'

'अन्ध-विश्वास और कुछ भी नहीं।'

भागां अपने अन्दाज में बोली।

मैंने कहा, देवी बेशक प्रकट हुई है, पर वह देवी नहीं थी, देवता था और देवता भी हमारे दशमेश जी थे। जिन्हें कुछ लोग कलगीधर करके याद करते हैं, और कुछ लोग बाज वाला कहकर पूजते हैं।

'इन्हें' गुरु महाराज की नई रचना 'विचित्र नाटक' पढ़नी चाहिए।

'उसे भी पढ़कर यार लोग एतराज कर रहे थे।'

'लो ! उसमें किन्तु वाली कौन-सी बात है ?'

'जिन्हें यह एतराज़ है कि गुरु महाराज ने नैना देवी पर पूरा वर्ष होम यज्ञ क्यों करवाया........।'

'वह तो इसलिए कि किसी को यह कहने का मौका न मिले कि वैदिक मर्यादा पूरी नहीं की गई। इसीलिए तो उन्होंने बनारस से सबसे प्रतिष्ठित पण्डित केशवदास को होम-यज्ञ की पुरोहिताई करने के लिए बुलाया था।

हाँ तो आप बता रहे थे कि 'विचित्र नाटक' के बारे में एतराज़ हो रहे हैं।' शिकायत यह है, कि इस रचना में देवी-देवताओं का ज़िक्र क्यों किया गया है ?'

ज़िक्र ही नहीं किया गया, उनमें से अधिकांश को मान दिया गया है।'

मैंने उन्हें समझाया, उसका यह मतलब हरगिज नहीं कि गुरु महाराज उन देवी-देवताओं को पूजते हैं। वे तो अल्लाह पाक को मानते हैं, वे और किसी को नहीं मानते, उन्होंने साफ कहा है :

'मैं न गनेसहि प्रिथम मनाऊं।
किशन बिशन कबहूँ नहि धिआऊं
कान सुने पहिचान न तिन सो,
लिव लागी मोरी पग इन सो।
महां-काल रखवार हमारो,
महाँ लो मैं किंकर थारो।

या फिर......।

पाई गई जब ते तुमरे, तब के कोऊं आंख तरे नहीं आनयो
राम, रहिम, पुरान, कुरान, अनेक कहे मत एक न मानयो।

वे तो केवल आदि पुरुष की अराधना का उपदेश देते हैं। मढ़ी-मसान की पूजा का तिरस्कार करते हैं :

जग आपन आपन आपन डरमाना, पारब्रह्म काहूँ न पछाना।
एक मड़ीअन कबरन वे जाही, दुहूँअन मैं परमेसर नाही।

... ...

एक तसबी एक माला धरहीं एक कुरान पुरान उचरही।
करत विरोध गए महि मूड़ा, प्रभ के रंग ना लागा गूड़ा।
जो जो रंग एक के राचे, ते ते लोक राज तजि नाचे।
आदि पुरख जिन एक पछाना, दुतिया भाव ना मन महि आना।
जो जो भाव दुतिया महि राचे, ते ते मीत मिलन ते बाचे।
एक पुरख जिन नैक पछाना, तिन ही परम तत्त कहि जाना।

उन्होंने तो अपने बारे में भी यह कहा है :

मैं हों परम पुरख को दासा। देखन आया जगत् तमाशा।
जो प्रभ जगति कहा सो कहिहो, मित लोक ते मौन न रहि हों।

'मुझे तो 'बचित्र नाटक' पढ़कर हैरानी हुई, हिन्दू अवतारों, देवी-देवतों

के साथ गुरु महाराज ने मुसलमान पीर मेंहदी का भी ज़िक्र किया है।'

'वे मुगल हकूमत और उसमें हो रहे अन्याय और ज़ुल्म के खिलाफ आवाज उठाते हैं, पर इस्लाम के खिलाफ उन्होंने कभी एक शब्द नहीं कहा। जैसे गुरु नानक अपनी वाणी में तुर्कों और पठानों को गलियाते रहे पर मुसलमानों के खिलाफ उन्होंने कभी कुछ नहीं कहा। मुसलमान तो उनके पड़ोसी थे, उनके देशवासी थे, भाई मरदाना मुसलमान रबाबी उनके साथ-साथ रहता था।'

ऐसे आलम और वीरांवाली वार्तालाप कर रहे थे कि साथ के कमरे में से भागां निकली। कच्चे रेशमी धागे की सफेद रंग की चोली। सफेश रेशमी घाघरा, ऊपर सफ़क की सफेद चुन्नी, कई दिनों के बाद ऐसे सजी थी। उसको ऐसे आता देखकर वीरां के मुंह से लाड़ में निकला :

से तैं साज साजि चली सावेरे की प्रीति काज,
चांदनी मैं राधा मानो चांदनी सी हूँ गई।

इसकी बजाए कि भागां झेंपती, शरमाती वह कहने लगी, 'कृष्ण कथा' में से आपने ये बोल लिए हुए लगते हैं। मुझे तो 'बचित्र नाटक' में श्रृंगार रस की कविता सबसे अधिक प्रभावित करती है। संयोग और वियोग का जो बयान जमना के किनारे रास लीला में या गोपियों का कृष्ण के विरह में गोपी विरह में मिलता है, उसका जवाब नहीं। इस तरह की कविता शायद इधर जयदेव में पाई जाती है, और कहीं नहीं :

तिह गवारन को अति ही पिख प्रेम, तबै प्रगटे भगवान शिताबी।
जोति भई धरनी पर इऊं, रजनी महि छूटत जिऊं महिताबी।
चं ऊक परी तबही इह यों, जैसे चऊंक तम में डरि खुआबी।
छाड़ि चलयो तन को मन इंज, जिन भावत है गृह छाड़ि शराबी।

वह तो ठीक है, पर आज फिर किधर की तैयारी है। मैंने तो सोचा था तुमने अब पीछा छोड़ दिया है।' वीरां जैसे ब़ेटी को समझा रही थी.।

अगर किसी ने आना होता तो आज तक आ चुका होता हमने कल गिनती की, कोई साठ हजार श्रद्धालु आ चुके हैं।

और अभी आ रहे हैं, दो दिन बैसाखी में बाकी हैं। कोई पता नहीं। वीरां वाली के बीच की मां अपनी बेटी को निराश नहीं करना चाहती थी।

पता नहीं क्यों, मेरा मन कहता है, वह जरूर आयेगा। इस तरह दशमेश का हुक्मनामा गया हो और वह न आए, यह कदाचित् सम्भव नहीं। वह तो

चलती तलवारों में से निकल कर आयेगा। उसे आना चाहिए। यह कहते हुए भागां बाहर निकल गई।

'है न पागल, तू नाश्ता तो करके जा।' वीरां उसे समझा रही थी।

"नाश्ता मैं गुरु लंगर में करूंगी। आज रात तक मैं लंगर में रहूँगी। जो बाहर से आयेगा, वह लंगर तो जरूर छकेगा।"

"तुम मेरी बात तो सुनो।"

पर भागां मां की अनसुनी करती हुई आंगन में से बाहर निकल गई।

"बिल्कुल सम्पूर्ण तुम्हारी सुंदरता है। आलम भावुक हो रहा था, जब पहली बार हमारी मुलाकात हुई, तुमने भी सफेद रेशमी जोड़ा पहना हुआ था, जैसे आसमान से उतरी कोई हूर हो।"

छोड़ो भी, दो बच्चों की मां, मेरा तो बुरा हाल था उन दिनों, न आगे की, न पीछे की।

तभी तो मेरे जैसों का दांव लग गया।

"मुझे तो भागां से डर लगता है। कहीं इसने मेरा भाग्य न बांटा हो।" ऊपर से समय कौन क्या हो रहा है।

हाँ ! आजकल रासलीला के दिन नहीं, आजकल तो युद्ध की तैयारी के दिन हैं। मुझे तो दशमेश की वीर रस की कविता में शृंगार रस की झलक दिखाई देती है।

हाँ, अब हमारी और आपकी उम्र शृंगार रस के पड़ाव से गुजर जो चुकी है। वीरां दबी जबान से आलम को छेड़ती है।

अच्छा, तुम आप ही बताओ, इस तरह की कविता सुनकर तुम्हें कैसा लगता है ?

भट गाजहगे। उन लाजगहे।
दल जूतहगे, सर छूटहगे।
सर बरखहगे, धन करखहगे।
अस बाजहगे, रण साजहगे।
भूअ डिगहगे, भय डिग्गहगे।
उठ भाजहगे, नहीं लाजहगे।
जस गावहगे, मुसक यवहगे।

(हर बोलमना छन्द)

या फिर..............

जूठे वीरं, छूटे तीरं जुझे गाजी। डिगे बाज़ी।
बज्जे जुआणं। बाहे बाणं। रूझे जोगं। जुझे अंग।
तुटे तंग, फूटे अंग। सजे सूरं। घुमी हूरं।
जूझे हाथी। रूझे साथी। उभे असटं, सुझे पुसटं।
फूटे वरं। फुटे तीरं। डिगे भूमं। उठे छूमं।
बमै मारं, चकै चारं। सजे शस्त्रं, बजे असत्रं।

(अकवां छन्द)

पर यह बताओ गुरु महाराज ने द्वापर युग के युद्धों का वर्णन करते हुए मुसलमान योद्धाओं के नाम कैसे 'बचित्र नाटक' में ला घुसाए हैं। उदाहरणतः फरजुला खान, निजबत खान, अजायब खान, वाहिद खान, लुतफुला खान, गैरत खान, दलेल खान, नाफर खान, हिम्मत खान और ऐसे हीी कई और ?"

"मुझे भी यह बात अटपटी लगी थी। मुझे लगता है कलगीधर इस वर्णन को समकालीन माहौल के अनुकूल बनाना चाहते थे।"

मेरी तसल्ली नहीं हुई।

यह बात कलगीधर से पूछी जा सकती है। आलम को तो आजकल सतगुरु की निकटता प्राप्त थी।

'बचित्र नाटक' के बारे में मेरा एक और विश्वास है। वीरां वाली इतने में चूल्हे चौके के काम से खाली हो चुकी थी, महात्मा बुद्ध के साथ गुरु महाराज ने शायद इन्साफ नहीं किया। बस तीन छन्दों में ही सिद्धार्थ की कथा निपटा दी।

ठीक ! तुम तो सारी उम्र गौतम की दीवानी रही हो। पर मेरे लेखे इसलिए कि महात्मा बुद्ध अहिंसा का अवतार थे और कलगीधर की आज की जरूरत 'भगवती' की है। उनका एक ही निशाना, मुगल दरबार के साथ जूझना है। अन्याय, जुल्म और कट्टर साम्प्रदायिक जनून को खत्म करना है।

यही शिकायत उनकी शायद जैन-पंथियों के खिलाफ है। अरहंत के बारे में भी उनके विचार कुछ इसी तरह के हैं।

जो कुछ भी है। 'बचित्र नाटक' में जो जानकारी गुरु महाराज ने अपने जीवन के बारे में दी है, वह अपनी मिसाल आप हैं। मैं नहीं सोचता इधर किसी और महापुरुष ने इस तरह अपनी आत्मकथा लिखी हो।

बेशक ! पर ऐसे लगता है, गुरु महाराज का मनोरथ पंथ को आने वाले

समय की जद्दो-जहद के लिए तैयार करना है।

दसम कथा भागवत की, भाखा कही बलाइ
अवर बाछना नाहि किछु धर्म युद्ध कै चाइ।

मुझे तो उनके इन शब्दों को पढ़कर गुरु महाराज पर बड़ा लाड़ आया था :

चित न भयो हमरो आवन कह।
चुभी रही स्रुति प्रभ दरशन महि।
जिउं-तिअं प्रभ हम को समझायो।
इम कहिके इह लोक पठायो।

कथा-वार्ता हो चुकी, चलो अब नाश्ता करें। वीरां वाली ने चौके में पटरा रखते हुए कहा।

32

आलम और वीरांवाली ने नाश्ता शुरू ही किया था कि सामने डियोढ़ी में भागां दिखाई दी। उसके साथ एक नौजवान था और एक हसीना। दोनों लदे-फदे थे, जैसे मैदान मार कर आए हों। एक पल के लिए वीरां और आलम देखते रह गए। ये कौन हैं ? भागां मन्द-मन्द मुस्करा रही थी। आलम और वीरां को कुछ समझ नहीं आ रही थी।

जब कोई ऐसे सज कर किसी के स्वागत के लिए निकलता है, खाली हाथ थोड़ी-ही आता है। भागां अभी भी कोमल बनी मुस्करा रही थी।

"हाय, मैं मरी, यह तो मेरा धरम है।" वीरां ने पहचानते हुए, आगे बढ़कर अपने बेटे को छाती से लगा लिया।

धरम ने दाढ़ी बढ़ाई हुई थी। केश रखे हुए थे, केशों पर साफा था। पहचाना भी कैसे जाता ?

और यह आपकी बहू-रानी है। भागां ने धरम के साथ आई लड़की का परिचय दिया।

अब वीरां धरम के साथ आई लड़की को गले से लगाकर उसकी बलाइयाँ ले रही थी।

ऐसी बैसाखी तो हर रोज़ आए। अब आलम धरम को मिल रहा था। यार तुमने यह क्या हुलिया बनाया हुआ है ?

गुरु महाराज का हुक्मनामा जो गया था, हरेक दाढ़ी केश रखकर आए। मैंने तो जिस दिन सुना इसकी पालना शुरू कर दी। आप अपनी और.......

धरम बता रहा था।

यह सुनकर भागां के मन में खटका, कहीं उसका दया भी तो इस तरह के नये हुलिए में न हो और उसे यह पहचान न रही हो और मौका पाते ही वह अपनी तलाश में निकल गई।

औरत का इश्क, अब भागां हर नौजवान चेहरे की ओर गौर से देख रही थी, दाड़ी मूंछों के पीछे अपने महबूब को ढूंढ रही थी। लाहौर से आई संगत के तम्बुओं को गाह रही थी और जैसे वह हर दूसरे-चेहरे को निहारने लगती, लोक सोचते शायद कोई पगली है।

और फिर एक लाहौरन से रहा न गया। यह तीसरी बार था भागां उनके तम्बुओं की कतार के आगे से गुजरी थी, एक तो तलाश चेहरे पर अंकित एक विह्वलता और सुन्दर कितनी थी। जवान-जहान ! ओ बीबी, तुम किसे ढूंढती हो लाहौरन से भागां को रोककर बातों में लगा लिया। जैसे उसने शुक्र मनाया हो कोई बात करने वाला मिल गया था। भागां के होंठ कंपकंपाने लगे। आंखे भर आईं, आप खास लाहौर से आई हो ?' भागां पूछ रही थी।

"हाँ !" लाहौरन ने जवाब दिया।

आपने लाला दुनीचन्द का नाम सुना होगा।

बीबी दुनीचन्द सैंकड़ों हैं लाहौर में। लाहौरन बोली।

'सेठ दुनीचन्द !' भागां फिर मुंह में बुदबुदाई

"सेठां की भली कही। लाहौर में ढेला उठाओ तो नीचे से सेठ निकल आता है।"

"मेरा मतलब है, गुरु का घर वाला सेठ दुनीचन्द जिसको जिसे बाबा नानक ने .... था।"

ले, उसकी बेटी की बड़ी लड़की हमारे गांव में .... ब्याही हुई है।

भागां ने सुना और उसका चेहरा एकदम खिल गया। उसका कोई पुत्र दयाराम है ? भागां ने संकुचाते हुए पूछा।

लाहौरन का अर्थपूर्ण चेहरा, जैसे सोचने लगी हो।

सुन्दर नौजवान ! ऊंचा लम्बा। गोरा रंग 'हल्की नीली आंखें' बोलता तो जैसे आस-पास नगमें छिड़ जाते हों। लाहौर वाले कितना मीठा बोलते हैं और साथ ही सलीके वाले। सदाचार में उनका काई सानी नहीं। गुरु घर की दीवाना, ढेर सारी गुरुवाणी उसने कण्ठ की हुई है ....।

'रुक जा, रुक जा बीबी। मुझे थोड़ा सोचने तो दे। गांव के बाहर-बाहर

भैरों के मन्दिर के पिछवाड़े उनका घर है, मैं कभी उधर गई नहीं। इच्छारा बस नाम का गांव है, वैसे अच्छा-खासा कस्बा कहा जा सकता है। एक और यहाँ से होकर गया है। गुरु महाराज के दर्शनों को आया था। वे तो पाऊंटे थे। हमारे यहाँ कुछ समय रुक गया था। बेहद श्रद्धा थी उसे गुरु घर में। मैं उसकी ओर देख-देख अपने आप-से-कहती-इस गजब की जवानी को क्या कहें और गुरु भक्ति को क्या कहें। वे तो जैसे दीवाना था गुरु घर का। हमारे यहाँ आया और हमारा घर जैसे सुन्दर-सुन्दर लगने लगा। हर रोज कथा-वार्त्ता, हर-रोज गुरुवाणी का पाठ। कीर्तन कैसा सुन्दर करता था। इतनी मीठी आवाज़। सितार इतना सुन्दर बजाता था। जरूरत पड़े तो तबले के साथ ठेका दे लेता। संगीत की इतनी समझ।

बस, बस बीबी, अगर यह बात थी तां। तुमने उसे जाने क्यों दिया ?

अब अगर आया होता तो इतने दिन आपके यहाँ रहकर गया, उसने आपके यहाँ जरूर आना था।

यही तो मैं सोचती हूँ। अगर आया होता तो उसने हमारे यहाँ ही ठहरना था। अगर आया होता तो उसने हमारे यहाँ आना था, अगर आया होता तो. ......पागलों की तरह ऐसे ही बोलती हुई भागां अपनी राह चल दी। ऐसे अपने में ख़ोई बोलती हुई भागां कोई दस कदम आगे गई होगी कि तम्बू में से ऊंचा लम्बा एक नौजवान निकला। गोरा रंग, हल्की नीली आंखे।

"कम्बख्त, तुम्हें ऐसे नहीं करना चाहिए, यह लड़की तो तुम्हारी दीवानी है।" लाहौरन ने उसको देखते हुए कहा।

"देवकी भाभी, यही तो मुसीबत है।"

देख कैसे चले जा रही है। लड़खड़ाते कदम। जैसे चल-चलकर किसी के टखने भी रह गए हों।

जैसे कोई कटी हुई पतंग हो।

या कोई समूह से बिछड़ी हिरनी।

पिछले कुछ दिनों में हमारी कोई तीन बार भेंट हुई है। बिल्कुल आमने-सामने। पर मुझे यह पहचान नहीं सकी। दया अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरकर, अपनी मूंछों को ताव देने लगा। इसका नाम भागां है।

तौबा ! तौबा ! सुन्दर नौजवान। ऊंचा लम्बा। गोरा रंग, हल्की नीली आंखें, बोलता तो जैसे आस-पास नगमें छिड़ जाते हों.....।

"बस, बस देवकी भाभी, उसके साथ तुम भी पागल हो गई हो।"

"पर तुम इस लड़की के साथ शादी क्यों नहीं करवा लेते।" हमारी जोड़ी वाह-वाह सजेगी। सुन्दर कितनी है। जैसे साक्षात् हीर हो।"

"वह तो सब कुछ है, पर इस तरह की लड़की के साथ फेरे लेकर बन्दा किसी काम का नहीं रहता।"

"क्या मतलब ?"

"फिर अगले का बस बच्चे पैदा करने का धन्धा रह जाता है और सब तरफ से छुट्टी।"

"बेकार की बातें।"

"हाय भाभी, वह तो फिर इधर आ रही है। यह कहते हुए दया तम्बू में छिप जाता है। भागां मुंह में आप-ही-आप कुछ बोलती है। खड़ामा-खड़ामा आती है, जैसे कोई जल्दी न हो, देवकी भाभी वैसे-की-वैसे अपने तम्बू के बाहर खड़ी जैसे उसकी जैसे राह देख रही हो।"

इतने में भागां उसके नज़दीक आते हुए, उसके गले लग जाती है....... आप लाहौर के हो ? इच्छरा गांव के ? मैं कभी लाहौर नहीं गई। लाहौर तो बड़ा सुन्दर शहर होगा। वह कितना सुन्दर था। मेरा लाहोरिया परदेसी। लाहौर के नजदीक कोई दरिया तो बहता होगा। जैसे हमारी सतलुज है। कुछ कह तो वह रहा था। दरिया में नाव होगी। आजकल मौसम खुल रहा है। आजकल नाव की सैर कितनी सुहानी होती है। हम लोग सतलुज में नौकाओं में कहीं न कहीं निकल जाती हैं। आजकल मैंने कहा है न मौसम खुल रहा है, चारों ओर नये पत्ते निकल रहे हैं, फूल खिल रहे हैं। कितनी हरियाली है, आजकल बिछड़े मिलते हैं। आजकल जब जाड़ा चला जाता है, गर्मियाँ अभी आई नहीं। आजकल कोई आ जाए तो कितना अच्छा हो ! मै। सोचती....... ।

"ऐ लड़की, तुम्हें किसकी प्रतीक्षा है ? भाग्यशाली है जिस के लिए तुम ऐसे विह्वल हो रही हो।"

उसे आना तो चाहिए ! गुरु महाराज का आदेश है कि सारे गुरु सिक्ख बैसाखी वाले दिन यहाँ उपस्थित हों, मैं तो कब की इस दिन की प्रतीक्षा में हूँ। बीच में दिन ही कितन रह गए हैं। कल का ही तो दिन हैं परसों तो दिवान लगेगा। इतनी तैयारियाँ हो रही हैं, इस बार के समागम के लिए। आजकल कितना प्यारा मौसम है, है कि नहीं ? दशमेश की बलिहारी जाएं। कितने सुन्दर दिनों में बैसाखी मनाते हैं। हमारे घर मेरे कमरे के झरोखे के बाहर

छज्जे पर कबूतरों ने अपना डेरा जमाया हुआ है। दिन रात, गुटर-गूं, गुटर-गूं, गुटर-गूं करते रहते हैं, पता नहीं कब बाहर चुग्गा चुगने जाते हैं। रात को सोने भी नहीं देते। हमारे घर के बिल्कुल ऊपर ममटी पर एक चील आकर बैठती है। सारा दिन किसी को जैसे पुकार रही हो–तू ही........तू ही।"

"तू ही, तु ही ? वह तो गुरु महाराज की वाणी का पाठ करती है।" देवकी भाभी भागां के साथ मज़ाक कर रही हैं

'तू ही, तु ही नहीं, तू ही, तू ही।' तो कोई भाग्यशाही ही करता है।

सुना है, तुम्हारा नाम भागां है।

हाँ अभागी भागां ! मेरी मां ने भी मेरा क्या नाम रखा है ?

भाग्य-भरी ! हूँ।

ऐसे क्यों तुम कहती हो, बेटी ? तेरी जैसी सुन्दर लड़की मुझे आस-पास कोई नहीं दिखती।

मैं चलती हूँ, मेरा तो घर लौटने का समय हो गया है। हमारी भाभी आई है। नई नवेली ! मैं भईया-भाभी को घर छोड़कर यहां पड़की धक्के खा रही हूँ। मैं क्या करूं, लाहौर वालों में से मुझे एक खुशबू आती है। वह भीनी-भीनी खुशबू मुझे यहाँ से आ रही थी और मैं फिर आपसे बातें करने लगी हूँ। आपके साथ मुझे बातें करना अच्छा लगता है।

"ऐसे करो बीबी, तुम कल आना सवेरे। 'आसा की वार' के भोग के बाद हम दोनों उसे ढूंढेंगे। अगर गुरु महाराज का भक्त है तो जरूर यही कहीं होगा। उसे हम ढूंढ लेंगी।"

"हम उसे ढूंढ लेंगी। हम उसे ढूंढ लेंगी। करते हुए भागां अपनी राह चल पड़ती है।"

भाभी, आपको इस तरह का कोई वायदा नहीं करना चाहिए था। जब भागां गई, दया देवकी भाभी के साथ बहस करने लगा। मैं गुरु महाराज के यहाँ अपने-आपको अर्पण करने आया हूँ न कि............।

"न कि प्रेम की पींग भरने के लिए। देवकी भाभी हंस कर अपने देवर की बात टाल देती है।"

33

माधवी नाम था दुल्हन का जिसे धर्म शादी करके लाया था। जैसे हाथ लगाने से मैली होती हो। किसी राजपूत की बेटी थी। जिस तरह गुरु तेग बहादुर ने कामरूप की लड़ाई में राजा राम सिंह की बाजू पकड़ी थी, राजपूत

गुरु घर के करबद्ध गुलाम हो गए थे। राजा राम सिंह की माता गुरु महाराज की पहले भी श्रद्धालु थी, पर जैसे उहम कबीले के लोगों को गुरु महाराज ने अपनाया, वह एक उपयुक्त पग था। इससे कम नहीं; वह लोग गुरु घर के ज़र खरीद गुलाम बन गए थे।

माधवी बताती, कामरूप की जंग में मीर जुमला जैसा तजुर्बेकार सिपहसालार अपनी जान गंवा चुका था और औरंगजेब ने राजा राम सिंह को जानबूझ कर उसे मोर्चे पर भेजा था, यह सोचकर अगर लड़ाई में जीत हो गई तो वह भला, नहीं तो अगर राम सिंह मारा गया, तो भी कोई अनर्थ नहीं होगा। औरंगजेब मन-ही-मन यह समझ बैठा था कि शिवा जी को राजा रामसिंह ने जान-बूझ कर नजरबन्दी से खिसकने में मदद की थी।

माधवी आते ही आलम के साथ हिल-मिल गई। दिल्ली दरबार में उनके कई सांझे जानकार थे। दरबार के वातावरण में जन्मी-पली, उसमें मुगल शहजादों जैसा उठने-बैठने का सलीका था, कोमलांगी। बेशक उसका मुगल शहजादों जैसा करीने का पहरावा, पर मजाल है अगर अपने धर्म-कर्म में, नित्य-नेम में फर्क आने देवे।

भागां को उसकी एक बात बहुत अच्छी लगी। पहली बार जब वह अकेला हुआ, इसको कहने लगी, मैंने तुम्हारे भाई को फंसा लिया, इससे पहले कोई मुगल शहजादा मेरा दिवाना हो जाता। देखने में छुई-मई लगती थी पर सोचना उसका बिल्कुल राजपूतनियों वाला था। कहती, इस मुगल हकूमत को और कोई सीधा नहीं कर सकेगा सिवाय दशमेश के। जो अनर्थ ये कर रहे हैं, उसका अन्त कोई पहुंचा हुआ शूरवीर ही कर सकता है। दक्षिण में शिवाजी के छोटे बेटे राजाराम ने भी इनकी नाक में दम किया हुआ है और जब उनका दांव लगता है, औंरगजेब की सेना पर हमला करके लूट-मार करने में लगा हुआ है, पर कोई कामयाबी इसको नहीं मिली। एक लाख मुगल जवान मारे गए हैं और इससे तिगुने, चौगुने हाथी, घोड़े, ऊंट आदि नष्ट हुए हैं। खेत-खलिहान उजड़ गए हैं। कहीं हरा पत्त नज़र नहीं आता। खेतों में फसलों की जगह हड्डियाँ बिखरी दिखाई देती हूँ, मुर्दे बदबू छोड़ रहे हैं, सड़ रहे दिखाई देते हैं।

माधवी की बातें सुन-सुन भागां हैरान होती। यह लड़की जो देखने-दिखाने में इतनी कोमलांगी, इतनी मोहक लगती है, जैसे कभी धरती पर इसने कभी पांव न धरा हो, अन्दर से भरी-पूरी सिंहनी थी, कहती अब बांसुरी की धुन

के दिन नहीं है। न ही ढोलक और टप्पे गाने के हैं, अब तो दिन हैं तलवार की झनकार को मानने के, अब तो दिन हैं नगाड़ों की गुंजार को छेड़ने के। अब तो वीर रस के गीत गाने के दिन हैं, मैं तो कलगीधर का यह शब्द गुनगुनाती रहती हूँ :

"देहि शिवां वर मोहि इहे शुभ करमन ते कबहू न टरों।
न डरो अरि सों जब जाइ लरों, निशचै कर अपनी जीत करो
अर सिखहों अपने ही मन कउ, इह लालच हो गुण तउ उचरों।
जब आवकी अउध निधान बने, अति ही रण महि तब जूझि मरो।"

रात गहरी हो रही थी और अगली सबेर भागां ने लाहौरन के साथ दयाराम को ढूंढने के लिए भी जाना था, पर जिस तरह की बातें माधवी कर रही थी, वह बार-बार अपने उस वायदे को जैसे भूल रही हो।

आवश्यकता इस बात की है कि वे सारे जिन पर सितम ढाए जा रहे हैं इकट्ठे हो जाएं, चाहे वे हिन्दू हैं, चाहे मुसलमान माधवी बोले जा रही थी। वे सभी लोग जो अन्याय का शिकार है, मिलकर मुगल साम्राज्य की जड़ों को हिला सकते हैं और आज इसमें अगर कोई नेतृत्व कर सकता है तो वे बस कलगीधर हैं और कोई नहीं। इनकी नजरों में न कोई हिन्दू है, न कोई मुसलमान, न कोई ऊंचा न कोई नीचा। इन्होंने ही तो कहा है :

"कोऊ भयो मुण्डिआं, संन्यासी कोऊ जोगी भयो,
कोऊ ब्रह्मचारी कोऊ जती अनुमानबो।
हिन्दू, तुर्क कोऊ राफज़ी इनाम साफ़ी,
मानस की जात सबै ऐकै पहिचानबो।

... ...

ज़िमी जमा के बिखे समसत एक जोति है।
न बाड़ है, न छाट है, न बाड़ घाट होत है।

... ...

साच कहऊं सुनि लेह सभे जिन प्रेम कीउ
तिनही प्रभु पायो।

... ...

देहुरा मसीत सोई पूजा ओ निवाज उई,
मानस सबै एक मैं अनेक को भ्रमाऊ है।
देवता, अदैव, जच्छ, गंधर्व, तुर्क हिन्दू,
नियारे नियारे देसन को भेस को प्रभाउ है।"

तोबा, तोबा गुरु महाराज की कितनी वाणी इस लड़की ने याद की हुई है।

इतने में आलम, धर्म और वीरां वाली घर लौटे, वे रहरास के पाठ में शामिल होने के लिए गए थे और फिर वहीं लंगर के लिए रुक गए आए-गए यात्रियों के सथ बातें करते उन्होंने यह वक्त कर दिया था।

फैसला यह हुआ था, अगली सुबह आलम तो बैसाखी के सम्मेलन के लिए लगाए जा रहे भव्य शामियाने का प्रबन्ध करेगा। दो लाख का शामियाना जो आस-पास के पहाड़ी राजाओं की जलन का कारण बना हुआ था, उसे एक टीले की ओट में गाड़ा जाना था। आलम और वीरां तो सारा दिन इसमें व्यस्त रहेंगे। धर्म और माधवी सतलुज की सैर का सोच रहे थे। सुनने में आया था, आजकल गुरु महाराज भी सतलुज के किनारे घूमने जाते थे। इस प्रकार उनको निकट से दर्शन करने का मौका मिल जायेगा। अगर अच्छा भाग्य हुआ तो मुलाकात भी शायद हो जाए।

"अगर भागां हमारे साथ चले तो भाग्य जरूर अच्छे होंगे।"

पर भागां तो अगले दिन लाहौरन को मिलने जा रही थी।

उसने सुनी-अनसुनी कर दी।

उस सारी रात भागां को नींद नहीं आई। सतलुज की सैर या लाहौरन के साथ परदेसी की तलाश ? उसको कुछ समझ नहीं आ रही थी। दयाराम के साथ मुलाकात या गुरु महाराज के दर्शन ? आया तो वह जरूर होगा।. ....अगर आया होता तो उनके यहाँ उसे आना चाहिए था......जिस प्रकार वह यहाँ से गया था, उसका मुंह कौन-सा था लौट आए......सतलुज पर चाहे गुरु महाराज का चरण स्पर्श ही प्राप्त हो जाए। शायद उनके मुखारविंद से कोई शबद ही सुनेन को मिल जाए। वे तो दिलों के बादशाह हैं।..........पर दिल तो उन्होंने परदेसी को दिया हुआ था। उसके पास अमानत थी।...........।

भागां को कुछ समझ नहीं आ रही थी। इसी जोड़-तोड़ में सबेर हो गई। इस जोड़-तोड़ में वह नहा कर तैयार हो गई। इसी जोड़-तोड़ में वह जकड़ी हुई थी, जब माधवी और धर्म का सतलुज किनारे जाने का समय हो गया। माधवी कैसे सजी थी, जैसे कोई मुगल शहजादी हो। भागां ने एक नज़र अपने-आप को शीशे में देखा और वह धर्म और माधवी के साथ सतलुज के किनारे सैर के लिए चल पड़ी। वह किससे कम थी ?

शहर से बाहर निकलने से पहले उसे एक बार फिर लाहौरन के साथ

किए अपने वायदे की याद आई, पर उसने सुनी-अनसुनी कर दी। सतुलज किनारे गुरु महाराज कई कौतुक करते हुए सुने थे। कभी समाधि में लीन बैठे होते। कभी नाव में बैठकर कहीं-न-कहीं निकल जातें, दूर कहीं एकांत निर्जन किनारे पर बैठे किसी ग्रन्थ की रचना कर रहे होते। कभी गुरु सिक्ख नौजवानों को कसरतें करवाते, उनसे खेलों के मुकाबले करवाते, कबड्डी और कुश्ती, दौड़ और कूद, घुड़-सवारी और नेजाबाजी। सबसे मनोरंजक खेल, गुरु महाराज दरिया के बहते पानी में अशरफी फेंक कर नौजवान लड़कों को कहते, जो अशरफी ढूंढ लायेगा अशरफी उसी की होगी। बहुत से नौजवान इस खेल में शामिल होते। जैसे मछलियाँ रोटी के टुकड़े पर झपटती हैं, ऐसे नौजवान लड़के दरिया के पानी में फेंकी अशरफी को ढूंढने के लिए टूट पड़ते हैं। गुरु महाराज किनारे पर खड़े उनका तमाशा देखते रहते।

भागां को याद आया, पिछली बार होला मोहल्ला वाले दिन गुरु महाराज ने ढेरों कड़ाह-प्रशादि तैयार करवाई और जब खेल खत्म हुए, खिलाड़ियों को कहा, वे प्रशादि पर झपट पड़ें, जितना कोई चाहे प्रशादि लूट सकता था, खा सकता था, घर ले कर जा सकता था। गुरु महाराज के मुखारबिन्द से यह निकला और नौजवान खिलाड़ी कड़ाह-प्रशादि के कड़ाहे की ओर ऐसे भागे जैसे तीर छूटते हैं और वह चिल्ल-पों मची, वह छीना-झपटी हुई कि नजारा देखते ही बनता था।

यह सोच रही भागां को अचानक दया याद आने लगा। अगर उसका परदेसी उनमें होता तो वह देखता ही रह जाता। उससे न छीना-झपटी हो सकती, न उसके हाथ कुछ आता, भूखा-प्यासा पास खड़ा देखता रहता।

गुरु महाराज का दीवाना, पिछली बार उसकी मनोकामना पूरी नहीं हुई थी, भागां सोचती, इस मौके को वह हाथ से नहीं गंवायेगा। कुछ भी हो वह यह अवसर हाथ से नहीं गंवायेगा।

फिर वह सोचती, कहीं रास्ते में मुगलों के किसी गश्ती दस्ते ने उसे बांध कर बिठा लिया हो। सुनने में आया था, कई श्रद्धालुओं को रास्ते में परेशान किया गया था। कई को वापिस उनके घर को भेज दिया गया था। कई मुगल दस्तों से झड़प भी हो गई थी। तलवारें चल गई थीं। गुरु सिक्खों को उनके गुरु के दर्शनों से कौन रोक सकता था ?

इतने में वे सतलुज के पास पहुंच गए। सामने दरिया दहाड़े मार रहा

था। कैसा सुहाना नज़ारा था। धर्म और माधवी ऐसे पास-पास होकर चल रहे थे। जल्दी-जल्दी पग। जैसे उड़कर दरिया किनारे पहुंचना चाह रहे हों। ऐसे कुदरत के सारे नजारे को दबोच लेना, अपने भीतर समा लेना।

ज़रूर आया होगा। भागां का दिल बार-बार कहता, शायद मेरी प्रतीक्षा ही कर रहा हो। कहीं खड़ा राह देखता होगा। लाहौरिए की अनख, पछताता तो होगा। जैसे वह गया था, ऐसे भी कोई जाता है ? अपने कागज-पत्र तक पीछे छोड़कर चला गया जैसे जलते गांव से जोगी निकलता है।

अब वे लोग सतलुज के और नजदीक पहुंच गए थे। गुरु महाराज थे, जैसे सामने रेती पर श्रद्धालुओं का जमघट था, गुरु महाराज जरूर होंगे। नहीं तो लोग तितर-बितर रहते हैं, कोई कहीं, कोई कहीं, कोई नहा रहा होता, कोई मछलियाँ पकड़ रहा होता, कोई धूप सेंक रहा होता, कोई जाल डाल रहा होता, कोई गा रहा होता, कोई नाव चला रहा होता, कोई सीपियाँ ढूंढ रहा होता।

पर वह नाराज किस बात पर हो गया था ? खफा होने वाली कोई बात तो नहीं थी। भागां आप ही आप बोल रही थी। उसे उसका परदेसी फिर याद आ रहा था। इस बार धर्म और माधवी उससे कोई दो कदमों की दूरी पर थे। यह तुम किससे बातें कर रही हो ? धर्म ने उससे पूछा। भागां ने सुना और उसका पसीना छूटने लगा। वह पानी-पानी हो गई।

कई श्रद्धालु थे जिन्हें पता चल गया था कि सबेरे भोर में उस दिन गुरु महाराज के सतलुज के किनारे दर्शन हो सकते थे।

दरिया के किनारे टहल रहे थे। दर्शनों की अभिलाषा ये आए गुरु सिक्ख बारी-बारी आगे होकर आदर प्रकट करते और आशीष लेकर निहाल होते।

अभी न भागां की बारी आई थी, न माधवी और धर्म की।

अगर धर्म आ सकता था तो वह क्यों नहीं आया था ? भागां का अन्तर्मन जैसे एकदम विद्रोह कर उठा हो। फिर उसे स्वयं पर शर्म आने लगी। गुरु महाराज के दर्शनों के लिए आई थी। सामने हजूर टहल रहे थे और यह अपने परदेसी के ख्याल से बंधी थी। कोई बात भी हुई। अगर इतनी ही उसकी याद इसे सता रही थी तो यह इधर आती ही न, लाहौरन के साथ एक तम्बू से दूसरे तम्बू तक धक्के खाती रहती। कोई पूछ बैठता, "बीबी, वह तेरा लगता क्या है ? और यह क्या जवाब देती ?"

34

बैसाखी के पूर्व की उस रात गुरु महाराज अन्तर्ध्यान समाधि में थे। सारी-की-सारी रात उनकी लौ अकाल पुरुष के साथ जुड़ी थी। सारी-की-सारी रात वे वहाँ थे जिस स्थान के बारे में उन्होंने कभी कहा था :

चित न भयो हमरो आवन कहि।
चुभी रही स्रुति प्रभु चरनन महि।

(बचित्र नाटक)

अब जब मसंदों की नियुक्ति उन्होंने बिल्कुल बंद कर दी थी, अब जब पहाड़ी राजाओं को उन्होंने बार-बार आजमा लिया था और उन्हें न्यून पाया था। अब जब मुगल साम्राज्य, औरंगजेब के क्रोध में तेग नजरी, कट्टरपन और अन्याय के शिखर पर पहुंच चुका था, आम जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी। हिन्दुस्तान में हिन्दू को जीने के लिए कदम-कदम पर कर भरने पड़ते थे। कदम-कदम पर हेठी का सामना करना पड़ता था। न उनके मन्दिर सुरक्षित थे, न उनकी सम्पत्ति सुरक्षित थी, न उनकी बहू-बेटी की लाज सुरक्षित थी। जरूरत इस बात की थी कि इस नई कौम का निर्माण किया जाए। वे लोग जो धर्म के लिए मर-मिट सकते थे, जो टूट सकते हों, पर झुकना न जानते हों !! वे लोग जिनका नारा 'देग, तेग फतेह' हो। जिनके लिए धर्म निरा सिद्धांत-संग्रह न होकर, एक जीवन दर्शन हो। एक जीवन-पद्धति जो उन्हें जोड़ कर रखे, जिसके लिए वे जान पर खेल सकें, सच के साथ के लिए, ईश्वर भक्ति के लिए पहली जरूरत मृत्यु के भय से मुक्त होना है। मृत्यु का भय ईश्वर भक्त या शूरवीर को नहीं होता। शूरवीर का साथ तलवार का होता है। दुष्ट का दमन या ईश्वर कर सकता है या तलवार! तलवार ईश्वर है, ईश्वर तलवार है और ऐसे सोचते हुए एक चमत्कार हुआ। एक रोशनी फूटी। जैसे कोई वज्र टूटा हो। एक बिजली की चकाचौंध और गुरु महाराज को लगा जैसे उन्हें अपनी समस्या का हल मिल गया हो। समय की जरूरत शमशीर थी। तलवार हिन्दू जाति की अद्योगति का जवाब थी और कुछ नहीं, अन्याय की, लूट-खसोट की, तंग नजरिए की, धार्मिक कट्टरपन की, मजहबी जनून की, सामाजिक असमानता की नाशक शमशीर है :

खड़क केत ! मै। सरण तिआरी
आप हाथ दे लेह उबारी

... ...

जै जै कारन सृशट उबारण ॥
मम प्रतिपारण जै तेगे ॥

... ...

प्रिथम भगवती सिर कै ॥
गुरु नानक लई धिआइ ॥

... ...

जो असिधुज! तव सरणी परे ॥
तिनके दुष्ट दोखित हूँ मरे ॥

... ...

बांहि गहे की लाज असि ॥
गोबिन्द दास तिहार ॥

... ...

काल कृपान बिन बिनती ॥
न तऊ तुम को प्रभु नैकू रिझै है।

... ...

नमसकार श्री खड़क कउ।
करउ सुहित चित लाइ।
पूरन करो ग्रन्थ इह।
तुम मम करो सहाइ।

आंखें, मूंद, समाधि की समाप्ति पर गुरु महाराज के मुखारबिन्द से ये शब्द सुनाई दिए :

प्रिथम काल सभ जग को तापा, तां ते भयो तेज बखियाता
सोई भवानी राम कहाइ, जिन सिगरी यह शृसटि बनाई।
ब्रह्मा रायो छीर निधि जहाँ
काल पुरखा इसथित थे तहाँ

और फिर वे बैसाखी के समागम की तैयारी में व्यस्त हो गए। माता सुन्दरी जी देख-देखकर कर चकित हो रही थीं। आज के दीवान के लिए गुरु महाराज किस तरह का वेश धारण कर रहे थे। कमर कस कर ऐसे जैसे जंग में जा रहे हों। नीले वस्त्र, केसरी दस्तार। गले में गात्रा। कमर में कृपाण। केसगढ़ जिस स्थान पर दीवान सजाया गया था कोई अधिक दूर तो था नहीं, फिर इतनी तैयारी क्यों ? ऐसे लगता जैसे उन्हें घोड़े पर चढ़कर

जाना हो। जैसे जंग में कोई उतर रहा हो। आज कैसी शमशीर गुरु महाराज ने चुनी थी। उस दिन काबुल से आये एक सिक्ख ने भेंट की थी।

असली सोने का दस्ता, दस्ते में हीरे जड़े हुए नग लगे हुए। पता नहीं उस गठरी में उन्होंने क्या बांधा हुआ था, शायद ईनाम की वस्तुएं होंगी। बैसाखी के दीवान के बाद खेल भी तो होते थे और फिर हर तरह के मुकाबले पर विजयी खिलाड़ियों को ईनाम दिए जाते थे। पहले तो समाधि में आज आम दिनों से अधिक समय बैठे रहे, रात भर भी अर्न्तध्यान रहे थे। फिर दीवान की तैयारी, बाहर धूप निकल आई थी।

उधर बैसाखी के दीवान में शब्द-चौकी समाप्त हो चुकी थी। डढ-सारंगी के जत्थे वारें गा कर संगत को निहाल कर रहे थे, पर गुरु महाराज अभी तक नहीं लौटे थे। ऐसे तो कभी नहीं हुआ था।

अब संगत प्रतीक्षा में अधीर होने लगी थी।

वीरांवाली, भागां और धर्म कब के आए दूर एक गुट में बैठे थे। आलम प्रबन्धकों में शामिल था। उसकी अभी छुट्टी नहीं हुई थी।

संगत क्या थी जैसे सारा पन्थ टूटकर आ गया हो। कोई अस्सी हजार के लगभग श्रद्धालु इकट्ठे हुए थे। जहाँ तक नज़र काम करती, चारों ओर गुरुसिक्ख ही गुरुसिक्ख थे, हाथ जोड़े, श्रद्धा में ओत-प्रोत।

अब संगत अधीर होने लगी थी। कुछ कहते, गुरु महाराज आ चुके थे। मंच के पास दाएं हाथ तम्बू में थे, कुछ कहते, नहीं अभी नहीं आए थे। आते तो पहले साधु-संगत को दर्शन देकर निहाल करते।

इतने में भाई नन्द लाल मंच पर आए और गुरु महाराज की प्रशंसा-स्तुति में ऐसे श्रद्धा के फूल पेश करने लगे :

नासरो मंनसूर गुरु गोबिन्द सिंह।
ईज़दी मंनजूर गुरु गोबिन्द सिंह।
हक हक आगाह गुरु गोबिन्द सिंह।
शाह, साहिनशहा गुरु गोबिन्द सिंह।
हक-हक महबूब गुरु गोबिन्द सिंह।
तालबो-मतलूब गुरु गोबिन्द सिंह।
खासो बेकीना गुरु गोबिन्नद सिंह।
हक हक आईना गुरु गोबिन्द सिंह।
बादशाह दरवेश गुरु गोबिन्द सिंह।

कादरे हर कार गुरु गोबिन्द सिंह।
बेकसां रा यार गुरु गोबिन्द सिंह।

ऐसे भाई नन्द लाल 'गोया' अपनी श्रद्धा का कलाम पेश कर रहे थे कि गुरु महाराज एक सिपहसालार के बाने में, शीश पर कलगी, कर-कमलों में चम-चम करती नंगी शमशीर, मंच के साथ तम्बू में से ऐसे निकले जैसे कोई सूरमा मैदाने-जंग में प्रवेश करता है।

गुरु महाराज की एक झलक पर संगत जहाँ-जहाँ भी बैठी थी, उठकर 'कलंगीधर की जय', 'दशमेश पिता की जय', 'बाज वाले की जय' के नारे लगाती बेहाल होने लगी। श्रद्धालु अपने इष्ट के दर्शन करके जैसे निहाल हो रहे हों। कहीं से फूलों की बरसात हो रही थी। कहीं पटाखे चलाए जा रहे थे।

कितनी देर संगत जयकारे गुंजाती रही। 'बोले सो निहाल' सतिश्री अकाल'। श्रद्धालु हार नहीं मान रहे थे। एक तरफ से नारे रुकते और दूसरी ओर से शुरू हो जाते, हर कोई पहले से ऊंची आवाज़ में जयकारे छोड़ता। बाजू खोल-खोल, एड़ियाँ उठा-उठा, नारे लगा-लगा कर लोग जैसे बावले हो रहे हों, पागल हो रहे हों।

इस प्रकार संगत बेकाबू हो रही थी। रुकने का जैसे नाम ही न ले रही हो कि गुरु महाराज ने जयकारा गुंजाया, 'बोले सो निहाल', सति श्री अकाल'। एक बार, दो बार, तीन बार। फिर तलवार वाले हाथ को उठाकर उन्हें खामोश होने के लिए इशारा किया। गुरु महाराज की शमशीर उठी ही थी कि चारों ओर खामशेी छा गई। जैसे कभी कोई आवाज़ निकली ही न हो। आगे-पीछे हर कोई कीड़ी की तरह सो गया। भाई नन्दलाल जी संगत में जा बैठे। अब हर आंख गुरु महाराज के मोहक मुखड़े की ओर लगी हुई थी। हर कान उनका प्रवचन सुनने के लिए बेताब था। जैसे प्यासी धरती रिम-झिम फुहार के लिए बेताब हो।

35

'प्यारी साधु-संगत' टिड्डी-दल की तरह सामने बैठे अस्सी हजार जनसमूह को गुरु महाराज सम्बोधित कर रहे थे। आज मैं पंथ की वर्तमान स्थिति का लेखा-जोखा करने जा रहा हूँ। आज से दो सौ साल पहले गुरु बाबा नानक ने अपने समय के हुकमरानों को कसाई कहा था, कुत्ते तक भी कहकर पुकारा था—'रतन बिगाड़ि विगोए कुत्ती', उनके हीरे जैसे देश को

कुत्तों ने बर्बाद कर दिया था। गुरु महाराज ने मुगल आततायियों को पापियों की मण्डली भी कहा था–"पाप की जंझ लै काबलहु धाइया जोरी मंगै दान वे लालो।"

आज दो सौ साल बाद भी हालात वैसे के वैसे थे। वैसे के वैसे पापी पाप कमा रहे थे। अत्याचार कर रहे थे। मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट किया जा रहा है। पाठशालाएं गिराई जा रही हैं। तिलक और जनेऊ का निरादर होता है। हमारी बहू-बेटियों की इज्जत उतारी जा रही है।

गुरु नानक ने एकता और प्रेम, अहिंसा और सत्य का संदेश दियां था। गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, उनके दिखाए रास्ते पर चलते रहे। इसी मार्ग पर चलते, ईश्वरीय इच्छा करके मानते, गुरु अर्जुन देव जी ने अपना बलिदान दिया। किस-किस तरह के अत्याचार किस-किस तरह की यातनाएं उन्हें नहीं पहुंचाई गईं ? सोच-सोच कर अंग-अंग कराह उठता है।

साधु-संगत ! अत्याचार करना पाप है; अत्याचार सहना उससे भी बड़ा पाप है। कोमलता और विनम्रता, प्रेम और एकता, आज के युग में हार कर चुक गई है। आज जरूरत है बुराई को छोड़ने, बुराई की केवल हमें निंदा ही नहीं करनी, बुराई को कुचला जाए। दोस्त की मदद वही कर सकते हैं, जो दुश्मन का मुंह तोड़ सकते हों। हमें अपने कल्याण के लिए आने वाले युग की ओर प्रतीक्षा नहीं करनी, हमें अपना कल्याण यहीं ढूंढ़ना है, आज ही हासिल करना है।

बाबा नानक ने राज बख्शा था, '–राज 'बाबर के वंशज' भले ही करें पर 'बाबे के' (गुरु नानक के वंशज) अपनी पहचान मिटाने के लिए हरगिज तैयार नहीं; वह पहचान जो गुरु नानक ने हमें बख्शी। वह पहचान जिसको गुरु अंगद देव जी ने, गुरु अमरदास ने निरूपित किया। वह पहचान जिसके लिए अर्जुन देव ने बलिदान दिया। वह पहचान जिसके लिए गुरु हरगोबिन्द जी ने ग्वालियर के किले में कैद भोगी। वह पहचान जिसके लिए कल गुरु तेग बहादुर जान पर खेल गए। यह पहचान हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है। इस पहचान को हमें बनाए रखना है। साथ ही इसे और नया रूप देना है और उजागर करना है।

साध-संगत ! हमारे इस महान् देश का धार्मिक राष्ट्र माना गया है। हिन्दुस्तान को अब इस्लामी राष्ट्र बनाने के उपाय हो रहे हैं। इस इस्लामी राष्ट्र में वह जो मुसलमान नहीं, हथियार नहीं रख सकता था, हाथी, घोड़े

की सवारी नही कर सकता था, हाथी की सवारी वे करते हैं जो इस्लाम कबूल करते हैं। उनमें से कइयों को शहंशाह औरंगजेब खुद आप कलमा पढ़वाता है।

और तो और शिया और सूफी, जोगी और संन्यासी परेशान किए जा रहे हैं। कुछ को तो देश से खदेड़ा जा रहा है। कुछ को समाज से बहिष्कृत किया जा रहा है। सरमद और कलन्द को जान गंवानी पड़ी क्योंकि वे सूरी मत के अनुयायी थे। याहिया चिश्ती का निरादर किया गया क्योंकि वह कव्वाली की महफिल में शामिल हुआ था। यही नहीं, औरंगजेब ने अपने बेटे शहजादा सुल्तान मुहम्मद को मोहरा देकर मरवा दिया। उसका कसूर ? उसने ज़बरफत का सोने की तारों की कढ़ाई वाला चोगा पहनकर शहनशाह की हुक्म-अदूली की थी। इस तरह के वस्त्र कोई नहीं पहन सकता था।

इस अन्धे कट्टरपन का शिकार हर किसी को बनाया जा रहा है। कल जब जोधपुर के महाराज जसवन्त सिंह का देहान्त हुआ, उसकी रियासत को हड़प लिया गया। उसके नवजात बेटे अजीत को मुसलमान बनाने के लिए कहा गया। जब उसकी मां रानी नहीं मानी, उसको बच्चे समेत कैद कर लिया गया। राजपूतों ने दिल्ली में खून की नदियाँ बहा दीं और ऐसे लड़ते हुए समाप्त हो गए।

फिर मेवाड़ के महाराजा सिंह से उसका राज्य छीन कर चितौड़ पर कब्जा किया गया। शहर में 63 मन्दिरों को गिराया गया। उदयपुर में 173 मन्दिरों को तहस-नहस किया गया।

ऐसे ही मराठों का पीछा किया जा रहा है। महान् शिवाजी के बेटे शम्भू जी को केशों से पकड़ कर घसीटा गया। उनके साथ 25 साथियों और उनकी पत्नियों को बन्दी बना लिया गया। जब शम्भू जी ने शहंशाह का सिज़दा करने से इन्कार किया उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके उसका मांस कुत्ते को खिलाया गया। अब राजा राम, शिवाजी का छोटा बेटा अपने भाई का बदला ले रहा है। उसने मुगल फौजों के नाक में दम किया हुआ है। पिछले बीस वर्षों में मुगल फौजें मराठे शूरवीरों को काबू नहीं कर सकी थी।

और सिक्ख पन्थ के साथ जो कुछ हुआ है, वह किसी से भूला-बिसरा नहीं।

साधु-संगत ! मेरी धारणा है कि वर्तमान सरकार केवल शक्ति की भाषा

समझती है, विनम्रता और भाईचारे की नहीं :

कोई किसी को राज न देहै,
जो लए है निझ बल से लए है।

दिल्ली वासी हिन्दुओं ने उन पर लगाए बहुत से कर तथा और अत्याचारों की मुगल दरबार में शिकायत की। कोई सुनवाई नहीं हुई। चुंगी कर मुसलमानों के लिए माफ कर दिया गया और गैर-मुसलमानों के लिए दुगना कर दिया गया। कारदार और उससे ऊपर सब सरकारी नौकरियों पर वही हिन्दू नियुक्त किए जा सकते हैं जो इस्लाम कबूल करे। जिन्हें सुन्नत करवाना मंजूर नहीं होता, उन्हें नौकरी से हटा दिया जाता है। दिल्ली के हिन्दुओं ने हड़ताल की। बाज़ार बन्द हो गए। मुगल दरबार टस-से-मस नहीं हुआ। फिर जनता इकट्ठी होकर लाल किले की ओर बढ़ी ताकि किले का घेराव किया जा सके। औरंगजेब ने झरोखे में से उत्तेजित जन-समूह का दहाड़ें मार रहा समुद्रा देखा और हुक्म दिया, उन पर मस्ताए हाथियों को छोड़ दिया जाए। सैंकड़ों प्रदर्शनकारी कुचल दिए गए।

साधु-संगत ! मैंने कहा था, इस तरह की हकूमत केवल शक्ति की भाषा समझती है। अहिंसा का शब्द इन लोगों के कोश में उपलब्ध नहीं। ईश्वर उनकी मदद करता है जो अपनी मदद स्वयं करते हैं। ईश्वर उनका साथ देता है, जो शस्त्र धारण करते हैं। अपने अधिकारों के लिए लड़ना जानते हैं। वही आदर से जीते हैं, जिन्हें मरने से डर नहीं लगता।

हाँ, मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि इस्लाम के साथ हमें कोई वैर नहीं। मुसलमान एक अल्लाह के एकेश्वरवाद में विश्वास रखते हैं, यही पाठ गुरु नानक ने हमें पढ़ाया है। पीर बुद्धू शाह जैसे खुदापरस्त बुजुर्ग गुरु घर के श्रद्धालु हैं। कल भंगाणी की जंग में हमारे साथ कंधे से कंधा जोड़कर पीर बुद्धू शाह ने अपने दो बेटे और अपने वृद्ध पिता की हमारे लिए कुर्बानी दी। हमारी वाणी 'जापु' में 'अकाल पुरुष' के 735 नामों में 30 नाम इस्लाम में से लिए गए हैं। हमने कहा है :

हिन्दू तुर्क काउ राफसी इमाम साफी,
मानस की जात सबै एकै पहिचानबो।

और न ही यह समझना चाहिए कि तेग उठाकर हम धर्म का मार्ग त्याग रहे हैं। मेरे शूरवीर के एक हाथ में तलवार होगी, दूसरे हाथ में माला। हर सच्चा सूरमा सन्त होता है; हर सच्चा शूरवीर सूरमा होता है; शूरवीर का

सबसे श्रेष्ठ गुण स्वयं पर काबू है; संत से अधिक अनुशासन किसमे हो सकता है ? जो मन पर काबू कर सकता है वही शस्त्र को सम्भाल सकता है। अश्रताल की जंग बाहर की जंग से अधिक धैर्य की परीक्षक होती है। जो अन्दर की जंग जीत लेते हैं, उनकी बाहर की जंग में कभी हार नहीं होती। मेरा शूरवीर संवेदना का प्रतीक होगा :

"धन जी तिह को जग महि मुख ते हरि चित महीं जुध बिचारै
देह अनित न नित रहिह जस नाव चढ़े भव सागर तारै।"

हमारी जंग अच्छाई के लिए होगी बुराई के खिलाफ। हमारी जंग धर्म के लिए होगी, कट्टरपन और अन्धविश्वास के खिलाफ, हमारी जंग बेकसूर के लिए होगी कसूरवार के खिलाफ।

"यही काज धरा हम जनम। समझ लेहू साधू सम मनम।"
धर्म चलावन, सनत उबारन। दुष्ट सभन को मूल उपारन।"

यही जिम्मेवारी हमें सौंपी गई है।

मैं अपना सुत ताहि निवाजा, पंथ प्रचुभ करके कहू
जहाँ तहाँ तै धरमू चलाइ। कुबुद्धि करन ते लोक हटाई।

हमें अपने धर्म की, अपनी मातृभूमि की रक्षा करनी है। हमने अपनी पहचान को बनाए रखना है। इसे और उभारना है। इसलिए किसान और मज़दूर, कामगर और मेहनतकश को तत्पर रहना होगा, हमारी तथाकथित ऊंची जाति वालों को नीचे लाना है, हमारी तथाकथित नीची जाति के लोगों को कुछ ऊपर उठाना होगा और हमें एक सांझे मंच पर बैठना है। सांझे मोर्चे पर लड़ना है। हमें सांझी जीत मनानी है।

हमें एक नए पंथ का निर्माण करना है। आज से कितने ही हजार वर्ष पूर्व इस देश के ब्राह्मणों ने एक होम का आयोजन किया था। इस यज्ञ के कारण राजपूत अस्तित्व में आए बताए जाते हैं। आज राजपूत ढीले पड़े लगते हैं। कमजोर होते जा रहे हैं। हमें एक नए पंथ की जरूरत है। एक नई कौम संत-सिपाहियों की। तलवार के धनी जो उतने ही आत्मिक बल के धारण करने वाले होंगे जितने बाहुबल के। हमें आज एक और यज्ञ करना है। एक नया पंथ कायम करना है जिसे मैं खालसा-पंथ का नाम देने जा रहा हूँ।

खालसा पंथ, जिसके अनुयायी बेआसरों का आसरा होंगे, निसहायों के सहाय होंगे। सच के लिए जूझेंगे जिनमें कोई ऊंचा नहीं होगा, कोई नीच नहीं होगा। अपनी नई जिनकी पहचान होगी। इस नये अस्तित्व के लिए जो

जरूरत पड़ने पर जान पर खेल जायेंगे।

मैंने कहा था, हमें इसलिए एक और यज्ञ रचना है।"

36

यह होम श्री साहिब की उपासना का होगा। शीश की कुर्बानी का ! एक मसीहा की तरह मंच पर खड़े गुरु महाराज ने फिर ऐलान किया।

"मैं देख रहा हूँ, साधु-संगत में एक मौन छा गया है। कुछ की नीचे की सांस नीचे और ऊपर की सांस ऊपर रह गया है। सहमे चेहरे एक-दूसरे की ओर देख रहे हैं।"

मैं फिर कहता हूँ, यह यज्ञ शीश की कुर्बानी का होगा। इस यज्ञ की सामग्री मेरे गुरुसिक्खों का गाढ़ा लहू होगी। इस यज्ञ में मेरे दुलारे सिक्ख अपने सिरों की आहुति डालेंगे।

आज मेरी यह तलवार खून की प्यासी है। यह कहते हुए गुरु महाराज ने अपनी शमशीर को म्यान में से निकाल कर उसे हवा में लहराया। अब वे फिर ललकार रहे थे, मेरी यह शमशीर लहू मांगती है। कोई है मेरा सिक्ख जो अपना शीश कुर्बान कर सके ?"

यह क्या मांग गुरु महाराज कर रहे हैं ? हैरान-परेशान लोग जैसे एक-दूसरे को पूछ रहे हों, खुसर-फुसर होने लगी।

इतने में गुरु महाराज ने फिर बुलन्द आवाज में पुकारा, 'मेरी तेग प्यासी है। इसे एक सिक्ख के खून की प्यास है। कोई है, जो मेरी तलवार को शांत कर सके ?"

लोगों के पसीने छूट रहे थे। यह क्या मांग गुरु महाराज अपने श्रद्धालुओं से कर रहे थे ?

इतने में गुरु महाराज ने फिर ललकारा, मैं क्या समझूं ? मेरा कोई गुरुसिक्ख ऐसा नहीं जो अपना शीश कुर्बान करने के लिए तैयार हो ?" तीसरी बार यह मांग गुरु महाराज के पवित्र होंठों पर थी कि सामने बेचैन जन-समूह में एक युवक उठा। गज़ब ढाती उसकी जवानी।

'हजूर, मेरा शीश हाज़िर है। मैं शर्मिंदा हूँ कि इससे पूर्व मैं अपने-आप को पेश नहीं कर सका। यह कहते हुए वह नौजवान मंच की ओर बढ़ा जहाँ गुरु महाराज खड़े प्रतीक्षा कर रहे थे। उनकी चम-चम करती तलवार जैसे उतावली हो रही थी।

साध-संगत को पार करता वह नौजवान मंच की ओर जाता हुआ वीरां

वाली, भागां, धर्म और माधवी के पास से गुजरा। यह तो दया था, उसका लाहौरिया महबूब। कोमल दाढ़ी, भरी हुई मूंछें। भागां ने एक नज़र देखा और अचानक उसके मुंह से चीख निकली—'नहीं..........ही..........ही' और अगले क्षण वह अपनी मां के कन्धे पर ढेरी हुई पड़ी थी। माधवी और वीरां ने मिलकर उसे सम्भाला, धर्म हैरान उसकी ओर देख रहा था। इसे हो क्या रहा है, जैसे उसकी आंखें कह रही हों।

इतने में दया मंच पर पहुंच चुका था। अब गुरु महाराज उसके कन्धे पर हाथ रख, उसे साथ के तम्बू में लेकर जा रहे थे।

तम्बू का पर्दा उठा, फिर गिरा दिया गया था।

जैसे काटो तो लहू की एक बूंद न हो। अस्सी हजार की भीड़ सहमी हुई दम साधे बैठी थी कि खट की आवाज आई। यह तो तलवार के चलने की आवाज थी।

साध-संगत को अपने कानों पर एतबार नहीं आ रहा था कि गुरु महाराज तम्बू से बाहर निकले। वैसे की वैसी खून से लथ-पथ तलवार उनके हाथ में थी। आवेश में दहकता मुखड़ा। नेत्रों में जैसे आग भभक रही हो। जिस हाथ में शमशीर पकड़ी हुई थी उनकी उस बाजू में से जैसे चिंगारियाँ फूट रही थीं।

"मुझे एक और शीश की जरूरत है। गुरु महाराज ने मंच पर आकर पुकारा, 'एक और गुरुसिक्ख जो अपना शीश अपने गुरु के लिए कुर्बान कर सके।"

फिर वही मौन, फिर वही खामोशी। आगे-पीछे कुछ लोग सिसकने लगे।

"कोई है गुरु पियारा ?"

यह बोल गुरु महाराज के मुखारबिन्द से निकले ही थे कि मूर्च्छित हुई भागां को सम्भाल वीरां वाली और माधवी के पास खड़ा धर्म पुकारा उठा, 'मेरे बाज वाले शहंशाह, दास हाजिर है। मैं शर्मिंदा हूँ कि इससे पहले मैं अपने-आप को पेश नहीं कर पाया।' यह कह रहा धर्म लपक कर मंच की ओर बढ़ रहा था।

जैसे भागां ने धर्म के यह बोल सुन लिए हों। एकदम वह होश में आ गई, भागां वीरां वाली और माधवी टकटकी लगाए धर्म को मंच की ओर बढ़ता देख रही थी। वीरां का एक हाथ भागां के कन्धे पर और दूसरा हाथ माधवी के कन्धे पर था। माधवी और भागां की बाजू वीरां की कमर के गिर्द लपेटी

हुई थीं। एक-दूसरे को जैसे वे सहारा दे रही हों। उन्हें समझ नहीं आ रही थी। जैसे उन्हें अपनी आंखों पर एतबार न हो रहा हो। यह हो क्या रहा था ?

यह देख वीरां ने दोनों हाथ माथे पर मारे और रोती, विलाप करती संगत से बाहर, जिधर उसका मुंह था, निकल गई। फिर तलवार चलने की आवाज।

फिर 'खट' की आवाज़। इस बार खून की धार बहती हुई तम्बू से बाहर आ गई। यह देख माधवी की चीख की आवाज़ सामने टीले के साथ टकराई और प्रतिध्वनि बनकर फिर सुनाई दी और फिर माधवी भी उस आवाज के पीछे निकल गई।

झर-झर करते आंसू पलकों में लिए भागां रोककर गाढ़े खून की ओर देख रही थी। जैसे उस पर टोना हो गया हो। एकदम सिहरी नज़रें।

उधर लोग संगत में से उठने लगे। परेशान एक-दूसरे से पूछ रहे थे—यह क्या हो रहा है ? आज गुरु महाराज को क्या हो गया है ? ऐसे भी कभी हुआ है ? ऐसे तो हर किसी को तलवार के घाट उतार दिया जायेगा, "चलो मामा कृपाल जी को जाकर बताते हैं, बस वही इन्हें समझा सकते हैं। यह तो अनर्थ है। हाय कैसे सुन्दर नौजवान हैं। भेड़ बकरियों की तरह उन्हें काट दिया गया। इस तरह का कहर तो न कभी सुना है, न कभी देखा है। इतने में लहू के साथ लथ-पथ तलवार वैसें की वैसे लहरा रहे गुरु महाराज फिर मंच पर आए। 'मुझे एक और शीश की जरूरत है', वे पुकार रहे थे। एक और शीश की मेरी शमशीर को भूख है। एक आवेश में यह कहकर गुरु महाराज साध-संगत पर फिर इधर-उधर देखने लगे।"

इस बार बहुत समय उन्हें प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। इस बार अपनी मांग फिर दोहराने की जरूरत भी नहीं पड़ी। सामने जगन्नाथ का हिम्मत नाथ हाथ जोड़े खड़ा था। 'सच्चे पातशाह' दास हाजिर है। मेरा शीश कबूल करके मेरा जन्म सफल करो। मैं बहुत दूर से चलकर आया हूँ। मैंने कितनी ही विजय-यात्राएं की हैं। यह कहता भी जा रहा था और हिम्मत मंच की ओर बढ़ भी रहा था।

यह देखकर भागां ने अचानक जयकारा गुंजाया, 'बोले सो निहाल'। सिवाय दो-चार आवाजों के किसी ने भी 'सत श्री अकाल' का हुंगारा नहीं भरा। सामने लोग संगत में से उठकर जा रहे थे। कोई कुछ बुड़बुड़ा रहा था, कोई कुछ कह रहा था। एक डर था। एक हफड़ा-दफड़ी थी। जो बैठे थे

उन्होंने जैसे सांस रोक रखी थी। उनके पसीने छूट रहे थे। पता नहीं क्या होने वाला था। किसी को कुछ समझ नहीं आ रही थी।

इतने में फिर तम्बू के अन्दर से 'खट' की आवाज आई। इस बार खून की धार जो तम्बू में से बाहर आ रही थी और चौड़ी हो गई थी, और गहरी हो गई थी। तीन नौजवान श्रद्धालुओं का खून। तोबा ! तोबा ! सामने बैठे गुरु सिक्ख सोचते और उनकी आंखों के आगे अन्धेरा छा जाता। ऐसे लगता जैसे प्रलय आने वाली हो। कुछ लोग संगत में से उठ गए थे। बिल्कुल इस तरह का अन्धेर न किसी ने पहले देखा था, न सुना था। पर कोई गुरु महाराज को कैसे छोड़ दे ? वे तो सच्चे पातशाह थे। इहलोक और परलोक के रक्षक थे। कोई अपने गुरु से कैसे विमुख हो सकता था।

और अगले क्षण लहू की बूंदे टपकाती श्री साहिब हवा में लहराते दशमेश फिर साध-संगत के सामने थे। 'एक और शीश की मुझे आवश्यकता है। मेरी तलवार की प्यास अभी भी नहीं बुझी। कोई है गुरु का प्यारा जो.......'

इस बार गुरु महाराज अपना वाक्य खत्म भी न कर पाए थे कि दूर द्वारका से आया मोहकम हाथ जोड़े, सिर झुकाए खड़ा निवेदन कर रहा था : 'सच्चे पातशाह' मैं हाजिर हूँ। मुझे स्वीकार करके कृतार्थ करो। मैं तो पिछली बार भी उठने लगा था कि पुरी का हिम्मत बाजी ले गया। सतगुरु मुझे बल दो कि मैं इस परीक्षा में खरा उतरूं। 'यह जन्म आपके लिए। अब कौन इतनी दूर लौटकर जाएगा ?

फिर वही कसरत ! मुहकम को गुरु महाराज पकड़ कर अपने तम्बू में ले गए।

ऐसे बाजू से पकड़ कर ले ज़ाते हैं जैसे कोई बकरे को ले जाता है। सगत में किसी ने जहर उगला है।

'बकरे तो हम हैं। कुर्बानी के बकरे।' किसी और ने ईर्ष्या के मारे कहा।

इतने में पहले की तरह फिर खट की आवाज आई। उसी प्रकार की बेरहम आवाज़। उसी प्रकार की भयानक आवाज़। ऐसे लगता जैसे किसी की चीख हो, फरियाद हो, चीख हो और फिर तड़-तड़ खून की धार बहती हुई कहीं की कहीं पहुंचने लगी।

साध-संगत में एक शोर मच गया। भागो, दौड़ो गुरु महाराज को कुछ हो गया है। कोई पकड़ ले। किसी देवी का श्राप लगा लगता है। जो कुछ

किसी के मुंह में आता, लोग बोल रहे थे। कोई प्रतिष्ठित गुरुसिक्खों को ढूंढने के लिए चल दिए। कुछ गुरु महाराज के परिवार की ओर दौड़े। यह तो अन्धेरगर्दी है। वे सोच रहे थे।

झुण्ड के झुण्ड संगत में से उठकर जा रहे थे कि गुरु महाराज वैसे की वैसी लहू से लथ-पथ तलवार लिए फिर मंच पर आ खड़े हुए। फिर एक और शीश की फरमाइश कर रहे थे। एक सिर मुझे और चाहिए। उन्होंने पुकारा, अभी मेरी इस शमशीर की प्यास नहीं बुझी, अब किसकी बारी है ?

'किसी की नहीं' सामने बैठा एक अधेड़ बूढ़ा खड़ा होकर अपने होंठों में बुड़बुड़ाया।

"क्यों नही ? मैं हाजिर हूँ। यह बदिर का साहिब था। ऊंचा लम्बा, पेड़ के तने जैसा जवान। दशमेश पिता, मुझे क्षमा करना, मैं इतने देर बाद आपके यहाँ पेश हो रहा हूँ। मेरे जैसा कोई बदकिस्मत होगा ? हजूर मेरे अवगुण न देखो। मुझे स्वीकार करो। ऐसे बोलता बदिर से आया वह सिक्ख मंच पर पहुंच गया था। गुरु महाराज ने एक नजर बदिर के उस होनहार नौजवान की ओर देखा और उसे बाजू पकड़कर तम्बू में ले गए।"

फिर खट की आवाज़ आई। तम्बू में से बह रही लहू की धार अब जैसे फिर एक नहर बन गई हो।

एक चिल्ल-पौं थी। सामने पांच गुरुसिक्ख नौजवानों का ताजा लहू छल-छल बहता तम्बू से बाहर, मंच के नीचे से होता वहाँ पहुंच चुका था जहाँ पहली पंक्ति के श्रद्धालु बैठे थे। हर कोई अपनी-अपनी जगह से उठ खड़ा हुआ था। हर कोई क्रोधित हो रहा था। बैसाखी के पवित्र त्यौहार वाले दिन ऐसे कत्ले-आम, लोग सोच-सोच कर आपे से बाहर हो रहे थे।

कुछ डर-कर खिसक गए थे। कुछ दौड़ कर गुरु महलों में दुहाई दे रहे थे। कोई भाई मनी सिंह, भाई कृपा राम आदि प्रतिष्ठित गुरु प्यारों से जाकर फरियाद कर रहे थे। बाकी जहाँ बैठे, खड़े थे, उछल-उछल कर पड़ रहे थे।

कुछ सोचते, गुरु महाराज पर कालका उतर आई है। उस दिन नैना देवी के मन्दिर में उन्होंने होम यज्ञ का मज़ाक उड़ाया था—देवी कभी प्रकट नहीं होती। हम स्वयं ही प्रकट होते हैं। अपने आप को धोखा देते हैं। हमारी मां की मां, हमारे पिता के पिता इस तरह का धोखा खाते आए हैं। कुछ डरे, कुछ सहमें, कुछ नाराज़, कुछ मायूस लोग एक दूसरे के साथ वार्तालाप कर रहे थे।

हम तो बाबा नानक के सिक्ख हैं, नाम, दान, स्नान के सीधी राह पर चलना हमने सीखा है।

या फिर नाम जपना, किरत करनी, (श्रम करना) और बांट कर खाना।

इससे तो मुगलों की बेइज्जती अच्छी : मुगल मन्दिर गिराता है, तिलक मिटाता है, शिखा काटता है ? जान से तो नहीं मारता।

'हम कलमां पढ़ लेंगे।' क्या फर्क पड़ता है ? चार दिन की जिन्दगानी है आराम से काटेंगे।

यह तो बिना मौत मरना है।

कैसे सुन्दर जवान थे। देश भर से चुने हुए गुरु सिक्ख।

कोई दक्षिण में से, कोई पूर्व की ओर से कोई पश्चिम की ओर से, मंजिल मारकर आए, ऐसे ही जान गंवाने के लिए।

मैं कहता हूँ, कोई जीते-जागते किसी बेकसूर को मार कैसे सकता है ?

जंगली जानवरों का शिकार कर करके कट्टर हो गए हैं हमारे गुरु महाराज।

बेचारे करें भी तो क्या ? आस-पास शिकार तो उन्होंने सारा खत्म कर लिया है।

अब गुरु सिक्खों का शिकार शुरू हो गया है।

हम तो नैंनां देवी के दर्शन कर लौट जायेंगे।

मुझे तो कल दरयिा के किनारे ही लगा था; उनके दिमाग में कोई खराबी है।

गुरु महाराज का काम होता है नाम जपना। गुरु सिक्खों की आस्मिक-जरूरतें पूरी करना।

गुरु बाबा नानक ने करतारपुर का शहर बसाया। गुरु अंगद देव जी ने खडूर साहिब, गुरु अमरदास जी ने गोविन्दवाल, गुरु रामदास जी ने अमृतसर, गुरु अर्जुन देव जी ने तरन-तारन, गुरु हरगोबिन्द जी ने हरगोबिन्दपुर, गुरु हरिराय जी ने कीरतपुर, और तो और इनके अपने पिता गुरु तेग-बहादुर जी ने आनन्दपुर की नींव रखी, फिर इस शहर को सौभाग्यशाली बनाया। हमारे वर्तमान गुरु महाराज ने किलों की लड़ी खड़ी कर दी है।

"इसकी बजाय कि कीर्तन करने और करवाने की कवायदें हो रही हैं।"

इसकी बजाय की नाम जपें-जपाएं, कुश्तियाँ हो रही हैं।

और यही कुछ छोटे-छोटे साहिबजादों को सिखाया जा रहा है। अजीत

क्या, जुझार क्या। जोरावर अभी छोटे थे।

एक और तलवार-धारी के आगमन की भी तैयारियाँ हो रही हैं। ऐसा सुना है।

इतनी दूर से चलकर आए, हमें तो समझ में नहीं आती, कोई अब जाये तो कहाँ ?"

जितने मुंह उतनी बातें। इस तरह की चमगोइयाँ हो रही थी, कोई टोली कहीं खड़ी थी, कोई कहीं।

एक तरफ वीरांवाली ने रो-रोकर अपने बाल नोच डाले थे। बाल नोचती और सिर धरती पर पटकती, रो-रोकर बेहाल हो रही थी। माधवी का कुछ पता नहीं, किधर निकल गई थी और भांगा थी जैसे पत्थर की पत्थर हो। हक्की-बक्की जहाँ खड़ी थी वैसे की वैसी वहाँ शैल-पत्थर हो गई थी।

इतने में मंच के पास नगारे की धमक हुई, एक फ़ीरी ने सिर उठाया लोगों का ध्यान उस तरफ गया और वे क्या देखते हैं, आगे-आगे दशमेश पिता और उनके पीछे कतार में लाहौर का दया, दिल्ली का धर्म, जगन्नाथ का हिम्मत राय, द्वारका का मोहकम और बदिर का साहिब, नीले बाने, केसरी दसतारों में सजे जैसे आसमान से उतरे फरिश्ते हों, तम्बू में से निकल मंच पर आ रहे थे।

सबसे पहले उनका दर्शन करने वाली भागां थी। भागां ने एक नज़र देखा और कानों पर हाथ रख कर जोर का जयकारा गुंजाया 'बोले सो निहाल' और आसपास खड़ा हर कोई मंच पर पांचों के पांच गुरुसिक्खों को देखकर पुकार उठा, 'सति श्री अकाल'। अब भागां जयकारे गुंजा रही थी 'बोले सो निहाल' और साध-संगत एक उल्लास में, एक मस्ती में 'सति श्री अकाल' पुकार रही थी।

और फिर लोगों ने नारे लगाने शुरू कर दिए-'कलगीधर की जय'। 'दशमेश पिता की जय'। 'बाजां वाले की जय'। हज़ारों चहेते प्रियतम की जय। 'गुरु महाराज की जय'।

"जै हमारे सच्चे पातशाह दी।
जै हमारे सिर दे साईं दी।
जै निआसरियाँ दे आसरे दी।
जै निउटियाँ दी ओट दी।
जै निमानियाँ दी थां दी।

जै निपतियाँ दी पत थीं
जै निल्लजियाँ दी लज्ज दी।
जै हमारे घर-घर के जाननहार दी।"

लोग विहवल हो रहे थे।वीरां वाली को जैसे कुछ हुआ ही न हो, खिलखिलाती हुई मंच के पास आ खड़ी थी। बार-बार आंखे मलती धर्म को देख रही थी। इतने में माधवी कहीं से प्रकट हो गई। भागां के गले लग रही थी और भागां उसे इशारे करके अपना परदेसी महबूब दिखा रही थी।

कुछ समय गुरु महाराज अपने गुरुसिक्खों को खुशी के जयकारे गुंजा रहे देखते रहे और अब उन्होंने अपनी दांयी बाजू उठाई और लोग एक-दम खामोश हो गए। जहाँ कोई था, वहीं बैठ गया।

हाय, कैसा बांका लग रहा है। भागां के जैसे धरती पर पांव न लगते हों।

"इस पर दाड़ी कितनी सुन्दर फबती है।"

"भूरी भूरी मूंछे।"

"हल्की नीली आंखें।"

"गोरा चि़हरा।"

"इसकी बातें कितनी प्यारी, मंह-मंह करती।"

"मुझसे भी एक बलिश्त ऊँचा है।"

"कोठे-का-कोठा।"

पता नहीं माधवी सुन रही थी, पता नहीं—नहीं सुन रही थी। भागां धीरे-धीरे एक स्वर में बोलती जा रही थी।

और अब गुरु महाराज जन-समूह को संबोधित कर रहे थे :

"यह मेरे पांच पियारे हैं। इनसे मिलो।"

"दया सिंह।"

गुरु महाराज के पुकारने पर भागां का परदेसी दो कदम आगे बढ़ा, उसने हाथ-जोड़कर सिर झुकाकर साध-संगत को प्रणाम किया।

'धर्म सिंह।' अब गुरु महाराज ने दूसरा नाम लिया।

और वीरां का लाल आगे बढ़कर हाथ जोड़े, सिर झुकाए साध-संगत को आदर दे रहा था।

और ऐसे बारी-बारी हिम्मत सिंह, मोहकम सिंह और साहिब सिंह।

और अब गुरु महाराज बता रहे थे : 'ये पांच पियारे हैं। अपने गुरु के

दुलारे। मैंने कहा था, वही जीते हैं जो मरना जानते हों। मरकर जीवन पाने का प्रत्यक्ष सबूत आपके सामने है। इन पांच प्यारों ने मर कर जीवन पाया है। अमर हो गए हैं। आज के बैसाखी वाले दिन अब हमें अगली सीढ़ी चढ़नी है। इससे भी ऊंचे जाना है। एक नया पंथ कायम करना है।

ये शब्द गुरु महाराज के मुखारबिन्द से सुनकर अस्सी-हजार का जन-समूह, 'जो बोले सो निहाल सति श्री अकाल' के जयकारे गुंजाने लगा। एक तरफ से आवाज़ आती, 'बोले सो निहाल' और दूसर तरफ लोग पुकारते, 'सति श्री अकाल', आगे से लोग जयकारा छोड़ते, 'बोले सो निहाल', पीछे वाले पुकारते। 'सति श्री अकाल'।

इस तरह जयकारे गुंजाते लोग जैसे बावले हो रहे हों। न थकते थे, न हारते थे।

गुरु महाराज पांच पियारों के साथ मंच पर खड़े मंद-मंद मुस्करा रहे थे।

38

और फिर गुरु महाराज ने अपनी दाईं बाजू को उठाया, इसके उठने से हर कोई खामोश हो जाता था और चिड़ियाँ भी पंख न फड़फड़ाती।

हर कोई अपनी-अपनी जगह पर हाथ जोड़े श्रद्धा से आंखें गुरु महाराज के मुख के तेज पर टिकाये प्रतीक्षा में था कि अब अगली करामात सतगुरु क्या करने जा रहे हैं। इतने में तम्बू का परदा फिर हटा और आलम एक पत्थर की खरल को उठाए आया और मंच पर उसे ला रखा। आलम फिर साथ के खेमें में गया और इस बार एक बड़े आकार का लोहे का तसला ला कर उस पर टिका दिया। अब वह सतलुज के स्वच्छ जल से भरी गागर को तसले में उडेल रहे थे।

गुरु महाराज ने अब पांच प्यारों को वीरासन में तसले के गिर्द बैठा दिया दांया घुटना नीचे और बायाँ घुटना उठाया हुआ। जिस तरह का बाना पांच प्यारों ने पहना हुआ था, बिल्कुल उसी प्रकार बाना गुरु महाराज ने स्वयं भी धारण किया हुआ था। नीला चोला, घुटनों तक जांघिया और ऊपर केसरी दस्तार।

कुछ समय के बाद गुरु महाराज ने खण्डा निकाल कर तसले के पानी में फेरना शुरू कर दिया और साथ-साथ 'जपुजी-साहिब' का पाठ शुरू कर दिया। 'जपुजी-साहिब' का पाठ खत्म हुआ तो उन्होंने 'जाप-साहिब' का पाठ

आरम्भ कर दिया। वह खत्म हुआ तो 'सुधा-सवैया', फिर 'आनन्द-साहिब'। पानी में खण्डा फेरते जाते और ऊंचे-ऊंचे स्वर में पाठ करते जाते।

ऊपर तक भरे तसले में खण्डा फेरते समय कुछ जल के छींटे छलक कर बाहर गिर जाते। पर गुरु महाराज आंखें मूंदी, एक के बाद एक बाणी का पाठ कर रहे थे। पांच प्यारे भी आसन पर बिराजमान, पलकें मूंदे हाथ जोड़े गुरु महाराज के मुखारबिंद से पाठ का उच्चारण सुन रहे थे।

अभी पाठ खत्म नहीं हुआ था। साध-संगत एक टक मंच पर आंखें जमाए अपने चहेते प्रियतम का नया रूप निहार रही थी कि दो चिड़ियाँ आईं और आगे-पीछे काटे हुए जल में अपनी चोचें मारने लगी। चिड़ियाँ प्यासी थीं।

अगले क्षण मंच के ही एक ओर तसले के जल में अपनी चोचें मारकर हटी चिड़ियाँ एक दूसरे के साथ उलझने लगीं। ये तो लड़ रही थीं। कभी चोचों के साथ एक दूसरे को ठूंगे मारते थीं, कभी पंजों के साथ छपट्टे, कभी पंख फैलाकर एक दूसरे पर हावी होने की कोशिश करती। किटकिटा रही थीं, एक दूसरे पर वार कर रही थीं। उनके पंख टूटते जारहे थे। एक दूसरे को चोंच से लहू-लुहान कर रही थीं। साध-संगत की अगली पंक्तियों में बैठे गुरुसिक्ख देख-देखकर हैरान हो रहे थे। कैसे वैरियों की तरह चिड़ियाँ लड़ रही थीं न एक हारती, न दूसरी। ऐसे तो वे एक दूसरे को बिल्कुल समाप्त कर देंगी।

यह तमाशा देख रहे भाई रामकंवर जी आश्चर्यचकित हो रहे थे। एक दूसरे पर वार करती, ठोंगे मारती चिड़ियाँ अब बेहोश होकर ओंधी जा गिरी थी। एक दाएं एक बाएं।

इतने में माता जीतो जी आईं। उनके पल्ले में खांड के पताशे थे। मंच पर गुरु महाराज ने पताशे भी तसले के जल में मिला दिए। दशमेश उसी तरह पाठ का उच्चारण करते जा रहे थे। एक अनोखा वीर रस का समां बंधा हुआ था। कलगीधर के पाठ में एक रस था, एक उल्लास था, एक आवेश था।

पांच वाणियों का पाठ समाप्त हुआ तो पांचों प्यारों को बारी-बारी अमृत छकाने लगे। प्रत्येक को पांच बार चुल्लू भर-भर कर अमृत पीने के लिए देते। फिर अमृत के छींटे उनके मुंह पर मारते। बार-बार उन्हें आंखें खुली रखने के लिए कहते ताकि अमृत उनके नैनों को रोशन करे। फिर उनके केशों में अमृत की बूंदें टपकाई जातीं। हर बार अमृत का घूंट पीता हुआ कोई मुंह से 'वाहगुरु जी का खालसा वाहगुरु जी की फतेह' कहता। हर बार किसी

के मुंह पर अमृत का छींटा मारा जाता, वह पुकारता 'वाह गुरु जी का खालसा, वाह गुरु जी की फतेह।' ऐसे ही केशों में अमृत टपकाए जाने के समय 'वाह गुरु जी का खालसा, वाहगुरु जी की फतेह' के बोलों का उच्चारण किया जाता।

अब गुरु महाराज हरेक को बाटे (लोहे का बड़ा कटोरा) के साथ मुंह लगाकर बारी-बारी अमृत पीने के लिए कह रहे थे। एक ही बाटे में से पांच के पांच प्यारे अमृत पी रहे थे। इनमें से तीन तथाकथित छोटी जातियों वाले थे। पर मजाल है कि पांच प्यारों में से किसी को इसका ख्याल तक आया हो, किसी ने एतराज़ किया हो।

ऐसे गुरु महाराज ने उनका कुल नाश, कृत नाश और धर्म नाश करके उनको नया जन्म, नया रूप दे दिया। उनके पिता स्वयं दशमेश थे, उनका जन्म स्थान आनन्दपुर था।वे केवल एक अकाल पुरुष के अनुयायी थे।

ऐसे अमृतपान करके दयाराम सरदार दया सिंह बन गया था, धर्म चन्द, सरदार धर्म सिंह हो गया था और हिम्मत, मोहकम और साहिब को सरदार हिम्मत सिंह, सरदार मोहकम सिंह और सरदार साहिब सिंह नाम दिया गया था। जैसे चिड़ियों से वे बाज़ बन गए हों।

बिल्कुल ऐसे ही भागां को लगता जब वह अपने परदेसी महबूब की ओर देखती। माधवी को बिल्कुल ऐसा महसूस होता जब वह अपने शौहर की ओर निहारती।

मेरे इस लाहौरिए को क्या हो गया है ? यह तो पहचाना नहीं जाता। भागां अपनी मां वीरांवाली से कह रही थी।

मेरा आदमी भी तो मुझे अलग-अलग लगने लगा है। माधवी भागां से सम्बोधित थी।

मेरे उसका तो जैसे कद–ऊंचा हो गया हो। इतना ऊंचा तो वह पहले नहीं हुआ करता थ। सरू के पेड़ जैसा। सुन्दर दाड़ी, सुन्दर मूंछें, यह तो सचमुच सरदार लगता है और कैसे खड़ा है जैसे कोई सूबेदार हो। अभी हुकम देगा और सब हाथ जोड़े, सिर झुकाए उसका हुकम बजाने के लिए हाजिर हो जायेंगे। एकदम जवान हो गया है, कड़कड़ करती जवानी........ भागां अपने में खोई बोल रही थी।

तुम अपने भाई की ओर नहीं देखती ? माधवी उसे टोककर धर्म के बारे में बोलने लगी, उसकी आंखों की रोशनी तो देख ! चम-चम कर रही हैं। मुझे

तो, उनमे से हल्का-हल्का सेंक उमड़ रहा प्रतीत होता है, जैसे मुहब्बतें छलक-छलक पड़ रही हों। जैसे कोई प्रीत के सन्देशे भेज रहा हो। ऐसे देखता है जैसे अगले क्षण आलिंगन में ले लेगा। इस तरह तो वह उन दिनों में भी नहीं.........।

और अब गुरु महाराज मंच से माता जीतो जी का धन्यवाद कर रहे थे। आप बड़े समय पर पतासों का प्रसाद लाए। दशमेश उन्हें कह रहे थे। अमृत छक कर चिड़ियाँ बाज बन जाती हैं। गीदड़ शेर बन जाते हैं। आपके पतासों के कारण उनमें संवेदना भी होगी, दया भी होगी, मिठास भी होगी। मेरा शूरवीर अब दुश्मन से जूझेगा, उसे मारेगा, मारकर छांह में भी डालेगा।

यह सुनकर भाई रामकंवर जीने गुरु महाराज का ध्यान मंच की एक ओर अभी तक उल्टी पड़ी चिड़ियों की ओर दिलाया। कैसे अमृत के बाटे से उछले पानी से चोंच भरकर उन्होंने लड़ते-लड़ते एक-दूसरे को अधमरा कर दिया था। अभी तक बेहोश पड़ी थीं।

यही हाल इनका भी होता अगर माता जीतो जी के पतासों की मिठास अमृत में शामिल न होती। गुरु महाराज ने समझाया, 'मेरा खालसा अब वैसे ही दुनिया की सेवा के लिए तत्पर होगा जैसे दुष्ट का दमन करने के लिए। वैसे ही जरूरतमंदों की सहायता के लिए पहुंचेगा जैसे अत्याचारी का अत्याचार दबाने के लिए।

मुझे तो अपना पुत्र ऐसे लगता है जैसे फरिश्ता हो, "अब वीरां वाली बोल रही थी। मैं तो अपने धर्म को रो-पीट बैठी हूँ। यह तो दशमेश का जैसे बेटा हो। उनके जैसी ही तो इसकी नुहार प्रतीत होती है। कलगीधर की जैसे परछाई हो। मेरा सरदार धर्म सिंह।"

ले यह क्या ? हर किसी की ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की सांस नीचे रह गई। हर कोई जैसे आवाक रह गया हो। मंच पर गुरु महाराज स्वयं वीरासन में बैठे पांच प्यारों को निवेदन कर रहे थे कि उन्हें अमृत छकाया जाए।

यह कैसे हो सकता है ?

ऐसे ही होगा, गुरु महाराज ने समझाया। अमृत का पान करके पांच प्यारे गुरु का रूप हो चुके हैं। उनका चेला उनके यहाँ हजूर प्रार्थी है। उसे अमृत का दान दिया जाए। सावधान होकर अमृत का दान बख्शो। ऐसे ही पांच घूंट अमृत के पीने के लिए। वैसे ही पांच छींटे अमृत के मुखड़े पर वैसे

ही आंखें खुली हुई, वैसे ही पांच बार केशों में अमृत की बूंदों का टपकाया जाना। वैसे ही हर बार गुरु महाराज अपने मुखारबिन्द से पुकारते, 'वाहगुरु जी का खालसा, वाहगुरु जी की फतेह।"

"यह देखकर संगत जोर-जोर से जयकारे गुंजाने लगी, "वाह गोबिन्द सिंह आपे गुरु चेला, वाह-वाह गोबिन्द सिंह आपे गुरु चेला।"

इस तरह का गुरु न कभी किसी ने सुना था, न कभी किसी ने देखा था।

लोग भी 'वाह-वाह गोबिन्द सिंह आपे गुरु चेला' के जयकारे गुंजाते जा रहे थे कि गुरुदास नाम का दरबारी कवि गुरु महाराज की आज्ञा लेकर मंच पर आया और उस तुर्ता-फुर्ती में तैयार किया वार का यह छन्द पेश किया :

हर सचवै तख़्त रचाया सत संगति मेला॥
नानक निरभउ निरंकार विच सिधि खेला।
गुरु सिमर मनाई कालक खण्ड की वेला॥
पीउ पाहुल खण्ड धार हुई जनम सुहेला।
संगति कीनी खालसा मन मुखी दुहेला॥
वाह-वाह गोबिन्द सिंह आपे गुरु चेला॥"

(वार 40)

39

दरबारी कवि गुरुदास जी की वार के बाद संगत में फिर जयकारे गूंजने शुरू हो गए, 'वाह-वाह गोबिन्द सिंह आपे गुरु चेला', साध-संगत पर जैसे जनून सवार हो गया हो। गुरु सिक्ख अपने गुरु पर बहिलहारी जा रहे थे।

फिर गुरु महाराज ने अपनी दाईं बाजू उठाई तो हर जबान पर ताला लग गया, मजाल है कोई चूं कर जाए।

अब गुरु महाराज फिर जनसमूह को संबोधित कर रहे थे।

साध-संगत ! मैं देख रहा हूँ कि आप अमृत-पान करने के लिए विह्वल हो रहे हो। यह बहुत खुशी की बात है। पर अमृतधारी होना बहुत भारी जिम्मेदारी है।

मुझे अपार खुशी है। गुरु बाबा नानक की पंथ पर कृपा है। कल जब उन्होंने स्वयं अपने गुरुसिक्खों की परीक्षा ली तो केवल एक भाई लहना जी सफल हुए थे। लाखों में से केवल एक सिक्ख सफल हुआ जिसे गुरु महाराज ने अंग से लगाकर अंगद बना दिया। आज मुझे खुशी है, जब मैंने आज के

श्रद्धालुओं को ललकारा तो एक नहीं, पांच शूरवीर ! अमृत पान करके वे गुरु पन्थ का गौरव बन गए हैं।

मैंने कहा था, अमृत को ग्रहण करना बड़ी भारी जिम्मेवारी है।

पहली बात, अमृत छक कर गुरु सिक्ख खालसा हो जाता है। हर पुरुष का एक ही नाम 'सिंह' होगा, हर बीबी का एक ही नाम 'कौर' होगा। न कोई ऊंचा, न कोई नीचा। मेरा अपना नाम आज से 'गोबिन्द सिंह' होगा, 'गोबिन्द राय' नहीं। और खालसा को अपनी नई पहचान बनाए रखनी होगी। इसलिए मैंने पांच 'ककार' निश्चित किए हैं, केश, कंघा, कड़ा, कच्छा और कृपाण। यह पांच 'ककार' अमृतधारी गुरुसिक्ख के अंगसंग रहेंगे। आठों पहर।

इसके साथ ही मैंने चार कर्त्तव्यों के बारे में भी सोचा है। केशों की बेअदबी नहीं करनी। हलाल नहीं खाना। तम्बाकू नहीं पीना और पराई स्त्री को मां, बहन, बेटी के रूप में देखना।

यह सब कुझ मैंने आकाल पुरुष के आदेशानुसार किया है। ऐसा ही मुझे आदेश मिला था :

"मैं अपना सुत तोहि निवाजा।
पंथ परचुर करबे कहू साजा।
जाहि तहाँ ते धर्म चलाइ।
कुबधि करन ते लोक हटाइ "

ये मर्यादाएं और प्रतिबन्ध जिनके बारे में मैंने ताकीद किया है, अकाल पुरुष की ओर निर्धारित की गई है। यही मेरे खालसा की पहचान होगी। इनका पालन जरूरी है। इनकी पालना में मेरी खुशी है।

"रहित पियारी मोहि कउ सिक्ख प्यारो नाहि

... ...

रहिणी रहे सोई सिक्ख मेरा, ओह साहिब मैं उसका चेरा।"

ये मर्यादाएं और प्रतिबंध बाह्यमुखी पहचान की हैं। खालसे की आत्मिक पहचान एक अकाल पुरुष में आस्था है। ब्राह्म वेला में जागना, 'जपुजी जापू साहिब, सवैये, रहरास साहिब और सोहला का पाठ और वह सब कुछ करना जो बाबा नानक ने गुरु सिक्ख के लिए निर्धारित किया हुआ है।"

"भगत द्रिढ़ाडनी, धर्म द्रिढ़ाउना, गृहस्थ विच वैराग करने। उदासी करने नाहीं।" मेरे मार्ग की यही निशानी है। परमेश्वर का जाप, परमेश्वर का नाम-स्मरण, नाम, दान, स्नान।' दया धर्म रखना। संयम रखना। मेहनत की

कमाई। मेरे निमित्त कुछ दान। झूठ नहीं बोलना। झूठी भक्ति फल नहीं देती।

सच की भक्ति फलदाई होती है। 'बिषिया नहीं संचावनी। आया चलाया। एक टेक मेरे नाम की करनी, दूसरी टेक नाहीं करनी आदि साखी।

हमें आध्यात्मिक राज्य कायम करना है। अन्याय के विरुद्ध लड़ना है। कमजोर की, मजलूम की, मदद करनी है। पुरुषार्थ करना है, बांट कर खाना हैं

हमारा इष्ट एक है, पहरावा एक है, आशा एक है, स्वरूप एक है। इस प्रकार बोल रहे थे कि गुरु महाराज ने महसूस किया लोग जल्दी में हैं, जैसे पांच प्यारे अमृत-पान करके पूरी तरह तैयार हो गए थे, वे भी उनमें शामिल होना चाहते थे। जल्दी से जल्दी।

यह देखकर गुरु महाराज ने अमृत पान का अटूट प्रवाह शुरू कर दिया। पांच प्यारों के बाद गुरु महाराज ने आप अमृत छका था। उसके बाद जो पांच गुरु सिक्ख इस आदर के अधिकारी बने वे थे राम सिंह, देवा सिंह, टहल सिंह, ईशर सिंह और फतेह सिंह। गुरु महाराज ने इन्हें पांच मुक्त (संसार-मुक्त) कहकर मान बख्शा।

इसके बाद तो जैसे बाढ़ आ गई हो। कई दिनों तक अमृत-प्रचार की झड़ी लगी रही। मुगल दरबार के गुप्तचर गुलाम महीउद्दीन ने दिल्ली अपने रोजनामचे में खबर दी। यहाँ बीस हजार गुरुसिक्खों ने अमृतपान करके खालसा पंथ में प्रवेश किया है।

इन्हीं दिनों में गुरु महाराज अमृतपान कर रहे गुरु सिक्खों को बार-बार नई रहन के बारे में सावधान करते—

1. वाहगुरु गुरुमंत्र है, (एक ओऽम) से लेकर गुरु प्रसादि तक मूलमंत्र है।
2. खालसा का कर्त्तव्य है—'धर्म चलावन, सन्त उबारन, दुष्ट दोखीअन को मूल उदारन।'
3. सिक्ख पंथ धार्मिक और सियासी रुचि का संगम है।
4. हिन्दुओं के चार वर्ण समाप्त हो गए। कोई किसी से बड़ा नहीं। सभी खुलकर मिलें।
5. धार्मिक स्थानों, तीर्थों पर यात्रा करने का कोई लाभ नहीं, अगर मन में ईश्वर का स्थान नहीं।
6. किसी गणेश आदि की ओर ध्यान न हो। राम, कृष्ण, ब्रह्मा, दुर्गा

आदि को पूजने की कोई जरूरत नहीं। गुरु नानक और बाकी गुरु साहिबान पर विश्वास लगाओ।

7. नाम में लौ, हृदय में पवित्रता, ऊंचा आचरण, निर्भयता, चढ़ती कला में रहने का चाव, दूसरे को सुख देने के लिए तत्पर, यह है खालसा। (पुरख भगवन्त)
8. खालसा अपनी समस्याएं आप सुलझाता है। किसी और पर निर्भर नहीं रहता।
9. गृहस्थ-आश्रम सबसे ऊंचा है। कम सोना, कम खाना, दया, नम्रता, क्षमा, संतोष गुरु सिक्ख के गहने हैं।
10. खालसा मढ़ी, शमशान, मकबरे, मज़ार की पूजा नहीं करता। न टोने तावीज़ में विश्वास रखता है।
11. खालसा उनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखता, जो सती को पूजते हैं, जो घर में बच्ची के जन्म लेने पर उसे मार देते हैं।
12. खालसा अपनी आमदन का दसवां हिस्सा दान के तौर पर जरूरतमंदों में बांट देता है।
13. खालसा दान में दी गई रकम को अपने लिए कभी प्रयोग नहीं करता।
14. खालसा तलवार का धनी होता है, सच और न्याय, गरीब और कमजोर की रक्षा के लिए हमेशा तत्पर रहता है।
15. अगर खालसा के एक हाथ में तलवार होती है तो दूसरे हाथ में सुमरनी होता है।
16. को किस जो राज न देहै।
    लो लए है निज बल से लैए है।
17. आज़ादी के बिना जीवन नरक होता है।
18. जन, ज़र, जमीन की लालसा बुरी है।
19. कोई हिन्दू है, कोई मुसलमान है, कोई सुन्नी है, कोई शिया है, पर सभी एक ही ईश्वर की सन्तान हैं। कर्त्ता, करीम, राज़क, रहीम एक ही ईश्वर है।

खालसा कोई नस्ल नहीं, कुल नहीं, जाति नहीं, आदर्श है।

गुरुवर अकाल के हुकम सिउ,
उपजिऊं बिगिआना।

तब सहिजे रचिउ खालसा,
शाबत महदाना।

... ...

खालसा मेरो रूप है खास,
खालसा महि हउं करो निवास।

... ...

खालसा मेरो सजन सूरा,
खालसा मेरा सतगुरु पूरा।
उपमा खालसे जात न कही,
जिह्वा एक पार न लही।"

40

अभी अमृत प्रवाह जारी था। कुछ लोग बेशक बिना अमृत छके लौट गए थे, पर कई और आ रहे थे। पांच प्यारे थकते नहीं थे। वे तो पांच मुक्त बारी-बारी अमृत पान करवा रहे थे।

वीरां वाली की यह इच्छा थी कि वह अपने होने वाले दामाद के साथ दो घड़ियाँ मिल कर बैठे, उसे और जान सके उसके अतिरिक्त जितना भागां ने उसको उठते-बैठते उसके बारे में बताया था, अभी पूरी नहीं हुई थी। न ही माधवी का यह शौक पूरा होने में आ रहा था कि धर्म के साथ को उसके नए रूप में स्वीकारे।

घर में धर्म और दया आते तो जैसे उनके साथ प्रकाश ही प्रकाश आ जाता। खुशबुओं की पिटारियाँ जैसे खुल जाती हों। वे और के और हो गए थे। उनकी आंखों की मस्ती, उनके मुखड़े का तेज, उनके बोलों की मधुरता, एक मदमस्ती तथा आनन्द वातावरण में झर-झर पड़ता है।

आलम अमृत-पान करके आलम सिंह बन गया था। उसकी बारी पहले आ गई थी, क्योंकि वह गुरु महाराज की सेना में था। माधवी भागां और वीरांवाली अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रही थीं। माधवी कहती, 'पांच प्यारे की स्त्री का इतना भी हक नहीं ?' पहले हक उनका है जो बाहर से आए हैं। धर्म उसे समझाता। बाहर से तो हम भी अए हैं। माधवी अपना पक्ष रखती। हमारा यहाँ अपना घर है, वे लोग बाहर गाड़ियों में सोए हुए हैं, तम्बुओं में रह रहे हैं। साथ ही उन्होंने अपने घर भी लौटना है। मजाल है धर्म टस से मस हो जाए।

इतने में गुरु महाराज ने एक और कौतुक रचाया।

बात ऐसे हुई कि शिकार को गए भाई उदय सिंह एक दिन एक शेर को मार कर लाए। आम शेरों से यह शेर कहीं बड़ा था। गुरु महाराज ने देखा और उन्होंने आदेश दिया कि शेर की खाल उतारकर कमा ली जाए। जब खाल उनको पेश की गई, उन्होंने आलम और उदय सिंह को भरोसे में लेकर यह हुक्म दिया कि एक गधे की पीठ पर यह खाल चढ़ा दी जाए और फिर उस गधे को शहर के बाहर खेतों में छोड़ दिया जाए। यह सब-कुछ छिपकर रात के अन्धेरे में करना होगा।

जैसे दशमेश का आदेश था वैसे ही किया गया।

अगली सुबह शहर में शोर पड़ गया कि अमुक स्थान पर शेर देखा गया है। लोगों ने बात का बतंगड़ बनाना शुरू कर दिया। कोई कहता शेर ने अमुक के बच्चे को उठा लिया। कोई कहता शेर ने अमुक पर हमला किया हैं लोग डर के मारे घर से बाहर न निकलते। एक आतंक छाया हुआ था सारे शहर में। कलगीधर तक भी शिकायत पहुंची। शेर के आतंक से हर कोई परेशान था।

अगली सुबह एक कुम्हार अपने गधों को लेकर शहर के बाहर मिट्टी भरने के लिए जा रहा था कि उसके एक गधे ने हिनहिनाना शुरू कर दिया। कुम्हार के गधे को हिनहिनाता सुनकर, वह गधा जिसकी पीठ पर शेर की खाल चढ़ी हुई थी, अपनी फितरत के अनुसार हिनहिनाने लगा।

जब लोगों ने यह सुना तो उनका डर दूर हुआ, वह घर से बाहर निकल आए। इतने में कुम्हार ने अपने गुम हुए गधे को पहचान लिया और डण्डे मारकर उसकी शेर की खाल उतारी और मिट्टी ढोने वाला बोरा उस पर डालकर उसे अपने गधों के साथ मिट्टी ढोने के लिए चल पड़ा।

गुरु महाराज ने अगले दिन दरबार में इस घटना को लेकर गुरुसिक्खों को उपदेश दिया :

अमृत छक कर अमृतधारियों जैसा आचरण भी हमें अपनाना होगा। अमृत पान करना शेर की खाल शरीर पर चढ़ा लेने जैसा नहीं। जरूरत इस बात की है कि शेरों के जैसा किरदार भी पैदा किया जाए। अगर यह नहीं तो हम वैसे के वैसे गधे रहेंगे। समय आने पर हिनहिनाने लगेंगे। हमें खालसा के वेश के गौरव को बनाए रखना है। हमें अपनी रहतल शेरों जैसी बनानी होगी। आदमी जाना जाता है, मान पाता है, अपनी करनी से न कि अपने

कपड़ों से। 'जिह करणी तहि निरमल मति' करणी बाझूं घट्टो घट्ट, गुरुवाणी में आता है।

ऐसे ही गुरु महाराज एक दिन शिकार को निकले। दोपहर तक शिकार खेलते रहे खिलाते रहे। जब दोपहर को थककर विश्राम का समय हुआ तो उन्होंने अपने साथ लाए रातब के एक देग को कुत्तों के लिए एक स्थान पर रख दिया और अपने साथ लाए हर शिकारी को हिदायत की कि वे अपने-अपने कुत्तों को खोल दें ताकि कुत्ते मांस और चावल खा सकें। देगे में ढेरों रातब था। सभी कुत्ते पेट भरकर खा लें, तो भी खत्म न होता। पर कुत्तों में हर कोई यह सोचता कि वह केवल उसका रातब है। किसी और को वह उसमें मुंह नहीं मारने देगा। इसकी बजाय कि कुत्ते देगे के रातब को मानते, उन्होंने एक दूसरे के साथ नोंक-झोंक शुरू कर दी। एक दूसरे को काट-काट कर खाने लगे। ऐसे कुत्तापन करते हुए उन्होंने अपने आप को लहू-लुहान कर लिया। रातब वैसे का वैसे देगे में पड़ा उनकी प्रतीक्षा कर रहा था।

इस दृष्टांत से उन्हें समझ आई कि खालसों को मिलकर रहना होगा। हर समस्या को सोच समझ कर सुलझाना होगा। कुदरत के पास आदमी को देने के लिए अपार नियामतें हैं। हमें उन्हें बांटकर भोगना होगा। वही लोग जीवन में कामयाब होते हैं जो मिलकर ठीक ब्योंत से जीवन की हर घाटी को पार करना जानते हैं। जब तक खालसा मिलकर रहेगा, बांट कर खायेगा, खालसा ईश्वर के वरदानों को मानेगा, और अगर खालसा आपस में छीना-झपटी करने लगेगा तो अपनी जत्थेबन्दी को भी नोंचने-खसोटने लगेगा और सफलता भी उसकी पहुंच से बाहर रहेगी।

गुरु महाराज के दरबार में भाई मनी सिंह जैसे धर्मात्मा थे। आलम जैसे शूरवीर थे। भाई 'नन्दलाल' 'गोया' जैसे कवि थे। गोष्ठियाँ होती, कवि दरबार आयोजित किए जाते, खेलों के मुकाबले होते, इसके साथ मनोरंजन का भी प्रबन्ध रहता। सुथरे तो सातवें गुरु महाराज के जमाने से गुरु घर का अंग ही बन गए थे। सुथरा को यह अधिकार रहता था कि अगर कोई कमी-बेशी देखे तो उसका मज़ाक उड़ाए ताकि इस तरह के मज़ाक से उससे उसकी कमज़ोरी से परिचित करवाया जा सके।

अमृत-प्रवाह जारी था। गुरु सिक्खों के समूह अमृतपान करके शस्त्र धारण करते। हर कोई अपने आप को 'सिंह' कहलवाता। ऐसे लोग उठते बैठते, चलते-फिरते जैसे कोई सरदार हो। आनन्दपुर में एक अपार गहमा-गहमी

रहने लगी। नित यात्रियों के नए जत्थे आते, शहर की दिन-दूनी रात चौगुनी तरक्की हो रही थी। यह देख एक दिन जब सुबह का दरबार लगा हुआ था, गुरुसिक्ख अपने भांति-भांति के वस्त्रों में लैस गुरु महाराज की सेना में बैठे थे। दरबार का सुथरा, शरीर के ऊपर कालिख का लेप करवा कर दरबार में आ गया। पहले उसने परिक्रमा की जैसे उसका नियम था और फिर वैसे का वैसे काला बुत्त बना एक ही लंगोट में, उपस्थित दरबारियों के पीछे जा खड़ा हुआ। गुरु महाराज सुथरे का आचरण देख रहे थे। उन्हें समझ नहीं आ रही थी, आखिर उसने यह भेष क्यों धारण किया था। जब दरबार समाप्त हुआ तो इससे पहले कि हर कोई अलग-अलग होता, अपने-अपने का पर लगता, दशमेश ने सुथरे को बुलाकर पूछा, यह कैसा भेष उसने बना रखा था। सुथरा हाथ जोड़कर कहने लगा, "हजूर खालसा के वर्तमान ठाठ-बाठ को देखकर पहाड़ी राजा जल-भुनकर कोयला हो रहे हैं, आया-गया भी उंगलियाँ उठाता रहता है, मैंने सोचा, हजूर के खालसे को नज़र न लग जाए, इसलिए मैंने यह रूप धारण किया है। जैसे कोई मां अपने बच्चे को नहला-धुलाकर, सुन्दर कपड़े पहनाकर उसके माथे पर काला टीका लगा देती है या कोई ऊंची माड़ी बनाकर उसके सामने काली कन्नी टांग देती है।"

जिस किसी ने सुना लोग सुथरे की बात से सहमत थे। खालसा की नई शान से आगे-पीछे के राजाओं को क्या और मुगल हुक्मरानों की क्या, नींद हराम करनी शुरू कर दी थी।

गुरु महाराज सोचते, सुथरे ने एक महत्त्वपूर्ण सच्चाई की ओर इशारा किया था। खालसे को अब ज्यादा सावधान रहना होगा।

उस दिन देर रात गए, सोने से पहले आलम वीरा को कहने लगा, मैं सोचता हूँ, हमें भागां के अब हाथ पीले कर देने चाहिए ताकि लड़की अपने घर चली जाए। मुझे चारों ओर से काली घटा चढ़ती आ रही दिखाई देती है।

जिस तरह का खालसा गुरु महाराज साज रहे हैं, उसे किसी ने सांस थोड़े ही लेने देनी है, चाहे हमारे पड़ोसी पहाड़ी राजा हों चाहे मुगल सूबेदार।

मैं तो पहले अपना............और फिर वीरां वाली के बीच की औरत का चेहरा लाल बिम्ब हो गया। उसकी नज़रें झुक गई।

और फिर ठण्डी-मीठी हवा का एक झोंका आया जो आस-पास को सरसार कर गया।

41

अमृतपान कोई औपचारिक शपथ नही थी; यह तो कोई करामात थी। यह तो एक स्वप्न था, जो दशमेश ने देखा और उसे परवान चढ़ाया। जैसे कोई कवि कविता लिखकर, जैसे कोई कलाकार चित्र बनाकर, जैसे कोई शिल्पकार मूर्ति बनाकर, महसूस करता है, गुरु महाराज को ऐसे महसूस हो रहा था। अपने जीवन के आदर्श की ओर उनका यह एक मज़बूत कदम था।

उन्होंने एक कौम को सिरजा था, जिसका विश्वास एक ईश्वर पर था, जिसका साथ सच का था, जिसका भरोसा अपने बाहु-बल पर था। जिसका उद्देश्य सामाजिक और राजनीतिक न्याय था। एक अनख वाली कौम; आत्म-सम्मान जिसका अनमोल गहना था।

और इस सबके लिए जिसका नेतृत्व स्वयं गुरु महाराज कर रहे थे, जिनके जैसा न किसी ने कोई सुना था, न किसी ने कोई देखा था। उनके जैसा सुन्दर नौजवान। उनके जैसा बहादुर शूरवीर। उनके जैसा पहुंचा हुआ पीर। उनके जैसा कलाकार। उनके जैसा कवि। उनके जैसा कौम-परस्त। उनके जैसा तीरंदाज। उनके जैसा तलवार का धनी। उनके जैसा पैनी-सूझवाला विचारवान।

आनन्दपुर में बैसाखी वाले दिन की घटना ने सारे के सारे पंजाब को जैसे हिलाकर रख दिया हो। जो लोग आनन्दपुर से अमृत छककर लौटे थे, उनकी सूरत और की और थी, उनका पहरावा और का और था। वे इतने-इतने अच्छे लगते थे, इतने-इतने अलग लगते थे कि उनकी बात पर विश्वास होता था। उनके कहने पर धैर्य बंधता था। उनमें से कोई पास हो तो दूसरा सुरक्षित-सा महसूस करता था।

पंजाबी किसानों और मज़दूरों को लगता जैसे जिस मसीहा कि वे राह देख रहे थे। वह उनके बीच पैदा हो गया था। वह जिसे वे लोग अपना कह सकते थे। अपने जैसा पा रहे थे, वे तो उसके लिए अपने खेती के औजार चंडवा कर तलवारें बनवा लेंगे। उसकी सेना में भर्ती होंगे। वे कहेंगे तो उनके लिए जान कर भी खेल जायेंगे।

उस वर्ष पंजाबी किसान अपनी फसल सम्भाल कर, अनाज से बर्तन (मिट्टी के) भरकर, आनन्दपुर चल पड़े। हर जबान पर यह कहानी थी कि कलगीधर ने कहा है, मेरी तलवार खून की प्यासी है और एक नहीं पांच सिक्ख अपना शीश कुर्बान करने के लिए तैयार हो गए। दशमेश ने बकरों

की भांति उन्हें काटा और फिर उन्हें जीवित कर दिया। वे और के और हो गए। न कोई ऊंचा न कोई नीचा। न कोई हिन्दू न कोई मुसलमान, न कोई छूत न कोई छात, सभी बराबर। सभी को उन्होंने अपना बेटा बना लिया।

कुछ कहते, वे तो हेम-कुण्ड में तपस्या कर रहे थे। वहाँ-जहाँ सत्यश्रृंग नाम के पहाड़ों का शिखर है। उनका मन आने को नहीं कर रहा था, पर अकाल पुरुष ने उन्हें जोर डालकर फिर से जन्म लेने के लिए मनाया ताकि कलयुग का उद्धार हो सके। अन्याय और सीना-जोरी के खिलाफ कोई आवाज उठाए। पांवों तले कुचले हुए दीनों की कोई बांह पकड़े।

कुछ उनके कद-आकार के दीवाने थे। कुछ उनके पहरावे की कहानियाँ कहते रहते। कुछ को उनकी घोड़े की सवारी करना अच्छा लगता था। कुछ, कहते उनके जैसा निशाना किसी शिकारी का नहीं सुना था। कुछ उनके बाहु-बल के उपासक थे। उनकी शोर्य की मूर्ति उनकी, आंखों के सामने चलती रहती।

वह भी कोई उम्र थी जब उन्होंने अपने पिता को शीश कुर्बान करने के लिए दिल्ली भेज दिया था। कुछ सोच-सोचकर चकित होते रहते।

यह धुन लगी हुई थी, कौन उनकी शरण में जाता है, कौन पहले अमृतपान करता है, कौन पहले उनकी सेना में शामिल होता है। पंजाब के शहर-शहर, गांव-गांव एक नई हवा चल रही थी। आनन्दपुर में बैसाखी के मेले का संदेश जहाँ-जहाँ पहुंचता, जैसे लोगों का सारा डर उतर-उतर जाता। लोग और-और तरह की सोचने लगते।

सबसे अधिक बात जो पंजाबियों के दिल लगी थी वह गुरु गोबिन्द सिंह जी का पांच प्यारों को अमृत छका कर उनसे स्वयं अमृत छकना था। वे गुरु भी थे और चेले भी स्वयं थे और जहाँ पांच अमृतधारी सिक्ख इकट्ठे होते। वे औरों को अमृतपान करवा सकते थे। वे गुरु का स्वरूप हो जाते थे। इस तरह का पंचायती राज, इस तरह का धर्म-प्रबन्ध लोगों की कल्पना पर हावी हो गया था। अमृत छक कर हर कोई अपने-आपको गुरु का अंश मानने लगता था, चाहे कोई छींबा था, चाहे कोई नाई था, चाहे कोई मज़दूर था, चाहे कोई मिस्त्री, चाहे कोई खत्री था, चाहे कोई ब्राह्मण।

और नौजवानों ने घोड़ों पर चढ़ना शुरू कर दिया तलवारों और ढालों के साथ खेलना शुरू कर दिया। शिकार उनका मनोरंजन हो गया। मेलों पर गाने बजाने के साथ कुश्तियाँ होती, नेजाबाजी होती, तीर अंदाजी के मुकाबले होते।

पंजाबियों का जिन्दगी के बारे में दृष्टिकोण और का और हो गया। छोलों को उन्होंने 'बदाम', सोटे को 'अकलदान', घोड़ी को 'अराकण', हथौड़े को 'सवाय', एक को 'सवा लाख', ? लंगड़े को 'सुचाला', भूखे को 'कड़ाका', बहरे को 'चौबारे चढ़ना' कहना शुरू कर दिया।

गली-गली में नौजवान कलगीधर की शस्त्र-माला में से चुने हुए दोहे गातें रहते। एक दूसरे को पढ़कर सुनाते रहते :

असि कृपाण खण्डे, खड़ग, तुपक, तबर अर तीर,
सैफ़, सरोही, सैहयी यहै हमारै पीर।

... ...

काल तू ही, काली तू ही, तू ही तेग अर तीर।
तू ही, निशानी जीत की आजू तू ही जग बीर।

... ...

तुमी गुरज, तुमही, गदा; तुमरी तीर तुफेग।
दास जान मोरी मदा रच्छ करो सरबंग।"

और तो और, क्या पहाड़ी राजा और क्या मुगल फौज में सिपाही और सेनापति अक्सर दशमेश की शूरवीरता की कहानियाँ करते, दिल ही दिल में उनकी रणनीति की प्रशंसा करते। दशमेश खुद अपी फौज़ की अगुवाई करते थे। सबसे खतरनाक दुश्मन के साथ जंग में स्वयं मैदान में उतरते थे। चाहे लड़ाई तलवार से करनी हो, चाहे तीरों से। उनकी जंग की नीति 'ढाई फट' (ढाई फट से तात्पर्य है, दो फट तो लड़ना और आधा फट नीति पूर्वक सेना को पीछें हटा लेना) की होती थी। लम्बे खामखाह उलझते नहीं थे। अचानक हमला करते, या आगे या पीछे। लड़ाई वहाँ करते जो स्थान उन्होंने पहले निश्चित किया होता। जहाँ तक सम्भव होता-अपने शहर से कई कोस दूर हमलावर का मुकाबला करते। हर मुकाबले के लिए एक फौजदार की जिम्मेदारी होती। कभी अपनी सेना का हौसला न हारने देते, हमेशा उन्हें चढ़ती कला में रखते। फौजी प्रबंध में कभी ढील माफ न करते। चाहे उनका साहिबजादा (बेटा) अजीत सिंह ही क्यों न हो। भाग रहे दुश्मन पर वार न करते, न उस पर हाथ उठाते, जिसकी पगड़ी नीचे गिर पड़ी हो। मजाल है कभी उनके सेवकों ने किसी की मां-बहन की ओर आंख उठाकर देखा हो।

स्थान-स्थान पर दशमेश के घोड़ों का ज़िक्र होता। लोग कहते, उनका छोड़ा तीर कभी निशाना नहीं चूकता था। एक बार कमान चढ़ाते और उसमें

से चार-चार तीर अलग-अलग निशानों पर मार करने के लिए निकलते। यह भी सुनने में आया था कि उनके छोड़े तीर कोस-कोस तक जाकर मार करते थे।

गुरु महाराज की नित नई कहानियाँ सुनने में आती और पंजाब के लोग, क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, क्या सिक्ख एक दूसरे को सुना-सुना कर आनन्द उठाते। हर जबान पर गुरु गोबिन्द सिंह की चर्चा थी।

यह कहानी आजकल अधिक प्रचलित थी। गुरु महाराज ने शिकार कर रहे किसी दरगाह के सामने सहज स्वभाव सिर झुका दिया। उनके साथ गुरु सिक्खों ने एतराज किया, ऐसा करने से तो उन्होंने स्वयं अपने खालसा को रोका हुआ था। गुरु महाराज ने अपनी गलती मान ली और खता की माफी के लिए कहा। सिक्खों ने गुरु महाराज पर दण्ड लगाया जो उन्होंने उसी समय भरा।

ऐसे ही एक और कहानी गुरु महाराज की किसी जगह पीने के लिए पानी की मांग के बारे में थी। यह सुनकर कि गुरु महाराज पानी मांग रहे थे, एक साफ सुथरे सरमायेदार और एक मैले-कुचैले कपड़ों में मज़दूर, दोनों ने अपने-अपने पानी के कटोरे उनके आगे पेश किए। गुरु महाराज ने सरमाएदार का शुक्रिया किया पर पानी मेहनतकश मज़दूर के हाथ से लेकर पिया।

इस तरह की कहानियाँ पंजाबियों का मन मोह रही थीं। पीढ़ियों के दबे-कुचले, लुटे-पुटे, हारे-थके लोग सुनते और उनकी रगों में नया लहू दौड़ने लगता। पंजाबी अब सिर उठाकर चलते, मजाल है किसी की ऊंची-नीची सुन जाएं।

औरंगजेब दक्षिण की ओर मराठों का सिर कुचलने में उलझा हुआ था। कई वर्षों से वह राजधानी से बाहर था। पंजाब शहजादा मुअज़म के अधिकार में था। मुअज़म ने अपनी रिहाइश काबुल में रखी हुई थी। वैसे भी भाई नन्दलाल 'गोया' के कारण उसके दिल में गुरु महाराज की जात के लिए एक आदर था। उनकी अज़मत की उसे पहचान थी। धार के राजा कई बार मुंह की खा चुके थे। अन्दर ही अन्दर कुढ़ते रहते, ? कसमसाते रहते, पर उनकी गुरु महाराज के खिलाफ अपने तौर पर जंग छेड़ने की मजाल नहीं थी। केवल एक ही रास्ता उन्हें दिखाई देता था कि वे मुगल सम्राट को सच-झूठ शिकायत करके उसकी मदद मागें, नहीं तो जिस तरह गुरु गोबिन्द

सिंह का बोल-बाला सुनने में आता है, वे सोचते, अब बहुत समय नहीं वे तो मलिया, मेट हो जायेंगे।

जैसे-जैसे गुरु महाराज चढ़ती कला में जा रहे थे, आस-पास उनके विरोधी और दुःखी होने लगे।

42

दशमेश का जन्मदिन था।

गुरु महाराज का जन्मदिन हर वर्ष बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता था। पर इस वर्ष जैसे सारे पंथ को नया चाव चढ़ा हुआ हो। दूर-नजदीक से संगतें आ रही थीं। आनन्दपुर-वासियों के तो धरती पर पांव न पड़ते। हर कोई अपनी हैसियत के मुताबिक, अपनी हैसियत से बाहर, इस शुभ दिन की तैयारी कर रहा था।

गुरु महाराज के महलों के बगीचे का माली केसर हर वर्ष इस दिन की अपने ढंग से तैयारी करता था। कलगीधर का जन्म दिन आता ही ऐसे मौसम में था, कि उसका बगीचा हमेशा अपने पूरे निखार पर होता। भांति-भांति के फूल। भांति-भांति के फल। केसर के बगीचे का खेड़ा इन दिनों अपने जोबन पर होता। स्थान-स्थान पर तितलियाँ अपने तीतर वर्णी पंख फड़फड़ा रही होतीं। जगह-जगह पर भंवरों की गुंजार सुनाई देती। केसर का बगीचा जैसे आए-गए को जैसे बांधकर बिठा लेता। एक बार बगीचे में गए लोग निकलने का नाम न लेते। एक बार आए बार-बार आते।

केसर की शिकायत थी कि देर-सवेर सैलानी उसके फूल तोड़ लेते थे। जब ऐसे हो रहा वह देखता तो उसके कलेजे को जैसे कोई धक्का मारता हो। फिर वह अपने आपको समझाता, फूल तोड़ने के लिए ही तो होते हैं। आखिर जो ऐसे करता था। इससे अधिक उसके काम की क्या प्रशंसा हो सकती थी ? साथ ही गुरु सिक्ख फूल तोड़ते थे, सतगुरु के दर्शनों के लिए जाता, वह देखता उसके अपने बगीचे के फूल गुरु महाराज के आसपास सजे हुए होते। कोई अपनी गहरी मेहनत से उगाए, खिलाए, सम्भाले फूलों को क्या पहचान नहीं सकता ? केसर के बगीचे के हर फल पर, हर पत्ती पर, उसकी गुरु महाराज के प्रति श्रद्धा की जैसे मोहर लगी होती। केसर अपने बगीचे को स्वर्ग का टुकड़ा कहा करता था। जहाँ गुरु महाराज सवेरे-सांझ कम से कम एक बार जरूर अपने पवित्र चरण डालते थे। कहीं किसी नये फूल के बारे में सुनता, कोई नई बनावट देखता, अपने बगीचे के लिए किसी-न-किसी

तरह जरूर हासिल कर लेता।

पिछले कुछ दिन से तो केसर की और मौज बन गई थी। मोहन और सोहन नाम के दो यात्री उसके यहाँ आ रुके थे। एक दिन उसके बगीचे की सैर क्या करने आए, बगीचे के ही हो गए। फूल-फल उगाने की उन्हें गहरी समझ थी। केसर ने देखा उन्हें तो उनके ज्ञान से, उनके अनुभव से, बहुत कुछ सीखना था। साथ ही पति-पत्नी स्वभाव से कितने अच्छे थे। गुरु महाराज के प्रति उनकी श्रद्धा फूट-फूट पड़ती। पर बुरी किस्मत गुरु महाराज के दूर से तो दर्शन हो जाते, उनकी हजूर से भेंट नहीं हो पाई थी। अम्बाले के पास रायपुर नाम के गांव से आए थे। उन्हें आनन्दपुर आए कई महीने हो गए थे।

एक दिन टहलते-टहलते केसर के बगीचे में आ पहुंचे। केसर तो उनकी फलों और फूलों के बारे में जानकारी देख-देखकर, सुन-सुनकर विस्मित होने लगा। कितना समय उनके साथ वार्तालाप होता रहा। केसर उनकी सेवा करने लगा, क्योंकि यात्रियों का धर्मशाला के सिवा और कोई ठिकाना नहीं था, वे केसर के यहाँ ही रुक गए। केसर को भी यह अच्छा लगा। नई-नई बातें उसे सुनने को मिल रही थी। नई-नई तरकीबें उसे सीखने के लिए उसके हाथ आ रही थीं।

मोहन और सोहन उसके यहाँ आए और केसर के बगीचे की रौनक और की और हो गई। उन्होंने नई क्यारियाँ बनाई, नए बीज डाले, नई पौध बनाई, नई कलमें बनाई। फूलों के रंग और के और निकलने लगे। फलों का स्वाद और का और होने लगा। मोहन और सोहन के उगाए गुलाब के फूल गुच्छ जितने होते। काला गुलाब केसर के यहाँ कभी नहीं सुना था। उन्होंने काला गुलाब उगाया और हर किसी को हैरान कर दिया। ऐसे ही शरबती रंग का गुलाब हर किसी का मन मोह लेता। उनकी गुलदाउदी जैसे रंग-बिरंगी मखमल को चुनकर, कुतर कर तराशी गई हों।

गुरु महाराज जब आते, केसर के बगीचे की रौनक देखकर खुश होते। हर बार उसकी प्रशंसा करते। केसर हर बार कहता, यह सारी देन उसके अम्बाले से आए मेहमानों की है, पर गुरु महाराज जैसे उसकी सुनी अनसुनी कर देते। कई बार केसर ने कोशिश की, वह मोहन और सोहन को सतगुरु के साथ मिलाए, पर उसे कामयाबी न मिली। गुरु महाराज कुछ इस तरह आते और लौट जाते, केसर को जैसे मौका ही न देते हों कि अपने मेहमानों की दशमेश के साथ जानकारी करवा सके।

मोहन और सोहन अपने तौर पर गुरु महाराज के साथ मुलाकात के कई उपाय कर चुके थे, उनको कामयाबी नहीं मिली थी। यही उनकी त्रासदी थी और आजकल यही डर उन्हें खाता रहता था।

बात ऐसे हुई, सोहन और मोहन ब्राह्मण, पति-पत्नी हर रोज़ भोग के समय कुंए से स्वच्छ पानी निकाल कर लाते और अपने ठाकुर को स्नान करवाते। फिर पूजा-अर्चना। फिर कोई और काम। जब तक उनका नियम न पूरा हो लेता, मजाल है कि कोई दुनियादारी का काम कर जाएं।

भगवान की मर्जी, एक दिन सुबह-सवेरे वे कुंए से पानी की गागर भरकर ला रहे थे कि रास्ते में सड़क पर उन्होंने एक घायल गुरु सिक्ख निढाल पड़ा हुआ देखा। वह एक घूंट पानी के लिए कह रहा था। भले ही उसकी जान होठों पर थी, पर मोहन-सोहन की मजबूरी, कि वे अपने ठाकुर के लिए ले जा रहे जल को किसी और अर्थ के लिए कैसे प्रयोग करते ? घायल गुरु सिक्ख की कराहटों को सुना-अनसुना करके वे आगे निकल गए। अपने घर पहुंच कर उन्होंने अपने देवता को स्नान करवाया, फिर पूजा में लग गए। पर पूजा कर रहे, पूजा के बाद मोहन और सोहन के कानों में उस कट्टर गुरु सिक्ख की पानी के लिए कराहट बार-बार गूंजने लगती। कुछ समय बाद वे बेचैन होने लगे। उनको कुछ समझ नहीं आ रही थी, उनका न खाने को मन करता, न काम करने को। सड़क पर देखे उस घायल गुरु सिक्ख की मूरत उनकी आंखों के सामने घूमने लगती—'एक घूंट पानी, मेरी जान निकल रही हैं।' वह हाथ जोड़ रहा था।

आखिर पति-पत्नी से रहा न गया और वे पानी का लोटा लेकर वहाँ पहुंचे जहाँ उन्होंने कुछ समय पहले निढाल हुए गुरु सिक्ख को देखा था। वह तो सांस छोड़ चुका था। सड़क किनारे उस जगह जहाँ उसे वे छोड़कर गए थे, वह बेजान पड़ा था, तख़्ते का तख़्ता।

मोहन और सोहन ने देखा और वे बेहद शर्मिन्दा हुए। उन्हें अपनी हरकत पर बेहद शर्मिन्दगी हुई। एक दिन, दो दिन, चार दिन से लाख कोशिश करते, उन्हें उस गुरु सिक्ख की एक घूंट पानी के लिए सिसकी न भूलती। उन्हें न खाना अच्छा लगता, न पीना अच्छा लगता। न दिन में चैन, न रात को आराम। अपने-अपने में से उन्हें जैसे दुर्गन्ध आ रही हो।

धीरे-धीरे जब उन्हें पता लगा, वह गुरु सिक्ख तो डाकुओं के साथ मुकाबले में घायल हुआ था। डाकू एक अबला को लूट रहे थे कि उस गुरु

सिक्ख ने बेचारी औरत को तो बचा लिया। उसका धन और गहने उनसे छीन लिए, पर इस झड़प में वह खुद जख्मी हो गया। जख़्म गहरा था, कुछ समय सड़क पर बेसहारा, बिना मदद के पड़ा-पड़ा वह खत्म हो गया।

इस घटना को भूल पाना मोहन और सोहन जैसे कोमल चित्त, कलाकार वृत्ति रखने वाले नौजवान जोड़े के लिए कठिन हो गया। उन्होंने पूजा-पाठ किए। बार-बार अपने इष्ट के आगे हाथ जोड़े, बार-बार निवेदन किया, हर-रोज अपने ठाकुर को स्नान करवाकर वे क्षमा-याचना करते, पर उनके भीतर का पश्चात्ताप समाप्त होने में ही न आता। दिन-प्रतिदिन वे क्षीण होते जा रहे थे। उठते-बैठते वे अपने आप को कोसते रहते। इसमें कोई उनकी मदद नहीं कर सकता था।

आखिर हारकर वे आनन्दपुर आए। वे सोचते, वे गुरु महाराज के चरणों में गिरकर माफी मांगेंगे। अपने कसूर पर पश्चात्ताप करेंगे। जो दण्ड गुरु महाराज देंगे उसे वे भरने के लिए तैयार होंगे। पर गुरु महाराज से मिलने का उन्हें अवसर ही नहीं प्राप्त हो रहा था। वे हर कोशिश कर बैठे थे।

आखिर हारकर उन्होंने केसर के यहाँ रहना शुरू कर दिया। उसके बगीचे के काम में उसका हाथ बंटा देते। फूल-फल के उपजाने में वे पति-पत्नी माहिर माने जाते थे।

न ही गुरु महाराज को मिलने का अवसर मिलता और न ही अमृतपान करने की उनकी बारी आई थी। आज कई महीने हो गए थे।

उनकी बदकिस्मती, केसर के बगीचे में भी उनकी सतगुरु के साथ भेंट न हो पाती। वे प्रतीक्षा कर-करके थक गए थे।

अब जब से उन्होंने गुरु महाराज के जन्म दिन का सुना वे केसर के साथ इसकी तैयारियों में जुट गए। उन्होंने एक खास फूलों की क्यारी तैयार की जिसें खिले फूल किसी भी बगीचे का मान हो सकते हैं।

गुरु महाराज ने स्वयं उस क्यारी के फूलों को कई बार आते-जाते सहलाया था। उन फूलों का रंग श्रण, उन फूलों का जोबन, उन फूलों की खुशबू, देखते ही एक खुमार-सा महसूस होने लगा।

इन फूलों का नजारा गुरु महाराज के जन्म दिन पर अपने शिखर पर होगा। जब उस क्यारी को देखते मोहन और सोहन श्रद्धा में सराबोर एक दूसरे को कहते। जैसे उनके दिन बदल गए हों, दशमेश के जन्म दिन से एक दिन पहले मोहन और सोहन के अमृतपान करने की बारी आ गई। अमृत छक

कर वे गुरु सिक्ख सज गए और के और महसूस करने लगे।

पर सितम यह हुआ कि दशमेश के जन्मदिन की सुबह जब बगीचे में आए, वह क्यारी जिसकी इतने दिन लाख चावों से परवरिश हो रही थी, उजाड़ पड़ी थी। तहस-नहस सारे फूल टूटे हुए। डालियाँ कुचली हुईं।

पता, लगा उस रात पड़ोस की कुटिया में रहते रोड़ा जलाली नाम के एक फकीर ने चुपके से वे फूल तोड़ लिए थे, ताकि वे गुरु महाराज के जन्मदिन पर उन्हें भेंट कर सके। चोर !

उस दिन दरबार में रूआंसे चेहरे, बुझे-बुझे दिल, मोहन और सोहन एक नुक्कड़ पर बैठे जैसे उदास हो रहे हों। फूलों के दीवाने, उनकी लाख श्रद्धा से तैयार की क्यारी का ऐसे लुट-पुट जाना उन्हें ऐसे लग रहा था जैसे किसी ने उनका अपना मुंह-सिर सिल दिया हो।

इतने में सामने रोडा जलाली फूलों की कौली भरकर दरबार में आ निकला और चाव-चाव में कलगीधर के सामने हाजिर हो कर उनके जन्मदिन की बधाई देते हुए फूल भेंट करने लगा गुरु महाराज ने देखते ही फूलों को पहचान लिया तो कहने लगे, इतने सुन्दर फूलों को तोड़ने की जरूरत थी ? डालियों से लगे-लगे ही ये मुझे भेंट किए जा सकते थे।

यह कैसे होता ? सच्चे पातशाह ! खाली हाथ मैं कैसे हाजिर होता मेरे जैसे नादान तुम्हारे उपासक के पास फूलों के सिवा और हाजिर करने के लिए है भी क्या ? यह कहते हुए रोडा जलाली ने गुरु महाराज को प्रणाम किया।

हाथ खाली भले ही हों, दिल खाली नहीं होना चाहिए। गुरु महाराज ने फरमाया।

गुरु महाराज को उसके फूल तोड़ने पर बहुत दुःख था। एक सुन्दर क्यारी का उसने सत्यानाश कर दिया था। गुरु महाराज यह भी जानते थे कि रोडा जलाली के इस तरह फूलों की क्यारी को तहस-नहश करने से मोहन और सोहन दुःखी हुए बैठे थे।

गुरु महाराज रोडा जलाली को और मुंह लगाए बिना, सारे के सारे फूल उठाकर वे स्वयं मोहन और सोहन की ओर चल दिए। हर कोई यह देखकर हैरान हो रहा था। कितने भाग्यशाली वे थे जिनके पास सतगुरु स्वयं चलकर जा रहे थे !

गुरु महाराज ने वे सारे के सारे फूल मोहन और सोहन को जैसे भेंट

करते हुए कहा, "यह आपके फूल, मुझे पता है, आपके बच्चों की तरह पियारे थे। इतने समय से आप इनकी परवरिश कर रहे हो। बड़ी श्रद्धा से आपने उस क्यारी को परवान चढ़ाया था और मुझे मिलने के लिए भी आप, उत्सुक थे। बताओ, मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ ? आपकी मनोकामना पूरी की जाएगी।"

मोहन और सोहन सारे दिन हाथ जोड़कर सामने खड़े रहे। गुरु महाराज ने फिर पूछा, "मैं आप पर खुश हुआ हूँ, आप जो चाहो कहो, आपके मन की मुराद पूरी होगी।"

'हजूर, अगर आप प्रसन्न हो', मोहन और सोहन दोनों एक स्वर होकर बोले, 'हजूर अगर प्रसन्न हों तो रोडा जलाली को क्षमा कर दीजिए। मोहन और सोहन के बीच के अमृतधारी गुरु सिक्ख प्रार्थी थे। अभी कल ही तो उन्होंने अमृतपान किया था।

43

गुरु महाराज के जन्मदिन की खुशी में रात को कवि गोष्ठी का आयोजन था। दशमेश के दरबार में बावन कवि थे पर क्योंकि कवि गोष्ठी के बाद एक नाटक भी खेला जाना था, कवि गोष्ठी में केवल कुछ ही शामिल किए गए।

कवि गोष्ठी कब की शुरू हो चुकी थी। गुरु महाराज अभी-अभी जलवा अफ़रोज़ हुए। जैसे कोई शहंशाह होता है। शीश पर कलगी, जरबफ़त का कुर्त्ता, नीचे अतलस का चूड़ीदार पायजामा, कन्धों पर चांदी सोने की तारों के साथ निकाला जामवार। एक हाथ में मखमली म्यान वाली श्री साहिब जिसकी हथेली पासे के सोने की थी, जिसकी इस्पात की नोक में हीरे जड़े हुए थे।

गुरु महाराज के पर्दापण पर कितनी देर 'बोले सो निहाल सति श्री अकाल' के जयकारे गुंजाए जाते रहे। जब संगत का चाव कुछ ठण्डा पड़ा, भाई मनीसिंह जी ने जोकि गोष्ठी का संचालन कर रहे थे, भाई नन्दलाल 'गोया' को अपनी कविता पेश करने की प्रार्थना की।

भाई नन्दलाल 'गोया' फारसी में 'शेर' कहते थे। गुरु महाराज के गले में मोतिए के फूलों का एक हार डालकर उनहोंने यह नज़्म पेश की :

'नासरो मनसूर गुरु गोबिन्द सिंह।
ईज़दी मन्नजूर गुरु गोबिन्द सिंह।

हक–हक आगाह गुरु गोबिन्द सिंह।
शाहे–शहनशाह गुरु गोबिन्द सिंह।
हक रा महबूब गुरु गोबिन्द सिंह।
तालबो मतलूब गुरु गोबिन्द सिंह।
हक–हक अन्देश गुरु गोबिन्द सिंह।
बादशाह दरवेश गुरु गोबिन्द सिंह।
कादरे हक कार गुरु गोबिन्द सिंह।
बेकसां रा यार गुरु गोबिन्द सिंह।
रुह दर हर जिस्म गुरु गोबिन्द सिंह।
नूर दर हर चश्म, गुरु गोबिन्द सिंह।

यह शेर भाई नन्दलाल जी के मुंह में ही था कि संगत ने मिलकर पुकारना शुरू कर दिया–'नूर दर हर चश्म, गुरु गोबिन्द सिंह'। तालियाँ बजाते और बार-बार यही तुक गा रहे थे। कुछ उनमें से उठकर नाचने लगे। हर जबान पर था–'नूर दर हर चश्म, गुरु गोबिन्द सिंह।'

अब भाई मनी सिंह जी ने कवि गुरदास जी को आमंत्रित किया। कवि गुरदास गुरु घर के श्रद्धालु भाई गुरदास की तरह ही सिक्ख धर्म, सिक्ख परम्परा, सिक्ख रहन-सहन को अर्पित थे। गुरु गोबिन्द सिंह की स्तुति में उन्होंने यह वार पेश की।

"इऊं तीसर मज़हब खालसा, उपजिउ परधाना।
जिन गुरु गोबिन्द हुकम सिउं, गहि खड़क दिखाना।
तिह सभ दुष्टन छेदकर, अकाल जपाना।
फिर ऐसा हुक्म अकाल का, जग मैं परगटाना।
तब सुंनत कोई न कर सके, कांपत तुरकाना।
इउं उमत शभ मुंहमदी खप गई निदाना।
तब फते–डंक जग में छुरे, दुःख दुंद मिटाना।
तीसर पंथ चलाइन वड सूर गहेला।
वाह–वाह गोबिन्द सिंह आपे गुरु चेला।"

फिर वही श्रद्धा, वही जोश, वह जज़्बा, गुरुसिक्ख 'वाह-वाह गोबिन्द सिंह आपे गुरु चेला' गाते तालियों से ताल देते, सिर हिलाते, सभा में आ रहे थे। कुछेक उनमें से उठकर नाचने लगते जैसे 'हाल' में आ गए हों।

संगत खामोश होने में ही नहीं आ रही थी। यह देख भाई मनी सिंह

ने कवि गुरदास को एक और वार के लिए फरमाइश की। कवि गुरदास को फिर मंच पर खड़ा देखकर श्रद्धालु उन्हें फिर सुनने के लिए बड़ी मुश्किल से काबू में आए। अब कवि गुरदास जी ने यह वार पेश की :

"तह सिमर-सिमर अकाल कउ
हरि-हरि गुन गाए।
वाह-वाह गोबिन्द गाज़ी सबल,
जिनि सिंह जगाए।
तब भइउ जगत् सब खालसा
मनमुख भरमाए।
इउ उठ भबके बलबीर सिंह,
शस्त्र चमकाए।
तब सभ तुरकन को छेद करि,
अकाल जपाए।
सभ छत्रपति चुनि-चुनि हते,
कहूँ टिकनि न पाए।
तब जग मैं धर्म प्रगासिउ,
सचु हुकम चलाए।
यह बाहर सदी नबेड़ करि,
गुर फते बुलाए।"

अब कवि सेनापति की बारी थी। वह मंच पर आए ही और श्रोताओं में से फरमाइश हुई कि 'खालसा मेरो रूप है खास' वाली वार सुनाई जाए। सेनापति ने खालसा को जामा बख्शा जाने वाली वार में से यह टुकड़ा पेश किया :

"ताहि समें गुरु बैन सुनाइउ।
खालसा आपण रूप बताइउ।
खालसा ही सो है, मम कामा।
बख्श दीउ खालसे को जामा।

दोहा

खालसा मेरे रूप है खास,
हों खालसा के पास।
आदि अन्त ही होते हैं,
खालसा ही मैं बास।

सतगुरु हमारा अपट अपारं,
शबद बिचारा अजर जरं।
हिरदे धन धिआनी, उचरी बानी,
पद निरबानी अपर परं।
गति मिति अपारं,बहुत बिसथारं
वार ना पारं, किया कतनं।
तव जोत प्रगासी, सरब, निवासी,
सरब उदासी तब सरनं।"

सेनापति को सुनकर और श्रद्धालुओं ने फिर कवि गुरदास के लिए पुकारना शुरू कर दिया और किसी को जैसे सुनने के लिए तैयार न हों। अभी तो अभिनेताओं को एक नाटक पेश करना था, पर संगत कवि गुरदास की रट लगाए हुई थी। 'कवि गुरदास' 'कवि गुरदास' की आवाज़ चारों तरफ से आ रही थी। कलगीधर का जन्मदिन, गुरु प्यारों को इन्कार भी नहीं किया जा सकता था। उधर दशमेश लोगों की जिद्द देख-देखकर मुस्करा रहे थे। हार कर भाई मनी सिंह ने कवि गुरदास को फिर आमन्त्रित किया। उन्होंने अपनी एक वार का यह टुकड़ा पेश किया :

"वाह उपजिउ चेला मरदा कार, मरदान सदाए।
जिन सभी प्रिथवी कउ जीतकर, नीसाण झुलाए।
तब सिंघन कउ बख्श कर, बहु सुख दिखलाए,
फिर सभ प्रिथवी के ऊपरे हाकम ठहिराए
तिनह् जगत् सम्भाल कर, आनन्द रचाए।
वाह-वाह गोबिन्द गाज़ी सबल, जिन सिह सजाए।
तब सभ तुरकन कउ छेक कर, अकाल जपाए।
सभ छत्रपति चुण चुण हते, कहूँ टिक न पाए।
तब जग में धरम प्रगासिउ, सच हुकम चलाए।
यह बारां सदी निबेड़ कर, गुर फते बुलाये।
तब सभ दुष्टा सहजे खपे, छल कपट उड़ाये।
इउ हरि अकाल के हुकम सों रण जुध मचाये।
बहु दियो दिलासा जगत कह हरि भगत द्रिड़ाये।
तब सभी प्रिथवी सुखिआ भई, दुख दर्द गवाए।
फिर सुख निहचल बख्सिउ, जगत भै त्रास चुकाए।"

इधर कवि गुरदास जी की पेशकश समाप्त हुई, उधर ढोल बजाते हुए नट दाईं ओर से मंच पर आ गए। यह कलाकार सुन्दरी नाम की एक पंजाबन की दास्तान पेश करने जा रहे थे, जिसे एक मुगल घुड़सवार उठा लेता है और कैसे उसे छुड़ाने के उपाय होते हैं कैसे वह सन्देश भेजती है, पहले अपने बाबुल को, फिर अपने भाइ को, फिर अपने स्वामी को। सुन्दरी का पिता बाइस हजार रुपये मुगलों को पेश करता है। सुन्दरी को छुड़ाने के लिए पर वह नहीं मानता। सुन्दरी का भाई चालीस हजार रुपया पेश करता है, मुगल नहीं मानता। सुन्दरी का पति पचास हजार रूपया पेश करता है, यह रकम भी मुगल को मंजूर नहीं।

अब सुन्दरी अपने बाबुल, भाई और पति से कहती है, वे लौट जाएं, वह मुगल के यहाँ भूखी-प्यासी मर जाएगी, पर अपना सत धर्म नहीं गंवाएगी।

जब उसके परिवार वाले जा चुके थे, सुन्दरी मुगल घुड़सवार से कहती है—मुझे प्यास लगी है, तुम मुझे ठण्डा पानी लाकर पिलाओ। मुगल सुन्दरी के लिए पानी लेने के लिए जाता है। इतने में सुन्दरी दीवे की बत्ती से स्वयं को आग लगा लेती है और ऐसे जलकर अपवा वचन् निभाती है। जान दे देती है पर सत-धर्म नही हारती।

जब मंच पर नट इस सारे नाटक को खेल रहे होते हैं, एक और बैठे गवइए लोकवार को गाकर नटों के अभिनय को स्पष्ट करते जाते हैं :

"मुगलों ने घोड़ा पीड़िया वे गोरी पाणीये नूं जा।
घोड़े ते फड़के चाढ़ लई, वे कोई पेश न जा।
जांदियाँ कालियाँ कांगड़ियाँ मेरा लै वे सुनेहड़ा जा।
आंखी मेरे बाबल नूं वे, तेरी धी तां बन्धड़ी जा।
जांदियाँ कालिया कांगड़िया मेरा लै वे सुनिहड़ा जा।
आखीं मेरे वीर नू तेरी भैण तां बन्धड़ी जा।
जांदिया कालिया कांगड़िया मेरा लै वे सुनिहड़ा जा।
आखीं मेरे कन्त नू वे तेरी नार तां बन्धड़ी जा।
बाबल उतरिया घोड़िउ, वीरन इमली दी छां।
कन्त ता बहिके रो पिआ ते वीरन मारी धाह।
किथे तां बैठेगा बाबुल वे कोल मां जाइया वीर।
महिलीं सां सिर दा साईंवे, जिहड़ा करेगा निआं।
लै मुगलां दे बेटड़ रुपया बाई हजार।

हथ बन करदा बेनती सुन्दरी तां लवांगा छुड़ा।
आग लगे तेरी चांदी नूं, सोना नदीए रूढत्र।
भठ पवे तेरी बेनती, सुन्दरी तां छोड़ी न जा।
लै मुगलां दे छोकरे रुपईया पंजाह हजार।
हथ बन करदां बेनती नार तां लवांगा छुड़ा।
आग लगे तेरी चांदी नूं, मोती नदीए रुढ़ा
भठ पवे तेरी बेनती सुन्दरी तां छोड़ी ना जा।
जा बाबल घर आप रक्खां मैं तेरी लाज।
मुगलां दा पाणी ना पीआं, मैं पिआसी मर जां।
जा वीर घर आपणे, रक्खां चीरे दी लाज।
मुगलां दा अन्न ना खावां भावे ही मर जां।
जा कन्त घर आपणे, रक्खां मैं लावां दी लाज।
मुगलां दी सेजे ना चढ़ां, मैं जीउंदी ही मर जा।
जावीं वे मुगलां दे बेटड़े, लै तूं ठण्डा पानी लिया,
पिआसी लगी इस जीउ नू, वे मैथों सहीउ ना जा।
जाईं वे नौकर दे छोकरे, छेती ठण्डा पानी पिला,
पिआस लगी इस जीअ नूं, वे मैथों सहीउ ना जा।
मुगल गया वे पाणीए नूं, कीता दीवे दा काज।
दीवे दी वटी ला सड़ मोई, वे रखी राजे दी लाज।"

44

दशमेश के जन्म दिन की खुशी में जश्न अभी भी मनाए जा रहे थे। उस रात बहरूपिए एक और नाटक पेश करने लगे।

एक साधारण सिक्ख के घर का आंगन जिसकी एक ओर चौके में एक औरत फूंके मार-मार चूल्हे में आग जलाने की कोशिश में है। लकड़ियाँ गीली होने के कारण उसकी पेश नहीं चल रही हैं। फूंके मारते स्त्री की आंखें लाल हो गई; उनमें से आंसू फूट आए हैं। बार-बार लकड़ियों को ठकोरती है। कुछ मुंह में बुड़बुड़ाती है। धुआं निकलता है, पर आग नहीं जलती लगती।

इतने मे उसका पति सामने गली में खुलते दरवाजे में से आंगन में आता है। ठण्ड के कारण उसने लोई की बुक्कल मारी हुई है।

पत्नी : अच्छा किया, आपने कुण्डी नहीं लगाई, अभी आपके मेहमान मटरगश्ती करके नहीं लौटे।

पति : धीरे बोल, उसकी बीवी ऊपर चौबारे में सुन लेगी।

पत्नी : वह भी उसके साथ गई है। खूब सलीके से मांग सजाए, नित्य नया तेवर, और गहनों से लदी।

पति : गुरु महाराज के मसंद हैं। उनके घर का कुत्ता भी नहीं मान ! पर यह तुमने अपना क्या हाल बनाया हुआ है ?

पत्नी : लकड़ियाँ गीली हैं, फूंके मार-मारकर पागल हो गई हूँ पर आग नहीं सुलग रही। मैं पूछती हूँ, ये आपके मेहमान कब पीछा छोड़ेंगे ? मैं तो दोनों समय इनकी खातिर कर-कर के हार गई हूँ। हमने तो भाइयो से जमीन बांट ली है। मुश्किल से अपनी गृहस्थी चलती है।

पति : कहते तो थें दो चार दिन। अब तो हफ्ता दस दिन हो गए हैं।

पत्नी : दस दिन क्यों, पूरा पखवाड़ा बीत गया है। मुझसे तो बाबा इनकी और खातिर नहीं होती।

पति : धीरे बोल, धीरे बोल, उनका कोई नौकर न सुन ले।

पत्नी : इनके घोड़ों का चारा ही नहीं मान। और फिर दो बुली कुत्ते, मांस के बिना जिनके गले के नीचे और कोई राबत जैसे निकलता ही न हो।

पति : गांव से गांव घूमकर गुरु महाराज के लिए दशमांश इकट्ठा करते हैं। भाग्यशाली हैं, गुरु महाराज ने इन्हें सेवा का मौका दिया है।

पत्नी : अधिक सेवा तो ये अपनी करते हुए लगते हैं। देखो तो सही, यह बलख की हूर कैसे सजती है। सारा दिन कभी उबटन मले जा रहे हैं और कभी काजल घुट रहे हैं। मैं पूछती हूँ, इतने गहने इनके पास कहाँ से आ गए ? जरूर दशमांश में गोल-माल करते होंगे।

पति : हमें क्या ? अपना किया आप भुगतेंगे। गुरु महाराज घट-घट की जानते हैं। लो, मैं तुम्हारी आग जलाता हूँ, फूंके मार-मारकर तुम्हारा तो बुरा हाल हो गया है। ऊपर से मेहमानों के लौटने का समय होने लगा है।

पत्नी : कलालों के यहाँ गए हैं, उन्हें जल्दी नहीं लौटना। वहाँ से बोतल चढ़ाकर आयेंगे। हमने तो कभी नहीं सुना, कोई महिला, मर्दों में बैठकर दारू पीये।

पति : लहंदे की ओर के हैं। उधर कोई इस तरह का फर्क नहीं करते।

पत्नी : मुझे तो लगता है, यह मसंद की ब्याहता नहीं, कोई गलत औरत है

पति : यह तुम कैसे कह सकती हो ?

पत्नी : एक तो उसके भेष से, कैसे वेश्याओं की तरह छाती मटकाती है। सुरखी और सुरमे, इत्र और फुलेल कल चौबारे में से घुंघरूओं की छनकार आ रही थी, जैसे कोई धीरे-धीरे नाच रहा हो।

पति : गाते हुए तो मैंने भी सुना है, जैसे मुरकी ले रही हो। पर हमें क्या लेना इसमें से ? लो, तुम्हारी आग जल गई तुम जल्दी-जल्दी अगलों के लिए भोजन तैयार कर लो।

पत्नी : रूखा-सूखा जैसा भी है, मैं उनके आगे रख दूंगी। अच्छे पकवान खिला-खिलाकर हमने तो अपना झोंपड़ा भी उजाड़ लिया है।

पति : कोई बात नहीं, आज मैं बाजार से कुछ मिठाई ले आया हूँ।

पत्नी : मैं मरी, इस लोई में आपने मिठाई का दोना छिपा रखा है। मैं भी तो देखूं क्या लाए हो ?

पति : कुछ नहीं, यही कलाकन्द है, जलेबियां, थोड़े अंदरसे और बालूशाही है।

पत्नी : उधार चढ़ाए जाओ। इन कम्बख्तों की खिदमत जरूर करनी है, चाहे घरवाली का घाघरा ही बिक जाए।

पति : तुम्हें ऐसे नहीं कहना चाहिए, गुरु महाराज का मसंद है।

पत्नी : मैं तो अगर कभी आनन्दपुर गई, गुरु महाराज के आगे इन लोगों का भण्डा फोड़ूंगी, कैसे इतराते-इतराते फिरते हैं।

पति : पागल मत बनना, लो यह मिठाई सम्भाल लो। भोजन कर लें, तो उनका मुंह मीठा करवाना। आज मांस भी नहीं मिला।

पत्नी : मुझसे इनकी और खातिर नहीं होती।

पति : धीरे बोल। कोई सुन लेगा। उनके आने का समय हो गया है।

पत्नी : यह औरत गलत है मेरा अन्तर्मन कहता है, कहीं तुम भी तो नहीं उनके साथ मिले हुए। मिठाई के दोने कोई ऐसे ही नहीं लेकर

वाहगुरु कर, मुझसे एक नहीं सम्भाली जाती।

(इतने में लड़खड़ाते कदम मसंद आता है, उसके साथ बालों में फूल-चिड़ियों, गहनों से लदी रेशमी तेवर में मेहमान औरत है।)

मसंद : क्यों भाई, तुमसे कौन नहीं सम्भाली जाती, गुरुसिक्ख ?

पति : कुछ नहीं बादशाहो, हम पति-पत्नी एक-दूसरे के साथ मज़ाक कर रहे थे।

पत्नी : मेरी मानो तो चौबारे में जाने से पहले यहीं भोजन कर लो। मैं फुलके बना देती हूँ।

औरत : क्या बनाया है बीबी ? आज तो मंगलवार नहीं।

पति : ओह जी मैं बाजार गया था पर मांस मिला नहीं, कसाई दुकान बंद करके चला गया है। मैं हलवाई से मिठाई ले आया हूँ, मुंह मीठा.......।

पत्नी : सुबह की सारी दाल बची हुई है। मैंने गर्म कर ली है। (इतने में पति खाट विछा कर मेहमानों को बिठाता है। पानी के लोटे से उनके हाथ धुलाता है। उसकी पत्नी थाली में खाना परोस रही है। प्याज, चटनी, दाल और रोटी।)

औरत : हमें तो भूख नहीं।

मसंद : दाल का सुनकर तुम्हारी भूख मारी गई है।

औरत : मैं तो मिठाई से ही पेट भर लूंगी।

मसंद : (थाली में परोसे खाने को देखकर) भूख तो मुझे भी नहीं है। पर गुरुसिक्खों ने इतनी श्रद्धा से भोजन तैयार किया है, इसे भोग तो लगाना ही होगा।

(इतने में दरवाज़े को खोलकर, दो आदमी लाठियाँ पकड़े आंगन में आते हैं।)

पहला आदमी : ले पण्डत, सम्भाल ले अपनी पत्नी को।

दूसरा आदमी : कमज़ात, तुम यहाँ मेहमानों की तरह खा रही हो और पीछे तुम्हारे पिल्ले सम्भाल-सम्भाल कर मैं बेहाल हो रहा हूँ।

पति : आप कौन होते हो, ऐसे किसी के घर में फसाद करने वाले ?

पहला आदमी : यह बीबी, हमारे पण्डत जी के बच्चों की मां है। आपका मसंद हमारे गांव उगाही करने के लिए आया है, इसे भगा

लाया है।

दूसरा आदमी : ज़ालिम, चल तुम्हारा कहा मैं पूरा करता हूँ।
(जूड़े से पकड़कर उसे अपने साथ ले चलता है।)

मसंद : मेरे गहने तो मुझे उतार कर देती जा।

पहला आदमी : जाने दो, आपने कौन-से घड़वाए हैं। लोगों से हथियाए होंगे, और इकट्ठे कर लेना गुरु के नाम पर।

मसंद : हाय लुटेरे, मैं लुट-पिट भी गया।

पहला आदमी : शुक्र कीजिए, भाई साहब आप सस्ते में छुट गए। गुरु महाराज ने तो आपको कब का बर्खास्त किया हुआ है।

पत्नी : और हम जो इनकी खातिर करते-करते परेशान होते रहे हैं ?

पति : मैंने जो तुम्हारा कण्ठा भी इन्हें भेंट किया था।

पत्नी : वह भी ले गई ? मेरा कण्ठा तो मुझे लौटा देती।
(सभी गली की ओर भागते हुए मंच से निकल जाते हैं।)

दर्शक तालियाँ मार रहे होते हैं कि कलाकार वापिस मंच पर आते हैं। पति-पत्नी का अभिनय माधवी और धर्म कर रहे थे। मसंद और उसके साथ औरत दयाराम और भागां बने थे।

45

तीसरी रात के जन्म-दिन समारोह में पेश किए जा रहे नाटक में दशमेश स्वयं भाग ले रहे थे।

मंच पर गुरु महाराज विराजमान भाई मनी सिंह को यह बोलकर लिखवा रहे हैं।

हरिजन दुइ एक हैं बिब बिचार कछु नाहि
जल ते उपज तरंग जिंउ जल ही बिपै साहि

(दोहा—बचित्र नाटक)

इतने में गुरु महाराज के दरबारी कवियों में से शिरोमणि कवि सेनापत हाथ जोड़े सामने आ खड़ा है। गुरु महाराज सेनापत की ओर देखते हैं।

सेनापत : हजूर।

दशमेश : क्या आपने भी अमृत छक लिया है ?

सेनापत : सच्चे पातशाह की मेहर हुई है।

दशमेश : दाढ़ी आपके कितनी सुन्दर लगती है।

सेनापत : हजूर की कृपा है।

दशमेश : भाई सेनापत सिंह नाम भी बढ़िया है।

सेनापत : पीछे मेरे गांव वाले कहते हैं, उन्हें मुझसे अब डर लगने लगा है।

दशमेश : वाह ! वाह (हंसते हुए) उन्हें पता लग गया होगा कि सेनापत जैनी अब श्री साहिब लिए फिरता है।

सेनापत : हजूर मैं उस विनती के लिए हाजिर हुआ हूँ। सच्चे पातशाह ने फरमाया था.........

दशमेश : हंस नाम के जैनी विद्वान से आप मिलाना चाहते हो न ?

सेनापत : महाराज, पिछले कुछ हफ्तों से वह बेचारा प्रतीक्षा कर रहा है। बस हजूर के दर्शनों की तड़प।

दशमेश : वह तो ठीक है पर...........

सेनापत : सच्चे पातशाह वह जैन मत का ही नहीं वेदों और पुराणों का भी बड़ा भारी विद्वान है। हजूर, उसे एक बार मुलाकात का मौका दें तो सही। मैं तो सोचता हूँ, उसे दरबारी कवियों में शामिल होना चाहिए। उस जैसा ज्ञानी दरबार का मान होना सतगुरु की महिमा सुनकर खिंचा चला आया है।

दशमेश : आपका कहना ठीक है पर..........

सेनापत : सच्चे पातशाह, वह चित्रकार भी अनुपम है। हजूर ने खुद उसकी प्रशंसा की है। उसका सूर्योदय वाला चित्र आस-पास बेहद सराहा जा रहा है।

दशमेश : बेशक वह चित्र बहुत बढ़िया है। खास तौर पर उसके रंगों का चुनाव। उसकी तूलिका की नोंक विशेष तौर पर बड़ी कोमल होती हैं। मुझे यह देखकर पाऊंटा की सुबह याद आ जाती हैं बिल्कुल ऐसे ही वहाँ सूर्योदय होता था। मैं तो कई बार इस नजारे को देखने के लिए दरिया किनारे एक टीले पर जा बैठता हूँ।

सेनापत : सतगुरु हंस वह चित्र हजूर को पेश करना चाह रहा है। कई दिनों से उसे लिए फिरता है। आजकल तो वह चित्र किसी को दिखाता तक नहीं। कहता है कि यह चित्र गुरु महाराज की अमानत है।

दशमेश : यह सब कुछ ठीक है पर...........

सेनापत : हजूर, अगर उससे कोई भूल हो गई हो तो सतगुरु बख्शनहार हैं। हम तो भूलनहार जीव हैं। हजूर जैसे कलाप्रेमी के पास नहीं जायेगा तो किसके पास जाएगा ? औरंगजेब के पास जो कला और संगीत का वैरी है, उएसकी अपनी बेटी जेबुल निशा उसका मज़ाक उड़ाती है। शाही महल में बुल-बुल को देखकर उसने उसे मशविरा दिया तुम कहीं गाना नहीं, शहंशाह को संगीत से नफरत है। तुम्हें पकड़कर सूली पर चढ़ा दिया जायेगा।

दशमेश : अगर मुगल को इतनी समझ होती तो हमें क्या आवश्यकता थी दरबार में बावन कवि और कलाकार इकट्ठे करने की।

सेनापत : हजूर हंस की भी प्रार्थना सुन लो, इसे भी अपनी शरण में ले लो।

दशमेश : आप बार-बार कह रहे हो तो बेशक उसे बुला लो।

सेनापत : वह तो यहीं पण्डाल में कहीं पीछे बैठा है।

दशमेश : (भाई मनी सिंह को सम्बोधित करते हुए) भाई दया सिंह को मैंने एक काम कहा था।

मनी सिंहः सच्चे पातशाह, उसने वह कर दिया है।

दशमेश : हंस को बुला लो, पर वह है बहुत निर्दयी। मैं तो हैरान ही होता रहता हूँ कि एक कलाकार और कलाकार भी उस जैसा, इतना जालिम कैसे हो सकता है ?

सेनापत : मुझे कुछ समझ नहीं आ रही, हजूर घट-घट की जानने वाले हैं। अगर दया हो जाए तो मैं उसे सतगुरु के पेश करके अपनी जिम्मेवारी से मुक्त होना चाहूँगा।

दशमेश : बुला लो, सेनापत जैसे कवि की बात मोड़ी भी तो नहीं जा सकती।

मनी सिंहः हजूर ! वे लोग भी यहाँ आए हुए हैं जिनको भाई दया सिंह जाकर लाया है।

दशमेश : यह भी अच्छा हुआ। उनकी खातिर तो हो रही है न ?

मनी सिंहः लड़का भाई दया सिंह के ठहरा हुआ है और लड़की हमारे यहाँ ठहरी हुई है। दोनों की पूरी-पूरी टहल हो रही है। इतनी प्यारी लड़की है।

दशमेश : बेचारों के साथ बहुत कहर हुआ है। (सेनापत अपने मित्र हंस को लेकर आता है।)

सेनापत : सच्चे पातशाह, यह प्रतिष्ठित कलाकार और कवि है। इस जैसा वेदों और पुराणों का ज्ञाता इस सारे इलाके में कोई नहीं।

दशमेश : जितना पढ़ा-लिखा है, उतना ही संग-दिल भी है। इसके जैसा वज्र का हृदय मैंने कोई नहीं देखा। जितना कोमल देखने में लगता है, उतना ही कठोर इसका मन है।

हंस : सच्चे पातशाह, मुझसे क्या खता हुई है ? मैंने तो सारी उम्र भगवान महावीर के भय में काटी है। चींटी तक को कभी कोई दुःख नहीं दिया।

दशमेश : चींटी को चाहे दुःख नहीं दिया होगा, पर आपने इंसान के दिल के शिवाले गिराए हैं। उनको तहस-नहस किया है।

हंस : वह कैसे हजूर ?

दशमेश : मनी सिंह जी, साधक को इनके सामने करो। (भाई मनी सिंह जाता है)

सेनापत : ऐसा लगता है, हजूर को कोई गलत फहमी हो गई है।

दशमेश : नहीं सेनापत, मुझे कोई गलती नहीं लगी। यह दास्तान बड़ी हृदयबेधक है।

हंस : सतगुरु, आपको किसी ने कोई गलत खबर दी है।

सेनापत : किसी ने चुगली की लगती है। (भाई मनी सिंह साधक को सहारा देकर सामने लाते हैं।)

दशमेश : क्यों कलाकार हंस, आप इस व्यक्ति को पहचानते हो ? यह नौजवान जो हड्डियों का ढांचा है तथा और कुछ नहीं।

हंस : (गौर से देखते हुए) मैंने तो इसे कभी नहीं देखा, सच्चे पातशाह !

दशमेश : और ध्यान से देखो, यह बेचारा कभी दप-दप करता युवक था। चढ़ती जवानी। इसके चेहरे की ओर देखा नहीं जाता था।

हंस : हजूर को कोई गलत-फहमी हो रही है, मैं इस बीमार को बिल्कुल नहीं जानता।

दशमेश : (साधक को सम्बोधित करके) क्यों, भई तुमने तो इन्हें पहचाना होगा।

साधक : (धीमी आवाज में) सतगुरु पहचाना है, पहचाना क्यों नहीं ? यह मेरे गुरु देव मुनि हंस हैं।

दशमेश : अब तो आपने इसे पहचान लिया होगा।

हंस : बिल्कुल नहीं, दशमेश पिता, मैं इसे बिल्कुल नहीं जानता, आपको कोई गलत सूचना दी गई लगती है।

दशमेश : (साधक से) भई तुम्हें अपनी शिकायत बतानी होगी।

साधक : सतगुरु ! मैं नारनौल का रहने वाला हूँ। अभी मैं बच्चा था जब हमारे गांव में कुछ जैन भिक्षुक आए। मुझे उनकी सादगी और प्रेम-भक्ति बहुत अच्छी लगी। मैंने फैसला किया, मैं भी भिक्षुक बनूंगा। फिर जब मैं थोड़ा-सा बड़ा हुआ। मैं घर से भागकर जैन भिक्षुओं के आश्रम पर पहुंच गया। मुझे संघ में शामिल कर लिया गया और शिक्षा-दीक्षा दी जाने लगी। कई वर्ष बीत गए। एक दिन ऐसे ही आश्रम में टहलते हुए मेरी भेंट एक भिक्षुणी से हुई। कपिला हमारे गांव की थी। हम बचपन में खेले और बड़े हुए थे। हमारी जोड़ी बड़ी अच्छी होती थी। हमेशा मैं और कपिला आड़ी बना करते थे। कपिला ने मुझे बताया कि वह भी भिक्षुणी बन गई थी, यह जानकर कि मैंने संघ में प्रवेश कर लिया है। हम कभी एक दूसरे को मिल लेते। खुश हो लेते। अपने गांव की याद कर लेते। जाड़े की एक दिन गुनगुनाती धूप में बैठे हम हंस खेल रहे थे, अपने बचपन की बातें याद करके खुश हो रहे थे कि हमारे आचार्य उधर आ गए। एक नौजवान भिक्षुक और एक नौजवान भिक्षुणी को ऐसे अकेले धूप सेंक रहे और हंस खेल रहे देखकर उन्हें जैसे सिर से पांव तक आग लग गई.........(साधक अब छल-छल आंसू रोने लगा और उसकी घिग्गी बंध जाती है।)

दशमेश : बाकी दास्तान मैं बताता हूँ। आचार्य ने कपिला की मोटी-मोटी काली आंखों की पुतली निकाले जाने का हुकम दिया। (मनी सिंह से) जरा उस युवती को भी ले आओ।

मनी सिंह: सत्य वचन ! (जाता है)

हंस : मुझे यह वारदात अब कुछ-कुछ याद आ रही है। पर इस नौजवान को मैंने कभी नहीं देखा। सच कहता हूँ। हजूर सर्वज्ञ हैं।

दशमेश : नवयुवती की आंखों की पुतली निकाली गई और नवयुवक को आपके हवाले किया गया। (भाई मनी सिंह लाठी पकड़े हुए नवयुवती को पकड़कर लाते हैं)

हंस : इस अभागन को मैं जरूर पहचानता हूँ।

कपिला : और इस साधक को आप नहीं पहचानते, जिसे आपके हवाले किया गया था ताकि आप इसको सुधारो। आप किस-किस तरह इसको ताने मारते थे ? इसका मज़ाक उड़ाते थे। इसने लाख आपको विश्वास दिलवाने की कोशिश की कि हमारा प्रेम सच्चा और पवित्र था, आपने इसकी किसी बात पर भी विश्वास नहीं किया और फिर आपने इसे बारह वर्षों के लि तप करने के लिए भीतरी कोठरी में डाल दिया और अब इसका यह हाल हो गया है। पहचाना कैसे जाए ? इसे तो मैं भी नहीं पहचान सकती, जो दिन रात भगवान के आगे इसके लिए हाथ जोड़ती रहती हूँ।

दशमेश : अब तो आपने इसे पहचान लिया होगा।

हंस : मुझे क्षमा कर दो सच्चे पातशाह, मैं अपना कसूर कबूल करता हूँ। आप क्षमावान हो। (यह कहते हुए हंस, दशमेश के चरणों में गिर पड़ता है। उधर पंडाल तालियों से गूंजने लगता है।)

46

पिछले कई दिनों से वीरां वाली के घर में एक खिंचाव का वातावरण था। धर्म और माधवी गुरु महाराज के जन्म दिन के समारोह के लिए रुके हुए थे, आजकल वे दिल्ली लौटने की तैयारी में थे। साथ ही माधवी को आस थी और उसकी इच्छा थी कि उसका पहलोठी का बच्चा उसके मायके के घर में हो, जैसे राजपूतों में रिवाज़ था और इधर भागां थी, कि दया को जैसे देखने के लिए तरसती हो, लोटे की तरह जिधर कोई घूमता उधर घूम जाती है कभी किसी का कोई काम, कभी किसी की कोई सेवा। गुरु महाराज की और बात थी। उनकी उस पर दया दृष्टि थी। पहले उन्होंने दूर किसी गुफा में से उसे एक नौजवान साधक को लाने के लिए कहा। कितना कोस पैदल चल कर वह दुर्गम पहाड़ों में उसकी गुफा में पहुंचा और उसे कंधे पर उठाकर लाया था। हड्डियों का पिंजर उससे चला थोड़े ही जाता था। साध गुरु महाराज की हिदायत थी कि साधक की सेहत का ध्यान करते हुए, उसे संभाल कर लाना होगा।

साधक को आनन्दपुर पहुंचा चुके तो हजूर का हुक्म हुआ, कपिला नाम

की भिक्षुणी को जैनियों के संघ में से लाओ, दया सत्य-वचन कहकर, फिर चला गया। पीछे उसकी दुल्हन उसका रास्ता देखने के लिए रह जाती थी। भागां सोचती, अगर यही कुछ उसने करना था तो सने फेरे उसके साथ क्यों लिए थे ?

और उधर माधवी और धर्म थे, एक बच्चे के मां-बाप भी बनने जा रहे थे। दिल्ली वाले हर समय एक दूसरे के साथ घुले मिले रहते, भागां के देख-देखकर मुंह में पानी आता रहता। इतना सुन्दर उनका जोड़ा था, जैसे एक दूसरे के लिए बने हों बने तो दया और भागां एक दूसरे के लिए थे। यही उसे हमेशा लगा करता था। जोड़ी तो इनकी भी कोई कम सुन्दर नहीं थी। पर कोई करे तो क्या ? दया हर समय किसी-न-किसी जिम्मेवारी में उलझा रहता। सेवा का भूखा और फिर जो उसने शहर जाना शुरू कर दिया था, भागां को यह बिल्कुल भी नहीं अच्छा लगता था। कभी किधर चल देता। कभी किधर। भागां बेचारी कौए उड़ाने के लिए रह जाती। उबासियाँ लेने के लिए बैठी रहती। कोई बात भी हुई।

क्योंकि दया को सेवा के अधिक अवसर मिलते थे, या यह कहो, वह स्वयं इस तरह के अवसर ढूंढ लेता था, भागां को धर्म और माधवी से जैसे ईर्ष्या महसूस होने लगी, वह बार-बार स्वयं को समझाती, भाई भाभी के बारे में उसे ऐसा नहीं सोचना चाहिए था। फिर उनका कसूर भी क्या था ? पर उसका मन जैसे काबू में नहीं आता उनका एक दूसरे की खातिर करना मिलकर अन्दर बाहर आना-जाना भागां को चिढ़ होने लगती। उसने तो दया को चुना था उसके साथ लाहौर जाएगी। उसने लाहौर की अनेक कहानियाँ सुन रखी थीं। वह लाहौरन बनना चाहती थी। लाहौर के किले की उसने कई कहानियाँ सुन रखी थीं। वह लाहौर का किला देखना चाहती थी। लाहौर के रावी किले में भांति-भांति की नौकाएं चलती सुनी थी। वह रावी को देखना चाहती थी। लाहौर में जहांगीर के मकबरे के इर्द-गिर्द बाग की बड़ी महिमा उसने सुनी थी वह सोचती, वह हर हफ्ते उस बाग की सैर करने जाया करेगी। उसके साथ दया होगा, तो फूल और सुन्दर लगेंगे, पत्तों में और हरियाली आ जाएगी। पानी के फव्वारे और ऊंचे लछलेंगे।

पर यह सब कुछ तो स्वप्न बनकर रह गया था। दया तो लौटने का कभी ज़िक्र ही नहीं करता था। वह तो गुरु महाराज की सेवा का दीवाना था। एक जिम्मेवारी पूरी होती और दूसरी सम्भाल लेता। भले आदमी

नौजवान तैसी स्त्री है, उसके प्रति भी तो तुम्हारी कोई जिम्मेवारी है। पर नहीं, दया को इस तरह की कोई बात नहीं सूझती थी।

धर्म और माधवी का कमरा हर समय भिड़ा रहता। भागां देखती और उसे जैसे कुछ-कुछ होने लगता। उस दिन सुखमनी साहिब का पाठ कर रही थी कि दिन चढ़े उनका दरवाजा बंद देखा तो उसकी दिल में हौंक सी उठती। सुबह शाम पति-पत्नी, कभी कहीं तो, कभी कहीं गए रहते।

और जब से यह पता लगा कि माधवी का पांव भारी था, उसकी सेवा कितनी होने लगी थी। लड़की यह खाएगी, यह नहीं खायेगी। लड़की यहाँ बैठेगी, यहाँ नहीं बैठेगी। बहू यह पहनेगी। आज माधवी चुप-चाप क्यों है ? रात को लड़की की आंख क्यों खुली थी ? ये लोग तो जैसे अपनी जाई को भूल ही गए थे।

और फिर जैसे-जैसे उनके चले का दिन निकट आ रहा था, सास कैसे बहू की तैयारियाँ कर रही थी। नए कपड़े बहू के लिए बनवाए जा रहे थे। नए गहने घड़वाए जा रहे थे। कुल-वधु की ज्यादा ही सेवा हो रही थी। उनके साथ रखने के लिए छोटी-छोटी पोटलियाँ तैयार की जा रही थी।

आलम उनकी सवारी की फिक्र कर रहा था। उनके साथ का प्रबंध कर रहा था। बच्चों को रास्ते में कोई तकलीफ न हो।

और इधर भागां का नौजवान था, कई बार तो उसका मुंह देखने के लिए बहू तरसने लगती। पहले तो अमृत छकाने वालों के साथ व्यस्त रहा। पांच प्यारों में से कुछ चले गए थे, अपने-अपने ठिकाने पर भी अगलों को पहुंचाना था, पर दया था कि जब तक उसकी छुट्टी नहीं की गई वह वहाँ से नहीं मिला। भागां उसके मुंह की ओर देखती रह जाती। सुबह सरगी के समय घर से निकलता जब सोता पड़ चुका होता तो लौटता। कई बार भागां लाा चाव से उसके लिए कुछ पकाती, प्रतीक्षा कर करके वह आता और कहता–"मैंने लंगर में ही प्रशादि छक ली थी। भागां के तन बदन में आग लग जाती। कोई बात भी हुई। संगत की सेवा अपनी जगह थी, अपनी जीवन संगिनी के लिए जिम्मेदारियाँ अपनी जगह थी।"

भागां दया को कहती–"आखिर धर्म भी तो पांच प्यारों में से एक था। चाहे तुम अव्वल निकले आखिर दूसरे स्थान का भी कोई महत्त्व होता है। धर्म अपनी गृहस्थी की कभी नहीं अनदेखी करता।" दया सुनता और जैसे अनसुनी कर देता।

बल्कि भागां की गलतियाँ निकालता रहता, "तुम अमृतपान करके यह नहीं करती, वह नहीं करती। नितनेम के पाठ में से फलानी बाणी छोड़ जाती है। चाहे सुखमनी साहिब का पाठ कर, पर जाप साहिब बड़ा जरूरी है, तुम अक्सर कीर्तन में सोहिला भूल जाती है। भागां उसके मुंह की ओर देखती रह जाती और जैसे वह कह रही हो—मियां, कीर्तन सोहिला सोने से पहले पढ़ा जाता है और इधर में हूँ, मुझे पता भी नहीं लगता कब तेरा रास्ता देख-देखकर मेरी आंख लग जाती है। पर तुम्हें कैसे पता लगता है, मैंने कीर्तन सोहिला का पाठ किया है या नहीं ? तुम तो उस समय संगत की सेवा में अपना अगला जन्म संवार रहा होता है। स्वर्ग में अपना स्थान आरक्षित कर रहा होता है।"

ऐसे सोच रही भागां की पलकें कितने ही बार भीग जातीं। उसे याद आता किस-किस तरह से वह दया के साथ के लिए तड़फा करती थी। कैसे उनकी मुलाकात हुई। कितना प्यारा वह उसका दोस्त बना था। कैसे वह मिलकर लंगर की सेवा करते थे और जो भी काम उनके जिम्मे लगाया जाता, हर बात में एक दूसर का हाथ बंटाते। और तो और जो कुछ भी वह पढ़ता इसे भी पढ़ने के लिए कहता। जो कुछ यह पढ़ती उसे भी पढ़ने के लिए ज़रूर देती, और फिर चुल्हे-चौके का काम वे मिलकर करते। कुएं से पानी लाना होता, मजाल है भागां को कभी अकेले घड़ा लेकर जाने देता। अपने हाथों से कुएं में लोटा डालकर पानी निकालता। आधे रास्ते में घड़ा उससे पकड़ लेता। इतनी अच्छी तरह कहता—बीबी तेरे माथे पर पसीने की झलकी आ गई है, तुम अब थक गई होगी। और अब उसे इसके माथे से टपकता पसीना तक कभी नजर नहीं आता था। पसीना क्या, चढ़ी त्योरियों तक की उसने कभी परवाह नहीं की थी।

पिछली रात गुरु महाराज के जन्मदिन समारोह में भागां नहीं शामिल हुई थी। उसने अपनी तबियत ढीली बताई थी। सारे घर वाले गए थे, पर वह पीछे अकेली घर रह गई थी। दया बार-बार उसे कहता रहा, आज समागम आखिरी होगा, पर भागां टस से मस नहीं हुई थी।

उस दिन सुबह आंगन में सारे पिछली रात के नाटक के बारे में बातें कर रहे थे। बार-बार हर कोई कहता गुरु महाराज रात के नाटक में स्वयं शामिल हुए थे। और फिर माधवी उसे वह नाटकीय घटना सुनाने लगी जो पिछली रात पेश की गई थी।

कैसे पंजाब के एक गांव में जैन भिक्षुक आते हैं। एक भावुक पंजाबी लड़का उसे देखकर फैसला करता है कि बड़ा होकर वह भी भिक्षुक बनेगा और फिर समय आपने पर वह अपने घर से निकल जाता है। उसकी उत्सुकता देखकर उसे संघ में शामिल कर लिया जाता है। कई वर्ष बीत जाते हैं। एक दिन संघ में घूमते हुए उसकी मुलाकात एक भिक्षुणी के साथ होती है। कपिला तो उसके गांव की और हमउम्र थी। वे तो इकट्ठे खेलते हुए बड़े हुए थे। कपिला भी संघ में शामिल हुई थी। यह जानकर कि वह संघ में शामिल हुआ था।

यह तो हमारी कहानी है। भागां ने मन ही मन अपने आप से कहा।

संघ में नौजवान भिक्षुक और भिक्षुणी बस दूर-दूर से एक दूसरे को देख लेते, माधवी कहानी जारी रखे हुए थी। 'यह तो मेरी कहानी है।' भागां के अंदर से फिर आवाज आई।

एक दिन भिक्षुक और भिक्षुणी अकेले बैठे हंस खेल रहे थे—माधवी जैसे चस्के लेकर दास्तान सुना रही हो—कि संघ के आचार्य उधर आ गए। यह कैसे हो सकता था कि एक नौजवान भिक्षुक और भिक्षुणी एक दूसरे के साथ मिलकर बैठें और वह भी संघ में। क्रोधवश उन्होंने हुक्म दिया कि भिक्षुणी की मोटी-मोटी काली आंखों के तारें खींच कर निकाल लिए जाएं और भिक्षु को सदा के लिए एक मुनि के हवाले कर दिया जाए। इस मुनि का नाम हंस था। उस बेचारे भिक्षुक को बारह वर्षो के लिए गुफा में बंद कर दिया। यह हंस मुनि वही है। जिसने पिछले दिनों एक चित्रकार के रूप में इतना नाम कमाया है। उसका सूर्योदय वाला चित्र चारों तरफ सराहा जा रहा है। आजकल हंस अमृतपान करके गुरु महाराज के निकट होने के लिए परेशान है, पर गुरु महाराज उसे मुंह नहीं लगा रहे। सब कुछ जाननहार महाराज जानते थे कि इन लोगों की कट्टरता के कारण भिक्षुणी अपने नेत्रों की रोशनी गंवा बैठी थी और भिक्षुक गुफा में कैद हड्डियों की मुट्ठी बन कर रह गया था, पर गुरु महाराज की मजबूरी थी कि कवि सेनापत बार-बार मुनि हंस की सिफारिश करता। वह तो उसे गुरु महाराज के दरबारी कवियों कलाकारों में शामिल करवाना चाहता था। आखिर गुरु महाराज ने सारी बात का रहस्य खोला कि क्यों वह हंस मुनि को इतनी देर से निकट नहीं आने दे रहे थे। गुरु महाराज ने दया को भेजकर गुफा में बंद भिक्षु को बुलाया फिर भिक्षुणी को बुलावा भेजा और उन्हें हंस के सामने किया, यह बताने के लिए उन पर

कितना सितम ढाया गया था। धर्म हरगिज यह नहीं कहता कि एक दूसरे को प्यार न किया जाए। कोई लड़का-लड़की मिलकर न बैठे। मिलकर हंसे खेले न मिलकर......

माधवी बोल रही थी कि जैसे घिर कर आई कोई कालीक घटा फटती है, भागां के झर-झर आंसू गिरने लगे। रोती रही होती रही। आस-पास बैठे हर कोई हैरान हो गया, इस लड़की को हो क्या गया था।

47

बेशक उस दिन भागां झर-झर आंसू रोई थी अब दया की पलकें आठों पहर भीगी रहती थी। एक करक कलेजे माहिं।

उस दिन के बाद दया अधिक से अधिक समय भागां के साथ गुजारता। सारा दिन उसकी चाहतें पूरी करता रहता। नितनेम से धर्मसाल जरूर जाता। कभी गुरु महाराज के दर्शन हो जाते, कभी न भी होते। जिस दिन उसे दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त न होता, उसे अपना-आपा खाली-खाली लगता। जैसे कोई चीज़ खो गई हो। एक कमी-सी महसूस होती।

सबसे बड़ा भय जो दया सिंह को आजकल खा रहा था, वह यह था कि उस दिन के बाद जब भागां वैसे बिलख-बिलख कर रोई थी, गुरु महाराज ने जैसे उसे इधर-उधर से छोटे-मोटे काम बताने बंद कर दिए हों।

धर्मसाल से लौटते उस दिन उसकी दशमेश से भेंट हो गई, दया को लगा जैसे गुरु महाराजने वैसे उसकी ओर न देखा हो, जैसे वे देखा करते थे। घर आकर दया का रोना न रुकता। पांच प्यारों में वह प्रमुख था। कोई ऐसा गैर नहीं। ऐसे तो गुरु महाराज ने उसे कभी नहीं अनदेखा किया था।

फिर वह अपने मन को समझाता, हो सकता है दशमेश ने देखा ही न हो, वे किसी गहरी सोच में डूबे हों। हो सकता है। वे सर्वज्ञ इसी में उसकी बेहतरी समझते हों। घर का सुख, घर का अमन, घर की शांति को गुरु सिक्ख बड़ा महत्त्व देता है। उसकी अपनी धर्म पत्नी के प्रति भी कुछ जिम्मेवारियाँ थी। चाहे इस ओर उससे ढील होती रही थी।

पर दया अपने आप से कहता—गुरु महाराज और मुझ में फासला बनता मुझे क्यों महसूस होता है ? यह उसका सौभाग्य था कि वह उस काल में पैदा हुआ। जब गुरु महाराज इस संसार में प्रकाशमान थे। यह सौभाग्य था कि वह बैसाखी वाले दिन उस समागम में शामिल था जब गुरु महाराज ने शीश की मांग की थी। यह सौभाग्य था कि इससे पहले धर्म या और कोई

दीवान में से उठता वह उठ खड़ा हुआ और उसकी भेंट परवान हुई थी।

रात को जब भागां सो जाती, घर में चारों ओर सोता लग चुका होता दया जागकर ध्यान में बैठ जाता। सारी-सारी रात गुरु महाराज के चरणों में उसकी सूरत लगी रहती। सोते हुए कभी उसे स्वप्न आता, गुरु महाराज के घोड़े की उसने बाग पकड़ी हुई है। कभी उसे स्वप्न आता, गुरु महाराज के बाज को वह चुग्गा खिला रहा है। कभी उसे स्वप्न आता, वह गुरु महाराज के साथ शिकार खेलने जा रहा है, एक दिन उसे स्वप्न आया, गुरु महाराज उसे ये शब्द लिखवा रहे थे।

कहाँ भयो दोऊ लोचन मूंदकै बैठ रहिउ बक धयान लगायो
नात फिरिउ लीए सात समुद्रनि, लोक गइड परलोक गवायों
बास कीउ बिखिआन सो बैठ कै, ऐसे ही ऐस सु बैस बितायो।
साचू कहो सुन लेहू सभै। जिन प्रेम कीउ तिन ही प्रभ पायो।

पूस मास जाड़े के दिन बंद कमरे में सोया-सोया जागा, दया हिलकोरे भर-भर रो रहा था और अपने में खोया बोले जा रहा था ! 'जिन प्रेम कीउ तिन ही प्रभ पायो, जिन प्रेम कीउ तिन ही प्रभ पायो।' भागां की आंख खुल गई। वह अपने मर्द के मर्म को पहचानती थी। गुरु महाराज के लिए उसकी श्रद्धा पर उसे अपार प्रेम उमड़ा अपने बाजुओं में लपेटकर उसे कितनी देर प्यार करती रही। चूम-चूम कर उसे पागल बनाती रही।

हिचकियाँ थी कि दया की रुक ही नहीं रही थी। एक रट 'मैंने तो अपना शीश उनके हवाले किया था।'

भागां कहती, उन्होंने तुम्हारा शीश तुम्हें वापिस कर दिया ताकि तुम मेरे लिए जियो। मैं जिसने स्वयं को बैसाखी वाले दिन से कहीं पहले, तुम्हें अर्पण किया हुआ था।

अपने इष्ट को कोई चीज़ भेंट करके वापिस नहीं लिया करते। दया अपनी धारणा पर कायम था।

तुम्हारे सामने धर्म ने भी वही कुछ किया जो कुछ तुमने किया था। अंतर केवल इतना है कि दौड़ में तुम कुछ क्षण पहले मंजिल पर पहुंच गए। वह कुछ क्षण बाद में पहुंचा।

अब दया कबीर के एक के बाद एक श्लोक बोलने लगा :

कबीर लागी प्रीति सुजान सिऊ बरजै लोगू अजानू
तां सिउ तूटी किउ बनै जाको जीअ परान।

कबीर जिह दर आवत जाति अहू हटके नाहिं कोई
सौ दर कैसो छोड़िऐ जो दरू ऐसा होई।
कबीर कूकर राम को मुतीया मेरो नाउ
गले हमारे जेवरी जह खिजै तहं जाउ।
कबीर मोहि मरनै का चाउ है

'वह मय भी आयेगा।' भागां ने उसे यह श्लोक पूरा नहीं करने दिया। अगर तुम्हारी रगों में भाई दुनिचंद का लहू है तो मेरी धमनियों में भी भाई लाली का रक्त है वह समय भी आयेगा और मैं तुम्हें नहीं रोकूंगी। मैं तुम्हारे साथ रहूँगी। तुम्हारे अंग-संग।

भागां के मुंह से ये बोल सुनकर दया की जैसे आंखें खुल गई हो। वह टकटकी लगाकर उसके मुंह की ओर देख रहा था। एक नूर था भागां के मुखड़े पर। जैसे उसकी नज़रें चौंधिया रही हों।

तुमने मुझे बेशक नहीं बताया, पर यह खबर भी मेरे तक पहुंच गई है कि गुरु महाराज ने नारनौल के उस नौजवान भिक्षुक और भिक्षुणी का विवाह करवा दिया है। भागां अपने तर्क को और स्पष्ट कर रही थी।

दया की जैसे खिड़कियाँ खुल रही हों, कुछ ऐसे उसे महसूस हो रहा था।

तुम्हें गुरु महलों में जाने का शायद कभी मौका नहीं मिला मुझे यह सौभाग्य कई बार प्राप्त हुआ है। मैं तो देख-देखकर हैरान होती रहती हूँ, गुरु महाराज अपने साहिबजादों को कितना लाड़ करते हैं। क्या अजीत और क्या जुझार, क्या जोरावर और क्या फतेह। कभी उनसे कुश्तियाँ कराई जा रही हैं, कभी उन्हें तीर अंदाजी सिखाई जा रही है। उस दिन मैं माता सुन्दरी जी के लिए क्रोशिए की झालर बनाकर देने गई तो सबसे छोटे साहिबजादे जुझार को गुरु महाराज उंगली पकड़े फूलों की क्यारियों में रंग-बिरंगे फूल दिखाते, एक तितली को पकड़ने की कोशिश कर रहे थे।

यह खबर तो तुमने सुन ली थी कि दशमेश ने भिक्षुक का विवाह भिक्षुणी कपिला से करवा दिया, पर इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण एक और बात इस सिलसिले में ऐसे लगता है, तुम्हारे तक नहीं पहुंची। दया अब खुल रहा था, जैसे किसी को रोशनी दिखाई देने लगी हो।

वह क्या भला ? भागां ने उत्सुकता से पूछा। विवाह के बाद कपिला ने गुरु महाराज के पवित्र चरणों को कसकर पकड़ लिया और पता नहीं

उसने क्या कहा : सच्चे पातशाह। आचार्य ने मेरी आंखें निकाल ली, आपने मुझे आज फिर से रोशनी बख़्शी है। बाज वाले मेरे सतगुरु, ऐसे लगता है जैसे मुझे दिखाई देने लगा हो। मुझे अपने कलगीधर वाले के दर्शन हो रहे हैं। भाई नन्दलाल जी ने सच कहा है–'कादरे हर कार गुरु गोबिन्द सिंह, बेकसारां यार गुरु गोबिन्द सिंह।'

रोशनी हमारे इस कमरे में भी आ रही है। भागां ने पूर्व की ओर खुलते अपने कमरे के झरोखे की ओर देखा जिसमें से फूटकर सुबह की पहली किरण उसके सामने बैठे दया के माथे पर पड़ रही थी।

इतने में किसी ने उनके कमरे के दरवाज़े को खट-खटाया।

माधवी थी।

अरे भाई उठो, आप सोए ही रहोगे ? हमारी गाय ने बछड़ा दिया है। गोरी मां बन गई है।

भागां ने एक नजर दया की ओर देखा और पलंग से उठकर गोरी की खबर लेने चल दी।

48

खालसा पूरी तरह तैयार था।

अमृत का पान और चिड़ियाँ बाज बन जातीं। बाजों की तरह उड़ना, बाजों की तरह खाना-पीना, बाजों की भांति शिकार करना, आकाश में एक-टक दृष्टि स्थिर करनी। अमृत का पान और हरेक गुरुसिक्ख अपने आपको सवा लाख के बराबर गिनता। सिर पर ऋषियों-मुनियों वाला जूड़ा, कमर पर योद्धाओं जैसी कृपाण लटक रही, कलाई पर धर्म के प्रति वचनबद्धता का प्रतीक इस्पात का कड़ा, घुटनों-घुटनों तक कच्छहिरा, केसों में कंघा, आठों पहर न्याय और पवित्रता के लिए तत्परता, एक करिश्मा देखने में आ रहा था। एक समूचे भाईचारे का पूनर्जन्म हो गया था। कहाँ बलख़-बुखारा, कहाँ काबुल-कंधार, कहाँ सिन्ध, कहाँ श्रीलंका, कहाँ बंगाल असम, कहाँ लेह-लद्दाख, 'वाहगुरु जी का खालसा वाहगुरु जी की फतेह' की गूंज चारों ओर सुनाई देने लगी। नगाड़े बजते, घोड़ों की टापें सुनाई देती। तलवारें खड़कती। 'वाह प्रगटिउ मरद अंगमड़ा वरिआम इकेला, वाह-वाह गोबिन्द सिंह आपे गुरु चेला' को श्वास-श्वास में रटा जाता।

एक अंगड़ाई और लोग भूल गए कि वे अधीनस्थ थे। हाकिमों की तरह उठते बैठते। धरती ने पासा पलटा और कोई छोटी जाति का न रहा।

गली-गली सिंह थे। घर-घर कौरां थी।

पहाड़ी राजा सुन-सुनकर अन्दर ही अन्दर थर-थर कांपते। दिल्ली मुगल दरबार को हर प्रकार की सूचनाएं भेजी जा रही थी। जम्मू, सरहिन्द, लाहौर, काबुल के मुगल सूबेदर सिर जोड़-जोड़कर बैठते।

एक हाथ में माला दूसरे हाथ में श्री साहिब, इस तरह के संत सिपाही का ही तो दशमेश पिता ने स्वप्न देखा था और उनका खालसा सज कर उनके सामने था जैसे कोई उभर रहा, उमड़ रहा, उछल रहा ज्वारभाटा हो।

गुरु महाराज अपने सिंहों की परीक्षा लेना चाहते थे। बोरी में से बस एक दाने को परखेंगे। और यह फाल भाई जोगा सिंह पर पड़ा।

भाई जोगा सिंह बचपन से गुरु महाराज की सेवा में रहा था। अनन्य भक्त और अब अमृत पान पर खालसा सज गया था। मालिशें करने और सर दबाने वाला जोगा सिंह, अब पहचाना नहीं जाता था। घोड़े की रकाब में से जैसे उसके पांव न निकलते हों। हाथ में नेजा लिए दहाड़ते शेर को उसी जगह पर ढेर कर देता। पेशावर वासी, शूरवीरता की लहू उसकी रगों में खौलता रहता था।

एक सुबह भाई जोगा सिंह गुरु महाराज के पास हाजिर हुआ। हाथ जोड़े प्रार्थना कर रहा था, 'बाजां वाले मेरे पातशाह, मुझे पीछे पेशावर जाना है। कुछ दिनों की छुट्टी दी जाए।' 'क्यों ? पीछे दस विघ्न पड़ेंगे तुम्हारी अनुपस्थिति में।' कलगीधर ने कहा, 'हजूर सर्वज्ञ है, मेरे घर वालों ने मेरी शादी तय कर दी है। लावां फेरे लेने के लिए तो मुझे जाना होगा।' जोगा सिंह निवेदन कर रहा था और अगर पीछे तुम्हारी जरूरत पड़ती। गुरु महाराज ने जैसे जोगा सिंह को चुनौती दी। 'हजूर का एक संदेश और दास अपने दशमेश के कदमों में होगा, जोगा सिंह के भीतर का पठान वायदा कर रहा था। देख ले, यह न हो कि वहाँ विवाह करके तुम बैठ ही जाओ। सतगुरु ने उसे चेतावनी दी। 'हजूर जोगा सिंह को कभी न्यून नहीं पायेंगे। जिस क्षण आपका फरमान मेरे पास पहुंचा, मेरे कदम आनन्दपुर की ओर चल देंगे। जोगा सिंह वचन का हमेशा पक्का रहा था।

और जोगा सिंह गुरु महाराज की चरण धूल लेकर पेशावर विवाह करवाने के लिए चला गया। कई दिन बीत गए। खुशी-खुशी उसके विवाह क़ी तैयारियाँ हुई। गीत बिठाए गए। आस-पास, दूर नजदीक से दोस्त रिश्तेदार इकट्ठे हुए। बड़ी धूम-धाम से शादी होने जा रही थी।

ईश्वर की नियति, जब भाई जोगा सिंह की लावां हो रही थी, दो लावां वह ले चुका था कि दशमेश का संदेश उसे पहुंचा सुनते ही वह आनन्दपुर लौट आए, पीछे उसकी जरूरत आन पड़ी थी।'

भाई जोगा सिंह ने सुना और लावां वहीं रोककर आनन्दपुर के लिए चल दिया। गुरु महाराज के साथ उसका वायदा था। सतगुरु को दिया वचन कैसे टाल सकता था। जोगा सिंह के घर वालों ने, दूल्हा-दुल्हन के सम्बन्धियों ने, दोस्तों रिश्तेदारों ने, आए-गए ने, बार-बार समझाया, आखिर दो और लावां ही तो रह गई थी। कुछ क्षण अगर वह बाद में चल दिया तो कौन-सा कहर आ जाएगा। पर नहीं, जोगा सिंह ने किसी की नहीं सुनी। बेचारी दुल्हन उसका मुंह देखती रह गई।

लोग टकटकी बांधे उसके मुंह की ओर देख रहे थे और भाई जोगा सिंह, गुरु गोबिन्द सिंह जी का सिक्ख अपना वचन पूरा करता हुआ अपने सतगुरु की शरण में हाजिर होने के लिए यह जा, वह जा हो गया।

उस रात जोगा सिंह ने होशियारपुर में रुक जाने का फैसला किया। रात की रात ही तो उसने ठहरना था, सुबह प्रातः चल देगा, आगे दरिया में नांव पड़ती थी, बाकी रास्ता ऊबड़-खाबड़ था, पर कोई बात नहीं, एक रात का आराम और घोड़ा भी फिर ताजा दम हो जाएगा।

उस शाम को नहा-धोकर, उजले वस्त्र डाल जोगा सिंह होशियारपुर शहर की झलक पाने सैर को निकला। होशियारपुर का बड़ा चर्चा उसने सुन रखा था। होशियारपुर से बाजार फल फूलों से भरे रहते थे। झुण्ड के झुण्ड लोग बाजार में देखने को मिलते थे। यह शहर नाच और गाने का घर माना जाता था।

इधर सांझ पड़ी शहर जगमग-जगमग कर उठा इक्के आ रहे, बग्घियाँ जा रही, कहीं भड़भूजे आवाजें दे रहे थे, कहीं छाबड़ी वाले आवाज़ें दे रहे। कहीं कलिए की सुगंध, कहीं कबाब बी खुशबू। कहीं मजमेबाज़ की डुगडुगी की आखिरी बुलाहट कहीं फालूदे वाले की घंटी की आवाज़।

कई दिनों का सफर कर रहा, थका-हारा जोगा सिंह टहलता-टहलता होशियारपुर के हुस्न बाजार में जा निकला। जगमग-जगमग कर रहे, सजे हुए कोठे कहीं से गाने की आवाज़ आ रही, कहीं से नाचने की थाप सुनाई देती। जोगा सिंह की आंखें खुली की खुली रह गई। इस तरह की गहमा-गहमी तो उसने कभी नहीं देखी थी जोगा सिंह सोचने लगा—स्वर्ग और

क्या होता है ? कुछ इस तरह की ही वो जगह होगी।

और जिस कोठे पर उसकी नज़र जाती जैसे हूरें और परियाँ खड़ी-बैठी चलतों को आवाज़ें दे रही हों। गाने और नाच की दावतें, जोगा सिंह को एक नशा-नशा महसूस होने लगा। उसका सिर जैसे झूम-झूम रहा हो। उसके कदम लड़खड़ा रहे थे। वह पांव कहीं रखता और उसके पांव जा कहीं और रहे थे।

इस तरह की मदहोशी के आलम में उसे लगा जैसे सामने कोठे पर कोई उसे इशारे कर रही हो। अप्सरा है, कोई मेनका जोगा सिंह के दिल ने कहा। वह तो इसे दावत दे रही थी, जैसे उसकी प्रतीक्षा कर रही हो।

ऊंची-लम्बी, गोरी-सफेद, मोटी-मोटी एकदम काली आंखें फूल-पत्तियों जैसे रसभरे होंठ, गालों में पड़ रहे गड्डे, सफेद दूध-सा महीने पहरावा, न पता लगता कि अंग ढका है। न पता लगता अंग उघड़ा है। बालों को लपेटकर चोटी पर बनाया जूड़ा, जूड़े में उड़सी मोतिए की वेणी कानों में झम-झम करते झुमके, गले में हीरों का हार, कोहनियों-कोहनियों तक झिलमिल कर रही रंग-बिरंगी चूड़ियां, वह तो इसे बांह उठा कर बुला रही थी।

और जोगा सिंह एक नशे में मदमस्त सामने सीढ़ियाँ चढ़ गया। पर सीढ़ियाँ चढ़कर वह यह क्या देखता है, सामने दरवाज़े में खड़ा चौकीदार उसे वहीं रोक रहा था। अभी नहीं। चौकीदार के चेहरे पर तनी हुई त्योरियाँ कुछ कह रही थीं और जोगा सिंह उन्हीं कदमों से सीढ़ियों से उतर आता है।

बहुत समय सीढ़ियों के नीचे खड़ा प्रतीक्षा करता जोगा सिंह फिर सीढ़ियाँ चढ़ता है। पर वह चौकीदार कड़ी नजर से घूरता वैसे का वैसे दरवाजे में खड़ा उसका रास्ता रोक रहा है। टस से मस नहीं हो रहा। जोगा सिंह कमर मटकाता फिर सीढ़ियों से उतर आता है। फिर प्रतीक्षा करने लगता है। बाकी लोग आ रहे हैं, जा रहे हैं। सीढ़ियाँ चढ़ रहे हैं, उतर रहे हैं। कुछ समय पर जोगा सिंह एक काम और करता है। चौकीदार सीढ़ियों पर, दरवाजे के सामने वैसे का वैसे मूर्ति बना खड़ा था, वही घूरती हुई नजर, जोगा सिंह का जैसे राह रोक रहा हो। फिर घड़ी भर प्रतीक्षा कर जोगा सिंह सीढ़ियाँ उतर आता है। एक बार फिर नाकाम कोशिश। एक बार उससे बाद एक और बेकार कोशिश। ऐसे रात बीत जाती है। पर घूरता चौकीदार जोगा

सिंह का रास्ता रोके वैसे का वैसे खड़ा रहता है।

सुबह होती है, मन्दिरों में घंटियाँ बज रही हैं, धर्मस्थानों में शंख बजाए जा रहे हैं। हारकर जोगा सिंह अपनी राह चल आता है। जब वह आनन्दपुर पहुंचता है, संध्या पड़ रही है।

गुरु महाराज का हुकुम बजा लाया। पहली बात वह दशमेश के हाज़िर होता है ताकि उन्हें समाचार दे सके कि उसने अपने वचन की पालना कर दिखाई है। ऐसे भी कभी किसी ने किया होगा कि कोई लावां ले रहा दूल्हा फेरे बीच में छोड़कर अपने इष्ट के हुकम की पालना करे ?

गुरु महाराज जोगा सिंह के चेहरे की ओर देखकर पूछते हैं—क्या बात है, तुम कल रात सोये नहीं, ऐसे थके-थके क्यों लग रहे हो।

एक नजर जोगा सिंह गुरु महाराज के चेहरे की ओर देखता है। वही घूरती नजर जो पिछली रात कोठे की सीढ़ियों पर खड़े चौकीदार के चेहरे पर उसने देखी थी।

और जैसे कोई बिजली चमकी हो, कोई तारा टूटा हो, एक लश्कारा-सा हुआ, एक चमक और जोगा सिंह दशमेश के कदमों पर गिर पड़ा। उसने अपने गुरुदेव के चरण पकड़ लिए। 'सारी रात, सारी रात आप' वह कुछ कहना चाह रहा था। पर शब्द थे कि उसके होठों से फूट नहीं रहे थे।

49

सहजधारी ! नन्दचंद स्वयं को सहजधारी सिक्ख बताने लगा था। आस-पास हर कोई हैरान था। दूर-दूर से गुरु सिक्ख आकर अमृत पान करके खालसा सज रहे थे, पर नंदचंद जो गुरु महाराज का विधिवत नियुक्त किया हुआ खजाना मंत्री था, अभी तक अमृत पान करने से कतरा रहा था।

नन्दचंद का गुरु के घर के साथ दो पीढ़ियों का सम्बन्ध था। उसके पिता को गुरु तेग बहादुर जी की निकटता प्राप्त थी। एक नामी शूरवीर था। गुरु महाराज की सेना की देखभाल, वेतन आदि की जिम्मेवारी नन्दचंद की थी। मामा कृपाल जी की सिफारिश पर उसे गुरु महाराज की ओर से वित्त मंत्री बनाए जाने पर सिरोपा भी दिया गया था। हर कोई उसे दीवान नन्दचंद कहकर सम्बोधित करता था।

बहुत नाम था उसका, बुत ऊंचे ठाट-बाट, हर कोई उसे समझाता, अमृतपान करने का मतलब है, अपने आपको दशमेश के हवाले कर देना। उसके निकटवर्ती गुरुसिक्ख उससे भाई जोगा सिंह की होशियारपुर वाली

घटना का ज़िक्र करते। सारी रात चौकीदार बनकर कोठे वाली के द्वार पर खड़े हो गए और अपने अमृतधारी गुरुसिक्ख को रसातल की ओर नहीं जाने दिया।

दीवानचन्द एक कान से सुनता, दूसरे से निकाल देता। उसे अमृत-पान की हर शर्त मंजूर थी पर केश रखने की जिम्मेवारी से उसे क्यों डर लगता था। उसे बार-बार याद करवाया जाता, महात्मा बुद्ध के केश थे। ईसा-मसीह केशधारी थे। हज़रत मुहम्मद साहिब के गेसुओं की अक्सर चर्चा होती है। मनु का कहना है कि कोई क्रोधवश भी किसी को केशों से नहीं पकड़ सकता। जिस अपराध के लिए और हर जाति के अपराधी को मौत की सज़ा दी जा सकती है, ब्राह्मण अपराधी का सिर मूंड देना उतनी की कड़ी सजा है। कृष्ण ने रुक्मणि के भाई को हराकर उसका सिर नहीं काटा, बस उसके बाल काटकर छोड़ दिया; यही दण्ड काफी समझा गया। महाभारत में अर्जुन ने अश्वत्थामा को पाण्डवों के बच्चों के कत्ल की सज़ा उसका वध करके नहीं दी, उसके बालों को काटकर उसके अपराध की उसको सज़ा दी।

नन्दचंद को कोई दलील जंच नहीं रही थी। यह भी उसे डर था कि केश रखने से गुरुसिक्ख पहचाने जा सकेंगे और जिस तरह के हालात औरंगजेब की हकूमत में थे, उसे परेशान किया जा सकता था। यह बात उसे समझ नहीं आ रही थी कि ऐसे गुरुसिक्ख एक नए पंथ में परिवर्तित हो गए थे। खालसा पंथ की अपनी एक पहचान बन गई थी। नाम जपने वाले, परिक्रमा करने वाले, बांटकर छकने वाले शूरवीर।

बेशक (नंदचन्द) उनका वित्तमंत्री था, गुरु महाराज ने कभी-किसी काम के लिए उसे मजबूर नहीं किया था। आस-पास हर कोई सिंह सज चुका था, नन्दचंद सहजधारी सिक्ख था।

बहुत दिन नहीं गुज़रे थे कि कुछ उदासी सिक्ख गुरु साहिब की एक बीड़ गुरु महाराज के हस्ताक्षर के लिए लाए। उन दिनों में गुरु ग्रन्थ साहिब की कोई प्रति प्रमाणिक नहीं मानी जाती थी जब तक दशमेश उस पर अपने कर-कमलों से सही न कर दें। गुरु महाराज के सही करने के लिए जरूरी था कि बीड़ की प्रति को दीवान नन्दचंद के सामने उसकी देख-रेख में पेश किया जाए। जब उसकी तसल्ली हो जाती वह गुरु महाराज से सही करवाकर प्रति उन्हें वापिस कर देता।

इस प्रति की लिखावट इतनी सुन्दर थी, खास तौर पर हर पन्ने के

हाशिए पर बनी रंग-बिरंगी बेल इतनी दिलकश थी कि नन्दचंद का मन मोहित हो गया। उसने फैसला किया कि वह उस प्रति को किसी-न-किसी तरह हथिया लेगा।

प्रति को पढ़कर उसका इरादा और पक्का हो गया। उस प्रति को वह अपने हाथों से नहीं निकलने देगा, मजाल है सारी की सारी प्रति में ई, ई, का, नुक़्ता तक कहीं छूटा हो। बहुत अधिक श्रम उसे तैयार करने में लगा प्रतीत होता था। फिर यह करामात एक ही कलम की थी। हर पन्ना एक जैसा, एक जैसी अक्षरों की बनावट, एक जैसी स्याही, एउक ही तरह का दूध जैसा सफेद काग़ज़।

निर्धारित समय के बाद उदासी अपनी प्रति को लेने के लिए आए। नन्दचंद ने उन्हें तारीख दे रखी थी। वह प्रति को देखभाल कर गुरु महाराज से सही करवा कर रखेगा। नन्दचंद उनसे माफी मांगने लगा। काम अधिक होने के कारण वह प्रति के बारे में उचित नहीं कर सका था। नन्दचंद ने उदासियों को नई तारीख दी और वायदा किया कि वह समय निकालकर जरूर प्रति के बारे कार्रवाई पूरी कर लेगा।

नई बताई तारीख पर उदासी फिर हाज़िर हुए। फिर उन्हें टाला गया और नई तारीख उन्हें दी गई।

इस नई तारीख पर भी उन्हें निराश होना पड़ा। फिर और तारीख वाला लारा फिर एक और लारा। उदासी चक्कर लगा लगाकर थक गए पर नन्दचंद उन्हें टालता जा रहा था।

आखिर जब उससे उनको और नहीं टाला गया, नंदचंद ने उन्हें अपने मन की बात बताई पगति आपको वापिस करने का मेरा इरादा नहीं। आप और प्रति तैयार कर लो। इस प्रति का जो मूल्य है, वह मैं भरने के लिए तैयार हूँ।

उदासियों ने सुना तो उनकी अकल चकरा गई। उस तरह की प्रति हर रोज़ थोड़े ही तैयार की जा सकती थी ? प्रति बेचने के लिए वे बिल्कुल भी तैयार नहीं थे। प्रति तो नन्दचंद को वापिस करनी पड़ेगी।

यह सुनकर नन्दचंद ने उन्हें धमकी दी, वह उन्हें पकड़कर बंदीगृह में डाल देगा। वे जानते नहीं थे कि वह स्याह सफ़ेद जो चाहे कर सकता था।

उदासी इन धमकियों से डरने वाले नहीं थे। एक तो गुरु घर के श्रद्धालु दूसरे बुद्धि-जीवी, एक जूती उतारते दूसरी पहनते, बदमज़गी बढ़ गई।

नन्दचंद तो कर्ता-धर्ता था; उसने अपने सेवादों को बुलाया और उदासियों को धक्के देकर बाहर निकलवा दिया।

उदासियों की मजबूरी, गुरु महाराज तक उनकी पहुंच हो तो कैसे ? नन्दचंद ने तो उनके सारे रास्ते रोक रखे थे। साध संगत तक में वह उन्हें आने नहीं दे रहा था। गुरु महाराज ने शासन प्रशासन सारा नन्दचंद के हवाले कर रखा था। उसके हुकुम के बिना पत्ता भी नहीं हिलता था।

अगली बार जब गुरु महाराज शिकार को निकले, उदासियों ने कलगीधर का रास्ता रोककर, उन्हें सारी आप-बीती सुनाई। कैसे उन्होंने प्रति सही करवाने के लिए दफ्तर में दाखिल की थी। कैसे उन्हें एक के बाद एक तारीखें दी जाती रहीं। आखिर जब चक्कर लगा-लगाकर उन्होंने नन्दचंद के दफ्तर की दहलीज की मिट्टी भी खत्म कर दी तो उन्हें धक्के देकर बाहर निकाल दिया गया। सर्वज्ञ गुरु महाराज से कौन-सी बात छिपी थी ? उन्हें इस सारी वारदात की भनक लग चुकी थी। उन्होंने नन्दचंद को संदेशा भेजकर चेतावनी दी कि उदासियों की प्रति उचित कार्रवाई के बाद उन्हें वापिस कर दी जाए।

नंदचंद ने सुनी-अनसुनी कर दी। एक बार, दो बार, तीन बार ऐसे जब नन्दचंद ने गुरु महाराज की हुकुम-अदूली की तो नन्दचंद को उसके पद से बर्खास्त कर दिया गया।

इसकी बजाय कि उसको होश आता, पछताता, नन्दचंद और मसंदों की तरह बकने लगा मैं क्या परवाह करता हूँ। मैंने ही तो उन्हें गुरु बनाया है। इस तरह के दस गुरु मैं पल्ला झटककर पैदा कर सकता हूँ।' जो मुंह में आता बोले जा रहा था।

नन्दचंद प्रति को बगल में दबा करतारपुर चला गया। धीर मल को भड़काने लगा। तुम्हारी इतनी भारी सिक्खी-सेवकी है। गुरु ग्रंथ साहिब की पहली प्रमाणित प्रति तुम्हारे पास है और मैं अब एक अत्यन्त सुन्दर प्रति तैयार करवाकर लाया हूँ, जिसके साथ की कोई और प्रति नहीं। हम मिलकर सारे सिक्ख संसार को अपना अनुयायी बना लेंगे। असली महत्त्व पोथी का है, जिसके कब्जे में पोथी, सोई गुरु।

नन्दचंद कितनी-कितनी बातें करता था पर धीरमल और उसके चेलों को उसकी एक भी बात पच नहीं रही थी। यह कैसे हो सकता था कि इतना पुराना अहलकार गुरु गोबिन्द सिंह जी से विमुख हो जाए। जब उनका

सम्मान नहीं किया जाता था, क्या पहाड़ी राजा और क्या मुगल सूबेदार, उनके साथ लोहा लेने से कतराते थे। इसमें कोई रहस्य था कि नंदचंद उनके यहाँ ऐसे ही आ घुसा था।

सोच-सोचकर धीरमल और उसके चेलों ने यह फैसला किया कि इससे पहले कि नन्दचंद उन्हें कोई नुकसान पहुंचाये, उसका अहंकार समाप्त कर देना चाहिए।

और यही करतूत उन्होंने की। अगले दिन जब उनके यहाँ आया, उसे गोलियों से छलनी कर दिया गया। जब यह खबर आनन्दपुर पहुंची, हर जुबान पर इसकी चर्चा थी। हर कोई यही कहता, नन्दचंद ने अपना किया पाया था। फटकारा गया था।

पर सवाल यह है, अगर गुरु महाराज किसी रंडी के कोठे पर सारी रात चौकीदार बनकर जोगा सिंह को बचा सकते हैं, तो नन्दचंद की उन्होंने ऐसे कुपथ पर पड़ने से रक्षा क्यों नहीं की ? भागां अपने मन के रहस्य की टोह ले रही थी।

इसलिए कि नन्दचंद ने अभी तक अमृतपान नहीं किया था। भाई दया सिंह बोला, 'जब तक कोई भेड़ किसी झुंड में शामिल नहीं होती, उसकी संभाल गडरिए की जिम्मेवारी नहीं होती।

आस-पास हर किसी की आंखों में एक रोशनी आई। जैसे गाढ़ा लहू उनकी रगों में प्रवाहित होने लगा हो। अमृतधारी खालसा के सिक्ख।

क्षणांश में ही माधवी ने सवाल किया, आपका मतलब है, गुरु महाराज होशियारपुर जोगा सिंह का रास्ता रोकने के लिए गए थे।

क्या मतलब ? भाई दया सिंह ने पूछा।

मेरा मतलब है, क्या यह करामात थी ? माधवी की जिज्ञासा पुकार उठी।

करामात भी हो सकती है, चाहे गुरमत में करामात को माना नहीं जाता।

असल में बात यह है, अब भाई धर्म सिंह बोला, 'जोगा सिंह के अन्दर बसे हुए ये गुरु गोबिन्द सिंह थे जो हर बार जब वह कुकर्म करने के लिए ऊपर जाता, उसके सामने चौकीदार बनकर खड़े हो जाते थे।

यही तो अमृत की करामात है। अमृतपान करके गुरुसिक्ख गुरु महाराज की सरपरस्ती में आ जाता है। हर कठिनाई में हर पड़ाव पर वह अपने अमृतधारी सिक्ख की सहायता करते हैं। हर गुरुसिक्ख के अन्दर बस रहे अंग-संग सहाय होते हैं।

देर रात गए तक परिवार इस तरह की बहस करता रहा। वीरांवाली बच्चों की ओर देख-देख, उनकी बातें सुन-सुन चकित हो रही थी। ये लोग कितनी आगे निकल गए थे, और के और हो रहे थे।

50

खालसा पंथ की स्थापना एक क्रांति थी। एक युगांतर करने वाला आन्दोलन जिसके कारण एक नई कौम का निर्माण हुआ। हल चलाने वाले पंजाबियों ने शमशीर पकड़ ली। सदियों से कुचले चले आ रहे नीच जाति के कहे जाने वाले नाई और छींबे, चूहड़े और चमार एक ही बर्तन में से अमृत छककर, एक पंक्ति में बैठकर खाने लगे, तीरों और तोपों से खेलने लगे। हर कोई सिंह था। हर कोई अपने आपको सरदार कहलाता था और तरह सोचते और तरह बोलते और तरह से उठते बैठते। 'वाहेगुरु जी का खालसा, वाहेगुरु जी की फतेह' के साथ एक-दूसरे का अभिवादन करते। ईश्वर, युद्ध और जीत के बिना कुछ और सोचते ही न थे।

पहाड़ी राजा देख-देखकर चकित होते। यह किसी तरह का परिवर्तन आ रहा था। ऐसे तो उन्हें अपने धर्म सो भी हाथ धोने पड़ेंगे, अपने राजपाट को भी त्यागना होगा चारों ओर गुरु गोबिन्द सिंह की चर्चा थी। स्वयं गुरु थे, स्वयं चेला थे। समातना की मिसाल कायम कर दी गई थी।

धार के राजा जैसे-जैसे गुरु महाराज की महिमा की कहानियाँ सुनते उन्हें लगता जैसे उनके दिन गिनती के हों। अगर इस तूफान को उसी पड़ाव पर बंद नहीं पाते, सामने उमड़ता तूफान उन्हें मलिया मेट कर देगा। राजा कहलूर ने राजा हडूर को लिखा। एक पड़ौसी दूसरे पड़ौसी के साथ बैठा खिचड़ी पकाने लगा; कुछ तो करना होगा।

इतने में गुरु महाराज ने उन्हे बुलावा भेजा। उनकी गैरत को जगाया। उनके आत्म-सम्मान को झिंझोड़ा। उनको याद दिलवाया उनके अपने देश में वे गुलाम थे। कदम-कदम पर उनकी बेइज्ज़ती होती थी। स्वयं को वे राजपूत कहलवाते थे। पर उनकी बहू-बेटियाँ मुगल महलों की शाभा बनती थीं। उनके मन्दिर और शिवालय, मस्जिदों और मदरसों में तब्दील हो रहे थे। राजा नजराने भरते थे, आम लोग कदम-कदम पर कर देकर दिन काटते थे। कब तक और यह लूट-खसूट, यह निरादर वे बर्दाश्त करते रहेंगे ?

इसकी बजाय कि पहाड़ी राजाओं को यह सब सुनकर हिकरत होती,

वे इस चुनौती को कबूल करते, बल्कि उन्होंने गुरु गोबिन्द सिंह के खिलाफ़ साजिश करनी शुरू कर दी। वे सोचते मुगल तो दूर दिल्ली बैठा हुआ था, उन्हें अधिक खतरा आनन्दपुर के 'सच्चे पातशाह' से था, जिस प्रकार जनता को उसने अपने पीछे लगा लिया था, वह तो किसी समय उन पर हमला करके उनका राजपाट उनसे छीन लेगा। उसके नगारे की धमक उसके घोड़ों की टाप, उसके जयकारों की गूंज, उनकी छातियों में तड़-तड़ गोलियों की तरह लगती थी।

एक पड़ौसी दूसरे के कानों में कुछ कहता; दूसरा-तीसरे के साथ खुसर-फुसर करता, भीतर ही भीतर उनकी खिचड़ी पक रही थी और उन्होंने फैसला किया, पहला दुश्मन उनका दिल्ली दरबार नहीं था, पहला दुश्मन उनका गुरु गोबिन्द थे जिनके बाज़ उनके आसमान में अपनी उडारी लगाते थे। जिनके कुत्ते उनकी सीमाओं में निडर भौं-भौं करते फिरते थे।

और अगली बार जब दशमेश शिकार को निकले, पहाड़ी राजाओं के बीच में से बलियाचन्द और आलमचन्द अपनी-अपनी सेना लेकर उन पर टूट पड़े। गुरु महाराज को इस साजिश का ध्यान ही नहीं था। वे तो कुछेक साथी शिकारियों और दो-चार अंग-रक्षकों के साथ साधारण तौर पर शिकार खेलने निकले थे। पर अमृत की प्रशंसा और सच का साथ, खालसा ने दुश्मन को बुरी तरह पछाड़ा। बलियाचन्द को अपनी जान से हाथ धोने पड़े। आलमचन्द ने अपनी एक बाजू गंवा दी।

यह देख, आस-पास के पहाड़ी राजाओं के हाथ-पांव फूल गए। अगर शिकार के लिए निकले गुरु महाराज के सिहों की टुकड़ी उनकी घात में बैठी फौज का यह हाल कर सकती थी तो गुरु गोबिन्द सिंह तो जब चाहें उनसे उनका राजपाट छीनकर उनके हाथ में कटोरा पकड़ा सकते थे। यह एक कड़वी सच्चाई थी।

और कोई चारा नहीं था। केवल दिल्ली दरबार ही उनकी मदद कर सकता था। धार के राजा फिर से इकट्ठे हुए। फिर सिर जोड़कर बैठे और उन्होंने फैसला किया वे औरंगजेब को शाही सूचना-पत्र भेजेंगे। बेशक शहंशाह दक्षिण में बैठा, मराठों के साथ जूझ रहा था, वह अपने किसी सूबेदार को भेज कर उनके दुश्मन को भगा देगा।

औरंगजेब के नाम अपनी अर्जी में उन्होंने कुछ इस तरह की गुज़ारिश की :

"यह जानते हुए कि गुरु गोबिन्द सिंह बाबा नानक की समादृत गद्दी पर बैठे हैं, हमने इनका हमारे बीच आकर बसना स्वीकार कर लिया। हमने कोई एतराज़ नहीं किया था। पर जब हमने देखा कि इसने अपने बाहुबल की गलत नुमाइश करनी शुरू कर दी है, हमने इसे रोकने की कोशिश की। अब सिक्ख गुरु आनन्दपुर को छोड़कर नाहन चला गया और वहाँ के राजा के साथ गठबंधन कर लिया कुछ समय बाद श्रीनगर के राजा फतेह शाह के साथ इसकी अन-बन हो गई। भंगानी नाम के शहर में एक घमासान लड़ाई हुई जिसमें बहुत जानी और माली नुकसान हुआ।"

भंगाणी की जंग के बाद सिक्ख गुरु आनन्दपुर लौट आया और यहां एक नये धर्म की नींव रखी। इस मत को इसने 'खालसा' का नाम दिया है। यह मत हिन्दू धर्म और इस्लाम दोनों से न्यारा है। इसमें जाति-पांति का खण्डन किया गया है। हर कोई बराबर माना जाता है। इसके नतीजे के तौर पर ढेरों लोग उसके अनुयायी बन गए हैं।

कुछ समय हुआ, हम धार के राजाओं को भी गुरु ने आमन्त्रित किया, यह झांसा देते हुए कि अगर हम इसके पंथ में शामिल होते हैं, तो हमारा यह लोक भी और परलोक भी दोनों संवर जायेंगे। हमें उकसाया गया कि हम अगर दिल्ली दरबार के खिलाफ़ बगावत करें तो खालसा हमारी मदद करेगा। क्योंकि मुगल दरबार ने गुरु के पिता की हत्या की थी, अपने पिता के कत्ल का बदला यह ज़रूर लेगा।

हमने इसकी बात नहीं मानी, हमारे साथ अब नाराज़ है और हर दूसरे दिन हमें ताने देता रहता है। हमसे यह काबू नहीं आता। इसलिए हमने न्यायप्रिय हाकिम को दरखास्त करने का फैसला किया है। अगर हकूमत हमें अपनी प्रजा समझती है तो हमारा निवेदन है कि हमारी मदद की जाए और गुरु गोबिन्द सिंह को आन्नदपुर से बेदखल किया जाए। अगर ऐसे करने में कोई ढील हुई तो इसका अगला कदम दिल्ली की राजधानी पर हमला करना होगा।

उधर इस तरह की शिकायत शहंशाह औरंगजेब के पास पहुंची इधर गुरु गोबिन्द सिंह ऐलान कर रहे थे।

"चिड़ियाँ ते मैं बाज़ लड़ावां
तदे गोबिन्द सिंह नाम कहावां

गुरु गोबिन्द सिंह जी की ओर से हकूमत को खतरा वास्तविक था, इसमें कोई शक नहीं। गुरु महाराज ने मसंदों की टोली को समाप्त करके जाटों को झूठे धार्मिक प्रपंचों से हटाकर उनके हाथ में तलवार पकड़ा दी थी। वास्तव में किसानी अपने किये की ही है। यह नया पंथ उन्हें बहुत-बहुत जंचता था। घोड़ों की सवारी करते, नेज़ों को उछालते, तेग तलवार के धनी बनते जा रहे थे।

गुरु गोबिन्द सिंह जी पांच प्यारों से स्वयं अमृतपान करके एक तरह से सिक्ख संगत को अपने-आपसे ऊंचा रुतबा दे दिया था। इसका जादू जैसा असर लोगों पर हुआ। खालसा पंथ में प्रवेश करके हरेक सिक्ख अपने-आपको श्रेष्ठ समझता था। कोई नीच नहीं, कोई ऊंच नहीं। इस तरह का भाईचारा तो पहले न कभी किसी ने सुना था, न देखा था।

खालसा पंथ स्थापित करके गुरु महाराज ने यह सिद्ध किया था कि जनता का यह अधिकार बनता है, कि जो हकूमत उन्हें मंजूर न हो, उसे बदल दें, उसके खिलाफ बगावत करें, आज़ादी हर प्राणी का जन्मसिद्ध अधिकार है।

खालसा पंथ एक ऐसा भाईचारा था जिसमें समानता को बुनियादउी उसूल माना जाता था। इस तरह के लोग साम्राज्य के लिए बड़ा खतरा बन सकते थे।

इसलिए औरंगजेब ने फैसला किया कि इस कांटे को इसी समय निकाल दिया जाए और ढील देना हानिकारक हो सकता था।

51

गुरु गोबिन्द सिंह के नव निर्मित कबीले को काबू करने का इससे अच्छा अवसर और क्या हो सकता था ? औरंगजेब के पास दशमेश के अमृत-प्रचार और गुरु सिक्खों में जादुई परिवर्तन की खबरें पहले ही पहुंच चुकी थीं। अगर वह दक्षिण में मरहठों के साथ न जूझ रहा होता तो कब से अपनी बगल में चुभ रहा यह कांटा वह निकाल चुका होता। अब जब पहाड़ी राजाओं की दरखास्त उसके पास पहुंची तो वह तुरन्त इस मौके का फायदा उठाना चाहता था। उसके शब्दों में, 'काफ़िर आपस में ही लड़ने-मरने के लिए तैयार थे तो उन्हें क्या एतराज हो सकता था ?'

औरंगजेब ने पंजाब में तैनात दो पांच-हज़ारी फौजदारों पैंदा खान और दीन बेग को हिदायत की कि सिक्खों का सिर कुचलने के लिए उचित कार्रवाई करें। उन्हें सरहिन्द के सूबेदार की अगवाई प्राप्त थी।

औरंगजेब कई वर्षों से दिल्ली से बाहर था, पता नहीं कब उसने लौटना था। अभी तक उसकी वापिस दिल्ली आने की कोई खबर नहीं थी, क्योंकि अधिक ज़रूरत पहाड़ी राजाओं की थी। मुगल फौज़दारों ने एक यह शर्त लगाई कि लड़ाई का खर्च धार के राजा भरेंगे। पहाड़ी राजाओं के लिए इससे अधिक ज़िल्लत और क्या हो सकती थी कि अपनी मदद के लिए उन्हें मूल्य चुकाना पड़ रहा था। यही हालत मुगल सूबेदारों की थी, पैसे लेकर वे भाड़े के टट्टुओं की तरह किसी के लिए लड़ने आ रहे थे। लानत उन पर।

इधर अपने गुरु के लिए लड़ने के लिए गुरु सिक्ख हमेशा तत्पर रहते थे। खालसा पंथ की स्थापना के बाद यह पहली जंग थी जो गुरु प्यारे लड़ने जा रहे थे। पहाड़ी और मुगल फौज़ बीच और सिंह शूरवीरों की सेना में बुनियादी फर्क यह था कि एक पक्ष दुनियावी कब्ज़ा करने के लिए लड़ रही थी और दूसरी अपने धर्म की रक्षा के लिए, अपने इष्ट के लिए; यह जन्म भी सफल, अगला भी सफल। अन्ततः लड़ाई सच और झूठ में थी।

दशमेश पिता की हमेशा यह नीति होती की जंग अपने शहर से जितनी दूर हो सके, उतनी दूर लड़ी जाए। आनन्दपुर पिछले कुछ वर्षों में एक छावनी बन चुका था। हर तरह के हथियार बनाने के कारखाने शहर में खुल गए थे। दिन-रात भट्ठियाँ तपती रहतीं, लोहा चाण्डा जा रहा होता, तांबा पिघला जा रहा होता। सिक्का, बारूद, तोपें और बन्दूकें, तलवारें और खण्डे, तीर और कमान कौन-सा हथियार था जो यहाँ नहीं बनता था ? नसली घोड़ों की आनन्दपुर मशहूर मण्डी थी। ईराक और ईरान, बलख और बुखारा, काबुल और कंधार के बढ़िया से बढ़िया घोड़े आनन्दपुर में खरीद फरोख्त के लिए लाए जाते थे। हर प्रकार की फौजी सिखलाई का प्रबन्ध था, कवायदें होती, चांदमारी और निशाना पकाए जाने की सिखलाई दी जाती, घुड़सवारी, नेज़ाबाज़ी आदि के सिखाने का इंतजाम था। आनन्दपुर के किलों में अन्न-दाने के भंडार भरे-पूरे थे।

गुरु महाराज पहाड़ी राजाओं की बुरी नीयत से परिचित थे और मुगल हकूमत से उनकी कभी नहीं बनी थी।

बेशक मुगल यह लड़ाई अधिकतर धार के राजाओं के निमंत्रण पर उनकी सहातया के लिए लड़ रहे थे, पर समय आने पर पहाड़ी राजा कहीं दिखाई नहीं दे रहे थे। जंग अधिकतर पैंदा खान और दीन बेग की फौज़ों और खालसा सेना में हो रही थी।

खालसा फौज ने दुश्मन को रोपड़ के पास ही जा ललकारा था। ऐसे लगता था जैसे मुगल बेशक घर से लड़ने के लिए निकले थे, पर इतनी जल्दी लोहा लेने के लिए वे तैयार नहीं थे और उन्हें तो यह माना था कि वह तो पेशेवर फौज़ी थे जिनके पास कई वर्षों की सिखलाई और तजुर्बे की पूंजी थी और उनका टकराव एक भाड़े के सैनिकों के साथ हो रहा था, जिनका भरोसा उनकी समझ के मुताबिक केवल अपने गुरु पर था, जिसके पिता का कल दिल्ली दरबार में सरेआम कत्ल किया और एक पत्ता तक न हिला था और फिर पैंदा खान सोचता, वह तो संयोग से लुका-छिपा था, उसे निजी तौर पर तो कोई नुकसान नहीं पहुंचा सकता था। न कोई ऐसी गोली निकली थी, न कोई ऐसा तीर बना था जो इस तरह के जिरहबख़्तर को पार कर सके।

सचमुच जब जंग शुरू हुई, पैंदा खान आमने-सामने की लड़ाई के मैदान में खड़ा अपनी फौजों का हौंसला बढ़ा रहा था। शहज़ादा अजीत सिंह की अगुवाई में खालसा फौज जैसे लड़ रही थी, वह देख-देखकर हैरान हो रहा था, पंक्तियों की पंक्तियाँ उसकी फौज की ढेरी हो रही थीं। बेशक गुरु महाराज की फौज का भी नुकसान हो रहा था पर ये लोग अनाड़ियों की तरह बिल्कुल नहीं लड़ रहे थे। जैसे मुगलों ने सोच रखा था। क्या तीरों से और क्या तोपों से, क्या तलवारों से और क्या नेज़ों से, क्या घुड़सवार और क्या प्यादे, ऐसे लड़ रहे थे जैसे जन्म से ही जंग-जुझारू शूरवीर हों। सारे दिन लड़ाई होती रही। लाशों के ढेर लग गए। लहू की लीकें बन गईं। मुगल मर रहे थे गुरु सिक्ख शहीद हो रहे थे। न मुगलों की अकड़ हार मानने को तैयार थी, न खालसों की अनख जीत अपने हाथ से गंवाने की सोच रही थी और उधर दोनों पक्षों के सिपाही हर क्षण मक्खी-मच्छरों की तरह ढेरी हो रहे थे। केवल पन्द्रह वर्षों की आयु, शहज़ादा अजीत सिंह जैसे थकने का, हारने का नाम न ले रहे हों।

यह देख, कलगीधर खुद मैदान-ए-जंग उतरे और उन्होंने पैंदा खान को ललकारा। पैंदा खान ने गुरु महाराज को जंग के मैदान में उतरा देखकर तुरन्त उन पर तीर चलाया। उसका तीर दशमेश की दस्तार को छू कर निकल गया। गुरु महाराज ने उसे एक बार और वार करने के लिए ललकारा पैंदा खान का यह दूसरा तीर भी गुरु महाराज को जैसे प्रणाम करके पास से निकल गया। अब दशमेश की बारी थी। पैंदा खान सोचता उसे कोई तीर भेद नहीं सकेगा, पर गुरु महाराज इस भेद को जानते थे कि पैंदा खान ने

बख़्तर पहना हुआ था। बस उसके कान अनढके थे। गुरु महाराज ने अपना तीर पैंदा खान के कान को निशाना बनाकर छोड़ा। तीर ठीक निशाने पर जाकर लगा। तीर का लगना था कि पैंदा खान घोड़े से उल्टा नीचे जा गिरा।

अपने फौज़दार को ढेरी हुआ देख, मुगल फौज मैदान छोड़कर भाग गई। फौजियों की लाशें और गोली-बारूद भी पीछे छोड़कर वे भाग रहे थे कि खालसा फ़ौज ने उनका पीछा किया। कुछ दूरी पर सिक्ख सिपाहियों ने दीन बेग को घेर लिया। हाथों-हाथ लड़ाई में दीन बेग की बाजू उतर गई, पर वह अपनी जान बचाकर खालसा के घेरे में से निकलने में सफल हो गया।

खिज़रबाद से गुरु महाराज ने खालसा फौज़ को लौट आने के लिए हुकुम दिया। ऐसे हारी हुई सेना का पीछा करना शूरवीरों का काम नहीं था।

खालसा पंथ की स्थापना के बाद आनन्दपुर की यह पहली जंग थी जिसमें मुगल फ़ौज की करारी हार हुई थी। पहाड़ी राजा जो दिल्ली दरबार में मुगल फौज़ की मदद करके अकड़-अकड़ कर फिरते थे, परेशान एक दूसरे के मुंह की ओर देख रहे थे।

उनमें से कई सोचते, उनका भला इसी में था कि वे गुरु महाराज के साथ बनाकर रखें। कुछ और लोग थे जो एक हाथ और अज़माना चाहते थे।

52

दस हजार की लड़ाकी मुगल फौज की इस प्रकार दशमेश की खालसा सेना से हार, पहाड़ी राजा भौंचक से रह गए। वे खुद भी तो मुगलों की मदद कर रहे थे। जैसे बोले सो निहाल, सतश्री अकाल, का जयकारा गुंजाकर गुरुसिक्ख जंग में जूझते थे, पहाड़ी राजा सोचते, उन्हें काबू करना उनके बस की बात नहीं थी।

उनमें से कुछ की धारणा थी कि शाहज़ादा मुअज्ज़म गुरु गोबिन्द सिंह जी का प्रशंसक था। उसने जानबूझकर कमजोर फ़ौज को आनन्दपुर पर हमले के लिए तैनात किया था और इने बुरी तरह से मार खाई थी। यह हकीकत उन्हें दिल्ली दरबार तक पहुंचानी चाहिए। शहज़ादा मुअज्ज़म आप काबुल बैठा था। औरंगजेब दक्षिण में था, आज कई वर्ष हो गए थे।

बिलासपुर का अजमेरचन्द जिसने अपने पिता भीमचन्द के बाद रियासत की बागडोर संभाली थी पुराना वैर अभी तक पाले हुए था। गुरु महाराज के

साथ जैसे उसका भगवान के घर से ही वैर हो। अजमेरचन्द कहता, दिल्ली जाकर मुगल दरबार को भड़काने की जिम्मेदारी उसकी होगी। क्या मजाल थी एक मुट्ठी भर लुटेरों की कि मुगल लशकर के साथ उस तरह टक्कर लें ?

पर इससे पहले कि अजमेरचन्द दिल्ली के लिए रवाना होता, हंडूर का भूपचन्द कूदने लगा, बढ़ा-चढ़ाकर बातें करने लगा। "हमें दिल्ली से आस रखनी ही क्यों है ? वह कहता, जम्मू, नूरपुर, मण्डी, कुल्लू, कैथल, गुलेर, चम्बा, श्रीनगर, डढवाल तथा और कितने, क्या हम इतने गये-गुजरे हैं कि हम एक गुरु की फौज को काबू नहीं कर सकते ? हमें चुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिए। और नहीं तो हमें अपने देवी-देवताओं का ख्याल होना चाहिए। जिनका गुरु गोबिन्द सिंह ने खण्डन किया है। कुल्लू नैना देवी पर उन्होंने साबित कर दिया है कि देवी कभी प्रकट नहीं होती, हम हिन्दू सृष्टि के प्रारंभ से अपने-आपको धोखा देते आए है। मैं पूछता हूँ, उन लाखों श्रद्धालुओं का क्या बनेगा जो सैंकड़ों कोस चलकर तीर्थ स्थानों पर दर्शनों के लिए जाते हैं और फिर गुरु गोबिन्द सिंह का छुआ-छूत, ऊंची-नीची जात के भेदभाव को मिटाना, कल तो वह कहेगा, कोई राजा नहीं, कोई प्रजा नहीं, कोई भी राज-सिंहासन को संभाल सकता है। क्या हमें यह सब कुछ स्वीकार होगा ? क्या हमें मंजूर है जिस बाटे में से कोई मज़दूर मुंह लगाकर पानी पिए, हम भी उस बाटे में से पीएं ? अगर नहीं तो हमें मिलकर इस कुरीति का खात्मा करना होगा। हमें अपने बाहु-बल पर भरोसा करना चाहिए" .... राजा भूपचन्द कुछ इसी तरह अपने साथी राजाओं को ललकारता रहा। जवानी का जोश, वह कहता, अगर और कुछ भी न करें, सभी मिलकर अगर आनन्दपुर का घेराव कर लें, आनन्दपुर में बाहर से अनाज-पानी जाना बंद कर दें तो खालसा फौज चार दिनों में घुटने टेक देगी।

यह युक्ति प्रत्येक के मन को भाई। सचमुच अगर वे आनन्दपुर का घेरा डाल दें तो गुरु गोबिन्द सिंह को उनके साथ समझौता करने के लिए मजबूर होना पड़ेगा।

फैसला यह हुआ कि बिलासपुर का अजमेर चन्द गुरु गोबिन्द सिंह से कर मांगे जैसे बाकी प्रजा अपने राजा को कर भरती थी और अगर वे कर देने से इंकार कर दें तो आनन्दपुर का घेरा तोड़कर खालसा को आनन्दपुर छोड़ने के लिए मजबूर किया जाए।

गुरु गोबिन्द सिंह बिलासपुर नरेश को पहले भी बता चुके थे, अब फिर उन्होंने उसे याद करवाया कि आनन्दपुर की सारी जमीन गुरु तेग बहादुर जी ने मखोवाल गांव के रूप में नकद खरीदी थी। उसे खाली करना या उसके लिए और कर भरने का सवाल ही पैदा नहीं होता। इसके साथ ही गुरु महाराज ने पहाड़ी राजाओं को सुमति दी कि उन्हें ऐसे फ़िजूल वैर नहीं कमाना चाहिए था। अमन-अमान से रहना चाहिए था। उनका सांझा दुश्मन मुगल था जिसका मिलकर उन्हें मुकाबला करना चाहिए था। अपने धर्म, अपनी परम्परा की रक्षा करनी चाहिए थी। कब तक हम अपने मन्दिरों और शिवालयों की तौहीन होते हुए देखते रहेंगे ? गुरु महाराज ने उन्हें याद करवाया, कब तक हमारी बहू-बेटियाँ मुगल-महलों का श्रृंगार बनती रहेंगी ? कब तक कदम-कदम पर हमें कर भरने पड़ेंगे ? कब तक हमें जिम्मेवार सरकारी नौकरियों से वंचित रखा जाएगा ?

इस सब कुछ का पहाड़ी राजाओं पर न असर होना था, न हुआ। उन्होंने जैसे फैसला कर रखा था, आनन्दपुर का घेराव कर लिया।

पहाड़ी राजाओं ने जो यह सोचा था कि गुरु गोबिन्द सिंह अभी-अभी एक लड़ाई लड़ चुके हैं, उनके पास लड़ने वालों की भी कमी है, लड़ने के हथियारों की भी कमी है, कुदरत ने गुरु महाराज की इस कमी को पूरा कर दिया। उन्हीं दिनों में माझे से पांच सौ गुरुसिक्ख हथ्झियारों से लैस होकर भाई सालों के पोते और उसके साथियों के नेतृत्व में गुरु महाराज की सेना में आ भर्ती हुए।

गुरु महाराज ने नाहर सिंह को लौहगढ़ के किले की कमान सौंपी और उदय सिंह को फतेहगढ़ की। इसके साथ ही हर प्रकार के हथियार सैनिकों में बांटने शुरू कर दिए। इनमें तीर-कमान, तेग-तलवारे, खण्डे-कटारें, बिछुए और सिरोहियाँ नेज़े, भाले आदि हथियार शामिल थे।

पहाड़ी राजाओं ने अपना घेराव कई दिनों तक जारी रखा। खालसा फ़ौज किले में घिरी हुई थी। पर सिक्ख शूरवीर शाम सवेरे अपने-अपने किलों से बाहर निकलकर दुश्मन पर अचानक आ झपटते और उनका नुकसान करते रहते। यही नहीं उनका राशन भी छीन कर ले जाते। अपने किलों में किसी तरह की किल्लत न आने देते जैसे आंख मिचौनी का खेल हो।

इस जंग में भी बाबा अजीत सिंह ने अपनी बहादुरी के शानदार जौहर

दिखाए। पहाड़ी राजाओं ने स्थानीय रंगड़ों और गुजरों को अपने साथ मिलाया हुआ था। दो महीने होने को थे। खालसा फ़ौज के हौंसले उसी तरह ही चढ़ती कला में थे। भाई दया सिंह, भाई आलम सिंह और उदय सिंह दुश्मन के दांत खट्टे कर रहे थे।

वीरांवाली कभी भागां को कहती, अच्छा ही हुआ धर्म और माधवी दिल्ली समय से चले गए नहीं तो वे भी फंस गए होते। उसे अधिक चिन्ता माधवी की थी जो मां बनने वाली थी। फिर आप ही आप कहती, धर्म आज यहाँ होता तो आलम की तरह उसे भी दशमेश की सेवा करने का अवसर मिलता। इस तरह के अवसर जीवन में कभी-कभी मिलते हैं।

कभी-कभी उल्लास में भागां अपनी मां से पूछती, बीबी, कभी हमें भी अवसर मिलेगा कि गुरु महाराज के लिए जूझ सकें जैसे दया और आलम चाचा अपना जन्म सफल कर रहे हैं ? वीरां एक पल के लिए गर्व से भरी नजरों के साथ अपनी बेटी की ओर देखती और कहती, मुझे तो शायद इस तरह का मौका न मिला, मेरी उम्र साथ नहीं देगी, पर मेरी भागां को कौन रोक सकता है ? आज नहीं तो कल तुम्हें शमशीर पकड़नी होगी।

अगर यह बात है तो बेशक मैं प्रतीक्षा करके मां बन लूंगी। भागां अपनी मां के बोल सुनके, अपने भीतर की जवान-जहान औरत को समझाती। उसे अपना पुरुष और अच्छा लगता और–और उसकी वह टहल करती।

दिन, हफ्ते, महीने बीत रहे थे। पहाड़ी राजाओं की दाल नहीं गल रही थी।

आखिर हारकर उन्होंने अपनी रणनीति बदली। केवल घेराव करने की बजाए उन्होंने एक मस्त हाथी को तैयार किया ताकि फतेहगढ़ किले के मुख्य द्वार को तोड़ा जा सके। लोहे की झेल में कसा ढका हाथी किले की ओर बढ़ रहा था। गुरु महाराज ने दुनीचंद नाम के एक गुरुसिक्ख की ओर देखा और कहा, उनके पास हाथी हैं, एक हाथी हमारे पास भी है। गुरु महाराज ने दुनीचंद को आदेश दिया कि वह हाथी को बाहर जाकर रोके। दुनीचंद डर का मारा, किले की दीवार लांघ कर भागने की कोशिश कर रहा था, कि उसकी टांग टूट गई। कहते हैं जब वह घर पहुंचा, उसे सांप ने डस लिया जिस कारण उसकी मृत्यु हो गई। दुनीचंद के अमृतधारी पुत्र भाई अनूप सिंह और भाई सरूप सिंह अपने पिता की हरकत पर शर्मिंदा, उसी समय गुरु महाराज की सेना में भर्ती होने के लिए घर से निकल पड़े।

दुनीचंद भगौड़ा हो गया था, यह सुनकर गुरु महाराज ने भाई मनी सिंह के बेटे बचित्र सिंह को हाथी के साथ टक्कर लेने के लिए तैनात किया। 'सत बचन' कहकर भाई बचित्र सिंह किले के बाहर घात लगाकर बैठ गया। उधर से मस्ताया हुआ हाथी किले के मुख्य द्वार के नजदीक आया, इधर गुरुसिक्ख ने ऐसे ताक कर उस पर नेज़े से वार किया कि हाथी का माथा घायल हो गया और चिंघाड़ता हुआ वह अपनी ही फौज को कुचलता पीछे भाग गया।

यह देख पहाड़ी फौज के हौंसले टूट गए। फिर उनकी हार हुई। इस युद्ध में जसपाल के नरेश केसरी चन्द और गुजरों और रंगड़ों के जहान-उल्लाह को अपनी जान से हाथ धोने पड़े। कांगड़े काराजा घुमण्ड चंद और हंडूर का नरेश घायल हुए।

53

आज फिर गुरु महाराज निर्मोही के इस पहाड़ी टीले पर ऐसे विराजमान थे। जैसे तख़्त हो। उनके पीछे खड़ा गुरुसिक्ख दशमेश को चंवर कर रहा था।

पिछली शाम गुरु महाराज इस टिब्बे के ऊपर बैठे तलहटी का नज़ारा देखते रहे थे। उन्हें यहाँ का दृश्य हमेशा बड़ा सुहाना लगता था। सीढ़ियों की तरह हमेशा नीचे उतरती जाती पहाड़ियां। किसानों की हरी-भरी फसलें। दूर वादी में चर रही भेड़ बकरियां। सोटियाँ पकड़े चरवाहे उन्हें घेरने की बेकार कोशिश में। चांदी जैसे स्वच्छ पानी में झिलमिल करती बलखाती नदी कहीं झाड़ों में, कहीं वृक्षों में छिप रही, कहीं नटखट मस्ती हुई नाचती कूदती यह गई वह गई हो रही थी। कहीं छल-छल की आवाजें, कहीं बांसुरी की ताने, कहीं चिलगोज़ों की मधुर धुन। रंग बिरंगे पंछियों की उडार, इधर से उधर, उधर से इधर, ज़ंगली वृक्षों के झुण्डों में गुम होती निकल रही थी। निर्मोही के इस टीलों से आकाश कितना नीला प्रतीत होता था। इतना नीला आकाश तो उन्होंने कभी नहीं देखा था। हेमकुण्ड की और बात थी। वह तो एक याद थी। यह एहसास और बस। पिछली शाम इस टीले पर बैठे कलगीधर को कुछ कवित्तों का उच्चारण करना था :

> कोऊ भयो मुण्डिया, संन्यासी कोऊ जोगी भयो,
> कोऊ ब्रह्मचारी कोऊ जती अनमान बो।
> हिन्दू तुर्क कोऊ राफ़जी, इमामसाफ़ी,

मानव की जात सबै एकै पहचान बो।
करता करीम सोई राज़क रहीम उई,
दूसर न भेद कोई भूल भ्रम मानबो।
एक़ ही की सेव सब ही के गुरदेव ऐकै,
एक ही सरूप सबै एकै जोत जानबो।
देहुरा मसीता सोई पूजा ओ निवाज उई,
मानस सर्भ एक पै अनेक को प्रभाऊ है।
देवता आदेव जध गन्धर्व, तुर्क, हिन्दू,
न्यारे-न्यारे देसन के भेस को प्रभाऊ है।
एकै नैन, एकै कान, एकै देह, एकै बान,
खाक बाद आतस ओ आब को रलाउ है।
अलहु अभेख सोई पुरान ओं कुरान उई।
एक ही सरूप सबै एक ही बनाउ है।

पिछली शाम जब वह ऐसे ही टीले पर विराजमान कवित्तों का उच्चारण कर रहे थे। दूर नीचे वादी में उनका पीछा कर रहे कहलूर के तोपची ने चुपके से अपनी तोप को अमलताश के पेड़ों में ऐसे लगा लिया था कि दशमेश की कलगी के झिलमिल कर रहे नग ठीक उसके निशाने पर थे। इससे पहले कि वह तोड़े को निशाना बना सकता, सांझ पड़ गई। अजमेर चंद के तोपची की दुष्टता धरी की धरी रह गई।

आज फिर गुरु महाराज उसी टीले पर विराजमान थे। अभी-अभी पहुंचा सरहिन्द का वज़ीदखान और कहलूर का अजमेर चंद खुश थे, दुश्मन की अनख खत्म की जा रही थी। इधर गुरु महाराज सोच रहे थे कि उनका अगला दस्ता निर्मोही पहुंच चुका था। निर्मोही की कच्ची गढ़ी को उन्होंने एक प्रकार से घेर लिया था। वे सोचते आज पहले हाथ ही फैसला हो जाएगा। तोपची ने ठीक निशाने पवर तोप लगाई हुई थी। गुरु गोबिन्द सिंह सामने टीले पर आ बैठे थे। एक गोला और कहानी खत्म हो जाएगी। न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। पिछली दो लड़ाइयों का बदला वे एक ही बार में ले लेंगे। गुरु महाराज के बिना खालसा सेना की मजाल नहीं होगी कि मुगल और पहाड़ी फौजों का मुकाबला कर सके। निर्मोही की जंग निर्णायक जंग होने जा रही थी।

गुरु महाराज की कलगी के हीरे मोती, पन्ने झिलमिल कर रहे थे कि

तोपची ने गोला दागा। एक धमाका हुआ। जंगली पंछियों की चिलचिलाहट और गुरु महाराज के पीछे खड़ा चंवर कर रहा सेवादार चिथड़ा-चिथड़ा हो गया, उसकी बोटी-बोटी चारों ओर हवा में बिखर गई।

यह कौन था ? गुरु महाराज ने अचानक उठकर कमान सूत ली और उनकी नज़र नीचे लगी अमलताश के झुण्ड में तोप पर जा पड़ी। इसे पहले के तोपची दूसरा गोला दाग सकता, गुरु महाराज ने अपना तीर छोड़ा, तीर तोपची के सीने में जा लगा और वह वहीं का वहीं ढेरी हो गया। अब दूसरा तोपची आगे आया। यह मौका वे हाथ से गंवाना नहीं चाहते थे यह देखकर गुरु महाराज ने एक और तीर छोड़ा दूसरा तोपची भी वहीं का वहीं उल्टा हो गया।

अब दुश्मन की सेना की टुकड़ी के पास और कोई तोपची नहीं था, इधर गढ़ी में बैठी खालसा सेना ने जब यह देखा, वे दुश्मन पर टूट पड़े। एक और घमासान झड़प। जो वज़ीदख़ान ने यह सोचा था कि निर्मोही की कच्ची गढ़ी को वे एक ही हमले में तहस-नहस कर देंगे एक ख्याल साबित हो रहा था। यह तो गुरु महाराज की विशेष रणनीति थी कि वे अपने ठिकाने से बाहर आकर दुश्मन का मुकाबला करते थे ताकि अपने शहर को कोई हानि न पहुंचे। ऐसे ही उन्होंने पाऊंटा साहिब में किया था। ऐसे ही वे आनन्दपुर में कर रहे थे। हमेशा उनकी कोशिश होती, वे आनन्दपुर से कुछ कोस दूर दुश्मन को खदेड़ें। निर्मोही भी इसी प्रकार का ठिकाना था जो दशमेश ने निर्धारित किया हुआ था। आनन्दपुर से इतना दूर कि शहर को कोई नुकसान न हो और आनन्दपुर से इतना नजदीक कि आवश्यकता पड़ने पर वहाँ से कुमक पहुंच जाएं, किलो से हथियार मंगवाए जा सकें।

और बिल्कुल ऐसे ही निर्मोही की जंग में हुआ। अभी झड़प शुरू ही हुई थी कि आनन्दपुर से अतिरिक्त खालसा पहुंच गए और आते ही वे मुगल और पहाड़ी सैनिकों से जूझने लगे।

सिक्ख शूरवीरों को यहाँ के ग्रामीणों के खिलाफ कई शिकायतें थीं। सबसे बड़ा गिला यह था कि वे लोग खालसों के घोड़ों और हाथियों के लिए चारा जुटाने में विघ्न डालते थे। हाथी अगर जंगल में नहीं ठहरेंगे तो और कैसे उनका पेट भरेगा ?

उधर एक शिकायत मुगल फ़ौज को भी थी। वज़ीदखान बार-बार अजमेरचंद को ताने मारता, उसकी फ़ौज पूरी तनदेही से नहीं लड़ती थी।

लड़ाई का सारा भार मुगल प्यादों या खच्चरों की टफकड़ी पर पड़ रहा था। उनके फौजी हाकिम सिर्फ चौधर करते थे, मज़ाल है जो कभी कोई निजी खतरा उठा ले।

और इधर गुरु गोबिन्द सिंह पहाड़ी के टीले से अपनी सेना की अगुवाई ही नहीं कर रहे थे, तीरों पर तीर छोड़ रहे थे, गोलियों के साथ गोलियाँ चला रहे थे और अगर जरूरत पड़े तो घोड़े पर सवार हो शमशीर उठाकर मैदान में उतर पड़ते थे।

निर्मोही की लड़ाई में फिर एक बार सिक्ख शूरवीरों ने जान की बाजी लगाकर दुश्मन का मुकाबला किया, खालसा फ़ौज लड़ती थी अपनी जीवन-पद्धति के लिए, अपनी मान्यताओं के लिए, अपनी परम्पराओं के लिए। खालसा फ़ौज लड़ती थी सामाजिक न्याय के लिए, आर्थिक संतुलन के लिए। खालसा फ़ौज लड़ती थी सबके भले के लिए।

तीन घण्टें तेगें चलती रहीं, सिर खरबूजों की तरह गिरते रहे। तीन घण्टे तीर बरसते रहे और छातियाँ बींधी जाती रहीं, तीन घण्टे तोपों के गोले ऐसे दागे जाते रहे जैसे घनघोर काले गरज रहे बादलों में बिजली चमकती है।

फिर लाशों के अंबार, फिर लहू की तलैयां, फिर घायलों की हृदय बेधक पुकार।

एक बार फिर पहाड़ी सैनिकों को यह प्रमाणित कराना कि गुरु गोबिन्द सिंह को हराना आसान नहीं। एक बार फिर मुगल फ़ौज को नाकामयाबी का एहसास। वज़ीदखान को अब इस बात का यकीन हो गया था कि गुरु गोबिन्द को काबू करने के लिए तैयारी करनी होगी, भारी लश्कर इकट्ठा करना होगा और अगर जरूरत पड़े तो लम्बे अरसे के लिए जूझना होगा। इधर गुरु महाराज भी एक के बाद एक लड़ाइयाँ लड़कर जैसे ऊब गए हों। अभी वे निर्मोही में ही थे। शहीद हुए गुरुसिक्खों का संस्कार करवाया जा रहा था, घायलों का इलाज हो रहा था कि बसाली का नरेश गुरु महाराज से मिलने आया। इतनी देर से उसका तकाज़ा था कि गुरु महाराज उसकी रियासत में चरण डालें अब तो वह स्वयं गुरु महाराज को लेने आ गया था। गुरु ने सोचा अगर उन्होंने कुछ समय अमन चैन के साथ बिताना है तो बसाली से अधिक सुन्दर और कोई स्थान नहीं था। एक तो नितांत एकांत दूसरे वहाँ तक पहुंचने का रास्ता बड़ा उबड़-खाबड़ था। कोई घिसटता-घिसटता ही वहां पहुंच सकता था।

गुरु महाराज बसाली जाने के लिए राज़ी हो गए। उनमें से एक नरेश गुरु गोबिन्द सिंह जी का अनुयायी था और उसने दशमेश को अपनी रियासत में आमंत्रित किया था, धार के राजाओं के यह जानकर तन बदन में आग लग गई। खास तौर पर अजमेरचंद बहुत छटपटा रहा था। बसाली के रास्ते में कलमोट के ग्राम वासियों को उसने समझाया कि गुरु महाराज की उनके पांव के पास से गुजर रही फ़ौज को वे लोग रोकें। ऐसे ही करने की उन्होंने कोशिश की। अजमेरचंद की बची-खुची सेना उन्हें राह ही नहीं दे रही थी, बल्कि मदद भी कर रही थी। यह देख गुरु महाराज जो इससे पहले बसाली पहुंच चुके थे, अगली सुबह अपने अंगरक्षकों के साथ कलमोटिया और कहलूर के सैनिकों पर टूट पड़े और उनके ऐसे दांत खट्टे किए, ऐसी मार मारी कि उन्होंने भी इसी में अपना भला समझा कि खालसा पंथ की हकूमत मान ली जाए।

कुछ समय बसाली रह कर गुरु महाराज आनन्दपुर लौट आए 54 मुकाम बसी रावां, रोहतास के नजदीक ज़िला जेहलम। रावां खत्री की हवेली।

गर्मियों के दिन हवेली की खुली छत पर तारों से भरे आकाश के नीचे एक नन्हीं लड़की अपने पलंग पर लेटी सोचों में डूबी है। इस कन्या का नाम साहिब देवी है। बाकी घर वाले अभी सोने के लिए छत पर नहीं आए। बिल्कुल अकेली तारों की छांव के नीचे लेटी साहिबों के कानों में बार बार ये बोल गूंजने लगते हैं—आपसे बड़ा महापुरुष कौन हो सकता है ?

और उसे ऐसे महसूस होता है, जैसे गाढ़ा-गाढ़ा, ताज़ा लहू उसकी धमनियों में मचलने लगता हो। उसका अंग-अंग उसे सरसार हो रहा लगता है। जेहलम दरिया की ओर से ठण्डी मीठी पुरवाई में वह अलसाने लगती है।

जैसे सपना हो अपनी मां सो उस शाम सुनी कोई साखी उसकी आंखों के सामने मूर्तियों एक अटूट पंक्ति की तरह तैरने लगती है।

दूर श्रीनगर से चलकर कश्मीरी पण्डितों का एक जत्था आनन्दपुर गुरु तेग बहादुर जी के दरबार में हाज़िर होता है। उनका मुगल सूबेदार उनके जनेऊ उतरवा रहा है। उन्हें मुसलमान बनने के लिए मज़बूर कर रहा है। वे लोग पण्डित कृपाराम के नेतृत्व में अमरनाथ की यात्रा में जाते हैं। पण्डित कृपाराम के सपने में दर्शन देकर शिव जी उन्हें कलयुग के रक्षक नौवें बाबा नानक के पास भेजते हैं। शिव जी ने उन्हें कहा, वही आपकी रक्षा कर सकते

हैं। सच्चे पातशाह हैं। गुरु तेग बहादुर जी ने सुना तो उसी क्षण अंतर्ध्यान हो गए। इतने में उनके एक ही साहिबज़ादे दरबार में आते हैं। खेलते-खेलते उधर आ निकले थे गुरु पिता को ऐसे चिंताओं में डूबे देखकर पूछते हैं। आप ऐसे चिन्ता में क्यों डूबे हो ? गुरु महाराज उन्हें कश्मीरी पण्डितों की मजबूरी से अवगत करवाते हैं। फिर इनकी कैसे मदद हो सकती है ? साहिज़ादा सवाल करते हैं। बस एक ही उपाय है, अगर कोई महापुरुष उनके लिए अपना शीश कुर्बान करने के लिए तैयार हो जाए तो ये बच सकते हैं। गुरु तेग बहादुर जी के मुखारबिंद से यह सुनकर साहिबज़ादा जल्दी से कहते हैं, आपसे बड़ा महापुरुष और कौन हो सकता है ?

यह सुनकर सच्चे पातशाह, दिल्ली जाते हैं जहाँ उन्हें शहीद कर दिया जाता है।

यह चित्र जब उनकी आंखों के सामने आता है, साहिबां की पलकों से गर्म-गर्म आंसू निकल आते हैं, जैसे सगे सम्बन्धियों का सिर कलम कर दिया गया हो।

कैसा वह शूरवीर होगा जिसने अपने गुरु पिता से कहा कि आपसे बड़ा महापुरुष कौन हो सकता है ? कितनी सहानुभूति फ़रियादी के लिए ! कितना दर्द, मजलूम के लिए ! कितनी लालसा न्याय के लिए ! कितनी अनख। कितना आत्मसम्मान।

और साहिबां ने देखा सामने आकाश में एक तारा टूट रहा था। पता नहीं उसके मन में क्या आई, उसने जल्दी-जल्दी अपने सुन्दर रेशमी बालों में से एक तार पकड़कर उसमें एक गांठ लगाई। फिर इससे पहले कि तारा बुझे उसने अपने रेशमी बाल की गांठ खोल भी ली।

अब जो चाहे, उसकी मुराद पूरी हो जाएगी। यही तो हर कोई कहता था। टूटते तारे को देखकर चोटी के किसी बाल को गांठ लगाकर अगल खोल दी जाए तो मन की मुराद पूरी हो जाती है।

पर उसके मन की मुराद क्या थी ? साहिबां ने अपने आपको भीतर से टटोला। अध-खिली कली, उसके भीतर इतनी हलचल थी। लाख अरमान जैसे करवटें ले रहे हों और फिर इस सारी उलझन में से एक चित्र उभरता है। चम-चम करता मुखड़ा, एक जलाल माथे पर दमक रहा फूल पत्तियों के होठ खुलते हैं और उसके कानों में आवाज़ पड़ती है आप से बड़ा महापुरुष कौन हो सकता है ? जैसे कोई नगमा हो।

और साहिबां आने अल्हड़ भोलेपन में उस चित्र को सीने से लगा लेती है।

मुश्किल से तेहरवें में कदम रखा, जवानी की दहलीज़ पर खड़ी रांवा खत्री की बेटी साहिबां अपने आप को किसी के अर्पण कर देती है। मन ही मन किसी की हो जाती है। वह जो दसवां गुरु नानक है। गुरु गद्दी पर बैठा 'सच्चा पातशाह' कहलवाता है।

यही तो उसकी जन्मपत्री में लिखा है। वह रानी बनेगी। राजमहलों में उसकी डोली जाएगी।

यह सोचकर उसे अपना-आपा अच्छा लगता है। आसपास में से जैसे खुशबू फूट रही हो। ढोलक की थाप और सुहाग के गीत गाए जा रहे थे।

चन्दन दे उहले क्यों खड़ी ?

बाबल वर लोड़िए। धीए, किहा वर लोडिए ?

तारियाँ चों चन्न ?

चन्ना बिच्चों कृष्ण कन्हिया वर लोडिए।

साहिबां तो बस उसके गले में सुहाग-हार डालेगी जिसने अपने पिता से कहा था—"आपसे बड़ा महापुरुष कौन हो सकता है ?"

और ऐसे नग़मों की गुंजार में उस मासूम लड़की की आंख लग जाती है। सारी रात मग्न हुई वह सोई रही।

बहुत दिन नहीं गुज़रते कि उसके मां बाप को फिक्र होने लगती है। लड़की विवाह योग्य हो रही थी। यौवन का उभार उस पर आ रहा था। ऊंची,लम्बी, गोरी, निर्मल नीली आंखें, सुनहरी घुंघराले केश, कोमलांगी, जैसे कोई राजकुमारी हो। कम बोलती, कम खाती, कम सोती, आंठों पहर जैसे किसी याद में खोई हो। गुम-सुम या धर्म-स्थान पर जाती या गुरुबाणी का पाठ करती रहती।

रावां खत्री को और चिन्ता हुई। लड़की के लिए वर तो ढूंढन होगा। पर मुसीबत यह थी कि उसकी जन्मपत्री में और ही कुछ लिखा था। उसे तो रानी बनना था। उसे तो महलों में ब्याह कर जाना था। और आगे पीछे सभी राजा तो मुगल थे। उनका ही शासन था।

और फिर उसकी मां की आह निकल गई। अपने मां-बाप को उसके लिए वर की तलाश में परेशान होते देखकर साहिबां ने उनसे कहा, मैंने तो स्व्वयं को कलगीधर के समर्पित किया हुआ है।

दशमेश ! बाजां वाले। नीले घोड़े पर सवार। दसवां गुरु नानक। सच्चा पातशाह। दो जहान का मालिक। लोक परलोक का रझक। निपत्तियों की पत। न्यौटों की ओट। बेआसरों का आसरा। साहिबां के पिता ने सुना और उनके होश उड़ गए। कहाँ बस्सी रावां कहाँ आनन्दपुर। कहाँ रावां खत्री और कहाँ अमृत का दाता।

और इस सबसे ऊपर जब उन्होंने सुना कि गुरु महाराज तो शादीशुदा हैं, उनके आंगन में तो मां जीतो जी की कोख से एक बालक भी खेलता था, अजीत। कैसा सुन्दर नाम था।

तो फिर क्या ? साहिबां सोचती, यह सौदे हर रोज़ थोड़े ही होते हैं। वह तो स्वयं को बाज़ वाले के हवाले कर चुकी थी और किसी का सोचना, और किसी की ओर आंख उठाकर देखना पाप था।

रावां खत्री सोच में पड़ गया, उसकी पत्नी हर उपाय कर बैठी साहिबां टस से मस नहीं हो रही थी। गुरु गोबिन्द सिंह और कोई नहीं, दिन-रात उनकी वाणी का पाठ। दिन-रात उनके सपने। दिन रात उनकी कहानियां, धर्म स्थान क्या, धर्मस्थान से बाहर आनन्दपुर की यात्रा करके आए गुरुसिक्खों के मुंह की ओर देखती रहती। उनसे गुरु महाराज की कहानियाँ सुनती रहती। उन्हें अपनी हवेली में बुलाकर उनकी खातिर करती रहती।

यह तो पागलपन है। रावां खत्री उसका टेवा बार-बार पढ़वाता। यह तो राज करेगी। टेवे में तो यही लिखा था। एक के बाद एक वह कई पत्री पढ़ने वालों से उसका टेवा पढ़वा चुका था। हरेक यही कहता, यह लड़की किस्मत वाली है। इसके भाग्य में राज भोग लिखा है, यह तो रानी बनेगी पर कब ? कैसे ?

वर्ष पर वर्ष बीत रहे थे। कोठे का कोठा हो गई थी, वह आगे पीछे, अड़ोसी-पड़ोसी, जान पहचान, दोस्त, रिश्तेदार प्रतीक्षा कर करके थक गए थे। ऐसे कोई अपनी जाई को घर थोड़े ही बिठा रखता है। इकलौती उसकी बेटी और सुन्दर कितनी थी जैसे चांद का टुकड़ा हो। वह तो किसी आंगन का श्रृंगार होगी। उसे रिश्तों की क्या कमी।

और इधर साहिबां थी, जैसे कोई महारानी हो। बिल्कुल वैसा ही पहरावा। बिल्कुल वैसे ही उठती-बैठती। बिल्कुल वैसे ही हर किसी से सम्बोधित, होती। बिल्कुल वैसे ही हर किसी के काम आकर खुश होती।

कई बरस बीत गए थे। पर साहिबां में कोई फर्क नहीं आया। वही लगन वहीं निर्मलता वही श्रद्धा।

आखिर हारकर रावां खत्री और उसकी पत्नी लड़की को लेकर आनन्दपुर के लिए चल पड़े। लाखों चाव से साहिबां उनके साथ हो ली। जैसे-जैसे बड़ी हो रही थी उसने स्वयं को 'माता' कहलवाना शुरू कर दिया था। माता की तरह उदार ! माता की तरह सुह्रद ! माता की तरह हर किसी के काम आकर खुश।

आनन्दपुर पहुंचकर उनकी आंखें चौंधियाँ कर रह गई। गुरु महाराज की अद्वितीय छवि। वे तो राजाओं के राजा थे। शहंशाह ! उनके मुखड़े का जलाल, उसका तेज सहा नहीं जाता था। साहिबां ने दर्शन किए और उसे लगा, वे तो बिल्कुल वे थे जिन्हें वह पूजती थी। जिनका ध्यान धरकर उसका तनमन पवित्र होता था। उनकी तो जैसे जन्म जन्मांतरों की पहचान हो। नीले घोड़े पर सवार, उसका बाज़ वाला कलगीधर।

रावां खत्री, उसकी पत्नी और साहिबां ने अमृतपान किया। जितने दिन वे आनन्दपुर रहे, सुबह शाम दीवान में हाज़िर होते। कभी गुरु महाराज के दर्शन हो जाते, कभी न भी होते। जब साधु संगत में दर्शन न कर सकती, साहिबां गुरु महलों के चक्कर लगाकर अपनी मनोकामना पूरी कर लेती। दशमेश की एक झलक और उसका मन शांत हो जाता।

कुछ दिन, और जैसे गई थी वैसे के वैसे अपने मन की मुराद को अपने दिल में छिपाए साहिबां अपने मां-बाप के साथ बसी रावां लौट आई।

पहले वह लोगों से आनन्दपुर के वासी की कहानियाँ सुना करती थी, अब वह लोगों से दशमेश की कहानियाँ करती रहती। उनका आकार उनके मुखड़े की आभा। उनकी कलगी के चम-चम करते नग। उनके शाही ठाठ। उनके उपासकों की भीड़। उनके घोड़े, उनके बाज, उनके तीर और तरकश। उनके खण्डे और तलवारें उनके नेज़े और बरछे। उनके दरबार के कवि और चित्रकार, जिक्र करने लगती तो उसका जैसे मुंह न थकता हो। बोलती जाती, बोलती जाती।

उसे गुरु महाराज की स्तुति करके जैसे शांति मिलती हो। उसका मन शांत होता था।

दिन, सप्ताह, महीने, एक वर्ष, दो वर्ष बीत गए और फिर खबर आई। माता जीतो जी का देहांत हो गया था। वे उदास होंगे। वे अकेले होंगे। साहिबज़ादों की पालना कौन करता होगा ? फतेह तो अभी छोटा था। उठते-बैठते साहिबां को यही चिन्ता खाती रहती।

और फिर वह मां-बाप को लेकर फिर आनन्दपुर चल पड़ी। उम्र भर की प्रतीक्षा, आनन्दपुर पहुंचते ही सबसे पहले साहिबां के माता-पिता गुरु महाराज के हाज़िर होकर निवेदन कर रहे थे।

"सच्चे पातशाह ! जबसे इसने होश संभाली है, यह हमारी बच्ची आपके प्रति समर्पित है। हर कोई कहता यह रानी बनेगी। इसकी डोली महलों में जायेगी। इतने वर्ष हमने इसे दाब छिपा कर रखा है। जैसे अमानत हो। अमानत तो थी। इस लड़की को हर कोई माता कहकर सम्बोधित करने लगा। अब जब माता जीतो जी नहीं रहीं, आपकी अमानत आपके चरणों में हाज़िर है।"

गुरु महाराज ने हाथ जोड़े, सिर निवाया, सुहाग के लाल जोड़े में एक दुल्हन की तरह सजी सुन्दरी की ओर देखा, हाथों पैरों पर मेंहदी, गहनों से लदी जैसे आसमान से उतरी कोई अप्सरा हो।

"सच्चे पातशाह ! कई वर्ष हुए मैंने इसे कश्मीरी पण्डितों की गुरु तेग बहादुर जी के हाज़िर होकर फरियाद करने की वार्ता सुनाई थी। अब साहिबां की मां बोल रही थी, उनका यह कहना की कश्मीरी पण्डितों का संकट दूर किया जा सकता है अगर कोई महापुरुष उनके लिए अपने शीश का बलिदान दे और हजूर का यह सुनकर फरमाना कि आपसे बड़ा महापुरुष कौन है, इस बच्ची को आपके इन बोलों ने जैसे मोहित कर लिया हो। उस क्षण से यह तुम्हारी हो गई।"

हम यहाँ पहले भी हाज़िर हुए थे। रावां खत्री निवेदन कर रहा था। हमने अमृतपान किया। हजूर के दर्शन किए। पर तब आपकी रची-बसी गृहस्थी को देखकर हमारी हिम्मत न हुई। जैसे आए वैसे ही खाली हाथ लौट गए। अब, पर अब.........रावां खत्री के बोल जैसे एक पिता के होठों में फंस गए हों।

सब कुछ ठीक है। पर कलगीधर की मजबूरी साहिबज़ादा फतेह सिंह जी के जन्म से कुछ समय पहले उन्होंने ब्रह्मचर्य ग्रहण कर लिया था।

तो फिर क्या ? जैसे वह कह रही हो, गुरु महाराज की मजबूरी जानकर, दुल्हन ने झुके हुए अपने शीश को उठाकर श्रद्धा में ओत-प्रोत नज़रों से दशमेश की ओर निहारा। थिरक रहे होंठ, उम्र भर के संजोए प्यार में तमतमा रहा मुखड़ा। मंजिल पर पहुंच किसी की कंपकंपाती पलकें। प्यार में विभोर, उसका अंग-प्रत्यंग थिरक रहा था। "तो फिर क्या ?" उसके नैनों ने जैसे फिर यह कहा :

'सतगुरु आपके चरणों की यह दासी, अब फिर साहिबां की माता बोल रही थी, जब अपने बंद कमरे में बैठी बाबा नानक का तुखारी राग में यह शबद गाती थी, हमारे सारे परिवार को रुला-रुला कर मारती रही है।

साजन देसि विदेसी अड़ें सनेहड़े देवी,
सारि समाले तिन सजणां, मुंधं नैन भरेदी।
मुंध नैन भरेदी गुण सारेदी,
किउ प्रभ मिला पियारे।
मारणु पंधु न जानउ विखड़ा, किउं पाइअै पिर पारे।

साहिबां की मां जब शब्द की इस पंक्ति पर पहुंची तो बाकी शब्द साहिबां ने एक हुलार में गाना शुरू कर दिया।

सतगुरु सबदी मिले विछुनी, तनु मनु आगे राखै।
नानक अमृत बिरखु महारस फलिया, मिति प्रीतम रसु चाखै।
(तुखारी महला-1)

'बिरख महारस फलिया', बार-बार ये बोल गा रही थी। कभी कैसे, कभी कैसे। एक नशे-नशे में। एक उन्माद में। साहिबां ने शबद को समाप्त किया और आगे पीछे एक सकता छा गया है।

झर-झर कर रहे, हर आंख में फूटे आंसू, बिरख महारस फलिया, सुन सुनकर आप ही आप सूख गए थे।

कितनी देर खामोशी छाई रही। जैसे कुदरत कोई गांठ खोल रही थी। कोई गांठ मार रही थी।

फिर खामोशी टूटी।

सर्वज्ञ, बाज़ वाले ने स्वीकृति दी।

बाहर रणजीत नगारे पर चोट मारी जा रही थी। लंगर तैयार था। कुछ दिन पर रावां खत्री और उसकी पत्नी खुशी-खुशी अपनी बेटी को दशमेश के पल्ले बांध कर अपने गांव लौट गए।

माता साहिब देवां जी महलों में ऐसे आए जैसे वर्षों की इस घर के साथ जान-पहचान हो। कौन सी चीज कहाँ रखी है ? कौन-सा काम कैसे करना है ? किसकी क्या जरूरत है ? जैसे उन्हें हर किसी की जानकारी हो। उन्होंने समूचा घर-बार संभाल लिया। बच्चों पर तो जैसे जान देते हों।'

एक उम्र की तपस्या सफ़ल हो गई थी। खुशी-खुशी जीवन की गाड़ी चल पड़ी।

चारों तरफ माता साहिब देवां। माता साहिब देवां होती रहती। जैसे उनके बिना कोई काम चलता ही न हो। क्या घर, क्या बाहर, हर जुबान पर माता साहिबां देवां जी की महिमा थी।

दिन, सप्ताह, महीने, वर्ष बीतने लगे। अब साहिबजादा फतेह सिंह चलते-फिरते थे। उन्हें पढ़ने के लिए डाला गया। पढ़ने जाते, खेलने जाते, घुड़सवारी करते। शस्त्र-विद्या की भी उनहें बाकी साहिबज़ादों की तरह बाकायदा शिक्षा दी जाने लगी।

और माता साहिबा देवां जी क्या करें ? ढेर सारा समय उनका बच जाता था। एक दिन, दो दिन, दस दिन, उन्हें जैसे यह खाली समय खाने को दौड़ता हो। एक ऊब उन्हें अपने अंदर महसूस होने लगी।

घर के काम काज के लिए सेवादार थे। खाने-पकाने के लिए अलग, ऊपर के लिए के लिए अलग, धुलाई-सफाई के लिए अलग।

बस एक गुरु महाराज की टहल थी। यह ज़िम्मेदारी वे अपने हाथों से कदाचित् न गंवाती। पर गुरु महाराज बादशाह थे, कभी उन्हें मौका देते कभी न भी देते।

दिन प्रति दिन की इस खालीप में माता साहिब देवां जी के अन्तर मन के किसी कोने में सोई पड़ी मातृ-वात्सल्य की भावना जाग पड़ी। एक उल्लास, एक कमी का एहसास। एक लालसा भीतर की एक वीरान नुक्कड़ ने जैसे अचानक पासा पलट दिया हो।

सब कुछ था फिर भी एक अनहोंद का प्रभाव-सा उन्हें महसूस होता। एक मीठी-मीठी पीड़ा जैसे कहीं हो।

कहाँ था यह सुहाना दर्द ?

यहाँ ? वहाँ

कहीं भी तो नहीं, पंथ के मालिक की अर्धांगिनी को कैसे कोई कमी हो सकती है ?

पर फिर ऐसे उदास क्यों रहने लगी थीं ? ऐसे रुआंसे-रुआंसे क्यों वे लगती थी ? कभी-कभी स्वयं झर-झर उनके आंसू गिर पड़ते। बिना किसी कारण। उन्हें कुछ समझ नहीं आ रही थी। कोई देखे तो क्या कहेगा ?

ऐसा लगता जैसे अंदर की यह कोई टीस उनके पीछे ही पड़ गई हो। अब तो उन्हें जैसे न खाना अच्छा लगता न पीना अच्छा लगाता हो। एक अजीब तरह की तनहाई उन्हें परेशान करने लगी। उनके भीतर की मीठी

पीड़ा, दिन प्रतिदिन मीठी कम और दर्दीली अधिक लगने लगी थी। पलकें थीं कि हर समय भिगी-भिगी रहने लगी थीं। उनसे जैसे स्वयं पर काबू न पाया जा रहा हो।

और फिर एक दिन ऐसे अकेले, उदास-उदास, रुआंसे-रुआंसे बैठे, माता साहिब देवां जी को अकस्मात् यह अहसास हुआ, उनकी यह अनदेखी पीड़ा कहाँ थी, उनके दर्द की जैसे उन्होंने निशानदेही कर ली। वह कसम उनके सीने में थी। यह मीठी-मीठी दर्द-भरी पीड़ा उनके अंदर उनके कलेजे में थी।

हाए सोनिए ! यह तो वायदा खिलाफी थी। यह तो पाप था। उनके सिरताज का प्रण। उन्होंने स्वयं इसे स्वीकार किया था, अब प्रण को पालने की इन्होंने रजामंदी दी थी। यह कैसे हो सकता है ? यह कभी नहीं होगा।

पर जैसे किसी को भूख लगती है। तो कुछ खाए बिना शांति नहीं आती। जैसे किसी को प्यास लगती है तो कुछ पीए बिना तसस्ली नहीं होती। कुछ इस तरह की हालत थी माता साहिब देवां जी की। दिन रात एक खुरचनी-सी उन्हें लगी रहती। दिन-रात, रात-दिन उन्हें लगता जैसे उनके अंदर कोई खाई थी जो गहरी और गहरी होती जा रही थी। उनकी तनहाई और-और खामोश हो रही थी।

उन्हें स्वयं से जैसे भय आने लगा हो। लाख पाठ करते, लाख अपने सिरताज की सेवा में मन लगाते, कोई शून्य था जो गुब्बारे की तरह फूल रहा था। जितना अधिक फूल रहा था, उतना अंदर से खाली हो रहा था।

और फिर उस दिन वह गुब्बारा फट गया। माता साहिब देवां जी अपने सरताज के साथ अकेले उनके चरणों में गिर पड़ीं। चरणों में गिरीं वे फूट-फूट कर रो रहीं थीं। जैसे आंसुओं की झड़ी बह निकली हो। उन्होंने गुरुदेव के चरणों को अपने गर्म-गर्म आंसुओं के साथ धो दिया था।

घट-घट की जानने वाले उन्हें बताने की ज़रूरत नहीं थी कि हर औरत मां बनना चाहती है। कि हर औरत कुदरत के सरोवर में अपना बिम्ब छोड़ना चाहती है कि हर औरत मां बनकर प्रकृति-प्रति अपना कर्ज उतारना चाहती है। पर उनका ब्रह्मचर्य का प्रण, इस हकीकत को झुठलाया भी तो नहीं जा सकता था।

और गुरु महाराज ने माता साहिब देवां की ओर प्यार भी नज़रों से देखा और अथाह करुणा में भर कर फरमाया, आपकी एक बेटे की मांग है ? आप

एक बेटे की मां बनना चाहती हैं ? 'हाँ' माता साहिब देवां जी ने अपने सरताज की ओर देखते हुए कहा, उनकी पलकों से आंसू झड़ रहे थे।

मैं आपको लाखों बेटे देता हूँ। आज से आप सभी खालसा पंथ की माता कहलाओगे।

माता साहिब देवां जी ने सुना और जैसे एक विस्फोट हो, उनकी आंखें खुल गईं। अपने सरताज के बाहुपाश में आनन्द-मग्न हुई वे मुदित हो गईं। जैसे फूल में खुशबू बस जाती है।

55

कोई समय था जब गुरु महाराज का आदेश था कि आनन्दपुर वासी गुरु महाराज के लंगर में दोनों समय भोजन किया करेंगे। हर कोई उसमें अपनी श्रद्धा के अनुसार अपनी सामर्थ्यानुसार हिस्सा डाल सकता है, पर लंगर सांझा होगा। वह आनन्दपुर शहर के शुरू-शुरू के दिन थे।

अब जब बढ़ता-बढ़ता शहर कहीं का कहीं पहुंच गया था, हर प्रकार के गुरु सिक्ख दूर-नजदीक से वहाँ आ गये थे, आनन्दपुर वासियों ने अपना-अपना चुल्हा चौका बना लिया था। पर गुरु महाराज की हिदायत थी कि हरेक घर में कोई भी गुरुसिक्ख किसी समय भी लंगर के लिए किवाड़ खटखटा सकता है। गुरु सिक्ख किसी को निराश नहीं लौटायेगा। इस प्रकार की सांक्ष, इस तरह की परम्परा नए स्थापित हो रहे पंथ का विशेष अंग थी।

फिर एक दिन गुरु महाराज के मन में आई कि देखा जाए, उनके गुरु सिक्ख कहाँ तक इस आदेश की पालना कर रहे थे। उन्होंने चुपके से एक परदेसी गुरुसिक्ख का वेश बनाया और कुछेक आनन्दपुर वासियों के एक के बाद एक द्वार खटखटाने शुरू कर दिए।

बेशक भोजन के लिए असमय था, पर किसी परदेसी को, किसी जरूरतमंद को निराश थोड़े ही लौटाया जा सकता है। गुरु महाराज ने कई घरों को आज़माया, हर आंगन में उन्हें निराश होना पड़ा।

आखिर दशमेश ने एक किवाड़ खटखटाया। यह घर भाई नंदलाल जी का था। भाई नंदलाल जी के साथी गयासुद्दीन ने दरवाज़ा खोला। यह वे सज्जन थे जो भाई नंदलाल जी के साथ आनन्दपुर गुरु महाराज की सेवा में हाज़िर हुए थे। इनसे किसी ने पूछा, आप किस के मुरीद हो ? गयासुद्दीन ने जवाब दिया, भाई नंदलाल जी के, यह सुनकर कुछ श्रद्धालुओं ने एतराज़

किया। खास तौर से गुरु महाराज की संगत में बैठे उसे ऐसे नहीं कहना चाहिए था। गुरु महाराज बहस सुनकर कहने लगे, इसमें कोई एतराज़ वाली बात नहीं। भाई नंदलाल मेरे हैं, यह भाई नंदलाल जी के हैं। दोनों मेरे हैं। प्रशाद छकना है। भेष बदलकर गुरु महाराज ने भाई गयासुद्दीन से विनती की।

गयासुद्दीन दरवाजे में से अतिथि को आदर के साथ भीतर लाए और भाई नंदलाल जी को उनकी आवश्यकता की जानकारी दी। भाई नंदलाल जी रसोई में स्वयं भोजन तैयार कर रहे थे। तुरन्त अपने मेहमान के हाज़िर हुए और कहने लगे, अगर आपको जल्दी हो तो अधपका पकाया भोजन हाज़िर है, पर अगर कुछ समय रुक सको तो इतने में भोजन तैयार हो जाएगा। जो कुछ जैसा भी है मुझे खिला दो, मैं जल्दी में हूँ, अतिथि ने कहा।

भाई नंदलाल जी रसोई में गए और अधपकी सब्जी, कच्चा गुंथा हुआ आटा और मक्खन का कटोरा लेकर हाज़िर हुए और क्षमा-याचना करते हुए मेहमान को जो भी भोजन तैयार था पेश किया।

गुरु महाराज ने भाई नंदलाल और गयासुद्दीन को अब गले से लगा लिया और प्यार किया। 'मुझे ऐसे ही गुरुसिक्खों की तलाश है, गुरु महाराज ने फरमाया।'

भाई नंदलाल जी के घर से निकलकर गुरु महाराज अपने महलों में लौटे। वैसे का वैसा उन्होंने भेष बनाया हुआ था। वैसे का वैसे उन्होंने किवाड़ खटखटाया जैसे और घरों का दरवाजा उन्होंने खटखटाया था। सेवादार आया। उन्होंने घर की लक्ष्मी को बुलाने भेजा।

कुछ समय बाद माता साहिब देवां जी आईं। प्रशादि छकना है। दरवाज़े पर खड़े अतिथि ने विन्नती की।

माता साहिब देवां ने सुना और उनको अपने साथ अंदर महल में ले गईं आदर के साथ बिठाया। अतिथि सत्कार के लिए पहले उनके चरण धुलवाने लगीं।

अतिथि के पाँवों पर पानी डालकर माता जी उन्हें धोने लगे तो उनको लगा यह तो गुरुदेव के चरण हैं। एकदम उनके मुखड़े की ओर देखा। अब गुरु महाराज की हंसी न रुक सकी।

भाई नंदलाल और माता साहिब देवां जी गुरु महाराज की परीक्षा में सफल उतरे थे।

अगले दिन साध संगत में गुरु महाराज ने इस घटना का जिक्र किया तो सभी गुरु सिक्ख जिन्होंने यह कहकर कि यह कोई प्रशाद छकने का समय है, अतिथि को आगे बढ़ा दिया था, बहुत शर्मिंदा हुए छोटा-छोटा महसूस करने लगे।

आलम ने घर आकर जब गुरु महाराज के इस रूप का ज़िक्र किया तो बहुत चिल्ल-पों मची। शुक्र है, गुरु महाराज हमारे यहाँ नहीं आए। वीरां कहने लगी।

अगर हमारे यहाँ आते तो दरवाज़ा भागां को खोलना था, भाई दया सिंह कहने लगा और हमारी बीवी कहती-भाई हम तो खुद इस घर में मेहमान हैं।

यह सुनकर हर कोई ऊंचा कहकहा मारकर हंस पड़ा। फिर एकदम हरेक की हंसी रुक गई। जैसे अचानक किसी तेज़ दौड़ रहे घोड़े की लगाम खींचकर रोक लिया जाए। और हर कोई सोचने लगा-दया ने यह क्यों कहा था, हम तो खुद इस घर में मेहमान हैं, क्या यह उसका अपना घर नहीं था। पता नहीं उसे लाहौर याद आ रहा था। भागां की सास माला के संदेश भी तो उन्हें आते रहते थे।

उस दिन जब वे अकेले हुए, भागां ने भाई दया सिंह से पूछा, क्यों तुम्हें यह घर अपना नहीं लगता ?

अपना तो सारा संसार है, उसने एक दानश्वर के अंदाज़ में कहा, पर हमें अपनी गृहस्थी भी तो कभी शुरू करनी होगी।

क्या मतलब, अभी हमारी गृहस्थी शुरू नहीं हुई ? भागां की नज़र अपने बढ़े हुए पेट की ओर गई और अचानक उसका चेहरा गुलाबी झलक मारने लगा।

मुझे नहीं लगता यह धार के राजा हमें सांस लेने देंगे, मैं सोचता हूँ, इस हालात में तुम्हें लाहौर चले जाना चाहिए।

और तुम ? मैं तो गुरु महाराज का सेवक हूँ, उनकी फौज़ का सिपाही मेरा उनको छोड़कर जाना तो कभी नहीं होगा। तुम्हें पता ही है कि मैं तो स्वयं को दशमेश के समर्पित कर चुका हूँ।

और मैं अपने आपको तुम्हारे लिए समर्पित कर चुकी हूँ।

बेशक, पर तुम्हारी जिम्मेवारी अब होने वाले बच्चे के प्रति अधिक है। तुम एक मां बनने जा रही हो।

इस धारणा के साथ आलम भी सहमत था। आनन्दपुर की सीमाओं पर फिर काली घटाएं छा रही थीं। इस बार खून-खराबा अधिक भयानक होने वाला था।

पर कहलूर वाले तो दोस्ती का हाथ बढ़ा रहा सुनते हैं। वीरां कहने लगी। इस तरह की खबरों के उसके अपने भी सूत्र थे।

अजमेरचन्द दस बार दोस्ती कर चुका है और दस बार लड़ाई करके हार चुका है, उसकी भी भली कही। यह भाई दया सिंह था। पहाड़ी राजाओं के बारे में उसकी राय कभी अच्छी नहीं रही थी।

यह बहस कई बैठकों में हुई। धर्म ने अच्छा किया था, माधवी को लेकर दिल्ली जा बैठा था। सुना था, उनके अब दूसरा जीव आने वाला है।

आलम सिंह और दया सिंह इससे सहमत थे कि आनन्दपुर में कुछ-न-कुछ होकर रहेगा, हवा भारी लगती थी, क्योंकि आलम और दया कलगीधर के सैनिक थे, वीरां और भागां को निकल जाना चाहिए था। वीरां साथ होगी तो भागां का सफर भी आसान हो जाएगा और नए बच्चे के साथ भागां को अपनी मां की मदद की ज़रूरत होगी।

और फैसला हुआ वीरां और भागां जब कोई साथ मिले, लाहौर चली जाएं। गर हालात सुखकर हुए तो भागां के मां बनने के बाद उन्हें फिर आनन्दपुर बुलाया जा सकता था।

भागां उदास थी, अपने पति को अकेले छोड़कर जाना उसे अच्छा नहीं लग रहा था।

वीरां बीबी खुश है। आलम उसे छेड़ता, लाहौर गये इसे कई वर्ष हो गये हैं। लाहौर तो पंजाबियों का काबा है। आलम दिल्ली वाला होने के कारण लाहौर के शैदाइयों से हमेशा उसे चिढ़ होती थी।

और आजकल लाहौर में सूबेदार की आसामी भी खाली है, दया सिंह अब अपनी सास की मसखरी कर रहा था, सुना है, मियाँ खान जिसे लाहौर में नायब बनाया गया था, सिंध से लाहौर पहुंचते ही अल्ला को प्यारा हो गया है और औरंगजेब को कोई योग्य नायब पंजाब के लिए मिल नहीं रहा था।

नहीं तुम्हारी खबर पुरानी है। आलम ने बताया, लाहौर में ज़बरदस्त खान को तैनात किया गया है और उसने कुर्सी भी सम्भाल ली है। यही नहीं, राजसी जुल्म भी करने शुरू कर दिए हैं।

और फिर हमें क्यों कुर्बानी के बकरे बनने के लिए लाहौर भेजा जा रहा

है ? भागां बोली अपने घरवाले को छोड़कर जाना उसे अच्छा नहीं लग रहा था। कुर्बानी तो खालसा को देनी होगी। चाहे कोई आनन्दपुर हो, चाहे और कहीं।

और हम इसके लिए एकदम तैयार हैं। दया सिंह कहने लगा।

'उस तरह तो हम भी पीछे रहने वाले नहीं।' भागां बोली। वह अपनी मां के लिए भी यह कह रही थी।

और इस उत्साहजनक सुर पर यह बहस खत्म हुई। फैसला हुआ कि वीरां और भागां पहला मौका मिलते ही लाहौर के लिए चल पड़ेंगे।

56

वीरां वाली का यह कहना कि बिलासपुर का राजा गुरु महाराज के साथ फिर दोस्ती गांठने का इच्छुक है, गलत नहीं था। इसका मतलब था कि आनन्दपुर में अमन-चैन बना रहेगा। उन्हें लाहौर जाने की ज़रूरत नहीं थी। पर वह तो भागां को लेकर लाहौर के लिए भी चल दी थीं, अब उन्हें रोका नहीं ज। सकता था। आनन्दपुर को छोड़ते समय मां-बेटी दोनों उदास थीं। मुर्झाए हुए चेहरे, बुझे हुए बोल।

जब वे बिछुडने लगीं, आलम ने कहा—पहले धर्म और माधवी के सुख-सन्देश के लिए प्रतीक्षा रहती थी, अब लाहौर से आने वाले यात्रियों के मुंह की ओर देखा करेंगे, आपकी खैरियत जानने के लिए। उसके इन शब्दों में एक सच्चाई थी, एक त्रासदी थी, उस समय के सिक्ख भाईचारे की।

कभी-कभी ऐसे भी प्रतीत होता, जैसे गुरु नानक, गुरु गोबिन्द सिंह ने अपने समय से बहुत पूर्व अवतार धारण कर लिया था। इस तरफ सल्तनत-ए-मुगल का साम्प्रदायिक कट्टरपन और दूसरी और सिक्ख धर्म का भाईचारा, भावनात्मक एकता, सह-अस्तित्व का संदेश, एक ओर औरंगज़ेब की तंग-नीयत, और दूसरी ओर गुरु-चेला, गुरु गोबिन्द सिंह की लोकतन्त्रीय, एकता की भावना, कदम-कदम पर टक्कर होती रहती। और जो गुरु हरगोबिन्द जी ने समय के हुकमरानों से हर दूसरे दिन की छेड़छाड़ से तंग होकर एकांत शिवालिक की पहाड़ियों की गोद में अपना ठिकाना स्थापित किया था, गुरु तेग बहादुर जी ने इसी प्रदेश में आनन्दपुर की नींव रखकर गुरु हरगोबिन्द जी की इस नीति को फूल चढ़ाए थे, देखने में आया कि इसका विशेष लाभ नहीं हो रहा था।

सिक्ख पंथ के पहाड़ी राजाओं से उसी तरह के ही मतभेद थे, जैसे

मुगल हुकमरानों से। पहाड़ी राजा लगातार मुगलों को उकसाते रहते थे। उनकी मदद से सिक्ख पंथ के अमन-चैन को खुर्द-बुर्द करते रहते थे।

गुरु गोबिन्द सिंह बार-बार ऐलान कर चुके थे कि उनका इरादा न कोई जंग जीतने का था, न कोई हकूमत कायम करने का था। वे तो एक न्यायप्रिय समाज की स्थापना करना चाहते थे, जिसमें जाति-पाति, ऊंच-नीच का भेद नहीं होगा। सिक्ख धर्म आत्मनिर्माण का एक साधन था। सिक्ख धर्म मानवीय-मूल्यों पर ज़ोर देता था। जब-जब भी गुरुसिक्खों को हिंसा का मार्ग चुनना पड़ा, वह केवल इन मूल्यों की रक्षा के लिए करना पड़ा था। लड़ने के लिए सिक्ख पंथ ने कभी भी लड़ाई नहीं लड़ी थी। जब-जब भी उन्होंने तलवार का सहारा लिया, मज़बूरी के कारण लिया और सभी उपाय जब खत्म हो जाते उन्हें बुराई का सामना ताकत से करना पड़ता था।

दशमेश की नज़र में हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान सभी बराबर थे। उस दिन भरे दीवान में उन्होंने भाई आलम सिंह की भरपूर प्रशंसा की। कहाँ मुगल दरबार का पिट्ठू और कहाँ अब वह अपने सारे परिवेश को भूलकर गुरु सिक्ख सज गया था। गुरु महाराज की फौज़ की सिखलाई की सारी ज़िम्मेवारी उसने अपने कन्धों पर ली हुई थी। खास तौर पर अमृतपान करने के बाद आलम सिंह कितना सुन्दर सरदार निकला था, सिर पर केश, निर्मल दाढ़ी, हाथ में शमशीर।

घर पहुंचकर उस दिन आलम को वीरां बहुत याद आई। उसका दिल करता जब कलगीधर इस तरह उसे प्रशंसा में अच्छा-अच्छा कर रहे थे, काश वीरां वाली यह सब कुछ अपने कानों से सुन रही होती। आलम ने वीरां के लिए जितनी कुर्बानी की थी, उसके साथ के लिए जितना परिश्रम किया था, आज सकारथ हो गया था।

जैसे वीरां वाली ने कहा था, बिलासपुर का राजा अजमेरचन्द सचमुच गुरु महाराज की दोस्ती का दम भर रहा था। दशमेश जी को भी उसके साथ कोई वैर नहीं था; वह एक कदम आगे बढ़ा, गुरु-महाराज ने दो कदम आगे होकर उसका हाथ पकड़ लिया। फैसला यह हुआ कि इस बात को निश्चित करने के लिए कि फिर उनमें कोई गलतफ़हमी न हो, बिलासपुर का एक राजदूत गुरु गोबिन्द सिंह जी के दरबार में तैनात किया जाएगा।

इसकी बजाय कि बिलासपुर का राजदूत सम्बन्धों को मधुर बनाता, उसे सिखाकर भेजा गया था कि वह गुरु दरबार की निंदा करे और अपने राजा

को खालसा पंथ की गतिविधियों की जानकारी देता रहा करे। ऐसे हालात कब तक शांतिपूर्ण रह सकते थे ? पर फिर भी गुरु महाराज जहाँ तक मुमकिन था, बिलासपुर से बिगाड़ना नहीं चाहते थे।

उन दिनों में ही रवालसर में मेला भर रहा था। मेले के पुरोहित ने गुरु महाराज को आमन्त्रित किया। दशमेश इस अवसर को हाथ से गंवाना नहीं चाहते थे। मेले में धार के सारे राजा आया करते थे। गुरु महाराज की यह धारणा थी कि इस तरह सहज-स्वभाव सबसे मिलकर गलत-फ़हमियाँ और पुरानी दुश्मनियाँ दूर की जा सकती थीं।

मेले में भाग लेने के लिए माता गूजरी, माता साहिब देवां और साहिबज़ादे भी गुरु महाराज के साथ गए। गुरु महाराज ने रवालसर में एक नया शामियाना लगवाया और पहली फ़ुरसत, मेले में आए राजाओं को बुलाकर उनका स्वागत किया।

कितनी देर गुरु महाराज उन्हें खालसा पंथ की सर्जना का महत्त्व समझाते रहे।

हमने मढ़ी, श्मशान, गुग्गे पीर और सखी सरवर आदि से अपने अनुयायियों को छुटकारा दिलाकर एक ईश्वर की भक्ति की ओर लगाया है। कई जन्म-जन्मांतरों से यह माना जाता आ रहा है अमुक-अमुक स्थान पर देवी प्रकट होती है। हमने बनारस से केशवदास को बुलाकर पूरा वर्ष नैना देवी पर हवन करवाया, और जो कुछ उसने कहा, किया, कोई देवी प्रकट नहीं हुई। देवी की जगह मैं श्री साहिब लेकर जब सामने आया, देवी के पुजारियों ने मेरी शमशीर में देवी के दर्शन किए। ईश्वर सर्वशक्तिमान है। तलवार एक ताकत है। जो तलवार कमज़ोर का साथ देती है, बे-आसरों की सहायता करती है, शोषित को जुल्म से बचाती है, उस न्यायप्रिय तेग में देवी प्रकट होती है। मुगल आक्रमणकारियों के साथ एक के बाद एक झड़पों में खालसा ने इस तथ्य की सच्चाई को साबित कर दिया है। हमारी जीत होती रही है क्योंकि सच हमारी ओर था।

हमने खालसा को एक नया स्वरूप दिया है ताकि गुरुसिक्खों में एकता, भाईचारे और एक जातीयता की भावना उत्पन्न हो। अलग-अलग जातियां, अलग-अलग मान्यताएं, अलग-अलग आदर्शों के कारण हम पिछले छः वर्षों से हर लुटेरे से मार खाते आ रहे थे, एक के बाद एक हुक्मरानों की गुलामी भोगते आ रहे हैं। एक गलाम का न कोई धर्म होता है न कोई आस्था।

हमें यह भी बताया गया है कि तुम में से कुछेक लोगों को यह एतराज है कि अमृत छकने के समय हर अमृतधारी एक कटोरे (बाटे) को मुंह लगाकर अमृतपान करता है। आपके ऊंची जाति के एहसास को यह गवारा नहीं। आपकी मां की मां की मां, आपके पिता के पिता के ये चक्र रचनाएं हुए हैं। सभी जीव जन्म के समय एक जैसे होते हैं। ऊंच-नीच के भेद-भाव बाद में डाले जाते हैं। यह इस्लाम की समानता की भावना है जिसके कारण वे हर बार हमारे ऊपर हावी होते हैं। अगर हमें अपनी आज़ादी को फिर से हासिल करना है, तो हमें ऐसी हर प्रथा से बचना होगा, जो हमारे भाईचारे को बांटती हो।

जब गुरु महाराज ऐसे बोल रहे थे, उन्हें मिलने आए पहाड़ी राजाओं में कुछेक जो मुगलों के ज़्यादा ही खुशामदी थे, जल्दी करने लगे, एक-दूसरे के कानों में खुसर-खुसर करने लगे। यह देख गुरु महाराज ने उनको अपने कलाम से निवाजना शुरू कर दिया, जिसलिए उनमें से कइयों ने आगे फरमाईश की हुई थी।

जाग्त जोति जपै निस बासर, एक बिना मन नैकु न आनै ॥
पूरन प्रेम प्रतीति सजै बुत गोर मड़ी मन भूल न मानै ॥
तीर्थ दान दया तप संज़म, एक बिना नहि एकु पछानै ॥
पूरन जोति जगै घट मैं तब खालसा ताहि नखालस जानै।

*** *** ***

जुध जितै इनकी के प्रसादि, इनही के प्रसादि सु दान करे ॥
अघ उध टरै इनही के प्रसादि, इनही कृपा फुन धाम भरे ॥
इनही के प्रसादि सु विदिया लई इनही की कृपा सभ सत्र मरे ॥
इनही की कृपा के सजे हम हैं, नहीं मैं सो गरीब करोर परे ॥

*** *** ***

सेव करी इन ही की भावत अउर की सेव सुहात न जी को ॥
दान दयो इनही को भले अरूर आन को दान न लागत नीको ॥
आगे फलै इनही को दयो जग मैं जस अउर दयो सभ फीको ॥
मो ग्रहि मैं तन ते मन से सिर लउ धन है सबही इनही को ॥

(सवैया)

इसके बाद विचार-विमर्श होता रहा। गुरु महाराज ने उनके सारे शक-शुबहे दूर करने की कोशिश की, बार-बार उन्हें विश्वास दिलवाया कि

उनका मनोरथ केवल 'धर्म-चलावन', 'संत उबारन' था, और कुछ नहीं।

इन्हीं दिनों चम्बे की राजकुमारी दशमेश की विद्वता और काव्य-निपुणता से अत्यन्त प्रभावित हुई। उसने गुरु महाराज को एक कागज़ के टुकड़े पर यह प्रश्न लिखकर भेजा :

सारा, पउणा, दूजा गाउना नर नारी थै दोनों भउना
कुछ खादा, कुछ लैके सउणा, उतर देहू गुरु जी कउणा ?

(सत 5 अंशु 5)

गुरु जी राजकुमारी की लिखे से प्रभावित हुए। उन्हें लगा जैसे उसकी कोई प्रतिभाशाली कलम थी। गुरु महाराज ने उसके कागज़ की पिछली तरफ़ यह लिखकर भेजा :

जाणो सारा देव देहि; पाउणा माणस देहि।
दुबिधा दूजी करी गवन,
नर नारी लग हुए खेह,
उभै लोग भऊंदा फिरै;
कुछ खर्च जो माल।
परलै भई सउणा हुआ,
उतर तुमारा बाल।

(सत 5 अंशु 5)

राजकुमारी को जब यह उत्तर मिला, वह गुरु महाराज के दर्शनों के लिए हाज़िर हुई। जब वह चरण-स्पर्श कर रही थी, इसकी बजाये कि गुरु महाराज और श्रद्धालुओं की तरह उसे थापी देते या उसके सिर पर हाथ रखते, गुरु महाराज ने अपने तीर की नोक के साथ उसकी पीठ को छुआ।

आगे-पीछे खड़े श्रद्धालु हैरान हो गये। गुरु महाराज ने ऐसे क्यों किया था ? तीर की नोक से तो वे कभी किसी को आशीष नहीं देते थे।

किसी को समझ नहीं आ रही थी पर चम्बे की राजकुमारी जानती थी कलगीधर ने ऐसे क्यों किया था।

रवालसर के मेले से लौट रहे कई श्रद्धालु खुश थे कि पहाड़ी राजाओं के साथ राज़ीनामा हो गया था। अब कम-से-कम इनकी ओर तो गुरुसिक्खों से छेड़छाड़ नहीं की जायेगी। पर गुरु महाराज के घोड़ों की देखभाल करने वाला उनका पुराना सेवक मदन सिंह बार-बार यही बुड़बुड़ा रहा था :

करैगा सो भरैगा, गुरु का की करैगा।
सेवक ते काज सरैगा, दुश्मन दोखी मरैगा।

(सत 5 अंशु 4)

आनन्दपुर से चलने के समय भी उसने ये बोल बोले थे और जिस किसी ने भी उसको इस तरह की बदशगुनी करते सुना, गुरु महाराज के आगे शिकायत की थी। रवालसर से लौट रहे फिर वह यही बोल बुड़बुड़ा रहा था। यह देख, दशमेश ने उसे हिदायत दी :

घोड़े की सेवा कर। होगी सो जर।
गुरु का घर, राखा सतगुरु।
सिक्खा ! चिन्ता न कर, चुप का समा सर !

(सत 5 अंशु 4)

57

वही बात हुई जिसका भय गुरु महाराज के निजी सेवक मदन सिंह को था। बेशक असल में जाति का चमार था पर अमृतपान करके उसकी सूझ, उसकी पहुंच बहुत गहरी और घनी हो गई थी।

रवालसर से लौटे बहुत दिन नहीं हुए थे कि बिलासपुर का अजमेरचन्द जो इतनी बढ़ा-चढ़ा कर दोस्ती की डींगे हांकता था, फिर मुगल के साथ सांठ-गांठ करने लगा।

बात ऐसे हुई, यह सुनकर कि कुरुक्षेत्र में सूरज ग्रहण का मेला लग रहा था, गुरु महाराज अपने मिशन के प्रचार के लिए वहाँ गए। आम जनता में प्रचलित अंध-विश्वासों का खण्डन करना था। मुगल साम्राज्य में उनकी सामाजिक और आर्थिक दुर्दशा से उन्हें परिचित करवाना था। फिर जब उन्हें मेले के अधिकारियों ने कुछ-न-कुछ दक्षिणा देने के लिए मजबूर किया तो दशमेश ने एक गधा दक्षिणा के तौर पर उन्हें भेंट करके उन्हें संतुष्ट किया। इसके विपरीत मेले में अपना नया सदाव्रत लगाकर उन्हें गुरु के लंगर की महिमा दर्शायी।

कुरुक्षेत्र के मेले से लौटते गुरु महाराज लक्खी जंगलकी ओर चल दिये। लक्खी जंगल सतलुज से बठिण्डे तक 80 किलोमीटर लम्बा 25 किलोमीटर चौड़ा प्रदेश, अपने समय सिक्खी का मुख्य केन्द्र था, रीढ़ की हड्डी। यहीं से ही सिक्ख शूरवीर गुरु महाराज की सेना में भर्ती होते थे। यहीं से हर प्रकार के हथियार और घोडे भेंट के तौर पर आते थे।

अजमेरचन्द के गुप्तचर गुरु महाराज की गतिविधियों से साथ-की-साथ मुखबरी कर रहे थे। अजमेरचन्द को यह भी खबर मिली कि सैद बेग और अलिफ़खान दो मुगल फौज़दार अपने फौज़ी दस्तों के साथ दिल्ली से लाहौर जा रहे थे। सरहिन्द के सूबेदार के साथ मिलकर अजमेरचन्द ने यह योजना बनाई कि जब गुरु महाराज लक्खी जंगल से लौट रहे हों, उन्हें रास्ते में घेर लिया जाए। लड़ाई के लिए वे तैयार नहीं होंगे, कुछेक अंगरक्षक क्या मुकाबला कर पायेंगे। गुरु महाराज को आसानी से काबू किया जा सकता था। यह फैसला हुआ कि दोनों फौज़दारों का दो-दो हज़ार रुपये प्रतिदिन वेतन के तौर पर अजमेरचन्द को देना होगा।

मुगल फौज़दारोंने सोचा अगर राह चलते बलपूर्वक ढेर सारी रकम उनके हाथ आ सकती है तो इसमें उन्हें क्या एतराज़ होना चाहिए। वे तैयार हो गये और सिक्ख गुरुने मुगल फौज को एक-से-अधिक बार ललकारा था। उसका दमन ज़रूरी था। कुछ इस तरह की उनकी बुद्धि थी।

उधर गुरु महाराज को भी अजमेरचन्द के कपट की खबर मिल चुकी थी। वह लक्खी जंगल में अपनी व्यस्तता समाप्त करके आनन्दपुर के लिए चल दिए। जल्दी-जल्दी वे लौट रहे थे कि चमकौर की गढ़ी पर जब वे पहुंचे, मुगल फौजों ने उनका घेराव कर लिया। तीर्थ-यात्रा के लिए निकले, गुरु महाराज लड़ाई लड़ने के लिए बिल्कुल भी तैयार नहीं थे, पर जब जंग सिर पर पड़ ही गई, दशमेश की निजी अगुवाई में उनके गिने-चुने अंग-रक्षक और कुछेक श्रद्धालु जो रास्ते में उनके साथ आ मिले थे, ऐसे लड़े कि मुगल फौज के छक्के छूटने लगे, जो उन्होंने यह सोचा था कि गुरु महाराज को बस ललकारना ही होगा और वे हथियार फेंक देंगे, उनकी खुशफहमी साबित हुई।

एक पहर, दो पहर, गुरु प्यारों ने जमकर मुगल फौज़ का मुकाबला किया। यह देख, सैद बेग के मन में आई, क्यों थोड़ी सी रकम के लिए एक खुदा-परस्त दरवेश को परेशान किया जाए। उसकी ज़मीर ने जैसे विद्रोह किया और उसने अपने सैनिकों को लड़ाई जारी रखने से रोक दिया और फिर दूसरे फौजदार अलिफ़खान ने भी लड़ाई बन्द कर दी।

बिलासपुर के राजा अजमेरचन्द को फिर शर्मिंदगी उठानी पड़ी। फिर उसकी कुटिल-नीति की हार हुई।

यही नहीं कि उसके भाड़े के सिपाहियों ने लड़ना बन्द कर दिया था,

सैद बेग गुरु महाराज का अनुयायी हो गया। वह मुगल फौजों की नौकरी छोड़कर आनन्दपुर गुरु महाराज के चरणों में आकर टिक गया और बाकी लड़ाइयाँ जो गुरु महाराज को लड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा, उनमें सैद बेग ने गुरु महाराज का साथ दिया।

अजमेरचन्द अभी भी बाज़ नहीं आया। उसने औरंगजेब को फिर दरख्वास्त भेजी। सिक्ख गुरु किसी के काबू नहीं आ रहा। इसका कोई उपाय होना ही चाहिए।

इस बार औरंगजेब ने सईद खान को इस मुहिम के लिए तैनात किया। सईद खान पीर बुद्धू शाह की घरवाली नसीरां का भाई था। दक्षिण में कई लड़ाइयाँ सफलता से लड़ चुका था। बड़ा भारी शूरवीर था और खुदा परस्त।

औरंगजेब को यह भी पता था कि पीर बुद्धू शाह की अपने प्रदेश में बड़ी मान्यता थी और वह गुरु गोबिन्द सिंह का भक्त था। यही नहीं वह स्वयं अपने मुरीदों के साथ गुरु महाराज की पहाड़ी राजाओं के साथ लड़ी गई जंग में शामिल हुआ था और उसने कई कुर्बानियाँ दीं थी। अपने बेटे शहीद करवाए थे। शईद खान उसकी पत्नी का भाई होने के कारण पीर बुद्ध शाह को सिक्ख गुरु से तोड़ सकेगा, कुछ इस तरह औरंगजेब सोच रहा था।

वही बात हुई, पंजाब पहुंचकर सईद खान पहले पीर बुद्ध शाह के यहाँ हाज़िर हुआ। अपनी बहन से उसके भंगाणी के जंग में शहीद हुए बेटों का ज़िक्र करने लगा। बार-बार कहता—उन्हें क्या पड़ी थी पराई लड़ाई में दखल देने की ?

पर सईद खान के कानों को जैसे एतबार न आ रहा हो, वह यह क्या सुन रहा था ? उसकी बहन क्या और उसका बहनोई, पीर बुद्धू शाह क्या, अपने बच्चों को बार-बार भाग्यशाली बता रहा था। वे तो गुरु गोबिन्द सिंह जी की सेवा में शहीद हुए थे। गुरु महाराज के गौरव की कहानियाँ कह-कह कर न पीर बुद्धू शाह हारता न उसकी पत्नी थकती। जितनी देर सईद खान उनके यहाँ रहा, उसकी बहन नसीरन दशमेश की प्रशंसा करती रही। वे तो उतने ही भारी शूरवीर थे जितने बड़े भक्त। एक करिश्मा है जहाँ ईश्वर भक्ति और शमशीर की शक्ति एक-दूसरे में एकमेक देखी जा सकती है। जैसे कदम नाप कर चल रही हो। उनके मुखड़े पर अल्ला का नूर बसता है। उनके चेहरे का ताव झेला नहीं जाता। उनकी अगर कभी हार नहीं हुई, इसका

कारण यह है कि वह हमेशा सच की लड़ाई लड़ते हैं। इस तरह के शूरवीर का पक्ष अल्ला पाक खुद लेते हैं।

'इस तरह के शूरवीर का पक्ष अल्ला-पाक खुद लेते हैं।' पीर बुद्धू शाह के यह बोल सईद खान के कानों में गूंज रहे थे, जब वह गुरु गोबिन्द सिंह जी के साथ लड़ाई मैदाने जंग में उतरा और जिस तरह खालसा फौज़, तजुर्बेकार पेशेवर मुगल जंग बाज़ों से लड़ रही थी, बार-बार उसे लगता, जो कुछ पीर बुद्ध शाह ने कहा था, जो कुछ उसकी बहन नसीरन ने बार-बार उसे याद कराया था, शायद ठीक ही था। हर गुरुसिक्ख के पीछे दस मुगल सिपाही ढेरी हो रहे थे। जैसे खालसा फौज़ की ओर से तीर छूटते थे, जैसे उनकी तोपों के गोले बरसते थे, जैसे निर्भय सिक्ख शूरवीर तलवार पकड़े जंग के मैदान में उतरते थे, सईद खान सुन-सुनकर, देख-देखकर हैरान हो रहा था। उनके घोड़े क्या और उनके सवार क्या जैसे डर का, खौफ़ का नाम न जानते हो। हरेक सिपाही जान हथेली पर रखे लड़ता था। मज़ाल है कि उनका वार कभी खाली जाए। सईद खान को लगता जिस तरह उसकी फौज़ के छक्के छुड़ाए जा रहे थे, कोई बड़ी बात नहीं कि मुगल सेना की हार ही हो जाए। जिस तरफ उसकी नज़र जाती मैदाने जंग में लाशों के ढेर लग रहे थे।

यह देखकर सईद खान को यकीन हो गया कि अल्ला पाक गुरु गोबिन्द सिंह का पक्ष ले रहा है। नहीं तो यह कैसे मुमकिन था कि मुट्ठी भर खालसा फौज़, हज़ारों की गिनती में मुगलों के तलवे ही नहीं लगने दे रही थी। अगर यह बात थी तो सईद खान सोचता, वह खुद गुरु गोबिन्द सिंह को ललकारेगा। वह अपनी आंखों से देखेगा क्या करामात थी खालसा पंथ के इस बाने में।

और उसने ऐसा किया। घोड़े पर सवार वह जंग के मैदान में उतरा। यह जानकर कि सईद खान खुद लड़ने के लिए आगे बढ़ा है, गुरु महाराज भी सईद खान का मुकाबला करने के लिए सामने आए।

एक झलक दशमेश की; और जैसे कोई बिजली सईद खान के अंग-अंग में से कौंध कर निकल गई हो। सचमुच उनके मुखड़े पर अल्ला का नूर टपक रहा था। यह तो कोई फरिश्ता है' उसके अन्तर्मन ने कहा, इस तरह के शूरवीर का पक्ष अल्ला-पाक खुद लेते हैं। पीर बुद्धू शाह का कथन उसके कानों में बार-बार गूंजने लगा। उसये लगता जैसे इलाही नूर की किरणें उनके

अंग-अंग में से फूट रही हों। उसके कानों में कोई रब्बी धुन गूंजने लगी। मैदाने जंग कहाँ और यह खुशबू क्या जो उसे आस-पास से आ रही थी, जैसे कोई चुम्बकीय शक्ति हो। सईद खान का घोड़ा अपने फौजियों की कतारों, उसके अंग-रक्षकों के घेरे को चीरता आगे निकल गया। यह क्या ? सईद खान, मशहूर मुगल सिपहसालार ने अपने हाथ में पकड़ी शमशीर फेंक दी थी। वह तो बिना किसी शस्त्र के दुश्मन का मुकाबला करने के लिए बढ़ रहा था। ऐसे भी कभी हुआ है ? खालसा फौज तो उसकी बोटी-बोटी, टुकड़े-टुकड़े कर देगी।

हैं ! नीले घोड़े के सवार से दस कदम दूर मुगल फौज का जरनैल सईद खान घोड़े से उतर गया था और अब वह हाथ जोड़े, सिर निवाये दशमेश के घोड़े की ओर बढ़ रहा था। यह कैसी जंग थी ! यह किस तरह का मुकाबला था। अब वह गुरु महाराज के घोड़े के पास पहुंच चुका था और अब उसका सिर सतगुरु की रकाब और उनके दायें चरण ऊपर था।

कलगीधर भी घोड़े से उतर आए थे। उन्होंने सईद खान को अपने बाहुपाश में ले लिया था और कोई तरीका नहीं था आपके दर्शन पाने का। और कोई तरीका नहीं था अपने-आपको आपकी खिदमत में पेश करने का। अब मुझे अपना लो जैसे आपने मेरी बहन नसीरन को कृतार्थ किया है। अब मुझे अपना लो जैसे आपने उसके शौहर पीर बुद्धू शाह को अपनाया है।

ऐसे गुरु गोबिन्द सिंह के कलावे में मुगल जरनैल को देखकर, क्या मुगल फौज और क्या खालसा सेना हैरान हो रही थीं। किसी को कुछ समझ नहीं आ रही थी।

58

"मेरी प्यारी वीरां और भागां बेटी", भाई आलम सिंह वीरां और भागां को चिट्ठी लिख रहा था। यही नहीं कि सईद खान दशमेश की पनाह में आ गया था, उसकी फौज के बीच के मुगल कारकून के हाथ यह चिट्ठी लाहौर भिजवाई जानी थी।

ऐसे लगता है कि आपको मेरी पिछली चिट्ठी नहीं मिली। अगर मिली होती तो वीरां बेटी दया के नाम अपनी चिट्ठी में उसका ज़िक्र जरूर करती।

हम आपको विदा करके पहले बेशक निराश हुए थे, सचमुच बिलासपुर का अजमेरचन्द हमारे साथ दोस्ती का दम भरने लगा था। इस विषय में वीरां के दिल ने ठीक हामी भरी थी, पर बहुत समय नहीं बीता था कि उसकी

मक्कारी साबित हो गई। उसने साथ के पहाड़ी राजाओं से इकट्ठी की 10,000 जवानों की सेना के साथ हम पर हमला कर दिया। साथ ही दो मुगल सिपहसालारों सैद बेग और अलिफ़ खान की मदद भी भाड़े पर हासिल कर ली। इस लड़ाई के लिए हमारे पास सिर्फ 800 सैनिक थे। जंग शुरू हुए कोई चार-छः घण्टे ही हुए होंगे कि सबसे पहले अजमेरचन्द खुद मैदान छोड़कर भागा। उसे भागता देख, सैद बेग के मन में आई कि उसे क्या पड़ी थी कि चार सिक्कों के लिए किसी अल्ला के प्यारे साथ लड़ाई मोल ले। उसने हमारे साथ दोस्ती कर ली। सैद बेग को ऐसे करता देख आलिफ़ खान ने हथियार डाल दिए।

सैद बेग आजकल यहाँ आनन्दपुर में हमारे पास है। बड़ा खुदापरस्त इन्सान है। इस लड़ाई में आपके आलम ने खूब नाम कमाया। मेरे साथ उदय सिंह गुरु महाराज का दूसरा शूरवीर था।

अभी हम इस लड़ाई से मुश्किल से उभरे भी नहीं थे, हमारे बहुत से सैनिक अपने-अपने घरों को गए हुए थे कि औरंगजेब ने सईद खान को एक भारी लश्कर देकर हम पर चढ़ाई के लिए भेज दिया। जिस दिन हमें पता लगा कि सईद खान आनन्दपुर पर हमले की नीयत से आ रहा है, हमारे पास कुल 500 जवान थे। इससे अधिक नहीं होंगे। सईद खान के मुकाबले के लिए मुझे और दया को तैनात किया गया।

जंग में उतरने से पहले हमने कलगीधर के आशीष के लिए आपस में यह फैसला किया कि वैरी की पीठ लगानी है, नहीं तो जीते जी आनन्दपुर नहीं लौटना। गुरु महाराज की कृपालु नज़र और पहले पहर में ही हमने मुगल सैनिकों को हार मानने के लिए मजबूर कर दिया।

पर जीत का सेहरा किसी और पर था। ऐसे लगता है गुरु महाराज ने हमें बस शाबाशी ही देनी थी। सईद खान पीर बुद्धू शाह की बेगम नसीरन का सगा भाई है। रास्ते में वह अपनी बहन से मिलने गया था और उससे गुरु महाराज की महिमा सुन चुका था। कहते हैं, जंग में वह गुरु महाराज का निशाना बना कर तीर छोड़ता और उसका तीर हर बार चूक जाता। एक बार ऐसे हुआ, दूसरी बार भी ऐसे हुआ। सईद खान का छोड़ा तीर मज़ाल है कभी निशाने से न लगे, वह हैरान था। और फिर उसे लगा जैसे उसकी बहन नसीरन उसके पास खड़ी, जब वह कमान पर तीर चढ़ा रहा होता, उसकी बाजू खींचकर उसका निशाना हिला देती थी।

तुझे पता है इस लड़ाई में दो मुसलमान फ़ौजदार सैद बेग और मैमून खान, हमारीओर से मुगल फौज के साथ जूझे। सैद बेग तो आनन्दपुर-वासी ही हो गया है। जीत फिर सच की हुई। आजकल सईद खान भी सैद बेग की तरह गुरु महाराज के चरणों में मार्फ़त की तालीम ले रहा है। उसका इरादा है कुछ देर बाद कांगड़े की किसी गुफ़ा में तपस्या के लिए चला जाए।

लो, मैं तो अपने ही किस्से लेकर बैठ गया हूँ। हमारे दोहते का क्या हाल है ? महताब सिंह नाम यहाँ सब को पसन्द आया है। पोते का नाम सुक्खा सिंह और दोहते का नाम महताब सिंह। खूब निभेगी दोनों की। माधवी ने अपनी बेटी का नाम राज कौर रखा है। दिल्ली वालों को राज करने का चस्का पड़ा हुआ है। हमारा आनन्दपुर वासियों का ऐसा कोई इरादा नहीं पर हमें इसके बावजूद भी कोई सांस नहीं लेने देता। गुरु महाराज का कहना है कि सीमाओं पर जंग के बादल हमेशा की तरह मंडरा रहे हैं। बकरे की मां कब तक खैर मनाएगी।

यह चिट्ठी तो लड़ाई झगड़ों की दास्तान होकर रह गई है। आपको आनन्दपुर की एक दिलचस्प घटना सुनाता हूँ, जो सुनने के लिए; मुझे पता है, तुम दोनों उत्सुक हो रही होंगी। आनन्दपुर वासियों को इस तरह की कहानियाँ सुनने का चस्का पड़ जाता है।

कुछ दिन हुए शाम के दीवान में लाल सिंह नाम के एक गुरुसिक्ख ने गुरु महारजा को एक ढाल पेश की। हम लोग जो गुरु महाराज की हाज़री भर रहे थे, सबने ढाल की बड़ी प्रशंसा की। गुरु महाराज सुनते रहे। फिर उन्होंने फरमाया, ढाल अच्छी है, पर असल में वह ढाल बढ़िया होती है, जिसमें से गोली न पार हो सके। यह सुनकर लाल सिंह बोल पड़ा, हुजूर यह वैसी ही है। बेशक इसे परखकर देख लिया जाए। इसमें से गोली पार नहीं होगी। बार-बार वह यह कह रहा था, 'इसमें से गोली पार नहीं होगी।' यह सुनकर गुरु महाराज ने कहा, कल इसकी परख करेंगे।

दीवान के बाद अपने ठिकाने पर पहुंचकर लाल सिंह को इस बात का अहसास हुआ कि उससे गुरु महाराज के सामने बेअदबी हो गई थी। उसे इस तरह अहंकार से हठ नहीं जताना चाहिए था। उसे ऐसे बार-बार यह नहीं कहना चाहिए था, 'इस ढाल में से गोली पार नहीं होगी' अब अगली सुबह अगर गोली पार हो गई तो उसका क्या मुंह रह जाएगा ?

यह सोचकर भाई लाल सिंह हड़बड़ा गया। अब क्या किया जाए ?

उसने जल्दी-जल्दी रातों-रात कड़ाह प्रसाद तैयार किया, पांच गुरु प्यारों को इकट्ठा करके अरदास करवाई कि उसकी आबरू रह जाए। अगले दिन जब गुरु महाराज उसकी बनाई ढाल को परखे तो गोली उसमें से पार न हो सके।

दीवान समाप्त होने के बाद गुरु महाराज ने मुझे हुक्म दिया–आलम सिंह, इस ढाल ऊपर गोली दाग कर इसे बींध दो। मैंने अपनी बन्दूक लेकर एक गोली चलाई, दूसरी गोली चलाई, तीसरी गोली चलाई, पर मेरी गोली निशाने से चूक रही थी। एक दाएं एक बाएं, एक पीछे जा लगी। यह कैसे हो सकता था ?

गुरु महाराज यह सारा नाटक देख रहे थे। अब उन्होंने सिंहासन से उठकर बन्दूक मेरे हाथों से पकड़ ली और कहने लगे 'मैं आप गोली चलाता हूँ, देखते हैं कौन अब लाल सिंह की हिमायत करता है ? बेशक इसने कल रात अरदास करवाई.......।'

दशमेश बोल ही रहे थे कि भाई लाल सिंह की आंखें खुल गई। वह आगे बढ़कर सतगुरु के चरणों में गिर पड़ा और माफ़ी मांगने लगा।

अब मुझे समझ आई कि मेरा निशाना क्यों उस तरह चूक रहा था। एक बार, दो बार, तीन बार। अरदास की बड़ी महिमा है।

अच्छा अब इजाज़त। यह चिट्ठी काफी लम्बी हो गई है। देखो फिर कब मौका मिलता है, आपको सुख-संदेशा भेजने का। दया राज़ी-खुशी है। आज कल वह गुरु महाराज के अंगरक्षकों की टुकड़ी का मुखिया तैनात किया गया है। आज कल वह रात को महलों में सोता है।

बहुत-बहुत प्यार हम दोनों की ओर से आप दोनों को और महताब को। आपसे बिछड़े हुए : आलम और दया।"

59

उज्जैन में गुरु महाराज का विशम्भरदास नाम का एक श्रद्धालु था। कई वर्ष हुए गुरु महाराज के दर्शनों के लिए हाज़िर हुआ था और निहाल होकर गया था। विशम्भरदास का व्यापार बहुत अच्छा चलता था। गुरु महाराज की कृपा थी। गुरु घर के प्रति उसकी श्रद्धा अपार थी।

जब विशम्भरदास का बेटा हरगोपाल दास पिता का व्यापार सम्भालने के योग्य हुआ तो विशम्भरदास ने फैसला किया कि पहले वह दशमेश के यहाँ हाजिर होकर उनका आशीष प्राप्त करे, फिर काम को हाथ डाले।

नवयुवक हरगोपाल दास को इसकी कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं हो

रही थी पर पिता का आदेश था, वह उज्जैन से आनन्दपुर के लिए चल पड़ा। उसने सोचा, और नहीं तो सैर ही हो जाएगी।

चलने से पहले विशम्भरदास ने अपना सब कुछ सौंपते हुए बेटे को कलगीधर जी की महानता के बारे में बताया। गुरु गोबिन्द सिंह अपने मसीहा हैं। एक पैगम्बर जिनके जैसा देशभक्त कोई नहीं, जिनके जैसा कोई कवि नहीं। कोई मानेगा कि 9 वर्ष की आयु में कोई बेटा अपने पिता को यह मशवरा दे कि वह हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अपना शीश कुर्बान कर दे ? अपने धर्म के लिए लोगों ने कुर्बानियाँ दी हैं। शीश कटाए हैं, पर यह कभी किसी ने सुना कि पराये धर्म के लिए कोई अपनी जान कुर्बान कर दे और फिर इसलिए कि हिन्दू धर्म का तिलक लगाने और जनेऊ पहनने का अधिकार सुरक्षित रह सके। जिस सिक्ख धर्म के पहले गुरु बाबा नानक ने जनेऊ पहनने से इन्कार किया, उन्होंने कहा, इसकी कोई ज़रूरत नहीं, उस धर्म के दसवें गुरु, दशमेश पिता, गुरु गोबिन्द सिंह ने अपने पिता की कुर्बानी दी इसलिए कि हिन्दू का जनेऊ धारण करने और तिलक लगाने का हक उनसे कोई न छीन सके और फिर उन्होंने अमृत की सौगात संसार को प्रदान की। गीदड़ों से शेर बनाए। चिड़ियों को बाज़ों के साथ लड़ाया। संत सिपाही पैदा किये, जिनके एक हाथ में माला होती है, और दूसरे हाथ में तलवार। हर शक्तिशाली के सामने सिर झुकाने वाली कौम को जिन्होंने तनकर खड़े होने का बल प्रदान किया और फिर वे आप ही गुरु हैं, आप ही चेले हैं। जिन्होंने पांच प्यारों को अमृत का पान करवाया; फिर उनके ही सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गए ताकि जो अमृत की दात उन्हें भी प्रदान की जाए। इसे कहते हैं लोकराज। न कोई ऊंच न कोई नीच। सब बराबर। एक ही बाटे को मुंह लगाकर सभी अमृत छकते हैं जिन्हें हम अछूत कहकर दुतकारते है, गुरु गोबिन्द सिंह ने उन्हें उनका आत्म-सम्मान दिलवाया है। उनकी लड़ाइयों में हलवाई और बनिये, करछियाँ और करदो के साथ लड़े और उन्होंने पेशेवर मुगल सिपाहियों के दांत खट्टे किए हैं।

बेटा ! मैं चाहता हूँ विशम्भर दास ने हरगोपाल दास को कहा, मैं चाहता हूँ तुम इस तरह के शूरवीर का आशीश लेकर जीवन के संग्राम में कदम रखो।

यह सुनकर हरगोपाल दास बड़े उत्साह के साथ आनन्दपुर के लिए चल दिया। गुरु गोबिन्द सिंह की इतनी प्रशंसा सुनकर कई तरह के स्वप्न

उसकी पलकों में लटके हुए थे। वह सोचता, इतने महान गुरु महाराज के दर्शनों के लिए वह जा रहा था, चाहे तो वह उनके चरणों में ही गिर जाए।

इस तरह के विचार मन-ही-मन पाल रहा हरगोपाल दास आनन्दपुर साहब पहुंचा। गुरु महाराज के उसने दर्शन किए, उसका अंग-अंग विभोर हो गया।

एक दिन, दो दिन और वे देख-देखकर, सुन-सुनकर हैरान होने लगा, गुरु गोबिन्द सिंह तो मांस खाते थे। मांस स्वयं ही नहीं खाते थे, मांस खाने के लिए अपने अनुयायियों को भी प्रेरित करते थे। वैष्णव रुचियों वाला, सारी उम्र शाकाहरी रहा हरगोपाल दास यह देख-देखकर परेशान होने लगा और कुछ दिन बाद उसे पता लगा, गुरु महाराज तो शिकार करते थे। शिकार के शौकीन, जब वे शिकार के लिए निकलते खासा ताम-झाम, लाव-लश्कर उनके साथ होता था, और हर प्रकार के जानवर, हर प्रकार के पंछियों का शिकार करके वे लाते।

यह जानकर हरगोपाल दास सोचता, जो पांच सौ रुपये उसने गुरु महाराज को भेंट किए, वे तो बेकार गए थे। अच्छा होता अगर उसने भी अपने पिता की तरह सौ रूपया भेंट का चढ़ाया होता।

जितने दिन और हरगोपाल दास आनन्दपुर में रहा, हर समय वह कूढ़ता रहता, अपने भेंट किये धन पर पछताता रहता।

घट-घट की जानने वाले गुरु महाराज हरगोपाल दास की पशोपेश से भली प्रकार परिचित थे। उन्हें अपने श्रद्धालु सिक्ख विशम्भरदास पर बड़ा तरस आता।

कहाँ वह सोचता था कि वह चाहे गुरु महाराज के चरणों में ही टिक जाए और कहाँ वह अब कुछ दिन ही आनन्दपुर रहकर सैंकड़ों कोस दूर उज्जैन अपने शहर लौट रहा था।

जिस दिन उसने जाना था, वह गुरु महाराज के हाज़िर हुआ। उन्होंने हरिभगवान दास को लोहे का एक कड़ा और खीलों का प्रसाद उसके पिता के लिए दिया।

यह देखकर हरगोपाल दास को और चिढ़ चढ़ी, उसके तन-बदन में जैसे आग लग गई हो। यह भी कोई सौगात थी। बहुत अनमना होकर उसने वह प्रशाद गुरु महाराज से स्वीकार किया और उज्जैन के लिए चल पड़ा।

रास्ते में चमकौर में उसने पड़ाव किया। यहाँ भाई ध्यान सिंह नाम के

एक गुरु सिक्ख ने आनन्दपुर साहिब का यात्री जानकर हरगोपाल दास को अपने घर ठहरा लिया। उसकी अच्छी-खासी खातिर की। यही लालच कि आनन्दपुर से लौटे गुरु भाई से गुरु महाराज की प्यारी-प्यारी बातें सुनने को मिलेंगी।

पर भाई ध्यान सिंह यह क्या सुन रहा था। हरगोपाल दास आनन्दपुर साहिब से निराश लौटा लगता था। गुरु महाराज से मिलकर वह मायूस हुआ लगता था। यह कैसे हो सकता था ? भाई ध्यान की पत्नी अपने पति से अधिक अचम्भित हो रही थी। यह तो पहली बार वे सुन रहे थे कि कोई दशमेश के दर्शन करके लौटा उनके बलिहारी नहीं जा रहा था।

आखिर हरगोपाल दास के बीच के बनिये ने अपने मन के भीतर की कड़ी खोली। पूरे पांच सौ रूपये उसने गुरु महाराज को भेंट किये थे और चलते समय उन्होंने झोली में से बस एक लोहे का कड़ा उसे बख्शा था और मुट्ठी भर खीलें प्रशादि के तौर पर। यह भी कोई बात हुई।

भाई ध्यान सिंह और उसकी पत्नी ने सुना और रातों-रात फैसला किया कि अगली सुबह हरगोपाल दास के चमकौर से चलने के पहले वे अपने सारे गहने बेचकर 500 रुपये यात्री को देंगे और उससे गुरु महाराज का बख्शा लोहे का कड़ा ले लेंगे।

अगले दिन पहली बात उन्होंने यही की। 500 रुपये हरगोपाल दास की मुट्ठी में डाले और अपने कलगीधर की बख्शीश लोहे का कड़ा लेकर उसे अपने माथे से लगाया। भाई ध्यान सिंह की पत्नी ने उसे अपनी चोटी पर चढ़ा लिया। अपने पति से कहा, एक दिन मैं इस पवित्र कड़े को पहना करूंगी, एक दिन तुम पहनना।

बहुत दिन नहीं गुज़रे थे कि अपनी बारी वाले दिन भाई ध्यान सिंह गुरु महाराज का बख्शा लोहे का कड़ा पहने अपने खेतों में हल चला रहा था कि उसके हल का फाल खूड़ में दबी एक देग के साथ अड़ गया। भाई ध्यान सिंह ने आगे-पीछे की मिट्टी को हटाकर देखा, वह तो गहनों और अशर्फियों की भरी गागर थी। भाई ध्यान सिंह और उसकी पत्नी अपने गुरु महाराज का लाख-लाख शुक्र करने लगे।

उधर हरगोपाल दास जब उज्जैन लौटा, उसका पिता अपने बेटे की जहालत पर बहुत दुःखी हुआ। उसे समझ नहीं आ रही थी कि वह क्या करे। दिन-प्रतिदिन विशम्भरदास इसी चिंता में घुला जा रहा था। यही नहीं उनका

व्यापार भी घाटा खाने लगा था। सोने को हाथ लगाते, मिट्टी हो जाता।

आखिर हारकर विशम्भरदास अपने पुत्र हरगोपाल दास को लेकर आनन्दपुर पहुंचा। हरगोपाल दास को अमृत छकाया और गुरु महाराज के चरणों में लगाया। रास्ते में चमकौर से वह भाई ध्यान सिंह और उसकी पत्नी को भी साथ ले आए थे। गुरु महाराज ने भाई ध्यान सिंह और उसकी पत्नी पर खुश होकर कहा, हम तुम्हारी श्रद्धा से बहुत प्रसन्न हुए हैं। आप जो चाहो मांगो। आपके मन की मुराद पूरी होगी।

हजूर ! अगर प्रसन्न हैं तो इस तरह का दान बख्शो कि इसी प्रकार की श्रद्धा गुरु चरणों में बनी रहे। भाई ध्यान सिंह और उसकी पत्नी ने निवेदन किया।

60

पिछली बार अकेला जब दर्शनों के लिए हाज़िर हुआ था, उज्जैन के भाई विशम्भर दास का बेटा हरगोपाल दास बिना अमृतपान किए तरसता और खीजता लौट गया था। भला गुरु महाराज अध्यात्मवादी होकर मांस का आहार कैसे कर सकते थे। एक दरवेश कहाँ और शिकार कहाँ और शिकार भी वैसे जैसे दशमेश करते थे; ऐसे लगता जैसे कोई लश्कर चढ़ आया हो। घोड़े और बाज़, तीर कमान और बन्दूकें, हांका देने वाले और शिकारी कुत्ते।

इस बार वह अपने पिता के साथ आया, सबसे पहले उसने अमृत छका और जैसे उसकी आंखें खुल गई। अब उसके अन्दर एक ऊंचे तबके धनाढ्य व्यापारी की अकड़ नहीं थी। एक के बाद एक व्यापार में पड़े घाटे ने उसके अन्दर भगवान का डर और ईश्वर भक्ति का अहसास जाग्रत किया था।

फिर भी पीढ़ियों का अन्तर, हरगोपाल दास और उसके पिता विशम्भरदास की समझ में निश्चय बहुत फ़र्क था। जब भाई ध्यान सिंह और उसकी पत्नी को गुरु महाराज ने खुश होकर कहा, हम आपकी श्रद्धा से बहुत प्रसन्न हुए हैं, आप जो चाहो मांगो, आपके मन की मुराद पूरी होगी, और भाई ध्यान सिंह और उसकी पत्नी का जवाब में कहना, हजूर अगर प्रसन्न हैं तो यह दान बख्शें कि इसी तरह की श्रद्धा गुरु चरणों में बनी रहे। हरगोपाल दास को बहुत अटपटा लगा था। खास तौर पर उसके पिता का बार-बार इस उत्तर को सराहना। हरगोपाल दास सोचता, अगर मुझे इस प्रकार का मौका मिलता, मैं तो सारी खुदाई मांग लेता। सतगुरु ने कोई हुण्डी हाथ में पकड़ा दी थी; बन्दा जो जी चाहे मांग ले। मांगने कोई निकले तो फिर शर्म कैसी ?

भाई विशम्भर दास और भाई ध्यान उसकी इस तरह की बातें सुन-सुनकर आश्चर्यचकित होते रहते। जवान-जहान लड़के की सोच।

पर अबकी बार हरगोपाल दास का साहिबज़ादा अजीत सिंह जी के साथ बहुत मेल हो गया था। दोनों हम उम्र थे। देखने-दिखाने में भी दोनों एक जैसे लगते थे। एक को छिपाओ और दूसरे को निकालो। खास तौर पर जब से अमृत छक कर हरगोपाल दास खालसा सज गया था, उसकी कोमल दाढ़ी, हल्की-हल्की मूंछें, सिर पर केसरी साफ़ा जैसा बाबा अजीत सिंह सजते थे, अत्यन्त गौरवमय लगता था।

फिर हरगोपाल दास ने साहिबज़ादा अजीत सिंह जी के साथ शिकार पर जाना शुरू कर दिया। पहले एक-दो बार केवल साथ दिया जैसे कोई तमाशबीन होता है, फिर उसने खुद भी शिकार करना शुरू कर दिया। कुछ दिन में उसे शिकार का चसका पड़ गया। बन्दूक का निशाना पकाना, कमान का चिल्ला चढ़ाना। खाली समय में अभ्यास करता रहता।

बहुत दिन नहीं गुजरे थे कि हरगोपाल दास को अपना वैष्णवपन भूल गया; उसने मांस ही नहीं खाना शुरू किया, उसे जैसे मच्छी मांस का ऐसा स्वाद पड़ गया कि दोनों समय उसे मांस की तलब रहती। खाने के समय उसे चसका लगा रहता।

साहिबज़ादा अजीत सिंह और आनन्दपुर में और नौजवान गुरु सिक्खों की संगत में वह पहलवानी करता; कुश्तियों और अखाड़ों में उसका मन लगता। घुड़सवारी और नेज़ाबाजी गतका और बरछे का अभ्यास करता उज्जैन लौटने का जैसे नाम ही न ले रहा हो। उसका पिता विशम्भरदास अपने अमृतधारी जवान-जहान बेटे के मुंह की ओर देख-देखकर अचम्भा करता रहता।

और फिर एक दिन होशियारपुर के निकट बसी गांव का एक नौजवान ब्राह्मण गुरु महाराज के यहाँ फरियाद लेकर आया। इलाके के पठानों ने उसकी दुल्हन को अगवा कर लिया था और हर जतन करने के बावजूद वह अपहृत की गई लड़की को लौटा नहीं रहे थे। इधर सुनने में आया था, दुल्हन ने भूख हड़ताल की हुई थी और अगर तुरन्त कोई कार्रवाई न की गई तो बेचारी मासूम बच्ची की जान भी जा सकती थी।

दशमेश ने सुना और आगे-पीछे देखने लगे, किसे यह ज़िम्मेवारी सौंपी जाए कि नौजवान ब्राह्मण लड़की को बहाल करके उसके पति के हवाले

करे। साहिबज़ादा अजीत सिंह जो अपने कुछेक नौजवान साथियों के साथ दरबार में हाज़िर थे, कहने लगे, यह काम मैं करूंगा।

गुरु महाराज के हामी भरने पर साहिबज़ादा अजीत सिंह अपने साथ नौजवान गुरुसिक्खों की एक टुकड़ी लेकर पठानों के गांव की ओर निकल गए। उनके साथ हरगोपाल दास भी तैयार हो गया।

घोड़े दौड़ाते, फटाफट ये लोग जैसे घड़ी-पल में पठानों के गांव पहुंच गए। देखते-देखते इन्होंने उनकी गढ़ी का घेराव कर लिया। पठान कौन से कम अकड़खान थे। जमकर लड़ाई शुरू हुई। तीर छूटे। गोलियाँ चली। जब दोनों पक्षों का गोला-बारूद खत्म होने लगा, हाथापाई होने लगी। घोड़ों से घोड़े भिड़े। तलवारों से तलवारें टकराई। फिर लहू बहा। फिर दुश्मनों को एक-एक करके नेज़ों के साथ बींधा गया। फिर तलवारों की मार-काट। फिर सिक्ख शूरवीर न्याय के लिए, अनख के लिए, जूझे और फिर एक बार सच की जीत हुई। दुपहरी ढल रही थी कि पठानों ने हथियार फैंक दिए। ऐसे नौजवान लड़कों से मार खाकर वे बड़े शर्मिंदा हुए। पर उनका पक्ष बुराई का था, कपट का, सीना-जोरी का था, अन्याय का था। उन्हें हार का मुंह देखना पड़ा।

साहिबज़ादा अजीत सिंह की अगवाई में खालसा की टुकड़ी ने ब्राह्मण लड़की को मुक्त कराया। सोता पड़ने से पहले वे आनन्दपुर पहुंच गए। उन्होंने ब्राह्मण दुल्हन और कृतज्ञता में विभोर उसके पति को गुरु महाराज के दरबार में ला खड़ा किया। इस झड़प में खालसा का कोई नुकसान नहीं हुआ।

साहिबज़ादा अजीत सिंह बेशक इससे पहले आनन्दपुर की जंगों में हर तरह की शूरवीरता दिखा चुके थे, कई बार लड़ाई के कुछ क्षेत्रों की उन्होंने नई ज़िम्मेवारी भी सम्भाली थी और उसमें सुर्खुरू भी हुए थे, पर यह पहली मुहिम थी जो उनके जिम्मे लगाई गई और वह शानदार जीत प्राप्त करके आए थे।

गुरु महाराज प्रसन्न थे। बसी गांव के नौजवान ब्राह्मण जोड़े को समझ नहीं आ रही थी कि कैसे वे लोग गुरु महाराज का धन्यवाद करें, साहिबज़ादा अजीत सिंह और उनके साथी हरगोपाल दास का देना दें।

61

अजमेरचन्द को न दिन में चैन न रात को आराम था। आज कितने वर्ष

हो गये थे। रणजीत नगारे की धमक उसकी छाती में तोप के गोले की तरह लगती थी। हर चौथे दिन कोई-न-कोई शिकायत उसके पास आती। कभी उसकी रियासत के एक ओर से कभी दूसरी तरफ से, गुरु गोबिन्द सिंह जी के सिक्ख धड़ाधड़ शिकार के लिए निकले ऐसे घोड़े दौड़ाते फिरते जैसे राज उनका हो। कोई उन्हें पूछने वाला नहीं था। यही नहीं उसकी प्रजा में अनेक मर्द-औरतें गुरुसिक्ख के रूप में सज रहे थे। आनन्दपुर से अमृत छककर आए और गुरु महाराज के गुण गाते उन्हें हार रास नहीं आती थी। और तो और उसके अपने महलों में कलगीधर की प्रशंसा होने लगी थी। उनके जैसा कोई शूरवीर नहीं। ऊंचे-लम्बे, कलगी कितनी सुन्दर उनके सजती हैं। नूर बसता है उनके मुखड़े पर। उनके शीश के गिर्द रोशनी का हाला (चक्र) बनता है। उनके नैनों की ओर देखा थोड़े ही जाता है, आप-ही-आप सिर झुक जाता है। हाथ जुड़ जाते हैं। इस तरह के वार्त्तालाप सुनने में आते। उधर गामे महाजे सरदार बन गए थे। कृपाण कमर में लटकाये, उनकी अकड़ समाने में नहीं आती।

अजमेरचन्द सोचता, यह तो जैसे उसके घर को कोई कील रहा हो। कोई दिन आयेगा, उसकी प्रजा उसकी छुट्टी करके, गुरु गोबिन्द सिंह को अपना राजा मान लेगी और उसके घर वाले कहेंगे, कोई बात नहीं, अगला जन्म तो संवर जाएगा। तौबा, तौबा, कोई भी बात हुई।

इधर एक के बाद एक कितनी लड़ाइयाँ लड़कर वह देख चुका था। हर बार उनकी हार होती रही थी, चाहे पहाड़ी राजा मिलकर लड़े थे, चाहे मुगल फौजों ने हमला किया था। चाहे उस अकेले ने मुकाबला किया था। गुरु गोबिन्द सिंह की ताव कोई नहीं झेल सकता था। यह तो कभी सुना भी नहीं था, मुगल सिपह-सालार, अपने रुतबे, अपनी नौकरियाँ छोड़कर आनन्दपुर में जा बसे थे। क्या सैद बेग और क्या सईद खान।

और कोई उपाय उसे नहीं सूझा। अजमेरचन्द जैसे-तैसे खुद औरंगजेब से मिलने दक्षिण की ओर चल दिया। सफ़र की तकलीफें झेलता। वह मुगल शहनशाह से जा मिला। सारा दुखड़ा उससे रोया। 'इक्का-दुक्का मुगल फ़ौजदारों की हार, पहाड़ी राजाओं कीमार, उसकी अपनी मजबूरी। गुरु गोबिन्द सिंह ने तो फैसला किया हुआ है कि वह अपने पिता के कत्ल का बदला लेकर रहेगा। पंजाब और पंजाबी सिक्ख तो दिल्ली के तख़्त पर नज़रें जमाए बैठे हैं।' कुछ इस तरह अजमेरचन्द ने मुगल हुक्मरान के कान भरे।

औरंगजेब को अपनी करनी की भी जानकारी थी। एक तरफ उसने लाहौर, सरहिन्द, जम्मू और मुल्तान के सूबेदारों को फ़रमान जारी किया कि वे सभी मिलकर आनन्दपुर पर हमला करें; या गुरु गोबिन्द सिंह को कैद कर उसके सामने पेश करें या उसका शीश काटकर शहंशाह के दरबार में लाएं और दूसरी ओर उसने गुरु महाराज को इस तरह की चिट्ठी लिखी :

शहंशाह तो एक ही है (जो मैं हूँ)। आपका और मेरा धर्म भी एक जैसा है। इसलिए आपको मेरे पास आना चाहिए। नहीं तो मजबूर होकर मुझे आपके यहाँ आना पड़ेगा। अगर आप आओगे तो आपका वही आदर होगा जैसा आपके जैसे अल्ला वाले लोगों का बादशाह करते हैं। बादशाहत मुझे ईश्वर की ओर से बख्शी गई है। मेरी बात को मिट्टी में न मिलाना, इसी में आपकी भलाई है।

शहंशाह औरंगजेब की यह चिट्ठी लेकर एक काज़ी गुरु महाराज के पास आया। गुरु महाराज ने इसका जवाब दिया।

बहादुर, जिस मालिक ने तुझे राज करने को दिया है, उसी ने मुझे न्याय कराने के लिए भेजा है। उसने तुम्हें भी तो इन्साफ़ करने के लिए हिदायत की थी, पर तुम उसके कहे को भुलाकर खुराफ़ात में पड़ गए हो। मैं ऐसे खख्स से राज़ीनामा कैसे कर सकता हूँ जो हिन्दुओं से घोर नफ़रत करता हो। तुम इस बात को भूल गए हो कि प्रजा अल्ला की बनाई है, बादशाह की पैदा की हुई नहीं। तुम उनका धर्म छीन रहे हो। हिन्दू धर्म को नेस्तो-नाबूद कर रहे हो। जैसे गुरु महाराज ने सोच रखा था, इस तरह का जवाब पाकर औरंगजेब ने आनन्दपुर पर हमला करने का हुक्म जारी कर दिया।

यह जंग दिल्ली दरबार की ओर से आनन्दपुर के खिलाफ़ लड़ी जानी थी। अगर दक्षिण में मराठों के साथ न उलझा होता तो औरंगजेब खुद फ़ौज लेकर आक्रमण करता क्योंकि उसका आना सम्भव नहीं था, इसलिए लाहौर, सरहिन्द, मुल्तान और जम्मू के सूबेदारों को फ़रमान जारी किए गए कि वे मिलकर हमला करें और ,इस कांटे को जो काफी समय से मुगल हकुमत का सिरदर्द बना हुआ था, हमेशा के लिए निकाल दिया जाए। इस युद्ध की समूची ज़िम्मेवारी सरहिन्द के सूबेदार वज़ीर खान के सिर पर थी। वज़ीर खान अपने ज़माने का सबसे ज़ालिम जरनैल गिना जाता था।

शाही, फरमान पाकर सरहिन्द के सूबेदार ने चम्बा, जसपाल, गुलेर, कैंथल, मंडी, कांगड़ा आदि के राजाओं को भी अपने साथ शामिल होने के

लिए कहा। बिलासपुर का राजा तो मुगल फ़ौज के साथ पहले ही मिला हुआ था।

इसके अलावा रंगड़ और गूजर भी उनके साथ आ शामिल हुए।

जब गुरु महाराज को इसकी सूचना मिली, उनहोंने भी फौरन अपने गुरुसिक्खों को हुकमनामे भेजे। हर हुक्मनामे में कुछ इस तरह का आदेश दिया गया था :

श्री गुरु जी की आज्ञा भई, सर्वत संगत गुरु रक्खेगा। गुरु गुरु जपना। जन्म संवरेगा। सर्व संगत मेरा खालसा है। सवार, पैदल, बंदूकची, तगड़े-तगड़े जवान साथ लेकर हजूर आवन। जो सिक्ख पुत्तर दर्शन आवेगा, सो निहाल होगा। उसका खसमाना होगा। बहुड़ि होगा। गुरु बाबा सभै मनोरथ पूरे करेगा।

दरश हित। संमत-1761 ॥

आनन्दपुर में उस दिन दीवाली मनाई जा रही थी। जब यह खबर मिली कि मुगल सेनापत आनन्दपुर पर हमला करने के लिए रोपड़ की ओर बढ़ रहा था।

ऐसे लगता जैसे यह सूचना पाकर दीवाली के भक-भक जल रहे दीयों में एकदम और रोशनी आ गई हो। इसकी बजाये कि त्यौहार मना रही संगतों में आतंक फैलता गुरुसिक्ख उत्साह में हुमकने लगे, इससे अच्छा मौका क्या हो सकता था, अपने इष्ट की सेवा में अपने प्राण न्यौछावर करने का। कोई भी यात्री पीछे घर लौटने के लिए राज़ी नहीं हुआ। हरेक ने शस्त्रों से अपने आपको लैस करवाना शुरू कर दिया। कहाँ दीवाली की रौनक, कहाँ जंग की गहमा-गहमी; एकदम ही पलक-भर में जैसे आनन्दपुर का दृश्य और का और हो गया। सिक्ख शूरवीरों ने अंतिम विदाई लेनी शुरू कर दी। बहनें अपने भाइयों के कंगन बांधने लगीं। मांएं अपने पुत्रों को दूध देने लगीं। नौजवान गुरुसिक्खों ने केसरी साफ़े रंगाने शुरू कर दिए।

गुरु महाराज जानते थे कि यह लड़ाई लम्बी होने वाली थी। बुरे-बुरे सपने उन्हें घेरे रहते। दिन में बैठे-बैठे डरावने चित्र उनकी आंखों के सामने आने लगे। एक शूरवीर की मां और एक बेजोड़ शहीद की पत्नी माता गूजरी जी की हिम्मत न होती कि वे अपने बेटे के साथ इस बारे में कोई बात करें। आखिर उन्होंने भी तो अमृत छका हुआ था। अमृत छककर कोई गुरुसिक्ख उतरती कला में कैसे जा सकता था।

उधर गली-गली, कवायदों के हर मैदान में, हर किले की फसील के पीछे, दिन-रात इसी गीत की सदा सुनाई देती :

जउ तउ प्रेम खेलन का चाउ ॥
सिरू धरि तली गली मेरी आउ ॥
इत मारगि पैरू परीजै।
सिर दीजै काणि न कीजै ॥

(सलोक वारा ते वधीक महल्ला–1)

माझे और मालवे के नये भर्ती हुए जवान कवायदें करते, घोड़े दौड़ाते, शस्त्रों का प्रदर्शन करते, फूले न समाते। उन्होंने सुन रखा था, साारी उम्र की भक्ति एक ओर और सच के लिए, न्याय के लिए, अपने गुरु की अगुवाई में तलवार उठाना एक तरफ़। वे तो शहीद होने के जैसे सपने देख रहे हों। शहीद होकर जन्म-मरण के फेर से मुक्त हो जाना। शहीद होकर स्वर्ग में अपना स्थान निश्चित कर लेना। गुरु महाराज के पास अगर कोई जाता यही उपदेश देते :

धन जीउ तिह को जग मै मुख ते हरि चित मैं जुधू बिचारै
देह अनित न निंत रहै जसु नाव चढ़े भव सागर तारै
धीरज धाम बनाइ इहै तन बुद्धि सु दीपक जिउ उजियारै
गिआनहि की बडनी मनहू हाथ लै कातरता कुतवार बुहारै

(कृष्ण अवतार)

आखिर उधर सरहिन्द का सूबेदार वज़ीर खान और लाहौर का सूबेदार ज़बरदस्त खान अपने-अपने लश्कर लिए, ढोल बजाते और इस्लाम के हरे झण्डे लहराते रोपड़ के मुकाम पर आ इकट्ठे हुए। मुगल फौजों को पहुंचा देखकर पहाड़ी राजा भी अपनी-अपनी सेना के साथ उनमें शामिल हो गए।

गुरु महाराज को बताया गया कि आक्रमणकारियों के पास दस लाख की भर्ती थी। इसकी बजाय कि लगते हाथ की दुश्मन आनन्दपुर पर टूट पड़ें, दशमेश ने उदय सिंह और भाई दया सिंह की अगुवाई में खालसा फौज को आगे बढ़कर, दुश्मन को पछाड़ने की हिदायत की।

तोपें चलने लगीं, तीर छूटने लगे, 'सति श्री अकाल' और 'या अली' के नारों से आकाश गूंजने लगा। जितने मुगल अधिक थे, उतने ही ज़्यादा ढेरी होने लगे। खालसों का कोई निशाना खाली नहीं जा रहा था। देखते-देखते लहू की धारें बह निकली। मुगल सोचते, उन्हें तो कहा गया था कि गुरु

गोबिन्द सिंह की सेना तो ऊल-जलूल, निखट्टूओं-अनपढ़ों की भीड़ है, छाबड़ियाँ लगाने वाले, दुकानदार बनिए, और भांग पीने वाले, नाकारे, पर ये लोग तो ऐसे लड़ रहे थे जैसे इनके बाप-दादा ने सिपाहीगीरी की हो।

देखते-देखते कोई 900 मुगल और पहाड़ी सैनिक ढेरी हो गए। मुगल फ़ौजदारों के हाथ-पांव फूलने लगे। मुगल पहाड़ी सिपाहियों को बुज़दिल कहकर हिकारते। पहाड़ी सैनिक मुगलों को नाकारा कहते। ज़बरदस्त खान सोचता, सिक्ख गुरु में कोई इलाही शक्ति है जिससे वह हर बार मुगल फ़ौज को हरा देने में सफ़ल होता था। वज़ीर खान उसके साथ सहमत नहीं था। उसका कहना था, गुरु गोबिन्द सिंह की रणनीति सिक्ख फ़ौज की मदद कर रही थी। वे लोग एक ऊंची भूमि पर थे, दूसरे किले की दीवार के पीछे तोपों को छिपाकर वार पर वार कर रहे थे। इस तरह उनको हराना मुमकिन नहीं होगा।

और फैसला हुआ कि आनन्दपुर का घेराव कर लिया जाए और यह घेरा तब तक न छोड़ा जाये जब तक खालसा फ़ौज हथियार नहीं डाल देती।

62

मुगल सिपाही और पहाड़ी राजा आनन्दपुर के घेराव की योजना बना ही रहे थे कि उस दिन तड़के-तड़के ही उनका दरवाज़ा किसी ने खटखटाया। भाई आलम सिंह ने दरवाजा खोला तो क्या देखता है, गली में बाहर धर्म सिंह खड़ा था। दया सिंह और आलम दोनों उसे देखकर हैरान हो गए।

यह कैसे हो सकता था कि पंथ पर इतना भारी संकट पड़ा हो और वह दूर बैठा तमाशा देखता रहे ?

पर तुम्हें तो इस सब-कुछ से बचने के लिए यहाँ से भेजा था। दया सिंह उसे याद करा रहा था।

यह जंग ऐसी होने वाली है जिससे कोई गुरु का प्यारा नहीं बच सकेगा। चाहे कोई आनन्दपुर में हैं, चाहे कोई आनन्दपुर से बाहर है। यह कहते हुए धर्म सिंह की नज़रें जैसे अपनी मां और बहन को ढूंढ रही हों।

वीरां वाली और भागां को हमने लाहौर भेज दिया है। आलम ने उसकी तलाश समझते हुए कहा, तुम्हें संदेशा भेजा तो था। दया सिंह बता रहा था, मिला नहीं होगा।

आजकल संदेशों की भी भली कही। बायें हाथ को पता नहीं होता, दायाँ हाथ क्या करने जा रहा है।

कुछ समय इस प्रकार के वार्तालाप के बाद धर्म जल्दी-जल्दी तैयार होने लगा ताकि जो गुरु महाराज के हाज़िर होकर अपने-आपको उनकी सेवा में पेश कर सके।

माधवी का क्या हाल है ? दया सिंह पूछ रहा था।

राजपूतनी बच्चे बनाने की जुगत में लगी हुई है।

और बेटा ?

अपनी मां को तंग किए रहता है।

आजकल के बच्चे युग-परिवर्तन की औलाद करके याद किये जायेंगे।

सिर-धड़ की बाज़ी लगाना जिनके लिए आम बाती होगी जो खबर धर्म सिंह दिल्ली से निकालकर लाया था, उसके लक्षण आनन्दपुर में पहले ही दिखाई दे रहे थे।

धर्म की जानकारी के मुताबिक मुगलों ने यह फैसला कर लिया कि सिक्ख पंथ का भी नाश करना है। गुरु गोबिन्द सिंह जी को या बंदी बना लिया जायेगा, या खत्म कर दिया जायेगा। गुरु महाराज को जो चिट्ठियाँ और अन्य संदेश भेजता था, वह निरा दम्भ था।

खुद आलमगीर दक्षिण में मराठों को पराजित करने के लिए जूझ रहा था और मराठे उसके काबू में नहीं आ रहे थे। अपने बेटे शाह आलम को उसने दिल्ली भेज रखा था। जिससे उत्तर के सूबों की देखभाल करे। यह काम उसके वश का नहीं था। चारों ओर अराजकता फैली हुई थी। दक्षिण की लड़ाई के कारण खजाना खाली हो गया था। लड़ाइयों के अटूट सिलसिले से मुगल फ़ौजें निराश और थक गईं थी। सिपाहियों के हौंसले पस्त हो गये थे।

अब औरंगजेब ने यह फैसला किया था कि मराठों के किलों पर वह स्वयं कब्ज़ा करके और किले भी कौन से कम थे—सतारा, परली, पणहाला, विशालगढ़, सिंहगढ़, राजगढ़, तोरना, वागिनगेरा तथा और कितने ही। एक किले को काबू करता, दूसरा बागी हो जाता। मराठे औरंगजेब को नाक से चने चबवा रहे थे।

औरंगजेब की फौज थकी-हारी थी। कहीं बाढ़ में फंसी हुई थी और कहीं सूखे के कारण परेशान। टूटी हुई सड़कें, ऊजड़ रास्ते, माल ढोने वाले जानवर जैसे समाप्त हो गए हों, मज़दूरों में जी-जान ही नहीं रहा था। अनाज और खाने-पीने की बाकी रसद की कमी और इसके ऊपर बैराड़ियों के

हमले। जहाँ-कहीं फौजी टुकड़ियों पर आ झपटते और जो कुछ भी अन्न-पानी उनके पास होता लूटकर ले जाते। हालत यहाँ तक पहुंच गई थी कि कई स्थानों पर मुगल उल्टै मराठों को चौथ भेंट करते थे। कहीं रिश्वत देकर उन्हें खुश रखते थे। बुढ़ापे की इस उम्र में औरंगजेब की मिट्टी पलीत हो रही थी।

जिधर मुगल फ़ौज गुज़र जाती, पेड़ों-वृक्षों पर कोई पत्ता देखने लायक नहीं रहता था। खेतों में फसलों की जगह पर इन्सानों और जानवरों की हड्डियाँ दिखाई देती थीं। कहीं हरियाली नज़र न आती। चारों तरफ उजाड़ और कालिख पुती हुई होती। मुगल फौज में हर वर्ष लगभग एक लाख जवान मरते थे और कोई तीन लाख हाथी, ऊंट और घोड़े जान गंवाते थे और फिर ताऊन और माता की बीमारियाँ सांस नहीं लेने देती थीं। एक अनुमान के मुताबिक इस मुहिम में मुगलों को 20 लाख जानों का नुकसान उठाना पड़ा। उधर मराठे औरंगजेब का पीछा कर रहे थे। उसके सिपाहियों को जहाँ-तहाँ से खदेड़ रहे थे। उसकी फौज को रसद पहुंचाने वाले काफिलों को लूट रहे थे। मराठों ने सारे दक्षिण और कुछ मध्य-भारत के सूबों पर अपना अधिकार जमाया हुआ था।

आलमगीर की दो बेटियाँ मर गईं थी, एक बहू नहीं रही थीं। एक बहन अल्ला को प्यारी हो गई थी। दो भतीजे जाते रहे थे। और इस सब कुछ के साथ सभी परेशानियाँ उसके सिर से गुज़री थीं। इधर उसकी आंखें बन्द हुईं और उसके बेटों में उत्तराधिकार की लड़ाई शुरू हो जायेगी। हर कोई दिल्ली के तख़्त पर नज़रें गड़ाए बैठा था।

औरंगज़ेब को अभी से लग रहा था कि उसने अपनी जिन्दगी बेकार ही गंवाई थी। न इधर का रहा न उधर का। दक्षिण उसके काबू में नहीं आ रहा था, उत्तर हाथों से खिसक रहा था।

1685 में औरंगजेब की पहली बेगम की मौत के बाद उदयपुरी बेगम उसके अंग-संग रहती थी। उसके प्रति वफादार थी। दिलरास बेगम 1657 में मर चुकी थी। नवाब बाई बेशक जीती थी पर उसने जैसे सब कुछ तर्क कर छोड़ा हो। दिल्ली में रहती, पर न दरबार के किसी मामले में दखल न देती, आलमगीर के साथ उसने कोई वास्ता रखा हुआ था।

निजी जीवन में बेशक औरंगजेब पाकबाज़ था पर जहाँ तक राज-काज का सम्बन्ध था, उसे चालबाज़ी और धोखे से काम लेने में कभी गुरेज़ नहीं

हुआ था। झूठी चिट्ठियाँ लिखता, झूठे वायदे करता; अपना काम निकालने के लिए कोई भी दांव चलाने में उसे कभी संकोच नहीं हुआ था।

सारी उम्र लड़ता रहा, या लड़ाइयों की सोचता रहा, उसने अपनी प्रजा के भले का कभी नहीं सोचा था। न उनकी सामाजिक दशा संवार सका था, न उनकी आर्थिक हालत को बेहतर बना सका था। उसके राज में उसके लोग न अच्छे इन्सान थे, न अच्छे मुसलमान थे।

आज हालात ये थे कि औरंगजेब स्वयं ब्रह्मपुरी में डेरा डालकर बैठा था और उसके चारों और मराठे बागी थे, मारधाड़ कर रहे थे। तारा बाई मुगल सम्राट को सांस नहीं लेने दे रही थी।

इन हालात में धर्म सिंह की यह धारणा थी कि खालसा पंथ को मराठों के साथ गठजोड़ करना होगा। यह तभी सम्भव है जब दशमेश शिवालिक के कोने से निकलकर बाहर आए। बेशक आनन्दपुर को छोड़ना पड़े, अपने उद्देश्य की सफ़लता के लिए गुरु महाराज को यह कुर्बानी करनी होगी।

आलम सिंह और दया सिंह कहते, कलगीधर आनन्दपुर को छोड़ने के लिए कभी तैयार नहीं होंगे। न मुगल हमले को पछाड़ कर, न इस तरह के हमले के सामने हारकर।

कुटिल नीति का तो यह तकाज़ा है कि हमें मुगल अत्याचारों से छुटकारा पाने के लिए, उन लोगों को अपने साथ मिलाना होगा जो मुगल साम्राज्य के साथ जूझ रहे थे। धर्म तो दिल्ली से यही संदेशा लेकर आया था। आज मराठों का इतना ज़ोर है कि मुगल उनका सामना करने से कतरा रहे हैं। आज शिवाजी होते तो दिल्ली के तख़्त पर विराजमान होते। शिवाजी दिल्ली में मिर्ज़ा जयसिंह के मेहमान थे और राजा जयसिंह का परिवार गुरु घर का श्रद्धालु है। धर्म अपनी धारणा पर कायम था। औरंगजेब ने शिवाजी को मिर्ज़ा जयसिंह की हिरासत में रखा और उन्होंने उसे एक तरह से हिरासत से खिसकने में मदद की।

गुरु महाराज आनन्दपुर कभी नहीं त्यागेंगे, दया सिंह कह रहा था।

आनन्दपुर के साथ हमारी लाखों स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं, कोई आनन्दपुर को कैसे खाली कर सकता है ?" अब आलम सिंह बोल रहा था।

'बेशक, बेशक', धर्म सिंह उन्हें समझाने के लिए ही तो इतनी दूर से रास्ता तय करके आया था, यह बताओ, गुरु हरगोबिन्द इन पहाड़ियों में क्यों आ टिके थे ? क्यों कीरतपुर को उन्होंने बसाया था ?

इसलिए कि मुगलों के साथ लड़-लड़कर गुरुसिक्ख थक गए थे, उन्को अवकाश की ज़रूरत थी, दया सिंह बोला। पर मुगलों ने हमें यहाँ भी सांस न लेने दिया। आलम सिंह ने अपनी राय दी, "बल्कि पहाड़ी राजा भी हमारे दुश्मन हो गए।"

'इसलिए ज़रूरी है कि बदी का मैदान में उतरकर मुकाबला किया जाये।' धर्म सिंह का कहना ठीक लग रहा था।

'और इस मुकाबले के लिए हमें हमारे जैसी सोच का कोई साथ चाहिए और आज के भारत में केवल मराठे हमारा साथ दे सकते हैं।' धर्म सिंह पूरे विश्वास के साथ अपना पक्ष पेश कर रहा था।

'इसका यह मतलब है, हमें आनन्दपुर छोड़ना पड़ेगा ?' अब दया सिं और आलम सिंह एक स्वर में बोले। उनके बोल निराशा-भरे थे।

'जरूरी नहीं और जरूरी है भी। गुरु महाराज को किसी तरह इस कोने में से निकालकर हमें बाहर ले जाना होगा। चाहे एक विजयी की तरह, चाहे एक गाज़ी के रूप में और फिर इन्हें दक्षिण की ओर जाकर मराठों के साथ गठजोड़ करना होगा। मुगल साम्राज्य दम तोड़ रहा है। इसके ताबूत में आखरी कील हमें गाड़नी होगी। धर्म सिंह तो जैसे पूरी योजना बनाकर दिल्ली से आया हो।

और फैसला हुआ कि पहली फुर्सत, वह अपनी इस तजवीज़ को गुरु महाराजा के पेश करेंगे।

63

बेशक दस लाख मुगल और पहाड़ी राओं की फौज से टक्कर लेना कठिन काम था। बेशक दशमेश को इस बात का अहसास था कि आखिर उनको आनन्दपुर के मालिकों को पुश्तों की ओट में जाना होगा और इस योजना को उन्होंने रूप भी दे रखा था। पर अभी तो जंग की शुरुआत ही थी। अभी तो साहिबज़ादा अजीत सिंह को लड़ाई में अपना योगदान देने का अवसर तक न मिला था। अभी तो कलगीधर स्वयं अपने नीले घोड़े पर सवार मैदाने जंग में नहीं उतरे थे।

और अगले दिन सुबह आसा की वार की चौकी के बाद, अरदास शोध कर गुरु महाराज ने एक तरफ साहिबज़ादा अजीत सिंह को दुश्मन को ललकारने के लिए भेजा और दूसरी ओर स्वयं खालसा सेना की कमान सम्भाल ली।

जिस तरह दशमेश का आदेश था, तोपचियों ने किले की मुंडेर की ओट के पीछे गोलियों के साथ मुगल फौज़ियों को भूनना शुरू कर दिया। और इधर कलगीधर और साहिबज़ादा अजीत सिंह की अगवाई में खालसा फौज़ दुश्मन पर टूट पड़ी। सिक्ख घुड़-सवार खण्डे घुमाते, तेगें चलाते, ऐसे दुश्मन की कतारों में घुसे, जैसे तीरों के गुच्छे किसी कमान से छूटें हों। मारो, पकड़ो, बचकर न निकले की पुकार और तलवारों की कट-कट चारों तरफ सुनाई दे रही थी। तीरों की बौछार ऐसे होने लगी जैसे टिड्डी दल आ उमड़ा हो। सूरज की रोशनी मध्यम पड़ गई। आगे-पीछे छूट रहे तीरों की परछाइयाँ थी।

उधर मुगल फ़ौज ऐसे थी जैसे दहाड़ें मारता समन्दर हो। ऐसे लगता जैसे एक हल्ले में वे तहस-नहस करके बाढ़ के हुल-हुल करते पानी की तरह चारों तरफ़ फैल जायेंगे। उनके नये चांद के हरे झण्डे, उनके इस्लामी 'अल्ला हू अकबर' के नारे, उनकी जेहाद की भावना, हुक्मरान कौम की गैरत का उनका तकाज़ा, बेशक पिछले रोज़ उनके 900 जवान मौत के घाट उतारे गये थे, उनका फैसला था कि सिक्ख गुरु और उनके अनुयायियों का सफाया कर ही उन्हें लौटना है।

उधर उदय सिंह और दया सिंह सिर पर केसरी दस्तारें (पगड़ी) सजाये अपने-अपने घोड़े लिए मुगल फ़ौज में ऐसे झपटते थे, जैसे कोई बाज़ तिलियर (पक्षी) की उडार पर चोंच मार रहा हो। दुश्मन का वध करके, आगे-पीछे तीरों और तेगों के वारों से बचते, फिर अपने ठिकाने पर पहुंच जाते, जैसे कोई हाथ देकर बचाता हो, दुश्मन हर हीला कर बैठे, उन्हें कोई खरोंच भी नहीं आ रही थी।

तो भी इतने भारी लाखों फ़ौजियों के सामने सैंकड़ों की गिनती की खालसा फौज कब तक टिकती। फिर एक समय आया जब ऐसे प्रतीत होने लगा कि खालसा फ़ौज को अपने-अपने नियत किए किलों के अन्दर जाकर दुश्मन का मुकाबला करना होगा।

अब दशमेश अपने नीले (घोड़े) पर सवार सामने आये मुग़ल जरनैल ने दिप्-दिप् करती दिव्य मूर्ति देखी। नीले घोड़े पर सोने की तारों की काठी। उनके शीश पर कलगी में दमक रहे हीरे। उनकी हरे रंग की कमान।

'यह कौन है ?' वज़ीर खान ने अजमेरचन्द से पूछा। 'यही तो सिक्ख-गुरु हैं' उसने जल-भुन कर आगे जवाब दिया। दशमेश के छोड़े तीर सपोलिए की तरह आगे-पीछे 'जवानों को डसते, ढेरी करते जा रहे थे।

वज़ीर खान ने अपने तोपची को हुक्म दिया, फौरन तोप के गोले गुरु महाराज पर दागकर उनके देखते-देखते खत्म कर दे। पर यह क्या तोप के गोले उस स्थान से कहीं ऊंचे गिर रहे थे जहाँ दशमेश का घोड़ा खड़ा था।

अब गुरु सिक्ख हाथ-जोड़े गुरु महाराज से निवेदन करने लगे-'सच्चे पातशाह, आप किले के अन्दर हो जाओ, आज के दिन हमें लड़ लेने दो।' गुरु महाराज नहीं माने। 'अभी तक वह गोला नहीं बना जो मुझे आकर लगे', उन्होंने कहा और वैसे का वैसे अपने स्थान पर जमकर वे दुश्मन पर तीरों की वर्षा कर रहे थे।

अब मुगल तोपची ने अपनी तोप की नली को नीचा कर गोले छोड़ने शुरू कर दिये। ये गोले गुरु महाराज से कहीं पहले गिरते। जहाँ दशमेश थे, वहाँ बस उनकी धमक ही सुनाई देती।

बेशक दुश्मन का बहुत नुकसान हो रहा था पर गुरुसिक्खों को भी तो जान पर खेलना पड़ रहा था। मुगल बहुत थे, वे बहुत मर रहे थे; गुरुसिक्ख कम थे, यह थोड़े शहीद हो रहे थे और फिर एक घड़ी आई जब गुरु महाराज ने सोचा, वह समय आ गया था। जैसे कि उन्होंने योजना बनाई थी, खालसा फ़ौज को किले के अन्दर अपने आपको सुरक्षित कर लेना चाहिए। दुश्मन के जवानों को मार-मार कर भी वे कितनों को मार सकते थे। दस दुश्मन के सिपाहियों का नाश कर अगर एक सिक्ख शहीद होता था तो भी मुगल और पहाड़ी राजाओं की फ़ौज को खत्म करना मुमकिन नहीं था। उनकी तोपें तगड़ी ही नहीं थीं। उनके बन्दूकची और घुड़सवार जैसे उनका कोई वार-पार ही न हो।

गुरु महाराज ने साहिबज़ादा अजीत सिंह को बुलाकर हुकम दिया कि वे केसगढ़ की जिम्मेवारी लें; बस वहाँ जमकर टिक जाएं, आगे न बढ़ें। न आगे बढ़ें, न किसी को आगे बढ़ने दें। उनकी बन्दूकें चौबीस घण्टे भरी रहनी चाहिए और तरकश तीरों से भरे होने चाहिए। ऐसे ही शेर सिंह को लोहगढ़ के किले को संभालने के लिए कहा गया। उनकी मदद के लिए 500 जवानों की टुकड़ी तैनात की गई। आलम सिंह को भी 50 जवानों के साथ अगमपुर के किले को संभालने के लिए कहा गया। उदय सिंह शहर के एक और हिस्से में 500 जवानों के साथ तैनात किए गये। दया सिंह को शहर के उत्तरी भाग की रक्षा करनी थी।

उधर मुगलों और पहाड़ी राजाओं ने आनन्दपुर को चारों ओर से घेर लिया था, वे सोचते, ऐसे बेकार मरने-मारने की क्या ज़रूरत है, वे न किसी को शहर के भीतर आने देंगे न किसी को शहर के अन्दर से बाहर जाने देंगे। यही नहीं उन्होंने जिस नाले का पानी शहर को मिलता था उसका मुंह भी मोड़ दिया। गुरु महाराज को जब खबर मिली, उन्होंने कहा, 'परवाह नहीं, सतलुज हमें पानी पहुंचायेगी, हमारी मदद के लिए सहायक नाला जल्दी ही सतलुज दरिया का पानी लाया करेगा और समय बीत कर ऐसा ही हुआ।

मुगल और पहाड़ी राजाओं की फौज बाहर और खालसा सेना आनन्दपुर के किले के अन्दर, एक-दूसरे की सबर-आज़माई हो रही थी। दिन, हफ्ते, महीने बीतने लगे। उधर से न कोई बाहर आता, इधर से न कोई अन्दर जा सकता। एक दूसरे को थकाया जा रहा था।

बीच-बीच में ठाह-ठूह गोलियाँ भी चलतीं। बीच-बीच में तोपों से दोनों पक्षों की ओर से गोलाबारी भी होती। गुरुसिक्ख बाहर निकलते और उनकी दुश्मन के साथ झड़पें भी होती।

कुछ दिनों से जंग में एक अटक डालने वाला रोड़ा आया हुआ था। दोनों पक्ष अपनी-अपनी जगह पर जमें हुए थे। गुरु महाराज ने अपनी दूरबीन के साथ देखा, दूर एक बेरी के नीचे वज़ीर खान और ज़बरदस्त खान बैठे शतरंज खेल रहे थे। उनके साथ एक ओर अजमेरचन्द खड़ा उनका खेल देख रहा था। गुरु महाराज का मन किया, मुगल जरनैलों को दिखाया जाए कि तीर का निशाना कैसा साधा जाता है। उन्होंने अपनी कमान का चिल्ला चढ़ाया और सोने की नोक वाले अपने तीर को ऐसे होशियारी के साथ छोड़ा कि तीर ठीक खिलाड़ियों के बीच शतरंज पर जा गिरा। तीर की नोक पर सोना देखकर उन्हें निश्चय हो गया कि वह तीर गुरु गोबिन्द सिंह जी का छोड़ा हुआ था।

इतनी दूर और इस तरह अचूक तीर छोड़ना, यह करामात थी। इस तरह का निशाना किसी इंसान का नहीं हो सकता, चाहे कोई कितना ही निशानेबाज़ हो वे लोग सोचते, इस तरह के पहुंचे संत का वह क्या मुकाबला कर सकेंगे। उन्हें आस-पास से डर लगने लगा। उन्होंने अजमेरचन्द को बुरा-भला कहना शुरू कर दिया। उसने उन्हें एक ऐसे दुश्मन के सामने ला खड़ा किया जो जादू-टोने जानता था। उसके पास तो कोई अलौकिक ताकत थी, तभी तो मुगल फौज़ का इतना नुकसान हो रहा था।

ऐसे वे अजमेरचन्द की लानत-मलामत कर रहे थे कि गुरु महाराज का एक तीर उस पेड़ में आ लगा जिसके नीचे वे लोग बैठे शतरंज खेल रहे थे। इस तीर के साथ एक चिट्ठी थी जिसमें गुरु महाराज ने कहा था—यह न सोचना कि पहली बार वैसे ही तीर-तुक्का लगा था, यह तीर मैं यह साबित करने के लिए छोड़ रहा हूँ ताकि आपको निश्चय हो जाए कि अगर मैं चाहूँ तो आप तीनों के लिए एक-एक तीर रख सकता हूँ।

यह चिट्ठी पढ़कर मुगल जरनैलों के होश उड़ गए। आखिर गुरु गोबिन्द सिंह को कैसे पता लगा था कि वे उस तरह का कुछ सोच रहे थे।

अब उठते-बैठते वह अजमेरचन्द के साथ चुटकियाँ लेते रहते। पहाड़ी राजाओं ने यह देखकर मुगल फौजदारों को और रूपया दिया, और उपहार दिए। उन्हें डर था कि वे लोग कोई बहाना ढूंढकर लौट जायेंगे। एक बार शहर का घेराव टूट गया तो फिर गुरु गोबिन्द सिंह के सिक्ख उनके काबू में नहीं आयेंगे।

इस सबके ऊपर जब शेर सिंह और नाहर सिंह ने अगली सुबह ब्रह्म-मुहूर्त्त में मुगल फ़ौज पर अचानक हमला कर दिया। तम्बुओं में सो रहे मुगल जवानों को काटकर दिन चढ़ते अपने ठिकानों पर लौट आए।

जिस टुकड़ी पर उन्होंने आक्रमण किया उसका वंश चलाने वाला कोई नहीं बचा था। मुगल फौजदारों को यह बताने वाला भी कोई नहीं था कि वह सब कुछ कैसे हो गया था।

गुस्से में आकर उन्होंने आनन्दपुर पर बदले में हमला किया। खालसा फौज ने अपनी दो तोपें 'बागण' और 'विजयघोषण' लगा ली और आक्रमणकारियों को आगे बढ़ने से सारा दिन रोके रखा। शाम होने पर मुगल फ़ौज को फिर पीछे हटना पड़ा।

इसके अलावा अब कोई और चारा नहीं था कि शहर का मुकक्मल घेराव बनाये रखा जाये। लड़ाई में खालसा फ़ौज़ को हराना बिल्कुल ही मुमकिन नहीं था।

नाहर सिंह और शेर सिंह ने जो मुगल फौजों पर अचानक ही हमला किया था, उसकी खबर उन्होंने किसी को कानों-कान नहीं होने दी थी। आधी रात को अपने शूरवीरों को जगाकर उन्हें भेड़ियों की तरह दुश्मन पर कूद पड़ने के लिए ले गए। ऐसे अचानक हमला, घबराये मुगल फौज़ी संभल भी नहीं पाए थे कि उनकी सारी-की-सारी पलटन की सफ़ाई कर दी गई।

यह चमत्कार गुरु का खालसा ही कर सकता था। इस हमले की खबर गुरु महाराज को भी तब मिली जब नाहर सिंह और शेर सिंह अपने शूरवीरों के साथ ठिकाने पर लौट भी आए थे।

दुश्मन के खिलाफ इस तरह के वातावरण में पिछले दिन की झड़प के बाद एक नया तथ्य ज़ाहिर हुआ था जिसकी चारों तरफ चर्चा हो रही थी। एक खुसर-फुसर। अजीब-अजीब चिमगोइयाँ जो कोई भी सुनता, उसका चेहरा भक-भक करने लगता। आगे-पीछे इस तरह की आवाज़ें सुनाई देतीः

इह अनर्थ नहीं कदी सुणिआ।
इसतो तां कलमां पढ़ लैण।
छुनी बिच पाणी पा के डूब मरण।
हनेर साईं दा, इहनां नूं अगे जवाब नहीं देना ?
जिहड़े इह कुछ कर सकते ने उह होर जो कुछ वी करन सोई थोड़ा।
ज़मीर बेच बैठे ने
ज़मीर विकी तां धर्म गया।
धर्म गया तां फिर रह ही कि गया ?
धी-धियाण दी इज्ज़त लई लोकी लड़ मरदे ने

लड़ तो ये भी रहे हैं, मर तो यह भी रहे हैं, पर गुरु महाराज की पीठ लगाने के लिए।

जिन्होंने कल अपने पिता को न्योछावर कर दिया, उनके धर्म की रक्षा करने के लिए।

अभी तो पता नहीं और कितनी ही कुर्बानियाँ देनी पड़ेंगी। सुबह से इस प्रकार की सुग-बुग हो रही थी।

आखिर यह फैसला हुआ कि मामला गुरु महाराज के यहाँ पेश किया जाए।

गुरु महाराज के पहुंचे तो वहाँ उनके सामने एक और शिकायत की सुनवाई हो रही थी।

कन्हैया सिंह नाम का एक गुरु सिक्ख था, जिसके जिम्मे यह सेवा थी कि लड़ाई में घायल सिपाहियों को वह पानी पिलाया करे। गागर उठाए अपने लोटे से दम तोड़ रहे, बूंद-बूंद पानी के लिए तड़प रहे, घायल फौज़ियों को ऐसे पानी पिलाकर, यश कमाता था। इससे पहले की लड़ाइयों में भी

वह ऐसे ही करता रहा था। बहुत नाम था उसका। गुरु महाराज की कृपा थी। उनकी कृपा के बिना इस तरह की सेवा कौन कर सकता है ? जंग के मैदान में इतना खतरा होता था कि कुछ भी हो सकता था। गोली या तीर को यह पता थोड़े ही होता है कि यह भाई कन्हैया है, लड़ नहीं रहा, यह तो घायलों को केवल पानी पिला रहा है। इसे चोट नहीं आनी चाहिए।

उसे इतने दिन सचमुच कभी कोई ज़रब नहीं आई थी और वह गुरु महाराज की बताई सेवा कर रहा था, पर पिछले कुछ समय से गुरुसिक्खों को यह देखकर हैरानी होती कि जंग के मैदान में भाई कन्हैया खालसा फ़ौज के घायलों के साथ मुगलों और पहाड़ी राजाओं की सेना के घायलों को भी वैसे ही पानी पिलाता था जैसे अपने सिपाहियों को। वे लोग इनके लहू के प्यासे थे और इधर गुरु महाराज का तैनात किया सेवादार दुश्मन की सेवा वैसे की वैसी कर रहा था, जैसे अपने सैनिकों की करता था।

गुरु महाराज ने सुना तो मुस्कराने लगे। उन्होंने भाई कन्हैया को बुलवा भेजा। भाई कन्हैया गुरु महाराज के समक्ष पेश हुआ।

भाई कन्हैया, तेरे जिम्मे लड़ाई में घायलों को पानी पिलाने की सेवा लगाई गई थी।

जी सच्चे पातशाह

क्या यह सेवा तुम ठीक-ठाक निभा रहे हो ?

करने-कराने वाले सतगुरु स्वयं हैं, दास तो एक साधन है। भाई कन्हैया हाथ जोड़े दशमेश के सामने खड़ा था।

उसकी शिकायत लेकर आए गुरुसिक्ख गुस्से में नीले-पीले हो रहे थे। उनमें से एक भड़क उठा, हजूर, यह बहानेबाज़ है। मैंने अपनी आंखों से एक से अधिक बार देखा है, यह दुश्मन के घायलों को पानी पिला रहा था। एक-आध बार गलतफ़हमी हो सकती है, पर इस का तो जैसे काम ही यह हो। जब देखो, अपने घायलों के साथ दुश्मनों के घायलों को भी वैसे का वैसा खुला-डुला पानी पिला रहा होता है।

मेरी राय है, हजूर कि यह सेवा भाई कन्हैया से लेकर किसी और को बख्शी जाए और भाई कन्हैया को तन्खैया घोषित कर दिया जाए। तीसरा गुरुसिक्ख बोला :

> भाई कन्हैया लूण हरामी है।
> भाई कन्हैया विश्वासघाती है।

भाई कन्हैया गद्दार है।

भाई कन्हैया राजद्रोही है।

भाई कन्हैया धोखेबाज़ है।

भाई कन्हैया हाथ जोड़े सामने खड़ा था और उसकी शिकायत लेकर आये गुरुसिक्ख एक के बाद एक फतवे दिए जा रहे थे।

भाई कन्हैया बार-बार अपने भीतर को टटोलता, उससे कौन सा पाप हो गया था ?

क्या यह सच है कि तुम दुश्मन के घायलों को भी पानी पिलाते हो ? अब गुरु महाराज ने शिकायत लेकर आये गुरुसिक्ख को खामोश करके, भाई कन्हैया से पूछा।

सच्चे पातशाह, आपने मेरी सेवा लगाई थी घायलों को पानी पिलाने की, मैं पानी पिलाता हूँ।

यह थोड़े ही कहा था कि दुश्मन के घायलों को भी पानी पिलाया जाए ? गुरु महाराज ने जैसे चिढ़कर कहा।

पानी पिलाते घायलों में मुझे तो कोई दुश्मन नहीं नज़र आता। न कोई हिन्दू, न कोई मुसलमान, न कोई सिक्ख। दगेबाज़, शिकायत लेकर गुरुसिक्ख एक स्वर में बोले।

भाई कन्हैया परेशान नज़रों से इधर-उधर देखने लगा। कभी वह गुरु महाराज की ओर, कभी गुरु सिक्खों की ओर जो इतने खफ़ा प्रतीत हो रहे थे।

'कि यह सच है कि तुम दुश्मन के घायलों को भी पानी पिलाते हो ?' गुरु महाराज ने जरा ऊंची आवाज में पूछा।

'हजूर घायलों में तो मुझे कोई दुश्मन नहीं नज़र आता। सभी ज़रूरतमन्द दिखाई देते हैं।' भाई कन्हैया प्रार्थना कर रहा था। 'सभी दुःखी होते हैं। सभी तड़प रहे होते हैं।'

'क्या मतलब ? मुझे तो चारों ओर हजूर दिखाई देते हैं, न कोई वैरी, नाही कोई बिगाना।

गुरु महाराज ने सुना तो उनकी मुस्कान, जिसको वह कितने देर से छिपाये हुए थे, उनके मुख पर खेलने लगी।

यह देखकर शिकायत लेकर आये गुरुसिक्ख बुड़-बुड़ाते हुए चल दिये। 'इस तरह तो इसे मलहम भी दी जाये ताकि दुश्मन के घायलों का उपचार भी साथ-साथ करता जाये।' वे एक-दूसरे से कह रहे थे।

जब शिकायत करने वाले गये, गुरु महारजा ने कन्हैया को थपकी देकर विदा किया। तुम्हारी आस-औलाद को सेवा का सौभाग्य प्राप्त रहेगा। आप लोग सेवापंथी कहकर जाने जाओगे, गुरु महाराज ने उसे आशीष दी।

अब भाई नाहर सिंह और भाई शेर सिंह जो बाहर प्रतीक्षा कर रहे थे, दरबार में हाज़िर हुए। उनके साथ एक कोमल तन, गोरा चिट्टा फ़ौजी था। इसको उन्होंने अपने सरघी के हमले में पकड़ा था। गुरु महाराज ने भाई नाहर सिंह और भाई शेर सिंह को देखा तो पूछने लगे, सुना है, आज आप भोर को स्नान सतलुज के किनारे करने गये थे ?

हज़ूर हमें टोह मिली कि दुश्मन आनन्दपुर के कुछ ज़्यादा ही नज़दीक बढ़ता आ रहा है। दरिया के इस किनारे उन्होंने अपने तम्बू गाड़ लिये थे। हमने आधी रात जाकर सफ़ाया कर दिया।

'पर इस रात के हमले में हमें पहाड़ी राजाओं की एक और करतूत की जानकारी मिली है' शेर सिंह उतावला हो रहा था, ये लोग इतने ज़लील हो सकते हैं, इसका हमें कभी स्वप्न भी नहीं था।

अब और क्या उपद्रव उन्होंने मचाया है। गुरु महाराज पूछ रहे थे।

हज़ूर बताने वाली बात हो तो कोई बताये, नाहर सिंह की नज़रें झुकी हुई थी इन लोगों ने तो हिन्दू धर्म की मिट्टी पलीत कर दी है।

फिर भी।

इन लोगों ने अपनी बहु-बेटियों को मुगल फौजियों के शौक के लिए पेश करना शुरू कर दिया है। शेर सिंह का अंग-अंग कसमसा रहा था।

यह कैसे हो सकता है ?

नाहर सिंह बाहर खड़े चादर में मुंह-सिर लपेटे सुबह के हमले में पकड़े व्यक्ति को अन्दर लाता है।

यह कौन है ?

'हज़ूर, इसकी दास्तान इसके मुंह से सुन लो।' शेर सिंह बोला

मेरा नाम गूजरी है, सच्चे पातशाह। चादर में सिर-मुंह लपेटे हुये हिन्दू लड़की ने अपने चेहरे से पर्दा हटाया और हाथ जोड़े निवेदन करने लगी, जैसे कोई घायल अबाबील हो।

निराश हृदय, टप-टप आंसू एक झालर की तरह बह रहे थे। सतगुरु, हम सात बहनें हैं, सातों की सात पकड़ कर ले आये। बाकी के गांव में से जो-जो उन दुष्टों के हाथ लगती पकड़कर आगे लगा लेते और हमारा झुण्ड का झुण्ड उन्होंने मुगलों के हवाले कर दिया। हमारी विधवा मां रोती रह गई।

हाड़े काढ़ती रह गई। सुनवाई नहीं हुई, बल्कि हमारे राजा के दूतों ने उसे चाबुक से अधमरा कर दिया। कहा, रियासत के लिये, अपने राजा के लिये इतनी कुर्बानी भी नहीं कर सकती ?'......

'बस, बस !' गुरु महाराज ने उसे और बोलने से रोक दिया। रो-रोकर उसकी घिघि बंध रही थी।

'हज़ूर, पता लगा है, अब शेर सिंह बोल रहा था, यह करतूत वे लोग बहुत देर से कर रहे हैं। मोहरों के साथ सौगातें भी देते हैं जिनमें उनकी बहू-बेटियाँ भी शामिल होती हैं। कुंवारी कन्याएं.......'

गुरु महाराज दांत किटकिटा रहे थे। ऐसे लगता जैसे आश्चर्य में कलगीधर के नेत्र भक-भक करने लगे हों।

कितनी ही देर दरबार में खामोशी छाई रही।

फिर नाहर सिंह बोला, 'हज़ूर अब इस बच्ची का क्या करें ?'

इसका जवाब अभी गुरु महाराज नहीं दे पाये थे कि आलम सिंह एक नौजवान को लिये दरबार में आ गया।

इस गुरुसिक्ख को मुगल सैनिकों ने पकड़कर इसके केश काट दिए थे। इससे कलमां भी पढ़वाया गया था। गाय का मांस खाने के लिए मज़बूर किया था और इसकी सुन्नत भी कर दी थी और यह सब कुछ करके उसे दरिया पार आकर छोड़ गये थे।

'सवाल यह था कि अब उसका क्या किया जाये।'

गुरु महाराज ने कहा, इन दोनों को अमृत छकाकर गुरुसिक्ख सजाया जा सकता है और फिर अगर इनकी मर्ज़ी हो तो.......। हरेक की नज़र उस अबला हिन्दू लड़की और गुरुसिक्ख की ओर उठी हुई थी, जिसके सिर पर केश नहीं थे।

65

लाहौर शहर में पीर इनायत शाह के तकिए पर आज की शाम कव्वालियों की महफ़िल जमी हुई है। पीर इनायत शाह सामने एक दीवान पर विराजमान थे। उनके पीछे खड़ा एक मुरीद उनको पंखा झल रहा था। गर्मियों के दिन, खानगाह के खुले आंगन में पूरे चांद की चांदनी में मजलिस को जमे बहुत देर हो गई है।

पिछले कुछ समय से कसूर से आये कव्वाल एक के बाद एक कव्वालियाँ पेश कर रहे थे :

शराअ कहे चल पास मुलां दे,

सिक्ख लो अदब अदाबां नूं।
इश्क कहे एक अलफ़ बहुतेरा,
ठप रख होर किताबां नू।

....

किते रामदास, किते फतेह मुहम्मद इहो कदीमी रतेरा।
मुसलमाण शिवे तों चिढ़दे, हिन्दू चिढ़दे गोर।
चुक्क गये कुल झगड़े झेड़े, निकल गया कोई होर।
साधो किसनू कूक सुणावां, मेरी बुक्कल दे विच चोर।

....

मैं जोगी नू खूब पछाता
लोकां मैंनू कमली जाता।
लुटी झंग सियाल, कन्नी मुन्दरां पाके।
मैं वैसां जोगी दे नाल मथे तिलक लगा के।

पहली कव्वाली, दूसरी कव्वाली, यह अब तीसरी कव्वाली थी। कव्वालियों के ये बोल ऊपर-ऊपर के थे। ये किसके बोल थे ? पीर इनायत शाह की जैसे जिज्ञासा जागी। उन्होंने इधर-उधर देखा। ये किसके बोल हैं ? जैसे उनके चेहरे पर चित्रित हो।

पीर जी के दीवान के दांये-बांये बैठे उनके निकटवर्ती मुरीद पीर इनायत शाह के मुखड़े पर प्रश्न-चिह्न को पहचान रहे थे, पर जान-बूझ कर इसको अनदेखा कर रहे थे।

अब कव्वालों ने एक ओर कव्वाली शुरु की :

माटी कुदम करेंदी यार,
माटी कुदम करेंदी यार।

उधर से कव्वाली शुरू हुई इधर कव्वालियाँ सुनने आये सैंकड़ों श्रोता अपनी-अपनी जगह उठकर नाचने लगे। जैसे लोग हाल में आ रहे हों, कव्वालों के साथ गा रहे थे, नाच भी रहे थे :

माटी कुदम करेंदी यार,
माटी कुदम करेंदी।
माटी घोड़ा माटी जोड़ा।
माटी का जसवार,
माटी कुदम करेंदी यार।
माटी-माटी नूं दौड़ावे,

माटी दा खड़कार
माटी कुदम करेंदी यार।
जिस माटी पर बहुती माटी,
सो माटी हंकार,
माटी कुदम करेंदी यार।

एक ही तमाशा है ? आखिर पीर इनायत शाह से रहा न गया और उन्होंने हाथ उठाकर हर किसी को खामोश कर यिा। पीर जी जलाल में थे। पीर जी के नज़दीकी मुरीद थर-थर कांप रहे थे। पता नहीं क्या कहर आने वाला था। कुछ भी तो हो सकता था। मज़लिस मेंबाकी श्रोताओं को कुछ समझ नहीं आ रही थी। इस तरह के दायरों में जब कव्वालियाँ गाई जा रही हों तो अक्सर लोग 'हाल' में आकर नाचने लगते थे। पहले तो कभी किसी ने एतराज़ नहीं किया था।

असल में बात यह थी कि एक-के-बाद एक पेश की जा रही कव्वालियों के बोल बुल्लेशाह के थे। ऐसे लगता था, कसूर से आये कव्वाल इस बात से वाकिफ़ नहीं थे कि पीर इनायत शाह आज कितने दिनों से बुल्लेशाह से खफ़ा थे और उसको इन्होंने अपने मुंह नहीं लगाया था। बुल्लेशाह डरता कभी पीर जी के तकिये में नहीं आता था। किसी की मज़ाल नहीं होती थी पीर जी के सामने बुल्लेशाह का नाम भी ले जाये। और आज की रात यह अनर्थ हो रहा था कि कसूर से आये कव्वाल, पीर जी की नाराज़गी न जानते हुए अपने-अपने शहर के बुल्ले का कलाम पेश कर रहे थे। एक के बाद एक कव्वाली।

अभी श्रोता अचंभित से हुए खड़े थे, अभी पीर इनायत शाह के तकिए के कारगुजार मुरीदों को समझ नहीं आ रही थी कि क्या जवाब दें, यह तो बड़ी बदतमीज़ी थी। अगर पीर जी ने बुल्ले शाह को अपने तकिए से बे-दखल कर दिया था तो फिर क्या मज़ाल थी किसी की कि बुल्लेशाह का कलमा पीर जी की मज़लिस में पेश करे ? किसी को कुछ समझ नहीं आ रही थी कि भीड़ में से एक मुज़रा करने वाली हसीना, सजी-धजी, गहनों से लदी, नाचती-नाचती पीर जी के सामने खुले स्थान पर आकर नाच भी रही थी, गा भी रही थी :

बहूड़ी वे तबीबा मैंढी जिन्द गई आ,
तेरे इश्क ने नचाया कर थईया थइया।
इश्क डेरा मेरे अन्दर कीता,

भर के ज़हर पियाला पीता।
झब दे आवीं, वे तबीबा,
नहीं ते मैं मर गईंया।
तेरे इश्क ने नचाया कर थइयां-थइयां।

फिर मुज़रा करने वाली ने गाया :

अरश मुन्नवर बागां मिलिआं,
सुनियाँ तख़्त लाहौर।
शाह इनायत कुंडीया पाइयां,
लुक-छिप खिचदा डोर।
मेरी बुक्कल दे विच चोर

क्या श्रोता, क्या मुरीद, क्या पीर इनायत शाह स्वयं मगन सहमे हुए सुन रहे थे कि मुज़रे ने गाया :

जिहड़ा सानू सैय्यद आखे दोजख मिलन सजाईयां।
जिहड़ा सानू अराईं आखे भिराती पीछां पाईयां।
जे तूं लोड़े बाग बहारां बुलिया तालब हो जा राईयां।

यह गाते हुए मुज़रा आगे बढ़ा और पीर इनायत शाह के कदमों में गिर पड़ा। यह तो बुल्ले शाह था। पीर जी जाति के अराईं थे। बुल्ले के इश्क की यह ऊंचाई देखकर, पीर जी ने उसको अपने गले से लगाया।

पीर इनायत शाह के तकिए की यह महफ़िल यादगारी महफ़िल बन गई।

कितनी देर और कव्वालियाँ गाई जाती रहीं,

आधी रात गुज़र चुकी थी जब मजलिस खत्म हुई। पर इतनी देर के बाद मिले पीर इनायत शाह और बुल्ला बैठे इधर-उधर की बातें कर रहे थे। बुल्ला बीच-बीच में अपना कलाम सुना रहा था :

हीर रांझे के हो गये मेले,
भूली हीर ढूंढेंदी बेले
रांझण यार बगल बिच खेले
मैनू सुध-बुध रही ना कोई

....

हाजी लोक मक्के नू जांदे,
मेरे घर विच ने सूह मक्का।
बिचे हाजी, बिचे काजी,

बिचे चोर उच्चका
घर बिच धाइया महरम यार।

....

तुसीं छुपदे सी असां पकड़े हों
असी बीच जिगर दे जकड़े हो
तुसीं अजे भी छुपन तू तकड़े हो
बस कर जी, हुण बस कर जी,
कोई बात असां नाल हस कर जी।
तुसीं दिल मेरे बिच बसदे हो ?
नाले घत्त जादू दिल खसदे हो
हुण कित वल जासो नस कर जी ?

....

हुण किस थीं आप छुपाईदा ?
किते सुन्नत फरज़ दसेंदेउ, किते मुल्लां बांग बुलेंदे हो।
किते राम दुहाई देंदे हो, किते मत्थे तिलक लगाईदा।
किते चोर हो किधरे काज़ी हो, किते मिम्बर ते बहि वाज़ी हो।
किते तेग बहादर गाज़ी हो, आपे पर कटक चढ़ाई दा।
हुण किस थीं आप छुपाई दा ?

....

तेग बहादुर का जिक्र आया और फिर पंजाब की अधोगति की चर्चा छिड़ गई। बुल्ले शाह अपने कलाम में से कुछ टुकड़े पेश करने लगा।

दर खुला हशर पंजाब दा;
बुरा हाल होया पंजाब दा।

....

कां लुगड़ नू खावण लगे, जदों के गल लाल।
भेड़ा मार पलंघ खपाए, गुरगां बुरा अहवाल।
चढ़ सहे शीहाँ ते नचन लगे बड़ी पई धमाल।
चूहियाँ कंनं बिली दे कुतरे हो हो के खुशहाल।

फिर मुगलों की फ़ौज गुरु गोबिन्द सिंह से बार-बार झड़पों का जिक्र आया तो बुल्ले शाह ने इस तरह अपने विचार प्रकट किये :

भुरीयाँ वाले राजे कीते।
मुगलां जहर पियाले पीते।

अशरफ़ फ़िरदे चुप-चुपीते।
भला उहनां नू ताड़िया ई।

राजा तो वे हैं, पीर इनायत शाह ने कहा, तुम्हें पता है गुरु गोबिन्द सिंह को उसके मुरीद 'सच्चा पातशाह' कहते हैं।

66

हुआ क्या पीर इनायत शाह के तकिये और कव्वाली की महफ़िल में बुल्ले शाह एक मुजरे का भेष धारण करके चला गया और उसने अपने नाच से अपने मुरशिद (पीर) को रिझा लिया, इस घटना की चर्चा अगले दिन लाहौर की गली-गली, घर-घर में थी, आंगन-आंगन में थी।

वीरां वाली ने सुना और भागां को कोई सौ वर्ष से अधिक गुज़रे सूफ़ी कवि शाह हुसैन के बारे में बताने लगी। वे भी इसी तरह के मस्त मौला थे। गुरु अर्जुन देव जी के समकालीन थे। बड़ा भारी वैराग्य है। उनकी काफ़ियों में। इसी शहर के रहने वाले थे। उनका इश्क माधोलाल नाम के एक हिन्दू लड़के से था। उन्होंने तो अपना नाम भी माधोलाल हुसैन रख लिया। लाल कपड़े पहनते और जहाँ जाना होता, अपने दिलदार को साथ लिये फिरते।

बुल्लेशाह जी भी तो अपनी जवानी के शिखर पर थे। भागां ने बुल्ले शाह को कुछ दिन पहले एक महफ़िल में देखा था। देखा क्या था, बुल्ले शाह के कलाम की दीवानी हो गई थी। पर पीर इनायत शाह अपने मुरीद से नाराज़ क्यों हो गये। बुल्ले शाह जैसा मुरीद तो कोई विरला ही होता होगा।

कहते हैं, मुंहफट बहुत है। वीरांवाली ने बताया। मुंहफट तो सारे ही सूफ़ी होते हैं। भागां को सूफ़ियों के बोल अच्छे लगते थे। बहुत सारा इस तरह का कलाम उसने इकट्ठा किया हुआ था।

ऐसे सास-बहू बुल्ले शाह का ज़िक्र कर रही थी कि नसीम के भाई की पोती फरीदा उनके यहाँ आ गई। उसने भी बाबा बुल्ले शाह के मुजरे के बारे में सुन रखा था और भागां को इस बारे में बताने आई थी। यह न जानते हुए भागां और वीरांवाली इस घटना के बारे में सुन चुकीं थीं और वे इसी चर्चा के लिए बैठी थीं।

फरीदा पढ़ी लिखी, नौजवान शादी करने योग्य लड़की भागां की पक्की सहेली बन गई थी। आते ही उनकी बहस में शामिल हो गई। इस बुल्ले शाह ने तो धूम मचाई हुई है। कोई बात भी हुई। औरंगज़ेब के राज में कोई इस्लाम का ऐसे विरोधी हो। फरीदा बुल्ले शाह का कलाम सुनाने लगी :

फूक मुस्सला भंन सुटट लोटा, न फड़ तसबी कासा सोटा

आशिक कहंदे देंदे होका, तरक हलालों, खाह मुरदार।
उमर गवाई विच, मसीती, अन्दर भरिया नाल पलीती।
कदे नमाज़ तोंहीद न कीती, हुण क्यूं करना ए शोर पुकार।
इश्क भुलाइंया सजदा तेरा, हुण क्यूं अैवें पावें झेड़ा।
बुल्ला हुंदा चुप बथेरा, इश्क करेंदा मारो मार।
इश्क दी नवियों नवी बहार।

रोता है इश्क को ! यही नहीं एक और काफ़ी में एक कदम आगे जाता है :

मैं किऊं कर जावां काबे नूं, दिल लोचे तख़्त हज़ारे नू
लोकी सजदा काबे नू करदे, साड़ा सजदा यार प्यारे नूं
अउगुण वेख न भूल मियाँ रांझा, याद करीं उस कारे नूं।
मैं अणतारू डरण न जाणा, ढूंढ लिया जग सारे नूं।
बुल्ला शाह दी प्रीत अनोखी, तारे अवगुण हारे नूं।

पर यह भी तो कहते हैं कि इश्क-मजाज़ी आखिर इश्क-हकीकी में बदल जाता है। भागां अपना शक प्रकट कर रही थी। बाबा बुल्ले शाह खुद कहते हैं :

आशिक बकरी, माशूक कसाई, मैं-मैं करदी कोही।
जिऊं जिऊं मैं मैं बहुता करदी, तिऊं तिऊ मोई मोई।

या फिर एक और जगह वे फरमाते हैं, भागां अपना दृष्टिकोण पेश कर रही थी :

जिचर न इश्क मजाज़ी लगे, सूई सीवें न बिन धागे।
इश्क मज़ाजी दाता है, जिस पीछे मसत हो जाता है।

हम सैय्यदों को तो यह विशेष गिला है, फरीदा अब मज़ाक कर रही थी। 'अच्छा भला सैय्यद जाकर आराइयों का (खेतीहर कौम) का मुरीद हो गया है। कोई बात भी हुई। मुरीद हीं नहीं हो गया, बड़े धड़ल्ले से इसका ऐलान भी करता है :

बुल्ले नू समझावण आइयाँ भैणां ते भरजाइयां
मन ले बुलिया कहना साड्डा, छड़दे पल्ला राइयां।
आल नबी, औलाद अली नूं, तू क्यूं लीकां लाइयां।
जिहड़ा सानू सैय्यद सदे, दोजख मिलण सजाइयां।
जे कोई सानू राई आखे, भीरती पींछा पाइयां।
आप ही नहीं बिगड़ा, फरीदा अपना गिला जारी रखे

हुए थी। औरों को भी खराब कर रहा है :

जे तूं लोड़ें बाग बहारां, चाकर हो जो राइयां।

बुल्लेशाह दी जाति की पुछणै, शाकर हो रजाइयां।

मुझे तो उसका इल्म के खिलाफ़ हिाद अजीब लगता है। वीरांवाली कहने लगी, "हमारे गुरु महाराज तो सबसे अधिक खुश लगते हैं, जब वे कवियों और विद्वानों की संगत में होते हैं और इधर बुल्लेशाह का कलाम है कि पढ़े-लिखों का मज़ाक उड़ाता रहता है :

होर ने सभों गलड़ियां, अल्लाह अल्लाह दी गल।

कुछ रोला पाइयाँ आलमां, कुछ कागजां पाइयाँ झल्ल।

या फिर उसकी यह काफ़ी, फरीदा बोली :

किऊं पढ़नाए गड किताबां दी

सिर चाड़ी आ पंज अज़ाबां दी

अगे पैड़ां मुश्कल भारी ए

पढ़ हाफज हिफज़ कुरान करे।

इह नैमत विच ध्यान करें।

और उधर सुल्तान बाहू है, फरीदा अब सुल्तान बाहू का एक बोल सुनानेलगी, पढ़कर अंग-अंग फड़क उठता है।

अल्ला चम्बै की बूटी मुरशिद मन में लाई हूँ।

अन्दर बूटी मुश्क मचाया जां फूलण पर आई हूँ।

यह सुनकर वीरांवाली और भागां एक स्वाद-स्वाद में विह्वल हो गईं। कितनी ही देर आंगन में चुप्पी छाई रही। फिर फरीदा बोली, पर इसमें बिल्कुल शक़ नहीं कि बुल्ले शाह इस उम्र में ही पहुंचा हुआ साईं है और सुन्दर कितना है। उसके कन्धों तक पड़ रहे चमचम करते घुंघराले बाल और उसकी खुमार में सोई-सोई नज़र, किसी को भी बांधकर बहा ले जाती है। पिछले साल हमारे पड़ोस में एक नाटक हुआ जिसका कई दिन लाहौर में चर्चा होती रही।

वह भला क्या ? भागां और वीरां उत्सुक होकर पूछ रही थीं।

पीर इनायत शाह को अपने दायरे में से बुल्ले को बेदखल किये कुछ दिन ही हुए थे कि साईं बुल्ले शाह जैसे कोई धिक्कारा हुआ इन्सान हो, शहर की गलियों में बेसहारा फिरता रहता था। एक दिन शाम को हमारे पड़ोस में गली में से गुज़र रहा था कि साईं जी ने देखा कि हमारी पड़ौसन किसी नवेली बहू की मेंढिया गूंथ रही थी। मेंढया वाली चोटी में उसने गुलाब ओर

चंपा के फूल गूंथे थे। एक बार उनकी बैठक के आगे से गुज़रे, साईं जी के चेहरे का जलाल, उनकी बढ़ी हुई जुल्फें, उनके नैनों की मस्ती को देखकर बावली हमारी पड़ोसन ने मन ही मन में कहा-हाय, अगर कभी यह मुसाफ़िर एक बार फिर इधर से गुज़रे और सचमुच जैसे उसकी सुनी गई हो, वह क्या देखती है सामने साईं बुल्ले शाह फिर उधर आ निकले थे। उसे कहने लगे, बीबी मेरी मेंढियाँ भी तुम ऐसे ही गूंथ दो। इस तरह के मस्त मौला को कोई इन्कार करे भी तो कैसे ? उस दीवानी औरत ने तो जैसे शुक्र किया हो, साईं जी को रंगीले पीढ़े पर बिठाकर उनकी मेंढिया गूंथने लगी, इसी बीच शाम हो गई। शाम के समय जब उसका मर्द लौटा उसने सारी बात सुनकर अपनी स्त्री को पीटना शुरू कर दिया। उसकी मजाल कैसे हुई कि किसी पराये मर्द को उसके रंगीले पीढ़े पर बिठाकर उसकी मेंढिया गूंथे। हमारी पड़ोसन के दिल का चोर वह मार खा रही थी, पर मजाल है मुंह से कुछ बोली हो। इतने में उनका दरवाज़ा बाहर से किसी ने खटखटाया। उसके घरवाले ने दरवाज़ा खोला तो क्या देखता है, साईं जी थे। कहने लगे बीबी मेरा पति मुझे पीटता है, तुम मेरी मेंढिया खोल दो। हमारी पड़ौसन के मर्द ने सुना और पानी-पानी हो गया। अभी तक बैठते-उठते वे लोग अपने से सवाल करते हैं बुल्ले शाह को कैसे पता लग गया कि उसका मर्द अपनी घर वाली से नाराज होकर उसे पीट रहा था।

अर्न्तयामी होते हैं ये लोग। वीरांवाली कह रही थी। पर कइयों की जिन्दगी ऐसे खराब भी हो जाती है। पर फरीदा को कोई पुरानी बात जैसे याद आ गई हो, हमारे खानदान में नसीम नाम की लड़की ने आपके गुरु महाराज का दरवाज़ा जा रोका था।

'तो इसमें कौन-सा कहर टूट पड़ा ? वीरांवाली पूछने लगी।

'कहर तो कोई नहीं बाबा नानक की बात और थी।

हम सभी पंजाबी उन्हें वली-अहद मानते हैं। पर आजकल जो कुछ हो रहा है, सुन-सुनकर दिल खट्टा-खट्टा हो जाता है।'

"इसमें कसूर किसका है ?"

"मैं तो कहती हूँ दोनों का।" फरीदा बोली ताली दोनों हाथोंसे बजती है। सुना है आजकल भी मुगल-फौजों ने आनन्दपुर को घेर रखा था। आज कई महीने हो गये हैं।

तो फिर कसूर किसका हुआ ? जिन्होंने किसी के शहर को घेर रखा है, उनका या जिनके शहर को घेरा गया है ? वीरांवाली पूछ रही थी।

इसका जवाब फरीदा के पास कोई भी नहीं था। उसे तो बस इतनी शिकायत थी कि जिस लड़के के साथ उसके रिश्ते की बात चल रही थी, वह ज़बरदस्त खान की फौज में आनन्दपुर के मोर्चे पर लड़ रहा था। पता नहीं कब लौटेगा और निकाह हो सकेगा।

वीरां और भागां जिनके दो आदमी उसी जंग में रहे जूझ रहे थे, फरीदा के मुंह की ओर देखने लगीं। उन्हें समझ ही नहीं आ रही थी अपनी पड़ौसन के साथ हमदर्दी दिखायें तो कैसे ?

कितनी सुन्दर लाहौरन है, ईश्वर करे, इसका मंगेतर सही-सलामत लौट आये। जब फरीदा अपने घर लौटी, वीरांवाली ने भागां से कहा।

'उसके सही-सलामत लौटने के लिये किसी और का सुहाग लुटकर रह जायेगा।' भागां बोली।

'हम पंजाबनों का यही दुःखान्त है।' वीरांवाली ने कहा, उसकी आवाज़ रोने जैसी हो रही थी।

और फिर खामोश बैठी, सोच में डूबी सास-बहू कितनी देर जैसे अपने आप से पूछ रहीं हों :

क्यों एक सुहाग को बनाये रखने के लिये किसी और के सुहाग का लुटाना ज़रूरी होता है ? और यह कहर पंजाबिनों के हिस्से में ही क्यों लिखा गया है ? औरंगज़ेब बड़ा खुदापरस्त सुनते हैं, और फिर यह वैर, यह विरोध क्यों ? अगर पीर बुढ़णशाह को दशमेश में अल्ला का नूर नज़र आ सकता है तो ज़बरदस्त खान को क्यों नहीं यह दिखाई देता ? लाहौर में वे मुगल शहंशाह की प्रजा थे और उनका इष्ट उधर आनन्दपुर में मुगल साम्राज्य के अन्याय के विरुद्ध जूझ रहा था। फरीदा कितनी सुन्दर कैसी सुशील पंजाबन है। जैसे हाथ लगाने से मैली होती हो। उसका बुरा कैसे सोचा जा सकता है ? क्या उसे नहीं पता कि दया सिंह गुरु महाराज का मुरीद है, उनके इशारे पर जान पर खेल सकता है ? क्यों एक घर को बनाने के लिये दूसरे का लुट जाना, तहस-नहस होना जरूरी है ? कोई समझौता मुमकिन नहीं ? पता है नेकी और बदी में कोई समझौता नहीं हो सकता। बदी के नाश के लिये नेकी को बार-बार लहू बहाना होगा ? कब तक यह टक्कर जारी रहेगी ?

उस रात सपने में भागां ने देखा, आनन्दपुर की जंग में फरीदा मंगेतर, छाती में खुभा तीर, लहू के तालाब में ठण्डा हुआ पड़ा था। भागां झर-झर आंसू रोती रही।

67

आनन्दपुर के गिर्द घेरा किये हुय मुगल फ़ौज को तीन वर्ष होने लगे थे। तीन वर्षों से मुगल सिपाही शहर में घुसते और मन-मर्जी करते रहते। खालसे की फौजें किले में बन्द थी। आनन्दपुरवासी उनके मुंह की ओर देखते रह जाते। शहर उजड़ता जा रहा था। जिधर किसी के सींग समाते, लोग जान बचाकर निकल रहे थे। न कोई बनज था, न कोई व्यापार। न कोई खेती करता था, न कोई फसल काटता था। लोग रोज़ की चीज़-बस्तों के लिये तरसने लगे। आज-कल करते हुए दिन, हफ़्ते, साल बीत रहे थे। जो लोग आनन्दपुर में टिके हुये थे उनका एक-मात्र सहारा गुरु महाराज में आस्था थी, और बस।

तीन वर्ष बीत गये थे अजमेरचन्द और उसके साथी राजाओं को चरणगंगा नाले का मुंह मोड़ें। आनन्दपुर में लोग बूंद-बूंद पानी को तरस रहे थे। खास-तौर पर किले के अन्दर प्रलय आई हुई थी। कुएं सूख गये थे, और कुएं खोदने बेकार थे, धरती का जल-स्तर गिर गया था। बाहर से पानी लाना जोखिम का काम था। चार-चार की टुकड़ियों में सिक्ख शूरवीर जाते। उनमें से दो दुश्मन को रोककर रखते दो पानी भरकर लाते :

चार सिंह पानी को जावें।
दो जूझे, दो पानी लिआवें।

बेशक, गुरु महाराज ने मनों-मन अनाज किले में इकट्ठा कर रखा था, पर जिस तरह दुश्मन घेराव किए तीन वर्षों से बैठे हुए थे, अन्न के भण्डार जवाब दे रहे थे। शहर में अनाज दो रूपये सेर बिकता था। किले में भूख का राज छा गया। पहले एक समय प्रसादे पकने लगे, दूसरे समय लंगर बंद रहते, फिर मुट्ठी-मुट्ठी भर चने खाकर गुरु सिक्ख सबर-शुक्र करने लगे। फिर नौबत यहाँ आ पहंची कि खालसा फ़ौज पेड़ों के पत्ते और वृक्षों की छाल पर गुज़ारा करने लगी। छाल को सुखाकर उसे सतगुरु का नाम लेकर खा लिया जाता। शीशम जैसे सिक्ख शूरवीर, कोठे जितने जिनके कद, हड्डियों के पिंजर रह गये थे। हड्डियाँ निकली हुइ , आंखे अन्दर धंसी हुई, बेल से टूटी तोरियाँ हों जैसे।

तो भी दोनों समय दीवान सजता, कीर्तन होता, गुरु महाराज का प्रवचन गुरुसिक्खों को सुनने को मिलता, उन्हें सब कुछ अच्छा लगने लगता। गुरु प्यारे अपने-अपने कर्त्तव्यों को पूरी निष्ठा से निभाते। मोर्चों पर तैनात शूरवीर

आठों पहर बारी-बारी मोर्चे सम्भाले रखते, मजाल है कोई कोताही कर जाये। तीन वर्ष हो गये थे, समय-असमय ठूह-ठूह होती रहती। इधर से भी, उधर से भी। तीर छूटते, इधर से भी उधर से भी। जैसे शिकरे आकाश में डुबकियाँ भर रहे हों।

किले में कायम किए हुए कारखानों की भट्ठियाँ दिन-रात दहकती रहतीं। लोहा चंडाया जाता, धौंकनियाँ चलतीं। तीर कमान, बन्दूकें और तोपें, कटारें और कृपाणें, खण्डे और तलवारें, नेज़े और भाले, हजारों की गिनती में घड़े जाते, बनाए जाते, गुरु-सिक्खों में बांटे जाते।

यही नहीं, सिक्ख शूरवीर, देर-सवेर कभी गुरु महाराज को बताते, कभी उन्हें बताये बिना, इक्के-दुक्के टुकड़ियों में दुश्मन के ठिकानों पर जा झपटते और मारधाड़ करके उनका कभी आटा-दाना लूट लाते, कभी उनके हथियार छीन लाते। कइयों ने तो अपना कसब ही यह बना लिया था।

उस दिन गुरु महाराज की नज़र धर्म सिंह पर पड़ गई। दिल्ली से लौटा। कितनी देर उनसे वार्त्तालाप करता रह। किस आवेश में बहस कर रहा था। छलक-छलक पड़ती जवानी। उसकी श्रद्धा। उसकी आस्था, उसका मान अपने गुरुदेव पर। गोरा-चिट्टा, उसके कपोलों से लाली फूट-फूट पड़ रही थी। जैसे किसी पठानी का जाया हो और अब कैसा निकल आया था। जैसे निचोड़ देने वाली भूख हो। चलता तो जैसे उसकी हड्डियाँ पिंजर में कड़-कड़ करती हों। गुरु महाराज ने पूछा और कहने लगा, सच्चे पातशाह, अच्छा भला हूँ, कुछ दिन हुए मुझे दस्त लगे थे। दस्त तो लगने ही थे। न ढंग का खाने को मिलता था, न ढंग का पीने को। आज कितने दिन हो गये थे, किले में भूख-भांगड़े पड़े हुए थे।

और यही हाल मुगलों और पहाड़ी राजाओं की फ़ौज का था। तीन वर्षों का घेरा डालकर बैठे हुए, वे लोग ऊब चुके थे। खालसा फ़ौज हथियार डालने का नाम नहीं ले रही थी। न किला खाली करते थे। न हार मानते थे और इधर उन्हें कभी बाढ़ का सामना करता होता, कभी चिलचिलाती धूप में सड़ना होता। इस दौरान उनकी फौज में काली खांसी भी फैली, निमोनिए से भी बेशुमार मौतें हुईं। हैज़ा और मलेरिया तो अक्सर लगे रहते। मच्छर और मक्खियाँ सांस नहीं लेने देती थीं। मुगल फ़ौजी पहाड़ी राजाओं की सेना को देख नहीं सकते थे, पहाड़ी सैनिक मुगलों को एक नज़र नहीं देखना चाहते थे। ये सोचते उनके कारण ही ये वहाँ बैठे हुए थे, वे सोचते इनके

कारण वे इस झंझट में फंसे हुए थे और दोनों पक्ष दिन-रात कोई उपाय ढूंढते रहते, किसी तरह बेआबरू हुए बिना वे इस मुहिम से छुटकारा पा सकें।

लाख कठिनाइयाँ थीं पर जब केसरी साफे सजाकर खालसा फ़ौज कवायद के लिये मैदान में उतरती, 'बोले सो निहाल, सति श्री अकाल' के जयकारे गूंजने लगते। इन जयकारों की धमक, इन साफ़ो की आभा देखकर दुश्मनों के हौसले पस्त होते रहते। उन्हें समझ नहीं आ रही थी और कितनी देर उन्हें वहाँ वैसे बंधकर रहना होगा।

किले के अन्दर एक-एक करके सारे-के-सारे हाथी मर गये थे, सारे-के-सारे घोड़े ढेरी हो गये थे। कोई भूख के कारण, कोई बीमारी करके। बस गुरु महाराज के सबसे लाडले घोड़े दल बिडर को जैसे-तैसे बचाकर रखा गया था। दल बिडर और प्रसादी हाथी जिसके जैसा हाथी न कभी किसी ने सुना था, न कभी किसी ने देखा था और अब वे भी बेहाल हो रहे थे। न खाने के लिए चारा, न पीने के लिए खुला पानी। प्रसादी तो अपनी सूंड में पानी भरकर फव्वारा चलाकर नहाया करता था।

आज कितने दिनों से दल बिडर और प्रसादी भूखे थे। गुरु महाराज के श्रद्धालु सिक्ख और उनके सईस अपने हिस्से के चने बचाकर उनके आगे जा रखते, पर न दल बिडर न प्रसादी आंख उठाकर इस तरह के रातब की ओर देखते थे और उनकी टांगों में जैसे अब ज़ोर-सत न रहा हो। वे अपने पांवों पर खड़े तक नहीं हो सकते थे।

पिछले दो दिन से न उन्होंने कुछ खाया था, न पीया था, न ही वे अपनी-अपनी जगह से उठ सके थे। किसी समय भी दम तोड़ जायेंगे। इस तरह के क्लेश में उन्हें देखकर गुरुसिक्खों की पलकें भीग-भीग जातीं। दशमेश को सईस खबर नहीं देते थे, पर उनसे कौन-सी बात भूली थी और फिर सतगुरु ने आलम को बुलाकर हिदायत की कि दल बिडर और प्रसादि दोनों को कष्ट-मुक्त कर दिया जाये यह कहकर कलगीधर अपने सिंहासन से उठकर अपनी आरामगाह में चले गये।

इधर कितने ही सिक्ख थे जो चोरी-छिपे किले में से निकलकर अपनी जान बचा रहे थे। शहर में से तो जाने वाले कब के जा चुके थे, अब किले में से भी खालसा फ़ौज के सैनिक बीच-बीच में खिसक रहे थे। हर रोज सुनने में आता, अमुक सिंह भाग गया था, अमुक भाई शौच के लिए गया, लौट कर नहीं आया। गुरु महाराज की फ़ौज आधी रह गई थी, कुछ उनमें से मर गये थे, कुछ भगौड़े हो गये थे।

तीन वर्ष की खाली कैद। भूख और बीमारी। आखिर कुछ गुरुसिक्ख जत्था बनाकर माता गुजरी जी के हाज़िर हुए। गुरु महाराज के सामने जाने का उनका हौंसला नहीं पड़ता था। कितनी देर अपना दुखड़ा रोते रहे कि वे अपने घर-परिवार से बिछड़े हुए थे, उन्हें इसकी परवाह नहीं थी। वे अपना सौभाग्य समझते थे, उन्हें अपने गुरु महाराज की संगत प्राप्त थी। पर आदमी खाये-पीये बिना कैसे जीवित रह सकता है ? फटे वस्त्र, पोर-पोर पर मैल चढ़ी हुई, हाथ-पांवों पर, एड़ियाँ बिवाइयों से फटी हुई। बेशक कारखानों की भट्ठियों में हथियार घड़े जा रहे थे, पर समय आने पर हथियार उठायेगा कौन ? हथियार चलायेगा कौन ? वे चाहते थे, माता जी गुरु महाराज को सलाह दें कि किले को खाली कर दिया जाये।

उधर बिल्कुल यही हाल था मुगल और पहाड़ी फ़ौज का। तीन वर्षों से परेशान हो रहे वे लोग बेज़र थे। आखिर उन्होंने फैसला किया कि वे गुरु महाराज को कासिद भेजकर वायदा करेंगे कि अगर दशमेश किला खाली करने के लिये तैयार हो जायें तो वे लोग उन्हें आजादी से जहाँ भी वे जाना चाहेंगे जाने देंगे। उन्होंने एक थाली में पवित्र गीता और एक परात में कुरान-शरीफ़ रखा और गुरु महाराज की ओर एक पण्डित और एक सैय्यद को भेजा। राहदारी के लाख वायदे किये।

पर गुरु महाराज टस-से-मस नहीं हो रहे थे। न उन्होंने माता जी की बात की ओर कोई ध्यान दिया, नही दुश्मन के कासिद के वायदों पर कान धरे। गुरु महाराज की धारणा थी कि खालसा को सबसे अलग रहना है, वे कदाचित् हार न मानेंगे, न ही आनन्दपुर को छोड़कर जायेंगे। किले इसीलिए बनाये जाते हैं ताकि उनमें पनाह ली जाए। जब तक उनके किले कायम थे, वे हौसला न छोड़ेंगे।

आखिर हारकर माझे के चालीस गुरुसिक्खों का एक जत्था गुरु महाराज के सामने पेश हुआ। इन लोगों ने बिल्कुल फैसला कर लिया था कि जो कुछ भी हो, वे किला छोड़कर निकल जायेंगे और उनसे यह भूख-तड़प बर्दाश्त नहीं होती थी। वे कहते--ऐसे कब तक और वे किले में फंसे रह सकते थे ? किले में ऐसे भूखे-प्यासे मरने से तो यही अच्छा था कि वे दुश्मन से लड़ते हुए जान दें।

गुरु महाराज ने उन्हें बहुत समझाया पर वे कसी तरह काबू नहीं आ रहे थे, आखिर महाराज ने कहा, आप छः हफ़्ते और प्रतीक्षा कर लो। असल में दशमेश मालवे से गुरुसिक्खों के दस्ते की प्रतीक्षा में थे।

छः सप्ताह और ? माझे के सिक्ख कानों को हाथ लगाते। वे तो एक दिन और किले में नहीं ठहर सकते थे।

अच्छा, आप पांच दिन और रुक जाओ। गुरु महाराज ने जैसे परेशान होकर कहा हो। वे तो इसलिए भी राज़ी नहीं थे।

अगर यह बात है तो आप बेदावा लिख दो, आप मेरे सिक्ख नहीं, मैं आपका गुरु नहीं, और फिर आप जा सकते हो' गुरु महाराज ने ताव में आकर कहा।

माझे के कुपथ पर पड़े चालीस सिक्ख इसलिए भी तैयार थे, उन्होंने कागज़ पर इकरारनामा लिखा, चालीस के चालीस सिक्खों ने उस पर अपने अंगूठे लगाये और वे अपने इष्ट को छोड़कर निकल गये।

जाड़े की उस रात बहुत बरसात हुई। बरसात और ओले, बिजली बार-बार चमकती जैसे कोई नागिन डसने को फिर रही हो, बादल गरजते और छाती धक्क-धक्का धड़कने लगती।

ये वे सिक्ख थे जो कभी गाया करते थे :

जे गुरु झिड़कें तां मीठा लागे।

....

खम्भ विकांदड़े जे लहाँ धिना सावी तोलि।

तन जड़ाई अपने लहाँ सु सजण टोल।

वही सिक्ख आज बार-बार गा रहे थे :

भूखे भगत न कीजै, यह माला अपनी लीजै।

68

यह फैसला हुआ कि खालसा की फ़ौज का एक दस्ता जाड़े की ककरीली रात में दुश्मन के भंडार पर चुपके से हमला करे और चार छः हफ़्तों के लिये अनाज लूटकर ले आये। अब तो हालत यहाँ तक पहुंच गई कि सुबह दीवान में परोसने के लिये कड़ाह प्रसादि तैयार करने के समय सोचना पड़ता था।

गुरुसिक्ख क्योंकि एक समय भोजन करते थे, तो दशमेश ने भी ऐसे करना शुरू कर दिया था। गुरुसिक्ख क्योंकि चनों का फंक मारकर गुज़ारा करते थे, मजाल है कलगीधर अपने खुद के लिए अपने हिस्से के अनाज से अधिक एक दाने को भी हाथ लगा जायें। यही हाल गुरु महाराज के परिवार का था।

भाई धर्म सिंह की अगुवाई में यह व्यवस्था की गई। उसने अपनी मर्ज़ी के मुताबिक जो शूरवीर तैयार किए, वे जवान थे, जिन्होंने हाथों हाथ लड़ना (मल्लयुद्ध) भी था, तलवार भी चलानी थी और लौटते समय अनाज का बोझा भी उठाकर लाना था। तलवार और ढालों से लैस यह लोग आधी रात को दुश्मन के रसद के भण्डार पर टूट पड़े तो हम तलवार को म्यान में से निकालेंगे ही नहीं। धर्म सिंह हर किसी को समझाता। उसका इरादा यह था कि चार छः हफ़्तों अनाज इकट्ठा हो जाये। इतने से मालवे से जो कुमक पहुंचनी थी, वह शायद पहुंच जाएगी। यह कुमक कैसे उनसे आ मिलेगी, इसकी किसी को समझ नहीं आ रही थी। दुश्मन ने तो चारों तरफ़ से शहर को घेर रखा था। दोनों किलों पर नज़र रखी हुई थी, पर क्योंकि गुरु महाराज के मुखारबिन्द से यह सुना गया था, इस पर सन्देह भी नहीं किया जा सकता था।

अमावस्या की घुप्प अंधेरी रात, पूरे एक सौ शूरवीर सिर हथेली पर रखकर दुश्मन के भंडार पर सिंहों की तरह टूट पड़े। ऐसे लगता; दुश्मन को उसके जासूसों ने पहले ही सचेत कर रखा था। अनाज के भण्डार की जगह उस स्थान पर मुगल फ़ौज के सबसे अधिक लड़ाके, खूंखार फ़ौजी जैसे तैयार-बर-तैयार बैठे थे। वे तो हजारों की गिनती में थे। बेचारे सौ सिक्खों की टुकड़ी पर जैसा समूचा लश्कर आ टूटा हो। उन्होंने सिक्ख शूरवीरों को चारों तरफ से घेर कर एक-एक को गाजर और मूलियों की तरह काटना शुरू कर दिया। सारी-की-सारी रात जूझते रहे। ठक-ठक तलवारें चलतीं। 'अल्लाह हू अकबर' और 'सति श्री अकाल' के जयकारे गूंजते। घायल हुए फ़ौजियों की चीखें और दम तोड़ने की चीत्कारें। मुगल खत्म होते तो उनकी जगह और आ जाते। ज़बरदस्त खान खुद इस मुकाबले की अगुवाई कर रहा था। बार-बार अपने सिपाहियों को ललकारता, एक सिखड़ा वापिस न जाए। इस तरह कोई हमें लूट कर ले जाये, चुल्लू भर पानी में हमें डूब मरना चाहिए। सिर जान की बाज़ी लगा दो, कल सुबह सरदारियाँ बांटी जायेंगी।

और सचमुच मुगल फौजी जान पर खेल रहे थे। ऐसे लगता, उनकी पूरी तैयारी थी। भाई धर्म सिंह अपने शूरवीरों को कटता देखता रहा। एक-एक करके सौ दो सौ चुने हुए सिपाहियों की टुकड़ी काटी हुई चरी की फसल की तरह उसके सामने पड़ी थी। बेशक मुगल सिपाही भी हजारों की गिनती में उल्टे पड़े थे; पर खालसा फौज का एक भी सिपाही नहीं बचा था। धर्म

सिंह को खुद भी चोटें आई थीं। जब उसके आखिरी जवान के हाथ से तलवार गिरी, वह अपने ठिकाने की ओर लौट आया, एक सौ शूरवीर लेकर गया था। सुबह हुई तो खाली हाथ स्वयं क्षत-विक्षत किले में आ गया था।

यह देखकर चारों तरफ़ एक निराशा छा गई। ऐसे तो खालसा फ़ौज का कभी सफाया नहीं किया गया था। जैसे-जैसे यह खबर फैलती, चारों तरफ हाहाकार मच गया।

चनों का आहार करके लड़ाई थोड़े ही लड़ी जाती है। तलवार उठाई ही नहीं जाती।

अगले को काटने के लिए बाहु-बल चाहिए।

गुरुसिक्ख तो अब नाम-स्मरण के लायक ही रह गए हैं।

ऐसे भूखे-प्यासे मरने से तो अच्छा है, कोई दुश्मन को मार कर मरे।

यह तो तभी मुमकिन है अगर गुरु महाराज किले से बाहर निकलें।

किले से बाहर निकलने वालों का जो हाल होगा, वह तो देख ही लिया है।

जहाँ चार गुरुसिक्ख इकट्ठे होते, इस तरह की निराशा की बात करते। ऐसे लगता जैसे लोग हौसला हार रहे थे। इस तरह तो खालसा फौज़ में कभी नहीं हुआ था।

उधर ज़बरदस्त खान ने अगली सुबह देखा, जंग के मैदान में लाशों पर लाशें पड़ी थी। दूर जहाँ तक नज़र काम करती लहू के पोखर थे और लाशों के ढेर। किसी का सिर कटा था और किसी की बाजू नहीं थी। किसी का धड़ अलग था और कोई छाती के घाव के कारण दम तोड़ चुका था।

'बेशक सिक्ख मर रहे हैं', ज़बरदस्त खान अपने साथी वज़ीर खान को कह रहा था। 'पर ऐसे लगता है हर सिक्ख दस मुगल सिपाहियों को मारकर मरा है।'

एक हज़ार मुगल लाशें तो वह खुद गिन चुका था और अभी पता नहीं कितनी और थीं।

'आखिर क्या करना चाहिए ?' ज़बरदस्त खान पूछ रहा था।

'कुछ समझ नहीं आती।' वज़ीर खान सिर मार रहा था।

ऐसे जब मुगल फ़ौजदार परेशान हो रहे थे, सिपहसालार रमज़ान खान औरंगज़ेब का गुरु गोबिन्द सिंह जी के नाम एक पैगाम लेकर आ पहुंचा। यह तो उन्हें पता था कि रमज़ान खान कुमक लेकर आ रहा था, पर इसका

किसी को आभास नहीं था कि उसके हाथ शहंशाह ने गुरु गोबिन्द सिंह को चिट्ठी भेजी है। दोस्ती का हाथ बढ़ाया है। मुगल फ़ौजदार सोचते, अब जब खालसा फ़ौज की सारी-की-सारी हमलावर टुकड़ी का सफ़ाया हो गया था, शायद इस तरह की चिट्ठी कारगर साबित हो। पहले तो उनको कोई सफलता नहीं मिली थी। यह सोचकर आलमगीर के निश्चित किये एक मौलवी मरदूद खान को तैयार किया गया कि वह औरंगजेब की चिट्ठी लेकर गुरु महाराज के पास जाए।

उधर किले में जो कोई सुनता जो हश्र उन सौ सिक्खों की टुकड़ी का मुगलों के हाथों से हुआ था, अपने भीतर को टटोलने लगता। एक-दूसरे से इस दर्दनाक घटना का ज़िक्र करके वे अपनी दशा को समझने की कोशिश करते।

'क्यों, एक भी नहीं बचा ?'

'पता नहीं धर्म सिंह कैसे लौटा।'

'वह भी तो अनहोनी सी जैसे हो। हाथ-पांव क्षत-विक्षत। पट्टियों में बंधा पहचाना भी कहा जाता है।

'मरना तो एक दिन है।'

'दुश्मन को मारकर कोई मरे तभी तो मरना सफल हुआ।'

'हमारे लोगों ने भी तो मुगलों को मारा होगा।'

'मारा होता तो आप ऐसे क्यों मरते।'

मालिक का कहर देखो, कोई बीज डालने योग्य भी नहीं रहा।

'गुरु महाराज के साथ बात करनी चाहिए।'

'माता जी से फरियाद करते हैं।'

'उनकी पहले तो उन्होंने सुनी नहीं।'

उधर औरंगज़ेब का कासिद ख्वाज़ा मरदूर खान चिट्ठी लेकर गुरु महाराज के आ हाज़िर हुआ। शहंशाह ने अपने पत्र में गुरु महाराज को किला खाली करने के लिए मश्वरा देते हुए कहा :

"मैं कुरान की कसम खाकर कहता हूँ कि आपको कोई नुकसान नहीं होगा। अगर मैं ऐसे करूं तो मुझे अल्ला के हुजूर में जवाबदेही करनी पड़ेगी। आप लड़ाई बन्द करके मेरे पास आओ। अगर आप मेरे पास आना मुनासिब नहीं समझते तो जहाँ आपकी मर्जी ही चले जाओ।"

गुरु महाराज ने आलमगीर की चिट्ठी पढ़कर एक ओर रख दी। उस

ओर रत्ती-भर भी ध्यान नहीं दिया। गुरुसिक्ख जिन्हें कुछ आस बंधी थी कि झगड़े का निपटारा होने वाला है, निराश हो गए।

पर यह एक महत्त्वपूर्ण अवसर था। आखिर तीन वर्ष हो गए थे, लड़ाई को समाप्त भी तो होना था। आस-पास जैसे कई गुरु प्यारे जैसे थक गये हों, बार-बार यही कहते—इससे तो हम बाहर निकलकर दुश्मन से जूझकर शहीद होना अच्छा समझते हैं। ऐसे सिसक-सिसक कर मरने से तो जंग में अगले को मारकर मरना जीवन सफल करना है।

पर गुरु महाराज इस तरह के किसी मशवरे की ओर ध्यान देने के लिये तैयार नहीं थे। एक ही 'न' उन्होंने पकड़ रखा था। यही कहते मुगल के कहे पर विश्वास नहीं किया जा सकता, जो आदमी अपने पिता का सगा नहीं, जिसने अपने भाइयों का वध किया हो, उस पर कैसे कोई एतबार कर सकता है ? आलमगीर झूठा है, उसके सेवक झूठे हैं। यह सब फरेब है। हमें उनके जाल में नहीं फंसना चाहिए।

पर और कोई रास्ता भी तो नहीं नज़र आ रहा था। आखिर हारकर गुरसिक्ख फिर माता जी के चरणों में जा गिरे, हाथ-जोड़कर, उन्हें गुरु महाराज के पास ले आये। माता जी बार-बार कहतीं, मैं अपने जाये को जानती हूँ, वे बाबा नानक की गद्दी पर विराजमान हैं। वे घट-घट की जानते हैं। उनकी रज़ा में हमें राज़ी रहना होगा। पर गुरुसिक्खों की जिद्द, माता जी दशमेश से फिर सिफारिश करने लगीं।

गुरु महाराज ने उन्हें फिर समझाया कि मुगल के कहे पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

पर और कोई चारा भी तो नही था। इस तरह बेआबरू हुए बिना वे गुरुसिक्खों की जान बचाकर निकल सकते थे। सारा जहान पड़ा था। चौकुंटा में बाबे नानक की सिक्खी सेवकी थी। कहीं भी वे अपना ठिकाना बना लेंगे।

फिर माता जी ने गुरु महाराज को याद कराया, 'साहिबज़ादों के मुंह चिड़ियों के जैसे निकल आए थे। कितनी देर कोई ऐसे भूख-प्यास में जीवित रह सकता है।'

गुरु महाराज जैसे इस सब कुछ की ओर कान न लगा रहे हों।

'मेरी बहू-रानी देवां का चांद जैसा मुखड़ा फ़ाख्ता-सा निकल आया है। यही हाल सुन्दरी बीबी का है।'

दशमेश जैसे अनसुनी कर रहे हों।

मैं तुम्हारी मां हूँ, आखिर माता जी ने अपना सबसे कारगर हथियार प्रयोग किया। एक मां का कहा कोई बेटा नहीं मोड़ सकता। अपने जाये के लिये मेरा यह फैसला है कि हमें कितना खाली कर देना चाहिए।

माता जी का हुक्म सिर माथे पर। गुरु महाराज के मुखारबिन्द से यह बोल सुनाई दिये।

69

गुरु महाराज ने माता जी का आदेश सिर माथे पर मान लिया पर इनहोंने माता जी और और गुरुसिक्खों को इसलिए मना लिया कि एक ही बार किला खाली करके बाहर निकलने की बजाए पहले मोटा-मोटा सामान बाहर भेजा जाए। इस तरह अगलों की दयानतदारी की भी परख हो जायेगी।

मुगल शहंशाह के के कासिद ख्वाज़ा मरदूद खान को यह कहकर भेजा गया कि आलमगीर के कहने के मुताबिक किला खाली कर दिया जाएगा, पर इससे पहले कुछ कीमती सामान निकालना होगा जिसके लिए कुछ खच्चर और बैल भिजवा दिए जायें। कासिद जब वापिस मुगल लश्कर में लौटा, क्या वज़ीर खान और क्या ज़बरदस्त खान, यह सन्देशा सुनकर अत्यन्त खुश हुए। उन्होंने तुरन्त कुछ लद्दू खच्चर और कुछ बैल गुरु महाराज के यहाँ भिजवा दिए।

उस रात गुरु महाराज ने गुलाब राय और शाम सिंह को बुला भेजा। वे लोग हर बार जब कोई प्रतिनिधि मण्डल गुरु महाराज के पास किला खाली करने वाली मांग को लेकर आता, उसकी अगुवाई करते थे। बार-बार यही कहते थे, मुगल अपने दिए वचन से कदाचित् नहीं फिरेगा। वे इस सच्चाई से अनजान थे कि वज़ीर खान और ज़बरदस्त खान में होड़ लगी हुई थी कि कौन गुरु गोबिन्द सिंह को जीवित पकड़कर औरंगजेब के पास पेश करता है। जो सन्देशा उन्होंने कुरान और गीता की साक्षी में भेजा था या जो चिट्ठी औरंगज़ेब की अब कासिद लेकर आया था, यह सब दम्भ का कुफ्र था। इसमें सच्चाई का कोई अंश नहीं था।

यह सिद्ध करने के लिये कि वे लोग मूर्ख थे। मक्कार थे, गुरु महाराज ने हिदायत दी कि खच्चरों और बैलों की खेप में फटे-पुराने कपड़े, फटे जूते, मुर्दे जानवरों की हड्डियां, टूटी कुल्हियां, फूटी मटकियां, गद्दे बर्तन तथा और

इस प्रकार का बेकार पड़ा अंगड़-खंगड़ भरकर ऊपर मखमली चादरें और कीमती दुशालों से ढक दिया जाये।

अगली सुबह तैनात किये गुरुसिक्ख खच्चरों और बैलों को हांक कर किले से बाहर ले चले। कुछ देर बाद वे मुगल फौज के बीच में से निकलकर अपने रास्ते पड़ गये। खच्चरों और बैलों पर लदे माल को देखकर मुगल सिपाहियों के मुंह में पानी भर रहा था। उन्हें ये बताया गया था कि सिक्ख गुरु अपना सारा खजाना लेकर जा रहा है। इसकी सुरक्षित पहुंच का उसे वचन दिया गया है।

अभी खच्चरों और बैलों का काफ़िला एक आध कोस ही आगे गया होगा कि मुगल सिपाही उन पर आ टूटे और उन्होंने एक-एक खेप पर कब्जा कर लिया काफ़िले के साथ आए गुरुसिक्ख उनका मुंह ताकते रहे। आखिर लाचार वे आनन्दपुर लौट आए।

उधर मुगल सिपाहियों ने जब खेपों और गठरियों को अपने-अपने तम्बुओं में जाकर खोला, वे बहुत शर्मिंदा हुए। उनसे अधिक शर्मिंदा उनके अफसर थे, जिन्होंने उन्हें रोका नहीं था, बल्कि शह दी थी।

जब काफ़िले के साथ गए गुरुसिक्ख किले के अन्दर लौटे, उनकी आप बीती सुनकर वे लोग जो बार-बार मुगलों के वायदों पर एतबार करने के लिए ज़ोर देते थे, भौंचक रह गये। किसी को कुछ समझ नहीं आ रही थी। गुलाब राय और शाम सिंह गुरु महाराज को मुंह दिखाने के लायक नहीं रहे थे। माता गूजरी जी अपनी जगह बहुत छोटी महसूस कर रहीं थीं।

इधर श्रद्धालुओं की गुरु महाराज के प्रति श्रद्धा और बढ़ गई। धर्म सिंह, आलम सिंह और दया सिंह जैसों के पैर धरती पर नहीं पड़ रहे थे।

मुश्किल से दोपहर ढली थी कि वज़ीर खान खुद गुरु महाराज से मुगल सिपाहियों की करतूत के लिए माफ़ी मांगने आया। वह बार-बार बहाने बना रहा था। जिस-जिसने यह बदतमीज़ी की है, उनसे हथियार छीन कर, नौकरी से उन्हें बर्खास्त कर दिया गया है। यही नहीं, उन सभी पर मुकद्दमें चलाये जायेंगे। उन्होंने बादशाह औरंगज़ेब के फरमान की अवहेलना की है। शहंशाह के दस्तखत से किए गए वायदे को तोड़ा है। ख्वाजा मरदूर कहने लगा, जो कोई भी शहंशाह को मिलता है, आपके गुण गाता है। आलमगीर दिल से चाहता है कि आपके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त करे। उसने कुरान की कसम खाई है और अल्ला को हाज़िर-नाज़िर जानकर वायदा किया है कि वह आपको कोई नुकसान नहीं पहुंचायेगा। पहाड़ी राजाओं ने गाय की

सौगन्ध उठाई है और अपनी देवी की मूर्ति को हाथ में उठाकर वचन दिया है कि वे आपको सुखपूर्वक रहने देंगे। जो हो गया सो हो गया। उसे भुला दो। आपके बैलों पर पहाड़ी राजाओं ने हमला नहीं करवाया था। हमला करने वालों को सजाएं दी जा चुकी हैं। उनके सरगना बन्दी बना लिए गए हैं। अब किसी की मां नहीं मरी कि आपकी ओर आंख उठाकर देख सके। आप किला कुछ देर के लिए खाली कर दीजिए और मेरे साथ शहंशाह को मिलकर हमें निहाल करो। उसके बाद जो आपका दिल चाहे करना।

कासिद का बयान सुनकर क्या गुरुसिक्ख और क्या माता गुजरी जी फिर जोर देने लगे कि उन्हें किला खाली कर देना चाहिए। यह मौका हाथ से नहीं गंवाना चाहिए और खालसा को चाहिए ही क्या ? वज़ीर खान जैसा सूबेदार स्वयं चलकर आया है। इस प्रकार की गलत-ब्यानी कोई नहीं कर सकता जिसका गुरु महाराज को भय था।

गुरु महाराज फिर भी राज़ी नहीं लगते थे।

यह देखकर माता गूजरी जी कहने लगीं, अगर यह बात है तो मैं अपने छोटे दो पोतों—ज़ोरावर और फतेह को लेकर चली जाती हूँ। माता गूजरी जी इन दो पोतों को बहुत लाड़ करती थीं।

यह देख गुरु महाराज किला खाली करने के लिए राज़ी हो गए और हर किसी का कहा मोड़ा जा सकता था, पर अपनी जननी से दूरी कैसे हो ? दशमेश ने वज़ीर खान और औरंगज़ेब के कासिद ख्वाजा मरदूद को यह कहकर भेज दिया कि वे दो-चार दिनों तक किला खाली करके आनन्दपुर से निकल जायेंगे।

मुगल फ़ौज में यह खबर सुनकर बधाइयाँ बजने लगीं। पहाड़ी राजा अजमेरचन्द को बधाई देने लगे। अपने मनोरथ में वह सफल हुआ था। हर कोई यह कहता, एक बार आनन्दपुर को छोड़कर चले गए तो, उन्हें फिर नहीं लौटना। हमने फिर उन्हें घुसने देना ही नहीं, अजमेरचन्द शेखी बघारता, हमने इन्हें अपनी रियासत में पैर तक नहीं रखने देना। लेने आई आग घर को सम्भाल बैठी। कुछ इस तरह डींगे मार रहा था।

उधर मुगल अन्दर-ही-अन्दर खिचड़ी पका रहे थे। हंडिया पक रही थी। कोई नहीं जानता था, उनके मन में क्या था। आम सिपाही यह सुनकर कि घेरा उठा लिया जायेगा खुश थे, बहुत खुश। हर कोई अपने-अपने घर लौटने की तैयारियाँ करने लगा।

हर कोई यही कहता न हम जीते, न वे हारे। न वे जीते, न हम हारे।

70

माता गूजरी जी के कहे को सम्मान देते हुए महाराज ने बेशक आनन्दपुर खाली करने का फैसला कर लिया था पर उनकी आत्मा को जैसे झकझोर दिया गया हो। उस सारी रात गुरु महाराज अन्तर्मुखी रहे।

बार-बार उनके मुखारबिन्द से कवियों की उचारी चौपाई की ये तुकें नाम-स्मरण की तरह फूट पड़तीं :

हमरी करो हाथ दे रछा ॥ पूरन होई चित की इच्छा ॥
तव चरनन मन रहे हमारा ॥ अपना जान करो प्रतिपारा ॥
हमरे दुष्ट सभे तुम घावहू ॥ आप हाथ दे मोहि बचावहू ॥
सुखी बसै मेरो पखारा ॥ सेवक सिक्ख सबै करतारा ॥ 2 ॥
मोरछा निज कर दै करिये ॥ सभी बैरियन को आज संघरियै ॥
पूरन होई हमारी आसा ॥ तोर भजन की रहै पिआसा ॥ 3 ॥
तुमहि छाडि कोई अवर न ध्याऊ ॥ जो बर चहें सु तुम ते पाऊं ॥
सेवक सिक्ख हमारै तारीअहि ॥ चुनि-चुनि शत्र हमारे मारीअहि ॥4॥
आप हाथ दे मुझे उबरिये ॥ मरन काल का त्रास निवरयै ॥
हू जो सदा हमारे पछा ॥ श्री असिधुज जू करि यहू रछा ॥ 5 ॥
राख लेहू मुहि राखनहारे ॥ साहिब संत-सहाइ पिआरे ॥
दीनबंधु-दुषटन के हन्ता, तुमहो पुरी चतुर दस कन्ता ॥ 6 ॥

अगली सुबह पहली बात दशमेश ने नाहन के नरेश को चिट्ठी लिखी जिसमें उसे आशीष दी, 'गुरु अंग-संग रहे, हर बाब रछियाँ होवे। चरणों की प्रीत। ईश्वरीय चरणों का आसरा बना रहे।'

फिर मुगल और पहाड़ी राजाओं के तीन वर्ष के घेराव का ज़िक्र किया। कैसे दुश्मन नाकाबन्दी करके बैठे हुये थे पर उनकी मजाल नहीं थी कि खालसा फ़ौज से आमने-सामने जूझ सकें। सैकड़ों सिक्ख शूरवीर कुरबान हो गये थे पर उन्होंने हजारों दुश्मनों को मौत के घाट उतारकर अपना जीवन सफल किया था।

आगे चलकर दशमेश ने लिखा घेराव के कारण अन्न-पानी की खालसा को बेशक तंगी थी पर गुरु-प्यारे अंधेरे-उजाले में दुश्मन की कतारों में लूट-मार कर अपना गुजारा कर रहे थे।

और फिर पहाड़ी राजाओंने गऊ-गणेश की सौगन्ध खाई, मुगल फ़ौजदारों ने कुरान को हाज़िर-नाज़िर रखकर वायदे किये कि वे खालसा फ़ौज के

साथ दोस्ती के इच्छुक हैं। इतने में शहंशाह औरंगज़ेब की अपने दस्तखतों से मोहरबन्द चिट्ठी आई कि वह मुलाकात का प्रार्थी था।

इतनी देर से किले में घिरे हुए इधर माता गुजरी जी, दो छोटे साहिबज़ादे, गुरु दरबार के कवि और कुछ गुरुसिक्ख, ऐसे लगता है जैसे उधर चले गये हों। वे भी चाहते हैं कि कुछ समय के लिये आनन्दपुर को छोड़ दिया जाये, ताकि पहाड़ी राजाओं और उनके मुगल मददगारों की जिद्द पूरी हो जाये, और साथ ही इन्हें भी खुली हवा में सांस लेने का अवसर मिल सके।

इसलिये यह फैसला किया गया है कि माता गूजरी जी, सुन्दरी जी और साहिब देवां जी सहित नाहन चले जायें उनके साथ दो छोटे साहिबज़ादे भी होंगे और दरबार के कलमी नुस्खे जो सिक्ख पंथ का अमूल्य खजाना है।

इनकी सम्भाल नाहन की जिम्मेवारी होगी। अकाल पुरुष की कृपा हुई तो हम खुद कुछ समय बाद फेरा लगायेंगे और नाहन की संगत के दर्शन करेंगे।

इस तरह नाहन के नरेश के प्रति चिट्ठी में सब कुछ सौंप कर पहला काम गुरु महाराज ने यह किया कि हस्तलिखित नुस्खों को देखने लगे, जो नाहन भेजने के लिये बांधने थे, जो पीछे छोड़े जा ते थे। कितनी देर इसी छांटा-छांटी में लग गई। कोई भी तो ऐसी हस्तलिखित चीज़ नहीं थी जिसे छोड़ने का उनका मन करता। आखिर जब नुस्खों की गड्डियाँ तैयार हुईं, आलम सिंह ने उन्हें तोला। पूरे नौ मन उनका वजन था। यह तो गुरु महाराज का सबसे बड़ा बहुमूल्य खज़ाना था।

इस महत्त्वपूर्ण जिम्मेवारी से निपटकर गुरु महाराज ने अपने पांच प्यारों को बुलाकर आदेश दिया कि सिवाय उन हथियारों के जो खालसा फ़ौज में हर शूरवीर को अपने प्रयोग के लिये जा सकते थे, हथियारों के सारे के सारे भण्डारों को नष्ट कर दिया जाए और तोप तथा लोहे के और हथियार जो नष्ट नहीं किये जा सकते थे, कुओं में फेंक कर कर दबा दिए जाएं।

लाखों की कीमत के कालीन, ज़बरफत और कामखाबें, रेशमी दुशाले और तोष के शाल, सैंकड़ों वर्ष पुराने जमावार और फुलकारियां, नवारी पलंग और सन्दल के हाथी दांत के कलमदान, ज़री-जड़ी घोड़ियों की काठियां, हाथियों की झूलें, शेरों और चीतों की खालें जिनके साथ शिकार की विचित्र यादें जुड़ी हुई थीं, बारह सिंघों के सिंघ, जो जगह-जगह गुरु महलों की

दीवारों पर सजे रहते थे, बलख और बुखारे, काबुल और कंधार, ढाका और बंगाल, लंका और लक्षद्वीप, मक्के और मदीने से श्रद्धालुओं की भेंट की गई रंग-बिरंगी चीज़ें भांति-भांति की सौगातें, पहली कृपाण, पहला कमान, पहला नेज़ा, पहली कटार और पहली बन्दूक—जो गुरु महाराज ने प्रयोग की थी, बढ़िया बनवाये कीर्तन के साज, सारंदे और सारंगियां, पखावज़ और मृदंग, नफीरिया और शहनाइयाँ और आखिर में सबसे महत्त्वपूर्ण आनन्दपुर का चिह्न, रणजीत नगारा भी, इस क्षण ऊंचे हो रहे ढेर में लाकर रख दिया गया। छः सिक्ख उठाकर उसे लाये और अब गुरु महाराज ने अपने हाथों से हसीन यादों के इस ढेर को और भी भड़का दिया।

सारे श्रद्धालु गुरुसिक्ख बिटर-बिटर देख रहे थे। परिवार में माता गुजरी ज़ी माता सुन्दरी जी और साहिब देवां जी की आंखों में से झर-झर आंसू गिर रहे थे।

कुछ समय बाद दशमेश ने आलम सिंह को बुलाकर हिदायत की कि उनके बाज़ को चोगा बन्द कर दिया जाए। न चुग्गा न पानी दिया जाए। उसे ऐसे दिन-भर भूखा रखकर किले से उड़ा दिया जाए। यदि वह मुड़-मुड़कर आये तो बन्दूक के धमाके या और शोर-शराबे से उसे बैठने न दिया जाए। आप ही जंगल में चला जायेगा, अपना शिकार करने लगेगा।

पर बाज़ था कि सारा वह दिन, उससे अगला दिन भूखा-प्यासा पड़ा रहा, पर मजाल है कि किले से एक क्षण के लिये भी हट जाए। शोर-शराबे और बन्दूक के धमाके से पल-भर के लिये उड़ान भरता, फिर उस स्थान पर आकर टिक जाता जहाँ गुरु महाराज उसे दिखाई देते। दिखाई न भी देते, अन्दर कमरे में होते तो भी गुरु का बाज़ उसी मंजिल की छत पर, ममटी पर, मुंडेर पर आ बैठता जहाँ से उसे गुरु महाराज की जैसे सुगन्ध आ रही होती।

और फिर माता साहिब देवां जी, माता सुन्दरी जी और माता गुजरी जी गुरु महाराज के पास आईं, अपने-अपने गहने, मोती और जवाहर उन्होंने संभाल लिए थे पर सोने और चांदी के बर्तनों का क्या किया जाये ? वे तो न छोड़े जाते थे, न ले जाए जाते थे। गुरु महाराज ने एक पल के लिए सोचा और दया सिंह और धर्म सिंह को हिदायत की कि गुरु-महल के आंगन के एक ओर खड्डा खोदकर घर के सारे कीमती बर्तन तथा और इस तरह का छोटा-मोटा सामान उसमें दबा दिया जाए।

आनन्दपुर को कैसे छोड़ सकेंगे ? माता गूजरी जी माता सुन्दरी जी से

मुखातिब थीं।

आप स्वयं ही तो जल्दी कर रही थीं। माता सुन्दरी जी ने उन्हें याद करवाया।

मेरी डोली इस शहर में आई थी। माता साहिब देवां हसरत-भरी निगाहों से दूर शहर की दीवारों कोठों को निहार रहीं थीं।

यहाँ का पानी कितना मीठा है।

सुबह की हवा, जैसे शिवालिक की पहाड़ियों की ताज़गी उसके पल्लू से बंधी हो।

चांदनी रातों में सतलुज की ओर से बह रही पवन जैसे कानों में कुछ कहने लगती हो।

जब गुरु के महल इस प्रकार के जश्न में बह रहे थे, आम के एक पेड़ के नीचे एकत्रित कुछ गुरु सिक्ख इस तरह भावुक हो रहे थे :

अब तो यह शहर छोड़ना ही होगा।

गुरु महाराज ने सब कुछ फूंक दिया है।

इसका यह मतलब है, हम दोबारा इधर नहीं आयेंगे।

जिस गांव को छोड़ दिया उसकी राह से क्या लेना।

कोई आनन्दपुर को कैसे भूल सकता है ?

यह अमृत की दात गुरु महाराज ने हमें बख़्शी थी। यह शहर थोड़े ही है, यह तो तख़्त है, राजधानी है, सिक्ख पन्थ की। 'सच्चे पातशाह सब कुछ जाननहार हैं, हमें तो उनके दिखाए मार्ग पर चलते जाना है।

मेरा अन्तर्मन गवाही देता है, मुगलों ने हमें दगा देनी है।

मैंने तो अपना तरकश तीरों से भर लिया है।

मेरे थैले में बन्दूक की गोलियाँ ऊपर तक भरी हुई हैं।

मैंने तो कल अपनी शमशीर को शान पर चढ़ाया है।

अपने खण्डे को मैं साफ़े पर अड़ा लेता हूँ।

एक और जगह। समय तीसरा पहर।

यह तो दशमेश हैं।

दशमेश इस समय किधर जा रहे हैं ?

गिन-गिनकर कदम सोचों में डूबे।

बस एक ही अंगरक्षक ! यह कौन है उनके पीछे ?

गुरबख़्श है।

दायें हाथ बड़ के पीछे ?

यह तो गुरु पिता तेग बहादुर जी की समाधि पर जा पहुंचे हैं।

हाथ जोड़े अरदास कर रहे हैं।

जैसे विदा ले रहे हों।

कितनी देर हो गई है उन्हें हाथ जोड़कर खड़े हुए। पुत्र पिता से बिछड़ रहा है।

गुरु महाराज ने शायद अपने नेत्रों को गले में पड़े रूमाले से साफ किया है,

अब गुरबख्श सिंह को कुछ कह रहे हैं।

गुरबख्श हाथ जोड़े सहमति में सिर हिला रहा है।

अब गुरु महाराज लौट रहे हैं।

वैसे के वैसे सोच में डूबे

गुरबख्श पीछे रह गया है।

वह तो समाधि के पास ही जमकर बैठ गया।

जाड़े के दिन, उधर दिन ढला, इधर धौलादार की बर्फीली हवाओं के थपेड़े दांतों को किटकिटाने लगे। खीसे में से, लोई में से हाथ बाहर निकालें तो जैसे जमकर रह जाते। संध्या पड़ रहीं थीं, जब गुरु महाराज ने नाहन के नरेश के नाम लिखी अपनी चिट्ठी देकर माता गूजरी जी और बाकी परिवार को, दो छोटे साहिबज़ादों सहित आनन्दपुर से विदा किया। उनके पास दरबारी क़वि थे और 9 मन का बोझा गुरु महाराज के तैयार करवाए ग्रन्थों का। यह अत्यन्त कीमती सरमाया अपने सबसे बहादुर, सबसे अधिक तजुर्बेकार जरनैल भाई दया सिंह की निगरानी में विदा किया गया। उनके साथ 200 सिक्ख भेजे गए। इस जत्थे को हिदायत थी कि वे सीधे रोपड़ जाएं जहाँ उन्हें नाहन के नरेश के भेजे दरबारी आकर सम्भाल लेंगे। गुरु महाराज को भी कुछ समय बाद उन्हें आ मिलना था। इस तरह वे सोच रहे थे।

आधी रात का समय था जब गुरु महाराज ने स्वयं आनन्दपुर को अलविदा कहा। ठण्ड कहे जैसे आज ही आज है। ऐसे लगता पहाड़ों पर बर्फ पड़ रही थी। बर्फीली हवा के फर्राटे उस्तरे की तरह सिर, मुंह को काट-काट जा रहे थे। गुरु महाराज ने किले से बाहर चरण ही रखे थे कि हल्की-हल्की फुहार पड़ने लगी। पर दशमेश अरदास कर चुके थे। वे नहीं लौटे। आनन्दपुर से आनन्दपुर का स्वामी जा रहा था।

गुरु महाराज के आगे पांच प्यारे थे। उनके पीछें दो बड़े साहिज़ादे– साहिबज़ादा अजीत सिंह और साहिबज़ादा जुझारसिंह थे। उनके पीछे भाई आलम सिंह थे। आलम सिंह के पीछे 400 खालसा फ़ौज के नामी शूरवीर थें। काली अन्धेरी रात, हवा तेज़ हो गई थी और बर्फ़ीली हो गई थी। आनन्दपुर की वह न भूल सकने वाली रात हो रही थी। पता नहीं कितनी देर और ऐसे आंसू बहाने उसकी किस्मत में लिखे थे।

71

देह शिवा वह मोहि इहै, सु करमन ते कबहूँ न टरों ॥
न टरों अरि सो जब जाइ लरों, निशचै कर अपनी जीत करों ॥
अर सिक्ख हो अपने ही मन को, इह लालच हउ गुण को उचरों॥
जब आव ही अउध निदान बनै, अति ही रण मैं तबि जूझ मरों ॥

गुरु महाराज के पवित्र होठों पर ये शब्द थे जब वे आनन्दपुर से चले। कुछ फासला चलकर उन्होंने पुकारा :

जबे बान लगे
तबे रोस जगे।

गुरु महाराज के साथ आ रहा जत्था अब बार-बार इस तुक का एक जायकारे की तरह उच्चारण कर रहा था। एक टुकड़ी कहती–'जबे बान लागे।' और दूसरी टुकड़ी पुकारती–'तबै रोस जागे।'

पौ फूटी और वे सरसा नदी पर पहुंच गये। क्या देखते हैं, नदी तो चढ़ी हुई थी। शायद पीछे पहाड़ियों में जाड़े की बरसात हुई थी। सरसा नदी जो अक्सर सूखी और प्यासी रहती थी आज जैसे ठाठां मार रही हो। इसे कैसे पार किया जाए ? पर पार करना तो जरूरी था। किसी समय भी कुछ हो सकता था।

और फिर गुरु महाराज को पता लगा, पहले भेजी माता गूजरी जी की टुकड़ी भी कुछ दूरी पर पड़ाव करके इसी किनारे पर अटल बैठी थी। किसी को कुछ समझ नहीं आ रही थी कि नदी को कैसे पार किया जाए।

गुरु महाराज ने पहली बात, एक साफ़-सुथरे स्थान को देखकर दीवान सजाने का फैसला किया, शबद, चौकी, कीर्तन होने लगा। इसमें घाट के माझी भी आ शामिल हुए, इतने में आलम सिंह और दया सिंह, उदय सिंह से जा मिले। उनकी राजी-खुशी पूछकर चेतावनी की कि सरसा नदी में पानी का जोर अधिक होने के कारण उन्हें वही रुकना होगा और कोई चारा नहीं

था। उनके घाट के मांझी गुरु परिवार की यथाशक्ति खातिर कर रहे थे।

उदय सिंह का उल्टा फ़ौजी जरनैली दिमाग, उसकी राय थी—जैसे-तैसे उन्हें सरसा नदी पार कर लेनी चाहिए थी। मुगल सेना का कोई भरोसा नहीं था। वे लोग किसी समय भी अपनी नीयत बदल सकते थे। किसी समय भी हमला कर सकते थे। बेशक उन्होंने कुरान की कसमें खाईं थी। बेशक औरंगज़ेब ने खुद अपनी मुहर लगाकर चिट्ठी भेजी थी कि गुरु महाराज जिधर चाहें जा सकते थे, जहाँ चाहें रह सकते थे, बस एक किला खाली कर दें। पर इतनी दूर बैठे शहंशाह से किसी ने पूछने थोड़े ही जाना था कि वचन तोड़ा जाए, न तोड़ा जाए और मुगलों ने पहले कौन से वादे निभाए हैं ? उनकी किसी भी बात पर भरोसा करना अपने-आप को धोखा देना था। आलम सिंह के बीच का पुराना मुगल दरबारी, वह सोचता, ऐसे आलमगीर का किया हुकूम किसी के लिये तोड़ना आसान नहीं होगा। वह इस मामले में उदय सिंह के साथ सहमत नहीं था। फिर भी उदय सिंह की बात में वज़न था। आलम ने अपने ठिकाने पर पहुंचकर गुरु महाराज से सलाह की। दशमेश उदय सिंह से सहमत थे। खालसा फ़ौज को और ढील नहीं करनी चाहिए। जैसे-तैसे सरसा पार करके रोपड़ पहुंचना चाहिए था, जहाँ नाहन के नरेश के कारिंदे गुरु परिवार को सम्भाल लेंगे।

इतने में बरसात फिर होनी शुरू हो गई। एकदम बादल जैसे घिरकर आ गए और चारों तरफ जल-थल हो गया। इस तरह की बरसात में हर कोई अपना सिर छिपाने की फिक्र में था, सिरसा पार करने की किसी को सूझ ही नहीं रही थी। उधर और बरसात के कारण, नदी और-और अफर रही थी। और-और फुंकारें मार रही थी। किनारे पर घाट के मांझियों के छप्पर के कच्चे कोठे थे और कुछ नहीं था जहाँ सिर छिपाया जा सके। अभी दशमेश फैसला नहीं कर पाए थे कि नदी कैसे पार की जाए कि गुप्तचर ने आकर खबर दी कि मुगल फ़ौज की नीयत बदनीयत हो रही थी। अगर उन्होंने अभी तक सिक्ख संगत को नहीं घेरा तो इसका कारण मौसम की खराबी था। वे लोग दशमेश को हिरासत में लेने को फिरते थे। मुगल फ़ौज के इस हमले की अगुवाई वज़ीर खान खुद कर रहा था। उसके जैसा ज़ालिम फ़ौजी जरनैल पूरी मुगल फ़ौज में कोई नहीं था।

बारिश थी कि रुकने का नाम ही न ले रही थी। कलगीधर चाहते हुए भी चार कदमों की दूरी पर अपने परिवार और उदय सिंह की अगुवाई में

भेजे सूरमाओं से मिल नहीं सके थे। न ही उनमें से कोई उनके पड़ाव पर आ सका था। जाड़े की बरसात और शिवालिक की ककरीली हवाएं, तूफान सांस नहीं लेने दे रहा था। घुमा-घुमाकर फेंकता, जैसे कोई थपेड़े मार रहा हो। सर्दी से अगले और पिछले सभी के दांत बज रहे थे। कोई किसी छप्पर के नीचे, कोई किसी कोठे में, कोई पेड़ों के नीचे, कोई पेड़ों पर, कोई चादरें ताने, कोई कहीं ओट ढूंढ बरसात से बचने का हर कोई उपाय कर रहा था।

गुरु महाराज ने आलम सिंह, भाई दया सिंह और भाई धर्म सिंह आदि बाकी अपने निकटवर्ती शूरवीरों को तैयार रहने के लिए कहते हुए हिदायत दी कि मुगल फ़ौज का हमला होने पर साहिबज़ादा अजीत सिंह और आलम गुरु परिवार की रक्षा के लिए उदय सिंह की मदद करें।

सारा दिन बरसात होती रही। चारों तरफ कीचड़ और गीली रेत, पेड़ चू रहे थे। न पकाने का स्वाद, न खाने का स्वाद। केवल ईश्वर का नाम और गुरु महाराज की ओट, खालसा शूरवीरों के हौंसले वैसे-के-वैसे थे। वैसे-वैसे वे पुकारते–'जबै बान लागे, तबै रोस जागै।'

दोपहर बाद कहीं जाकर बरसात रुकी। हर कोई अपना कपड़ा-लत्ता निचोड़ रहा था। चूल्हों में आग जली। लंगर वाले लंगर तैयार करने की फिक्र करने लगे। खालसा फ़ौज के सन्त सिपाही अपने गोली बारूद को सम्भाल-सम्भाल कर बेहाल हो रहे थे।

सरसा वैसे-की-वैसी उमड़ रही थी, वैसे-की-वैसी झाग फेंक रही थी।

सांझ पड़ी तो गुप्तचर ने खबर दी कि मुगल फ़ौज सरसा की ओर बढ़ रही थी। साहिबज़ादा अजीत सिंह और आलम तुरन्त दूसरे पड़ाव पर गुरु परिवार की सहायता के लिए पहुंच गये। उदय सिंह पहले ही तैयार बर तैयार थे।

यह जानकर कि मुगल हमला बोल रहे हैं, गुरु परिवार को जैसे-तैसे हो सका मल्लाहों की मदद से सरसा पार करने का फैसला किया गया। अन्धेरी रात, कहरों की बाढ़, सां-सां कर रहा पानी, मल्लाह गुरु परिवार को डोलियों में और कन्धों पर लेकर पानी में कूद पड़े। होंठों पर दशमेश का नाम और उछल-उछल पड़ती लहरों से भिड़े गुरु प्यारे नदी से जूझ रहे थे। पता नहीं गुरु महाराज के दरबारी किधर थे। पता नहीं विद्याधर ग्रन्थ कहाँ थे। पता नहीं और ढेर सारा छोटा-मोटा सामान जो गुरु परिवार अपने साथ लाया था कहाँ-कहाँ बिखर गया था। इधर नदी उफन रही थी, उधर गोलियाँ बरस

रहीं थीं, तीर छूट रहे थे। नदी लहु-लुहान होने लगी।

मुगल लश्कर गुरु महाराज के दोनों ठिकानों पर टूट पड़ा था। गुरु परिवार जब तक सरसा नदी पार नहीं कर सका, साहिबज़ादा फतेह सिंह और आलम ने दुश्मन को पड़ाव के निकट नहीं आने दिया। घमसान लड़ाई हो रही थी। तीर छूटते, गोले दागे जाते। बन्दूकें चलती और खण्डे काटते। एक समय ऐसा आया कि साहिबज़ादा अजीत सिंह को दुश्मन ने चारों तरफ से घेर लिया। भाई उदय सिंह उनकी मदद के लिए आगे बढ़े, वज़ीर खान का छोड़ा तीर उनकी छाती में आ लगा और वे वहीं के वहीं ढेर हो गये। भाई उदय सिंह जैसे शूरवीर को ऐसे शहीद हुआ देखकर भाई जीवन सिंह अपने घोड़े की लगाम को अपने दांतों में लेकर दोनों हाथों से तलवारें चलाते एक बिजली की चमक की तेजी से दुश्मन पर टूट पड़े। यह देख मुगल फ़ौज मैदान छोड़कर पीछे हटने लगी। यह तो चमत्कार था। ऐसे भी कोई जंग में लड़ा था। ये लोग तो सचमुच अल्ला वाले थे।

इतने में गुरु परिवार सामने किनारे पर पहुंच गया था।

इस पड़ाव से फारिग होकर साहिबज़ादा अजीत सिंह और आलम गुरु महाराज वाले पड़ाव की ओर गए। वैसे की वैसे घमासान की लड़ाई वहाँ भी हो रही थी। गुरु महाराज तथा कई गुरु सिक्ख ठाठां मार रही सरसा नदी में उतर गए थे। घुप्प अन्धेरी रात में इधर पानी के कहर से और उधर दुश्मन के कोप से जूझते गुरुसिक्ख जान पर खेल रहे थे।

जब दुश्मन ने खालसा फ़ौज का अपने किनारे पर सफाया कर दिया तो वे सरसा नदी के किनारे खड़े तमाशा देखने लगे। सुबह होने तक न कोई सिक्ख, न कोई गोली बारूद कहीं नज़र आ रहा था। गुरु महाराज और बाकी गुरु परिवार कुछेक गुरुसिक्खों के साथ सरसा के सामने किनारे पर पहुंच चुका था।

मुगल फ़ौजी अपने सभी साधनों के बावजूद सरसा पार करके गुरु महाराज का पीछा करने का हौंसला नहीं कर रहे थे।

इतने में इक्का-दुक्का जो भी गुरुसिक्ख उनके हाथ आते, किसी की नाक और किसी के कान काट कर वे उन्हें नकारा कर रहे थे।

सामने किनारे पर पहुंची माता गुजरी जी और छोटे दो साहिबज़ादे बाबा ज़ोरावर सिंह और बाबा फतेह सिंह हफड़ा-दफड़ी में गुरु परिवार से अलग हो गए। उनके साथ गंगू नाम का गुरु घर का रसोइया था। वह उसी

ओर के खेड़ी नाम के गांव का रहने वाला था। माता गुजरी जी और छोटे दो साहिबज़ादों को अपने गांव ले गया। माता साहिब देवां और माता सुन्दरी जी को भेष बदल कर गुरु महाराज ने भाई मनी सिंह की सपुर्दगी में हरिद्वार भेज दिया, जहाँ से उन्हें दिल्ली चले जाना था।

अब गुरु महाराज स्वयं रोपड़ की ओर बढ़े। सरसा नदी से रोपड़ कोई दूर नहीं था। यही कोई सात-आठ कोस का फासला। गुरु महाराज रोपड़ पहुंचे तो आगे रंगड़ उनका रास्ता रोके बैठे थे। गुरु महाराज रोपड़ के बाहर एक दहक रहे भट्ठे के पास सुस्ताने के बाद झीउरू-माजरे और ब्राह्मण-माजरे होते हुए रात होने तक चमकौर जा पहुंचे।

चमकौर के चौधरी बुद्धिचन्द ने गुरु महाराज को शहर से बाहर एक गढ़ी में टिक जाने का मशवरा दिया। गुरु महाराज इस गढ़ी में पहले भी ठहर चुके थे। उनके साथ अब बस 40 सिक्ख और दोनों बड़े साहिबज़ादे, बाबा अजीत सिंह और बाबा जुझार सिंह थे।

चमकौर की गढ़ी एक किले का किला थी। गुरु महाराज ने इसमें प्रवेश करते ही मोर्चे बना लिए और प्रत्येक मोर्चे पर शूरवीरों को तैनात कर दिया।

खुद दशमेश अटारी में बैठे सामने मैदान का नज़ारा ले रहे थे जिधर से दुश्मन को आना था। वे जानते थे कि जैसे ही सरसा का पानी घटा मुगल फ़ौज उनका पीछा करेगी। जंग होकर रहेगी।

और ऐसे ही हुआ। इस बात पर खुश थी ज़्यादातर खालसा फ़ौज, कि दो टुकड़ियों के सिपाही नदी में बह गए थे, साथ ही उनके हथियार बह गए थे, मुगल करीब पूरा दिन सरसा के दूसरे किनारे बैठे प्रतीक्षा करते रहे। फिर जब नदी का पानी उतरा, वे नदी पार करके गुरु महाराज की राह पर जल्दी-जल्दी चल पड़े।

72

एक मोर्चा मुख्य द्वार पर था। जहाँ दस सूरमा तैनात थे। दस और सूरमा छत पर रक्षा कर रहे थे। दस ही सूरमाओं की दीवारों पर नियुक्ति की गई थी। इन तीन टुकड़ियों की निगरानी भाई आलम सिंह को सौंपी गई थी।

गुरु महाराज स्वयं ममटी की ओट में जा बैठे थे। आज तीसरा दिन था उनकी एक क्षण के लिए भी आंख नहीं लगी थी। सारी उम्र की मेहनत से तैयार करवाए ग्रन्थ सरसा में बह गए थे। उनके साथ उनके दरबारी कवि

तथा और कई शूरवीर। जिस तरह मुगल लश्कर ने द्रोह करके खालसा फ़ौज के दस्ते को काटा-कूटा था, गुरु महाराज सोच-सोचकर, बार-बार, गहरे नीले आकाश की ओर देखते।

उधर भाई आलम सिंह कभी किसी मोर्चे पर कभी किसी मोर्चे पर फिरकनी की तरह फिर रहा था। अपने साथियों को सावधान रहने के लिए ताईद कर रहा था।

और फिर सामने क्षितिज पर जैसे टिड्डी दल हो, मुगल लश्कर आता दिखाई दिया। ढोल ढमाके और बाजे-गाजों के साथ मुगल जल्दी-जल्दी बढ़ रहे थे और देखते-देखते उन्होंने चमकौर की गढ़ी का घेराव कर लिया। इतना भारी लश्कर, तोपें, बन्दूकें और हथ-गोलों से लैस, वे चाहते तो एक पल में सारी की सारी गढ़ी को नेस्त-नाबूद कर देते। आंख के एक झपक में 40 शूरवीरों के दस्ते का सफाया कर देते। पर वज़ीर खान तो गुरु महाराज को जीवित पकड़कर आलमगीर के सामने पेश करना चाहता था।

ममटी की ओट में बैठे गुरु महाराज को अचानक याद आया, वह तो उनका जन्मदिन था। यह कैसा उनका जन्मदिन था जिसे अपने लहू के प्यासे दुश्मन के साथ में वे गुज़ारने जा रहे थे। उनके पास दो बड़े साहिबज़ादे थे, पांच प्यारे, आलम सिंह, आलम सिंह उनका फ़ौजी मामलों के बारे में प्रमुख सलाहकार और 34 और शूरवीर। गुरु महाराज को लग रहा था, आज का जन्मदिन खून की होली खेलकर उन्हें मनाना होगा।

और फिर उन्होंने देखा गढ़ी के साफ सुथरे, निखरे हुए आकाश पर उनका लाड़ला बाज उड़ाने भर रहा था। सैंकड़ों और साथी साथ छोड़ गए थे, पर उनका बाज़ उनके अंग-संग था। पता नहीं कैसे वह गुरु महाराज की टोह रख रहा था। गुरु महाराज के बाज़ को गुरु महाराज ने देखा, आलम सिंह ने देखा और 'बोले सो निहाल, सति श्री अकाल'; का जयकारा गुंजाया। 40 गुरुसिक्खों का मिलकर जयकारा सुनकर मुगल सिपाही सोचने लगे। पता नहीं गढ़ी में हजारों खालसा छिपे बैठे थे। गुरु महाराज का बाज आलम का खास तौर पर चहेता था। वही तो उनकी देखभाल करता था। उनकी खातिर करते इसे हार रास नहीं आती थी। अगर गुरु महारजा के हाथ के ऊपर न बैठा होता और बाज़ हमेशा आलम के आगे-पीछे दिखाई देता। कभी उसे चुग्गा खिलाया जा रहा है, कभी उसे टोप पहनाया जा रहा है। आलम के मुंह से धीमी आवाज़ सुनता और बाज़ एकदम सावधान हो जाता। और अगले

क्षण उडारी भरकर शिकार को दबोच लेता। बाज़ को मेवा अच्छा लगता था; आलम की जेब हमेशा किशमिश से भरी रहती।

इतने में सामने मुगल फ़ौज के एलानिया ने पुकार कर ऐलान किया 'ए पीर-ए-हिन्दू' अगर तुम अब भी अपने-आपको मुगल फ़ौज के हवाले कर दो तो तुम्हारे दोनों बेटे और बाकी मुरोद जो तुम्हारा साथ दे रहे हैं, बच सकते हैं। तुम्हारे बाकी के परिवार वालों और साथियों का जो हाल हुआ है, तुमने देख ही लिया है। कुछ मुगल तेग का शिकार हुए, कुछ अल्ला के कोप का। अब भी समय है। यह आखिरी चेतावनी तुम्हें दी जा रही है।

उधर से मुगल एलानिए की आवाज़ आनी बंद हुई, इधर ममटी की ओट में बैठे गुरु महाराज, दोनों साहिबज़ादों और आगे-पीछे बाकी गुरुसिक्खों ने जैसे तीरों की बौछार कर दी और ऐसे लड़ाई शुरू हो गई। इधर से तीर बरसते थे, उधर से गोले। गुरुसिक्ख झरोखों और मोकलों में से तीरों का निशाना बना रहे थे। गउधर गोलियाँ और गोले बरस रहे थे। और तो सभी छिप सकते थे, छिपकर दुश्मन पर वार करते थे पर आलम सिंह को तो एक से दूसरे मोर्चे पर तीर पहुंचाने के लिए तथा और हिदायतें देने के लिए बार-बार आना जाना पड़ता था। बड़ी खतरे की बात थी, पर यह खतरा तो जो जिम्मेवारी उसे बख़्शी गई थी उसमें स्पष्ट थी।

और फिर वही अनर्थ हुआ जिसका अन्देशा था। भाई आलम सिंह मुख्य द्वार के मोर्चे से छत की ओर जा रहा था कि एक गोली आकर उसकी छाती में लगी। आलम वहीं का वहीं ढेरी हो गया। उधर गोलियों की तड़-तड़, जब तक वह तड़कना बन्द नहीं हो गया, न दया सिंह, न धर्म सिंह न और कोई नज़दीक जा सका। गोलियों और तीरों की जैसे वर्षा हो रही हो। सामने वह शूरवीर जो मुगल वर्दी को उतारकर गुरु महाराज की शरण में आया था और फिर कभी उसने लौटकर पीछे नहीं देखा था। हाथ जोड़े ममटी की ओर नजरें जमाए अंतिम सांसे ले रहा था। झर-झर आंखों में आंसू दया सिंह और धर्म सिंह उस वफा के पुतले को अपनी-अपनी तरह से देख रहे थे।

फिर उसके नेत्र बंद हो गए। उसका शीश एक तरफ लुढ़क गया।

इस तरह की चोट के बाद मुगल लश्कर ने यह सोचकर कि गुरु महाराज का हौंसला पस्त हो गया होगा, फिर अमन और चैन के लिए पुकारा। उनके एलानिया ने बुलन्द आवाज़ में कहा कि उनका प्रतिनिधि गुरु महाराज के साथ समझौता करने के लिए आना चाहता था। दशमेश को इसमें कोई एतराज नहीं था।

कुछ समय के लिए लड़ाई रोक दी गई। दोनों तरफ से न गोलियाँ छूट रही थीं और न ही तीर बरसाए जा रहे थे।

और फिर मुगल लश्कर का भेजा नुमाइन्दा गढ़ी में गुरु महाराज से मुखातिब था। वह फिर वही पुराने किस्से गा रहा था। हम आपके साथ दोस्ती करना चाहते हैं। आलमगीर बार-बार आपके दीदार के लिए कहता रहता है। एक तरफ इस तरह के समझौते की पेशकश और दूसरी ओर मुगल लश्कर के बाहुबल की शेखियां। आलमगीर का सिक्का काबुल से कामरूप तक चलता हैं उसकी कोई ताब नहीं ला सकता। सिक्ख उसके सामने हैसियत ही क्या रखते हैं। अगर वह चाहता तो कब का आपके इस फिरके को मलियामेट कर देता। हिन्दुस्तान दारुल इस्लाम (इस्लामी राज्य) बनकर रहेगा, आपको इस पाप की दुकान बन्द करनी होगी।

ये बोल उसके मुंह में ही थे कि साहिबज़ादा अजीत सिंह ने अपनी म्यान में से तलवार खींच ली और क्रोध में वे कहने लगे, 'एक शब्द और तथा तुम्हारा सिर तुम्हारे धड़ से अलग तुम्हारे पांवों में पड़ा होगा। बेशक तुम ख्वाजा महूमूद को जाकर कह दो, गढ़ी में हर एक गुरुसिक्ख लड़ने-मरने को तैयार है। बेशक हमारे दस्ते का सरदार शहीद हो गया है। हम उसकी हत्या का बदला लेकर रहेंगे।'

दरअसल यह नुमाइंदा भेजना भी मुगल सिपहसालारों—ख्वाजा महमूद और नाहर खान की कुटील नीति थी। वे लोग जो गढ़ी के अन्दर से छोड़े जा रहे जयकारों से भयभीत थे, यह जानना चाहते थे कि सिक्ख गुरु की कितनी सेना उसकी मदद करने के लिए गढ़ी में पनाह लिए बैठी थी।

नुमाइंदे ने लौटकर उनको बताया कि गढ़ी तो अन्दर से खाली थी। मुट्ठी-भर जवान इधर-उधर मोर्चा सम्भाले बैठे थे। उन सभी को तरीके से बन्दी बनाया जा सकता है।

और फैसला हुआ कि गढ़ी के पिछवाड़े बड़ी सीढ़ी लगाकर नाहर खान, गनी खान और खवाजा महमूद खुद गढ़ी की छत पर पहुंचकर, गढ़ी पर कब्जा कर लें।

कुछ देर बाद चुपचाप गढ़ी के पिछवाड़े सीढ़ी लगा दी गई। गुरु महाराज दुश्मन की हर हरकत पर नज़र रखे हुए थे। सबसे पहले नाहर खान तेग-तलवार से लैस धीरे-धीरे सीढ़ी पर चढ़ा। मुश्किल से उसकी खोपड़ी छत से नजर आई कि दशमेश ने निशाना साधकर ऐसा बाण छोड़ा

कि नाहर खान बड़े अनार-सा लुढ़कता हुआ नीचे धरती पर जा गिरा। यह देख, नीचे खड़ा गनी खान गुस्से में फुंकारता-सीत्कारता सीढ़ी पर डंडे पर डंडा चढ़ता ऊपर आया। क्या देखता है, आगे कलगीधर स्वयं उसका स्वागत करने के लिए खड़े थे। एक ही गुर्ज़ से गनी खान की खोपड़ी के दो टुकड़े हो गए। उसकी मज्जा फूटी हुई हांडी में से दही कि तरह गिरती हुई दिखाई दी। नाहर खान और गनी खान अपने दो साथियों का यह हश्र देखकर इसकी बजाय कि ख्वाजा महमूद सीढ़ी के ऊपर चढ़ने की कोशिश करता, दीवार की ओट में खड़ा होकर अपनी जान की खैर मनाने लगा। फिर जब उसका दांव लगा, वह भागकर अपनी सेना में जा मिला।

इतने में मुगल फ़ौज लाखों की गिनती में चमकौर की गढ़ी के सामने आ डटी थी और फैसला हुआ कि वह एक ही बार धावा बोलकर गुरु महाराज के साथियों का खात्मा करेंगे और गुरु महाराज को बन्दी बना लेंगे।

यह देखकर गुरु महाराज ने भी अपनी जंग की नीति बदली। इसमें रत्ती भर भी शक नहीं था कि गुरु महाराज और दो साहिबज़ादों सहित कुछेक गुरुसिक्ख लाखों की गिनती में समय के हर उपलब्ध हथियार से लैस मुगलों का मुकाबला करके जीत नहीं सकेंगे। पर शहीद होने से पहले वे दुश्मन का नुकसान तो कर सकते थे। गुरु गोबिन्द सिंह तो चिड़ियों को बाजों से लड़ा सकते थे। गुरु महाराज का एक-एक गुरुसिक्ख एक-एक लाख मुगल फ़ौज से लोहा ले सकता था।

और गुरु महाराज ने फैसला किया कि पांच-पांच के जत्थे गढ़ी से बाहर निकलकर दुश्मन से बारी-बारी जूझेंगे। उनकी मदद के लिए गढ़ी की ममटी से तीरों की बौछार होगी। ममटी से तीर छोड़ने वालों में दो साहिबज़ादों को छोड़कर दया सिंह और धर्म सिंह को भी गुरु महाराज ने अपने साथ तैनात किया।

अभी पहले पांच शीश वारने वाले शूरवीरों की टुकड़ी मुख्य द्वार में से बाहर नहीं निकली थी कि अपने मोर्चे पर खड़े दया सिंह की निगाह सामने छज्जे में जा पड़ी जहाँ आलम सिंह की देह को उन्होंने सफेद चादर में ढक कर रखा था। दया सिंह क्या देखता है, गुरु महाराज का बाज़ उसके सिर के पास बैठा अपनी चोंच से आलम का मुंह नंगा कर रहा था। और अब उदास-उदास नज़रों से एक-टक उसे देखे जा रहा था। जैसे लहू के आंसू बहा रहा हो।

दया सिंह ने देखा और धर्म सिंह को कुहनी मार कर उसका ध्यान उधर किया। और फिर दोनों की पलकों से झर-झर आंसू गिरने लगे।

गुरु महाराज को यह करुणानजक दृश्य दिखाने की उनकी हिम्मत ही नहीं पड़ रही थी।

पर आंसू थे कि उनकी आंखों में रुकने का नाम नहीं ले रहे थे।

73

दीनन की प्रतिपाल करै नित संत उबार गनीमन गारै ॥
पछ्छ पशु नग-नाग नगधय सरब समै सभ को प्रतिपारै ॥
पेखतहै जल मैं थल मैं कल के नहीं करमबिचारै ॥
दीन दयाल दया निधि दोखन देखत है पर देतन हारै।

(तव प्रसादी सवैया)

दोपहर होने लगी थी। ममटी की ओट में अपने मोर्चे में विराजमान दशमेश तब प्रसादि का यह सवैया अपने मुख से उच्चारण कर रहे थे और सामने मैदान में घमासान लड़ाई हो रही थी।

एक के बाद एक पांच-पांच शूरवीरों के छः जत्थे बारी-बारी मैदान में उतर चुके थे। सातवें में तीन शूरवीर थे। एक के बाद एक सभी ढेरी हो चुके थे। कोई समय था कि लड़ाई के मैदान में से उठी धूल के कारण निशाना साधना मुश्किल हो जाता था। चारों तरफ जैसे घटा टोप छाई हो। गर्द और चीख-चिल्लाहट हमला करने वालों का तो और भी बुरा हाल, मर रहे फौजियों का अब इतना लहू बह चुका था, धरती ने इतना खून पी लिया था कि आगे पीछे सारी धूल बह गई थी। मीलों तक लड़ाई का मैदान साफ दिखाई देता था। मुगल फ़ौज सीत्कारती फुंकार मार रही बेकाबू हो रही थी।

गुरु महाराज यह देख-देखकर हैरान होते, उनके लाड़ले शूरवीर एक हाथ में तलवार, दूसरे में ढाल, मुगल सिपाहियों का ऐसे सफाया कर रहे थे जैसे चरी की फसल काट रहे हों। जिधर निकलते लाशों के ढेर लगते जाते। हर शूरवीर कोई दस, कोई बीस दुश्मनों को ढेरी करके आप सतगुरु को प्यारा होता। खालसा शूरवीरों की मजबूरी यह थी, वे गढ़ी में से पैदल निकलते थे और उनके सामने दुश्मन अक्सर घोड़ों पर होते जो अपने नेज़ों से उन्हें दूर से ही बींधने की कोशिश करते। बस ममटी से बरसाए जा रहे तीर ही थे जो उन्हें रोके हुए थे। या फिर इक्का-दुक्का बन्दूक की गोलियां। चमकौर की गढ़ी में असल में तो कोई उथल-पुथल थी नहीं। तीरों की सोच

समझकर छोड़ना होता था। गोली-बारूद को आंख मूंद कर प्रयोग नहीं किया जा सकता था। गुरु महाराज के छोड़े तीर से घोड़ा गिरता और मैदान में उतरे सिक्ख अगले पर टूट पड़ते। जगह-जगह पर घोड़े उल्टे पड़े थे। घोड़ों के नीचे लहू-लुहान लाशें कुचली जा रही होतीं। सुबह से बह रहे खून से जगह-जगह पर लहू के पोखर बने हुए थे, चप्पे-चप्पे पर कीचड़-कीचड़ था। ठण्डे हुए लहू में पैर धंस-धंस जाते।

इधर फ़ौजियों ने कोहराम मचाया हुआ था, उधर चीलें और गिद्ध हार रास नहीं आने दे रहे थे। आकाश में उड़ाने भर रहीं, धीरे पल-भर में लाशों पर आ बैठतीं और उन्हें नोचने लगतीं। आंखों पर चोंच मार रहीं, स्थान-स्थान पर मांस को उधेड़ रही थीं।

कहीं किसी की छाती में धंसा तीर, कहीं किसी की गर्दन में धंसा तीर। किसी का शमशीर से कटा सिर, किसी का खण्डे से कुचला मुंह-माथा। किसी की बाजू नहीं और किसी की टांग नहीं। उल्टे पड़े, किसी के दांत निकले दिखाई देते, किसी की आंखें जैसे फटी-फटी हों। किसी के सिर और टांगे उल्टी पड़ी होतीं, किसी के टूटे बाजू, ऐसे लगता जैसे कोई गिड़गिड़ा रहा हो। मुगल गिरते तो हरेक के मुंह से तौबा उस्तफा सुनाई देता, गुरुसिक्ख गुरु को प्यारे होते, 'वाहिगुरु जी की फतेह' का जयकारा उनके होठों पर होता।

मुगल देख-देखकर अचम्भे में पड़ते, हरेक गुरुसिक्ख को गिराने के लिए ततैयों की तरह उन्हें मिलकर इन पर धावा बोलना पड़ता था। फिर भी ये आगे-पीछे कइयों पर पस्त होते। वज़ीर खन को यह कभी नहीं पता था कि मुट्ठी भर गुरुसिक्ख सुबहसे ऐसे मुगल लश्कर का मुकाबला करते जायेंगे और अब दोपहर ढलने वाली थी। इक्का-दुक्का खालसे आगे बढ़ते और कई गाज़ियों को ढेरी करके उनके हाथों से तलवार गिरती।

इधर-उधर नज़र दौड़ा रहे ख्वाज़ा महमूद ने मुगल फौजियों की लाशों के चेहरे देखे, एक भयानक खौफ या पछतावा उन पर चित्रित होता। कइयों के हाथ जैसे कानों को छू रहे हों, कईयों के होठों पर जैसे फरियाद हो, आंखों में भय। और उधर गुरुसिक्खों के चेहरे शान्त, निश्चिंत होते जैसे कोई मंजिल पर पहुंच गया हो; जैसे कोई अपनी मनोकामना पूरी कर गया हो। हरेक के हाथ जुड़े होते। हरेक का मुंह गढ़ी की ओर फिरा होता, आंखें ममटी की ओर लगी होतीं और ख्वाजा महमूद को अचानक इस बात का एहसास

हुआ, जंग के मैदान में गुरु गोबिन्द के प्रशंसकों की लाशें जैसे गिनी-चुनी हों। इक्का-दुक्का कोई नजर आता था। चारों तरफ बस मुगल सिपाहियों की लाशों के अम्बार लगे नज़र आ रहे थे। ये लोग कहीं अपने घायलों को उठाकर गढ़ी में तो नहीं ले जा रहे थे ? उसने अपने नायब से पूछा। 'नहीं अलीजाह, इस मैदान में उतरा कोई बचकर नहीं निकल सकता।' 'तो फिर दुश्मन की लाशें कहाँ है ?' ख्वाजा महमूद गुस्से में भरकर बोला। हजूर वे कम हैं इसलिए कम मरते हैं, हम अधिक घायल होते हैं, अधिक जाने गंवाते हैं।

ख्वाजा महमूद को अपने नायब के जवाब पर हंसी भी आई, रोना भी आया।

कुछ समय से जंग के मैदान में एक पल के लिए खामोशी छाई हुई थी। न उधर से तीर बरस रहे थे न इधर से गोलियाँ चल रही थीं। ऐसे लगता तीन शूरवीरों की जो पिछली बार टुकड़ी जंग के मैदान में उतरी थी, वे ढेरी हो चुके थे। एक अजीब किस्म की रहम भरी खामोशी आस-पास छाई हुई प्रतीत हो रही थी। ख्वाजा महमूद की आंखों के सामने कोई अन्धेरा-सा जैसा उभर रहा हो। अन्धेरे की परतें दीवारों सी तनी खड़ीथीं और अंधेरे की इस भीड़ के पीछे जैसे उसका साथी नाहर खान धीरे-धीरे उसकी ओर कदम बढ़ा रहा था। 'आखिर क्यों यह जंग हम लड़ रहे हैं ? नाहर खान उससे पूछ रहा था।

"ख्वाजा महमूद से जवाब नहीं बन पा रहा था।"

"हमारा क्या बिगाड़ा है पीर-ए-हिन्दू ने ?"

"ख्वाजा महमूद चुप।"

"अल्ला की दरगाह में मुझसे पूछा जा रहा है, मैं क्या जवाब दूं ?"

ख्वाजा महमूद बगलें झांक रहा था।

मुझे पता था, हमारे पास कोई जवाब नहीं। इस तरह के लोगों का हश्र नरक का होता है और कुछ नहीं, मैं भी वहाँ जा रहा हूँ। और फिर हल्के-हल्के कदम जैसे ख्वाजा महमूद की ओर बढ़ा था, नाहर खान चार कदम दूर जाकर जैसे हवा में विलीन हो गया।

शायद वह सपना देख रहा था। ख्वाजा महमूद ने अपने आपसे कहा। कोई भयानक सपना और वह आंखें मलने लगा। पर अन्धेरे की परतें वैसे की वैसे उसके आगे-पीछे उभर रहीं थीं।

और अब इस अन्धेरे के बीच के पर्दे के पीछे से एक और मूर्ति उभर

रही थी। यह गनी खान था। हाँ, गनी खान ही था। धीरे-धीरे उसकी ओर बढ़ रहा था। कैसे हड्डियों का पिंजर रह गया है। इसका मांस कहाँ है, डौले कहाँ हैं ? इसका जरहबख्तर कहाँ है ?

'अस्सलाम-आलेकम !' गनी खान ने ख्वाजा महमूद के पास पहुंचकर उसे सलाम किया।

ख्वाजा महमूद 'वाअले कम' कहना चाह रहा था कि उसके मुंह से जैसे आवाज़ न निकल रही हो। उसके बोल गले में फंसकर रह गए थे।

मैं पूछता हूँ, उस वायदे का क्या हुआ जो हमने पीर-ए-हिन्दू से किया था ?

ख्वाजा महमूद चुप।

मुझसे अल्ला की दरगाह में पूछ हो रही है। हमने कुरान की कसम खाकर स्वीकार किया कि अगर गुरु गोबिन्द सिंह आनन्दपुर का किला खाली कर दे तो जहाँ भी वे चाहें जा सकेंगे, जहाँ भी वे चाहें रह सकेंगे। इस वचन का क्या हुआ ?

ख्वाजा महमूद बिट-बिट उसकी ओर देख रहा था। और जो वायदा आलमगीर ने किया था। नीचे अपनी मोहर लगाई थी ? मुझसे पूछा जा रहा था कि मैं क्या जवाब दूं ?

ख्वाजा महमूद को काटो तो जैसे लहू की बूंद न हो ! 'हमारे पास कोई जवाब नहीं,' 'हमारे पास कोई जवाब नहीं' बार-बार यह कहते हुए गनी खान लौट गया। कुछ देर तक उसकी पीठ दिखाई देती रही। फिर वह जैसे हवा में कहीं खो गया हो।

ख्वाजा महमूद अपने नायब की बाजुओं में ढेरी हो गया। उसे चक्कर आ गया। मूर्च्छित हुआ जहाँ खड़ा था वहीं उसे लिटा दिया गया। ढालों की उसके ऊपर छाया कर दी गई।

74

उधर चमकौर की गढ़ी में बाकी बचे गुरुसिक्ख कुछ देर से एक नई बैठक में बैठे, जैसे सलाह मशवरा कर रहे हों। कोई कुछ कहता, कोई कुछ, पर कुछ ही देर में वे लोग एक-दूसरे से सहमत हो गए। वक्त यूं ही गंवाने का नहीं था। और अब वे सभी हाथ जोड़े गुरु महाराज के सामने खड़े थे। गुरु महाराज की दांयी ओर साहिबज़ादा अजीत सिंह विराजमान थे और बांयी ओर साहिबज़ादा जुझार सिंह।

अजीब फरियाद लेकर दशमेश के अनुयायी उनके सामने आज हाज़िर थे :

"अमृतदाता ! सात टुकड़ियाँ दुश्मन् के साथ जूझ चुकी हैं। पहली टुकड़ियों में पांच-पांच शूरवीर युद्ध के मैदान में उतरते रहे, सांतवी टोली में केवल तीन थे, उन्होंने बाकी दो साथियों की प्रतीक्षा नहीं की। जो कोई भी गढ़ी से बाहर गया है, लौटकर नहीं आया। सौभाग्यशाली हैं वे, हजूर के चरणों में उनको निवास मिला है। उनका जन्म-मरण सफ़ल हो गया है।"

सच्चे पातशाह ! गुरुसिक्ख और जन्म लेंगे, और–और हजूर की शरण में आयेंगे। पर कलगीधर ने फिर नहीं आना। दशमेश जैसा गुरु इस संसार को फिर मिलना सम्भव नहीं, न ही बाबा अजीत सिंह और बाबा जुझार सिंह जैसे साहिबज़ादे फिर कभी जन्म लेंगे। इसलिए घट-घट की जानने वाले, कुछ पता नहीं छोटे दो साहिबज़ादे कहाँ हैं, उनके साथ क्या बीत रही है। उस काली अन्धेरी रात में जब सरसा दोमुंही नागिन की तरह डस रही थी, कुछ भी हो सकात था। इसलिए हमारा सविनय निवेदन है, दो जहान के मालिक, कि आप और दोनों साहिबज़ादे गढ़ी से चले जाओ। हम पीछे मुगलों से जैसे-तैसे निपट लेंगे, ताकि गुरु महाराज की वंश कायम रहे ताकि सिक्खी का बूटा फलता-फूलता रहे। आपके गुरुसिक्खों का यह फरियाद है, इसे आप यूं ही मत टालना। हजूर आप और आपके ये दोनों बेटे किसी तरह बच जाएं। यह हमारी प्रार्थना है। हमें निराश न करना। अनाथों के रक्षक बेआसरों के.......।"

अभी उनका प्रतिनिधि संगत में बोल ही रहा था कि गुरु महाराज ने उसे टोककर पूछा, "अगर ये मेरे दो बेटे हैं तो क्या आप मेरे बेटे नहीं ?"

यह सुनकर हर कोई खामोश हो गया। एक चुप्पी छा गई। जैसे रिम-झिम फुहार पड़ने लगी हो। चारों तरफ सुख-शान्ति की वर्षा होने लगी। हर किसी की आंखें जैसे खुल गईं। कितनी रोशनी थी आस पास।

और फिर यह चुप्पी तोड़ते हुए साहिबज़ादा अजीत सिंह, ऊमर 19 वर्ष गुरु महाराज की दायीं बगल से उठकर कलगीधर के सामने शीश झुकाए खड़े हो गए–"बेआसरों के आसरे, सच्चे पातशाह, अब दास को यह भान बख़्शा जाए कि आपकी सन्तान खालसा के दुश्मन के साथ लोहा ले।"

गुरु महारजा ने सुना और इससे पहले कोई कुछ कहता, उन्होंने 'बोले सो निहाल' का जयकारा गूंजा और फिर आप ही अपने मुखारबिन्द से 'सति

श्री अकाल' भी पुकार दिया।

हर कोई हक्का-बक्का दशमेश की ओर टुकर-टुकर देख रहा था और गुरु महाराज ने उठकर बाबा अजीत सिंह को जंग के लिए तैयार करना शुरू कर दिया। साहिबज़ादा अजीत सिंह का अपना घोड़ा था। उनको घोड़े पर सवार करके गुरु महाराज ने थपकी दी और जब वे गढ़ी के मुख्य द्वार से बाहर निकले, दशमेश ने द्वार अपने हाथों से बन्द कर लिया।

यह हो क्या रहा था ? किसी को कुछ समझ नहीं आ रही थी। हर कोई बदहवास-सा हुआ आगे-पीछे देख रहा था। खामोश ! उन्होंने सोचा क्या था और यह हो क्या गया था ?

गुरु महाराज ममटी की ओट में फिर अपने स्थान पर पहुंए गए थे और सामने अपने जिगर के टुकड़े को मुगल समुदाय से जूझता देख रहे थे।

किस शान से तलवार चला रहा है। वाह ! गुरु गोबिन्द सिंह के लाल, दुश्मन से ऐसे लोहा लिया जाता है। वाह ! ऐसे वार करते हैं ऐसे अगले को झुक्की देकर वार बचाया जाता है। इसे ढा दे। हाँ ऐसे ही, तोरई की तरह उसकी गर्दन शरीर पर लटक रही है, ले जाए उसका घोड़ा जहाँ उसे ले जाता है। अब इसे सम्भाल बड़ा पाटेखान बना फिरता है। ऐसे, ऐसे, ऐसे, आंते निकालकर रख दे इसकी। बड़ा आकड़खान था, एक नहीं और तीन बार सही, तीन बार तो उसके टुकड़े हो गए हैं। इस काले घोड़े वाले से बचना इसके हाथ में नेज़ा है। दाएं हाथ वाले को पहले ढेरी कर, वाह खूब वार किया है तुमने। हैं, तुम्हारी तलवार के दो टुकड़े हो गए ? दूसरी निकाल ले। वाह-वाह किस चतुराई से तुमने बाएं हाथ की तेग को निकालकर सफाया करना शुरू कर दिया है। यह गया ? वह गया ? वह भी गया ? अगला भी उल्टा हुआ। एक, दो, तीन, चार पांच दुश्मन तुमने पल-भर में नीचे गिरा दिए। वाह ! बाजां वाले के शेर सपूत ! वाह-वाह गुरु महाराज तेरे अंग-संग हैं। उसे काबू कर, ऐसे बेचारे की बाजू ही उतर गई है। और इसका गला क़ाटना, बेचारों को मरने में समय लगता है। पीड़ा अलग होती है। ले कैसे कुचला हुआ उसका सिर धरती पर पड़ा है। जैसे फुटबाल हो। तुम्हारी तलवार खून से लथ-पथ हो रही है। बढ़ते जाओ आगे ! दाएं-बाएं ललकार लगाए जा। वाह-वाह कुरबान जाएं तेरी जायी पर। वाह-वाह नीले घोड़े वाले के बहादुर सपूत ! अब तो तुम्हारे गिराए दुश्मनों की गिनती भी मुश्किल हो रही है। पांच वे, तीन पहले, चार पीछे से और अब एक, दो, तीन, चार, पांच, छः,

सात—हिसाब तक नहीं रखा जा सकता। काटता जा, तुम्हारी पीठ पर दो जहान के मालिक की थपकी है। हैं, यह तो ख्वाजा महमूद आगे बढ़ा है ! हाँ, गिरा दे इसे पहले हमले में। हाँ, ऐसे खूब वार किया है तुमने। ले यह तुम्हारी तलवार भी जवाब दे गई।

इस कमबख्त ने तो कवच पहना होगा। घोड़ा दौड़ाकर पीछे हट जा। ऐसे ! और यहाँ से तीर चलाने शुरू कर। एक के बाद एक तीर छोड़ते जाओ। तुम्हारे नज़दीक नहीं कोई आ सकेगा। ऐसे, वाह-वाह ! जिधर तुम्हारे तीर जाते हैं, अगले ढेरी होते जा रहे हैं। वाह-वाह ! तुम्हारे तीरों की मार किसी का कान कट रहा है, किसी की नाक उड़ रही है। किसी की दाईं बाजू किसी की बाईं बाजू। किसी की छाती में धंसा तीर उसे बींधकर रख रहा है। किसी की पसली में लगा तीर उसे निढाल कर रहा है। वाह-वाह-वाह। लो तुम्हारा तरकश खाली हो गया है। इसी का मुझे डर था। मुगलों को भी इस बात का एहसास हो गया है। वे तुम्हारी ओर बढ़ रहे हैं। एक ही बार सभी ओर से नेज़े लिए झपट रहे हैं। नेज़ों से वार ! एक, दो, तीन, चार, पांच। ऐसे निहत्थे शूरवीर पर वार करना कायरता है, बुज़दिली है।

आपको घोड़े से गिरा लिया है। अब तलवारों से वार कर रहे है। मुझसे नहीं और देखा जाता। दुष्ट ! इन पर अल्ला की मार पड़े। मेरी आंखें यह कुछ नही देख सकतीं।

पर ममटी की ओट में बैठे कलगीधर, ये सब कुछ देख देख रहे हैं। पिछले कुछ क्षणों से वे स्थिर खड़े होकर देखे जा रहे हैं और उनके मुखारबिन्द से बार-बार इन शब्दों का उच्चारण हो रहा है :

जब आव की अऊध निदान बनै,
अति ही रण मैं तबि जूझ मरो ॥

गुरु महाराज के साथ खड़े साहिबज़ादे जुझार सिंह ने पलकें बंद कर लीं। कुछ देर बाद जब उन्होंने पलकें खोली मुगल दरिन्दे साहिबज़ादा अजीत सिंह का अंग-अंग अपने नेज़े से बींधकर अपने साथियों को दिखा रहे थे। किसी के नेज़े की नोक पर उनका शीश था। किसी की नोक पर एक बाजू, किसी की नोक पर दूसरी बाजू। किसी के पास धड़ का एक हिस्सा और किसी के पास दूसरा हिस्सा था। कोई दाईं टांग को लिए फिरता था, कोई बाईं टांग को।

साहिबज़ादा जुझार सिंह यह देख रहे, गुरु पिता के सामने हाथ

जोड़कर खड़े हो गए। अब उनकी बारी थी।

यह कैसे हो सकता है ? गुरुसिक्ख तड़प उठे।

ऐसे ही होगा। दशमेश ने एक शूरवीर के हौंसले से फरमाया, एक साहिबज़ादे की शहीदी से हमारा उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। जुल्म की जड़ का नाश करने के लिए और कुर्बानियाँ देनी होंगी।

यह कहते हुए कलगीधर ने साहिबज़ादा जुझार सिंह को अपने हाथों से तैयार करना शुरू कर दिया।

75

तेरह वर्षों के कच्चे कल्ले से साहिबज़ादा जुझार सिंह जब अपने घोड़े पर सवार हुए ऐसे लगा जैसे कोई साहिबज़ादा चौगान की बाज़ी के लिए खेल के मैदान में उतर रहा हो। एक तलवार दाएं, एक तलवार बाएं। कन्धे पर कमान, पीछे पीठ पर तीरों से भरा तरकश ! शीश और दस्तार के गिर्द चम-चम करता खण्डा।

गुरु महाराज ने एक नज़र साहिबज़ादे को देखा और उनके नेत्र एक पल के लिए मुंद गए और फिर उन्होंने जैसे अकाल पुरुष आगे प्रार्थना की:

प्रथम उपावहू जगत तुम, तुमही पंथ बनाइ।
आप तुही झगरा करो, तुमही करो सहाइ ॥

इतने में भाई दया सिंह पानी का एक कटोरा लिए बाबा जुझार सिंह के पीने के लिए लाए। कुछ समय पहले उन्हें पानी के लिए कहते, उन्होंने सुना था। पानी का कटोरा जब उन्हें देने के लिए भाई दया सिंह ने हाथ आगे बढ़ाया, साहिबज़ादा अपने घोड़े को एड़ी लगाकर गढ़ी के मुख्य द्वार से यह कहते हुए बाहर निकल गये। अब पानी मैं अपने भाई अजीत के हाथों से जाकर पीऊंगा।

साहिबज़ादे के ये बोल सुनकर गढ़ी की डियोढ़ी में जैसे बिजली कौंध गई हो। आस-पास खड़े गुरुसिक्खों में चकाचौंध छा गई।

और फिर धर्म सिंह ने अचानक जयकारा गुंजाया 'बोले सो निहाल'

और गुरु महाराज सहित हर किसी ने हुंगारा भरा–'सत श्री अकाल !'

'बोले सो निहाल, सत श्री अकाल' के जयकारे, एक के बाद एक, कितनी देर गूंजते रहे।

इतने में गुरु महाराज सीढ़ियाँ चढ़कर ममटी की ओट में अपने स्थान पर पहुंच गए थे। साहिबज़ादा जुझार सिंह एक के बाद एक तीर छोड़ते

कदम-कदम दुश्मन की ओर बढ़ रहे थे। गुरु महाराज के छोटे साहिबज़ादे को मैदान में उतरा देख, सूबेदार वज़ीर खान, सूबेदार जबरदस्त खान, अजमेरचन्द आदि दुश्मन फ़ौज के फ़ौजदार खुद आगे बढ़े ताकि अपने हाथों में उसकी अनख मिटाएं। यह देख गुरु महाराज ने हरेक सिपहसालार के लिए तीर बांटने शुरू कर दिए। हरेक तीर के साथ कोई-न-कोई संदेशा कागज की पुड़िया में बंधा होता। पहला तीर कलगीधर ने जो छोड़ा वह हिदायत खान की पेटी में जा लगा। उसमें गुरु महाराज ने लिखा था–"खुदा की कसम खाकर उस पर कायम न रहना, न तुम्हारा साथ दीन देगा और न दुनिया।" दूसरा तीर वज़ीर खान के घोड़े को जा कर लगा। इस तीर में दशमेश ने लिखा था–"कसम को तोड़ने वाला नरक की आग में जलता है। बेईमान को नरक भोगना पड़ता है।" तीसरा तीर लाहौर के सूबेदार जबरदस्त खान की पगड़ी में जा लगा। इसमें कलगीधर ने कहा था–"कुरान की कसम तोड़ने वाला नरक का भागी होता है। वह समय निकट आ रहा है। जब तेरे पंजाब में गुरुसिक्खों का बोल-बाला होगा।" चौथा तीर अजमेरचन्द के लिए था, जो उसकी टांग में जा लगा। इसें गुरु महाराज ने उसे प्रताड़ित किया था, "तुम्हारी किस्मत में भटकना लिखा है, तुमने यह जहान भी गंवा दिया है, अगला भी।"

इतने में मुगल फ़ौज ने कच्ची कली जैसे साहिबज़ादे को चारों ओर से घेर लिया था। जैसे कोई बवंडर उठता है। इस तरह का कुछ हुआ। तेग पर तेग खड़की। अल्ला हू अकबर, और 'सत श्री अकाल' के नारे सुनाई दिए। 'अल्ला हू अकबर' कहने वालो का और फिर 'सति श्री अकाल' की अकेली कोमल कुंवारी आवाज़ इस भयानक क्रंदन में खो गई।

उस अनजान बेलौस, लयबद्ध आवाज़ का जन्मदाता अपने कानों से यसह सब कुछ सुन रहा था। अपनी आंखों से यह सब कुछ देख रहा था।

और उसके आगे-पीछे उसके मुरीद थे। सिंह ! फटी-फटी आंखें ! पलकें जैसे पथरा गईं हो ! सांस–सतहीन ! एक-एक करके सारी काय़नात जैसे वे लुटा चुके हों, उनके आस-पास अन्धरे की दीवारें बनती प्रतीत हो रही थीं।

उधर सचमुच रात हो गई थी। एक दम अन्धेरा जैसे धरती पर उतर आया हो। घोर काले बादल किसी दैवी लशकर की तरह आकाश पर छा गए हों।

कल सुबह मैं स्वयं मैदान में उतरुंगा। जो शूरवीर मेरा साथ देना चाहे,

वे पौ प्ट्टने तक तैयार रहें। गुरु महाराज ने आदेश दिया और उन्होंने आंखें मूंद ली। अन्तर्ध्यान हो गए। कोई कुछ नहीं कह सकता था। कोई होंठ नहीं खोल सकता था। और फिर गुरु महाराज के सामने खड़े गुरुसिक्खों को अचानक अहसास हुआ, वे तो पांच थे। पांच तो पंथ होता है। पांचों में तो स्वयं परमेश्वर होता है।

और फिर वे नई जगह सिर जोड़कर बैठ गए। कुछ समय के मशवरे के बाद भाई दया सिंह की अगुवाई में उन्होंने फैसला किया कि वे पांच प्यारों की हैसियत से गुरु महाराज को आदेश देंगे। कुछ साथियों के साथ गढ़ी छोड़कर निकल जाएं। अगर गुरु महाराज होंगे तो गुरुसिक्खी होगी। अगर गुरु महाराज ही न रहे तो गुरु पंथ कैसे बचेगा, कैसे पनपेगा ? भाई दया सिंह बोला, गुरु महाराज को हमारा आदेश मानना होगा। कल उन्होंने पांच प्यारों से अमृत पान किया था। गुरु गोबिन्द सिंह स्वयं गुरु-चेला हैं। भाई धर्म सिंह और बाकी गुरुसिक्ख भाई दया सिंह से पूरी तरह सहमत थे।

पांच प्यारों का फैसला, और समय नहीं गंवाया जा सकता था। समय गंवाने के लिए था ही नहीं और पांच प्यारे वैसे के वैसे उठकर गुरु महाराज के यहाँ हाज़िर हो गए। रात गहरी हो गई थी।

ऐसे पांच प्यारों का हुकुमनामा गुरु महाराज ने अपना शीश झुका दिया। उनके साथी शूरवीरों ने पांच प्यारों की सरदारी को स्वीकार करते हुए उसी क्षण गढ़ी छोड़ने की तैयारी कर ली।

फैसला यह हुआ कि भाई दया सिंह, भाई धर्म सिंह और मान सिंह गुरु महाराज के साथ तुरन्त गढ़ी खाली करके निकल जायेंगे। पीछे भाई संत सिंह और भाई संगत सिंह रहेंगे।

गढ़ी से निकलने से पहले गुरु महाराज ने अपनी कलगी उतार कर भाई संत सिंह के शीश पर टिका दी और उनको अपने स्थान पर बिठा दिया। ऐसे दुश्मन को यह भ्रम लगा रहेगा कि गुरु गोबिन्द सिंह अभी गढ़ी में जमे हुए थे और इतने में गुरु महाराज और उनके साथी रात के अन्धेरे में फ़ौज की सोई पड़ी कबरों में से निकल जायेंगे।

पर एक महान शूरवीर की मुख्य प्रवृत्ति-गढ़ी से बाहर निकलकर दशमेश सामने के एक ऊंचे टीले पर चढ़ गए और उन्होंने ऊंची आवाज़ में पुकारा : पीर-ए-हिन्दू मी खद !' (हिन्दुओं का गुरु जा रहा है) अपने-अपने तम्बुओं में सोई पड़ी मुगल सेना ने जब सुना तो रात के घुप्प अन्धेरे में

आगे-पीछे दौड़ने लगे ताकि गुरु महाराज और उनके साथियों को काबू कर सकें। एक टुकड़ी के सामने कोई मशालची था। गुरु महाराज ने निशाना साधकर ऐसे तीर छोड़ा की मशालची की मसाल उसके हाथों से छुटकर नीचे गिरी और फिर बुझ गई।

अब मुगल फ़ौज में कुछ इस तरह की हफड़ा-तफड़ी मची कि बाकी बची रात में वे आपस में एक दूसरे को काटते-फाड़ते रहे।

जब पौ फटी तो वे क्या देखते हैं, गढ़ी की ममटी की ओट में तो कलगीवाला वैसे का वैसे विराजमान है। यह देखकर वे एक दूसरे के मुंह की ओर देखने लगे। यूं ही बहाए लहू से शर्मिंदा, पछतावे से हाथ मलने लगे।

गुरु महाराज के गढ़ी छोड़कर जाने के बाद भाई संगत सिंह ने दशमेश की पीछे रह गई एक पौशाक भी भाई संता सिंह को पहना दी थी। अगले दिन वज़ीर खान की अगुवाई में मुगल सेना ने गढ़ी पर एक ही बार हमला करके अफड़ा-तफड़ी मचा दी।

गढ़ी और गढ़ी में जो कोई भी थे उन्हें नेस्तोनाबूद कर दिया गया।

कुछ दिनों तक मुगल और उनके पिट्ठू पहाड़ी राजा यही समझते रहे कि गुरु गोबिन्द सिंह को खत्म कर दिया गया हैं यह सोचकर खुशियों पर खुशियाँ मनाते रहे। मुगलों के जश्न खत्म होते और पहाड़ी राजाओं के शुरु हो जाते। कोई उनमें गुरु महाराज की कलगी को लिए फिरता था, कोई उनकी पौशाक की एक चिंदी को कोई, लिए फिरता था, वे समझते उन्होंने पीर-ए-हिन्दू की अलख मिटा दी है।

76

चमकौर की गढ़ी से निकलने से पहले दशमेश और उनके तीन साथियों ने मुगल सिपाहियों की उतारी वर्दियाँ पहन ली थी। आगे-पीछे जहाँ भी उन्हें रोशनी नजर आती, वे तीरों के निशाने से बुझा देते। और ऐसे अन्धेरी रात के पर्दे में दुश्मन के घेरे में से निकल आए थे।

यह फैसला भी हुआ कि गुरु महाराज और उनके तीन साथी अलग-अलग राह पकड़ेंगे ताकि दुश्मन को उनकी पहचान न हो सके। उन्हें माछीवाड़े के बाहर एक बगीचे में पहुंचना था। इस बगीचे में वे पहले भी एक बार रुके थे। माछीवाड़े पहुंचकर वे फैसला करेंगे कि उनका अगला कदम क्या होगा। गुरु महाराज की चिंता सरसा नदी के उस पार पहुंच कर बिछड़े गुरुसिक्खों और गुरु परिवार की थी, खास तौर पर माता गुजरी जी और दो छोटे साहिबज़ादे जो गंगू रसोइये के साथ उसके गांव सहेरी गए थे।

नीले घोड़े का सवार जिसके लिए गुरुसिक्ख काबुल और कंधार, ईरान और बगदाद, बलख और बुखारे से बढ़िया से बढ़िया नस्ल के घोड़े भेजते थे, आज की रात पैदल चल रहा था। बिना किसी साजो-सामान के। जान-बूझकर अपने तीन साथियों को उन्होंने छोड़ दिया था। उनके तन पर शस्त्र थे जो गुरु हरगोबिन्द सिंह और गुरु तेगबहादुर की निशानी, उनके पास रह गए थे। ये शस्त्र उनको जान से भी अधिक प्यारे थे।

इस खतरे से बचने के लिए कि आम सड़क पर मुगल फ़ौज की आती-जाती किसी टुकड़ी से टक्कर हो सकती थी, कलगीधर उजाड़ रास्ते पर चल रहे थे। झाड़ियों में से निकलते झंकाड़ों में से घिसड़ते, कटीली के कांटे, कीकरों के कांटे, कदम-कदम पर उन्हें परेशान कर रहे थे। गुरु महाराज के वस्त्र फट चले थे। सांपों और बिच्छुओं का डर, जंगली जानवरों का नया खतरा। कहीं कोई खड्डा, कहीं कोई टीला। पीछे हुई बरसातों की दलदल, चिकनी मिट्टी का कीचड़। उनके चरण कदम-कदम पर दलदल में धंस-धंस जाते।

फिर एक जगह चिकनी मिट्टी की पकड़ कुछ इस तरह की थी कि उनके जूते बीच में ही धंस कर रह गए। वैसे भी इस तरह दलदल बनी धरती पर जूते पहनकर चलना मुश्किल हो रहा था। गुरु महाराज ने वैसे का वैसा जूतों को धंसा रहने दिया और अपनी राह चल पड़े।

कोई दो कोस का फासला तय कर चुके थे कि रहमपुर नाम के गांव के बाहर की तरफ गुरु महाराज की टक्कर गांव के दो गूजरों से हो गई। वे वहाँ जानवरों को रात भर ढूंढ-ढूंढ कर परेशान हो रहे थे। पिछली शाम भैंसों का झुंड जब गांव लौटा, दो भैंसे कम थीं। पता नहीं कहाँ चली गई थीं, जैसे धरती ने उन्हें निगल लिया हो।

बेशक अन्धेरा था, बेशक गुरु महाराज नंगे चरण थे, बेशक उनकी पौशाक और की और थी; बुरे हाल, उनके वस्त्र फटे हुए थे, मुगलाई सलवार कट-फट रही थी, पर उनके मुखड़े का जलाल तो वैसे का वैसे था। उनके नयनों का नूर, उनके माथे की आभा को तो छिपाया नहीं जा सकता था। वे लाख भेष बदलें, कलगीधर कैसे छिपे रह सकते थे ? उनके जैसा शूरवीर और कौन था ? उनकी चर्चा तो आस-पास घर-घर में थी। हर जुबान पर थी। गूज्जर गांव वालों ने गुरु महाराज को एकनज़र देखा और पहचान लिया। कुछ डर से,कुछ इस्लामी जोश में उन्होंने शोर मचा दिया। 'पीर-ए-हिन्द,

पीर-ए-हिन्दू' दशमेशने पहले उनसे बहाना बनाने की कोशिश की उन्हें गलतफहमी हो रही थी। पीर-ए-हिन्दू तो चमकौर की मुगल सेना से लड़ाई में मारा गया था, पर वे बाज नहीं आए, शोर मचाए जा रहे थे। बेशक़ रात गहरी थी, पर खतरा बना हुआ था कि अगर गांव वालों को पता चल गया तो मुश्किल हो जाएगी। गुरु महाराज ने उन्हें अपनी जेब से मुट्ठी भर अशर्फियाँ निकालकर दीं। पर वे फिर भी बदतमीजी से बाज़ नहीं आ रहे थे। एक ही सांस में 'पीर-ए-हिन्दू, पीर-ए-हिन्दू' पुकारे जा रहे थे। यह देख गुरु महाराज ने अपनी शमशीर म्यान में से निकाली और उन्हें खामोश कर दिया।

गुरु महाराज अब जल्दी-जल्दी माछीवाड़े की ओर जा रहे थे। जाड़े की कड़कड़ाती ठण्ड। बर्फानी हवाएं। नंगे चरण। भूखे-प्यासे। दो जहान के मालिक को जब प्यास लगी तो मजबूर होकर उन्होंने आक के डंठल का रस चूसकर अपनी प्यास मिटाई।

चार दिन हो गए थे उन्हें सोए बिना। उनके जिगर के दो टुकड़े उनकी नज़रों के सामने दुश्मन से जूझते मौत का जाम पी चुके थे। बाकी दो साहिबज़ादों का कुछ पता नहीं था। माता गूजरी जी इस वृद्धावस्था में पता नहीं कैसी-कैसी मुसीबतें भुगत रही थीं। माता सुन्दरी और माता साहिब देवां दो जाटनियों का भेष बना कर पता नहीं कहाँ-कहाँ भटक रहीं होंगी, रात अन्धेरी थी, ठण्डी थी। हवा तेज़ थी, काट-काट खाती थी।

दया, धर्म और मान तीन साथी जो जान बूझकर उनसे अलग कर दिए थे, पता नहीं माछीबाड़े पहुंच सकेंगे, नहीं पहुंच सकेंगे। जैसे दशमेश स्वयं गूजरों के काबू आ गए थे, हो सकता है, वे भी किसी दुश्मन की नज़र पड़ गए हों।

वे जिनको आता देख लोग राहों में आंखें बिछा उनके लिए तरसते थे, हाथ जोड़े घंटों तक उनकी प्रतीक्षा करते थे। वे जिनके दर्शन से अगलों का जन्म-मरण सफल हो जाता था, वे जिनके चरण-स्पर्ष से मन की मुरादें पूरी होती थी। शरणहीनों के शरणदाता, बेआसरों के आसरा, आज खुद बेसरो-समान जैसे भटक रहे हों। अमृत का दाता, जिसके बाटे का एक घूंट ओर असंख्य नीच ऊंचे से ऊंचे, और ऊंचे हो गए थे, आज स्वयं जैसे मिट्टी के साथ मिट्टी हो रहा था। पैरों पर छाले, पिंडलियाँ और बाहें क़ांटों से भरी हुई। कन्धे चल-चलकर थके हुए। आंखों में नींद। शक्ति जवाब दे रही।

माछीवाड़े तक पहुंचने में रात बीत गई थी और दशमेश की हिम्मत भी जैसे पूरी तरह से हार गई हो, शहर से बाहर जिस चरस वाले कुंए के बगीचे में उनका अपने साथियों से मिलना तय हुआ था। गुरु जी जब पहुंचे वे निढाल होकर नंगी धरती पर लेट गए। अपने सिरहाने के लिए उन्होंने खींचे जाते कुंए की एक मन उतारकर रख ली थी। धरती पर लेटते ही उन्हें नींद ने आकर सम्भाल लिया।

सुबह की पौ फूट रही थी। उधर दया सिंह, धर्म सिंह और मान सिंह को ऐसे लगता जैसे वे रास्ता भूल गए हों। रास्ता खत्म होने में ही नहीं आ रहा था। एक भूख, एक थकन, एक बिछोड़ा साथियों से, गुरु महाराज से। कल जो तख़्तों के मालिक थे, आज दर-दर की ठोकरें खा रहे थे। अगर वे सचमुच रास्ता भूल गए थे, तो यह सारा रास्ता तय करना जो उन्होंने मर-मरकर तय किया था, बेकार हो जाएगा। परेशान हो वे एक टिब्बे पर चढ़कर तड़के की लौ में माछीवाड़े के रास्ते का अन्दाजा कर रहे थे कि भाई दया सिंह की आकाश पर नजर पड़ी। गुरु महाराज का बाज़ उनके सिर पर मंडरा रहा था।

दशमेश के बाज़ की एक झलक और उनके सेवकों की जैसे जान में जान आ गई, खुशी में उनकी रग-रग में लहू दौड़ने लगा। अब बाज़ उन्हें जैसे रास्ता बता रहा हो। सचमुच वे गलत राह पर पड़ गए थे। ऐसे तो वे और कितने ही दिन भटकते रहते।

कलगीधर का बाज़ उनके सिर पर जैसे मंडरा रहा हो। जल्दी-जल्दी चलते, धूप निकल आई थी पर माछीवाड़ा कहीं भी नहीं था।

उधर शहंशाह दरवेश गुरु गोविन्द सिंह, नीचे लुढ़के पड़े, कुंए की मन का सिरहाना, गहरे सोए हुए थे। दोनों चरणों पर पड़े हुए छाले, उनकी टांगों, बाजुओं पर चुभे कांटे, साफ दिखाई दे रहे थे, उनके कपड़ों का क्या हाल हो रहा था ? उनके जूते कहाँ थे ?

दोपहर की किरणें जब उनके मुखड़े पर पड़ रही थीं, कलगीधर की आंख खुल गई।

माछीवाड़े का यह बगीचा जो कभी हरा-भरा होता था, वीरान पड़ा था। सूखा हुआ कुआं, रुंड-मुंड पेड़, तहस-नहस हुई बाड़, जहाँ कभी फूलों की क्यारियाँ होती थीं, वहाँ धतूरा और आक, कांटों वाली झाड़ी उगी हुई थीं। आस-पास सूखे कीकर और हरी डंडी वाली थोहर दिखाई देती थी। कितनी

उबड़-खाबड़ वह जमीन थी। जिस पर गुरु महाराज बहुत देर तक सोए रहे थे।

अकेले ! भूखे-प्यासे, फटे वस्त्रों में ! न कोई साथ ! न कोई सहारा ! उठकर बैठे, उनके पट्ठे चलूं-चलाऊं कर रहे थे। अंग-अंग दुखा हुआ था। पैरों के छाले फूल गए थे, उन्हें समझ नही आ रही थी, अब वे चल कैसे सकेंगे।

अगर चलेंगे नहीं तो वहाँ उस वीराने में कैसे पड़े रहेंगे ? और तो और वहाँ तो पानी की एक बूंद तक नहीं थी। यह सब कुछ देखकर, यह सब कुछ सोचकर, गुरु महाराज ने गहरी सांस ली। उनका अंग-अंग अलसाया हुआ, उनकी नज़रें जैसे दूर, बहुत दूर सीमा पर जा लगीं और उनके होठों में से ये बोल फूट उठे :

मित्र पिआरे नू हाल मुरीदां दा कहना।
तुध बिन रोगु रजाइयाँ दा उडणु नाग निवासां दा रहणा।
सूल सुराही खंजर पियाला बिंग कसाइयाँ दा सहणा
यारड़े दा सानू सथ्थरू, चंगा भठि खेड़ियाँ दा रहणा।

गुरु महाराज के पवित्र होठों से ये बोल बोले जा रहे थे कि उनके तीनों गुरुसिक्ख आन पहुंचे। पिछली ओर कुछ दूरी पर हाथ जोड़े उनके मनोभाव को सुन रहे थे। उनकी पलकों में झर-झर करते आंसू झलक रहे थे।

इतने में एक फड़फड़ाहट हुई और दशमेश का बाज़ जैसे एक डुबकी मारकर गुरु महाराज के कन्धे पर आकर बैठ गया और अब पंख फड़फड़ाता जैसे उन्हें दुलार रहा हो। कभी अपनी चोंच कहीं छूता, कभी कहीं। अपने मालिक को चूम-चूमकर दीवाना हो रहा था।

फिर गुरु महाराज ने उसे अपने हाथ पर बिठा लिया। इतने में भाई दया सिंह, भाई धर्म सिंह और भाई मान सिंह गुरु महाराज के पास हाज़िर होकर उस धरती को चूम रहे थे जहाँ उनका बाजां वाला विराजमान था।

77

सूरा सो पहिचानीऐ जो लड़ै दीन कै हेत,
पुरजा-पुरजा कटि मरै कबहू न छाड़ै खेतु।

पिछले कुछ समय से गुरु महाराज इस तुक को बार-बार गुनगुना रहे थे। उधर उनके गुरुसिक्खों की जान को बनी हुई थी। चरणों के फूले हुए छाले, जगह-जगह पर कांटों की चुभन से घायल हुए शरीर पर खुरंड, उनके

लिए एक कदम भी चलना मुमकिन नहीं था और ऐसे शहर के बाहर-बाहर एक उजाड़ बगीचे में वे और कब तक पड़े रह सकते थे ? मुगल फ़ौज जरूर उनका पीछा कर रही होगी। उधर माता गुजरी जी की भी सुध लेनी थी। दो छोटे साहिबज़ादे उनके साथ थे। खालसा पंथ का वही तो अब सहारा थे।

गुरु महाराज अपने गुरुसिक्खों के जोड़-तोड़ को जानते थे। साये ढल रहे थे। कब तक और वे अन्न पानी के बिना वैसे गुजारा कर सकते थे ? आखिर दशमेश ने उनको भाई गुलाबे के बारे में बताया। भाई गुलाबा किसी समय मसंद होता था। वह और उसका भाई पंजाबा माछीवाड़े में रहते थे। उसे खबर दी जा सकती थी। भाई गुलाबे को सूचना मिली और वह दौड़ता हुआ आया। गुरु महाराज को अपने गृह में चरण डालने के लिए ज़िद कर रहा था। पर मुश्किल तो यह थी कि गुरु महाराज एक कदम चल नहीं सकते थे। गुलाबा कहता, 'मैं डोली ले आता हूँ।' ऐसे तो सभी गांव ढिंडोरा पिट जायेगा और जिन हालातों में गुरु महाराज थे, ऐसे करना ठीक नहीं होगा।

इतने में गुलाबा मसंद ने अपने भाई पंजाबा के साथ मिलकर बगीचे में ही गुरु महाराज और उनके तीन साथियों के खाने का प्रबन्ध किया।

सांझ पड़ गई। अन्धेरा हो गया और यह फैसला हुआ कि भाई मान सिंह गुरु महाराज को अपने कन्धों पर उठाकर भाई गुलाबा के चौबारे तक पहुंचा देंगे।

भाई गुलाबा के चौबारे में दशमेश और उनके तीन साथियों ने आज कितने दिनों के बाद जैसे सुख की सांस ली। गहरी नींद सोए।

अग़ली सुबह गुरु महाराज ने स्नान करना था। आज तीसरा दिन होने लगा था उन्हें अपने शरीर पर पानी डाले हुए। झाड़ियों में से गुजरते कांटों की चुभन से लहू-लुहान हुए उनके पट्ठे, गुरु महाराज के कच्छहरे का कुछ हिस्सा उनके शरीर की चमड़ी से चिपक गया था। इसे अब कैसे उतारा जाए ? खींचकर अलग करने से एक तो दर्द होना था, दूसरा जख्म फिर से छिल जाने का खतरा था।

एक ही तरीका था कि गर्म पानी बूंद-बूंद, उनके घावों पर गिराया जाए। जहाँ-जहाँ कच्छहरा चिपका हुआ था और धीरे-धीरे कच्छहरे को खींचकर अलग किया जाए। यह काम तो गुलाबा ही कर सकता था। पर गुरु महाराज के नंगे होने का सोचकर गुलाबा इसे टाले जा रहा था। उसे

बहुत शर्म आ रही थी। जब इस बारे में वह सोचता वह पसीना-पसीना हो जाता।

गुरु महाराज के लिए आप ही गर्म पानी डालना अेर आप ही कच्छहरे को खींचना मुमकिन नहीं था। बाकी गुरुसिक्ख अपने-अपने नितनेम में जुड़े हुए थे।

यह तीसरी बार था जब दशमेश ने गुलाबा को आवाज़ देकर बुलाया। गुलाबा, बिल्कुल मुर्झाया चेहरा, आंखे झुकाए, हाथ जोड़े सामने खड़ा था।

भई, एक हाथ में लोटा लेकर तुम पानी डालो और दूसरे हाथ से कच्छहरे को उतारते जाओ, इसमें मुश्किल क्या है ? अब गुरु महाराज ने गुलाबा की झिझक को देखकर कहा।

"सच्चे पातशाह..............." और बाकी बात गुलाबा के गले में ही रह गई।

"अगर तुम्हें डर लगता है तो तुम गर्म पानी डालते जाओ, कच्छहरा धीरे-धीरे खींचकर मैं खुद अलग कर लूंगा।"

"हजूर........." गुलाबा फिर अपनी बात नहीं कह सका। जो कुछ उसने कहना था जैसे उसके गले में अड़ गया हो।

गुरु महाराज गुलाबे की मजबूरी को जानते थे, मुस्कराते हुए उन्होंने उसे समझाया, गुरु और सिक्ख में बाप-बेटे वाला रिश्ता होता है। तुम्हें मेरे नंगे होने से कोई संकोच नहीं होना चाहिए।

गुलाबा ने सुना और दशमेश के चरणों में गिर पड़ा। गद्-गद् हुआ, उसने अपने हाथों से कलगीधर की पीठ मलकर उन्हें स्नान करवाया।

स्नान हो गया तो गुरु महाराज के भोजन की चिंता की जाने लगी। जब उनसे पूछा गया तो दशमेश ने कहा, बकरा झटकाया जाए।

गुरु महाराज ने हील की न दलील की, गुलाबे के बाड़े में से एक बकरे को पकड़कर बाहर निकाला और एक ही पल में उसे झटका दिया।

गांव में शोर मच गया कि गुलाबे के घर मेहमानों के लिए बकरा झटकाया गया है, हलाल नहीं किया गया।

गुलाबा और उसका भाई पंजाबा दोनों थर-थर कांप रहे थे। मुसलमान पड़ौसी तो गांव में उनका जीना मुश्किल कर देंगे। क्योंकि गुरु महाराज ने हलाल खाने से मना किया हुआ था, वे लोग वैष्णव हो गए थे।

बेशक गांव में बहुत तकरार मची, पर इसका एक लाभ भी हुआ। माछीवाड़ा गांव में ही नबी खान और गनी खान गुरु महाराज के दो मुसलमान

प्रशंसक रहते थे। जब उन्हें इस बात की सूचना मिली कि गुरु महाराज इनके गांव गुलाबे के घर आए हुए हैं, वे भागे-भागे दशमेश के दर्शन करने आए। नबी खान और गनी खान घोड़ों के व्यापारी थे और कितनी ही बार वे गुरु महाराज को अपने घोड़े बेच चुके थे। हर बार उनकी भेंट गुरु महाराज से होती, वे उनके और अधिक प्रशंसक हो जाते। उनकी शख़्सीयत से प्रभावित, वे उठते-बैठते कलगीधर के गुण गाते रहते।

यह देखकर गुलाबा हिन्दू होने के कारण डर रहा था, उसने मुगल हकूमत के एक बागी को पनाह दी थी, नबी खान और गनी खान गुरु महाराज को अपने घर ले जाने के लिए जिद्द करने लगे। वे कहते आप हमारे यहाँ आकर रहो। किसी ऐरे-गैरे की मां ने पूत नहीं जन्मा जो आपकी ओर आंख उठाकर देखे।

सचमुच उनके कहने में वज़न था। एक मुसलमान के घर गुरु महाराज का छिपा होना, कोई सोच भी नहीं सकता था। ऐसे अगर मुगल फ़ौजी उन्हें ढूंढते हुए गांव में आ भी जाये तो भी बचाव हो सकता था।

इतने में गुलाबा और पंजाबा की बहन हरदेयी गुरु महाराज के आगमन का सुनकर उनके दर्शनों को आईं। अपने हाथ से काते खद्दर के दो कुर्ते उसने गुरु महाराज को भेंट किए। बार-बार यही कह रही थी, धन्य हमारे भाग्य हैं कि गुरु महाराज ने हमारे यहाँ चरण डाले हैं। हमारा तो जन्म सफल हो गया।

पर गुलाबा और पंजाबा जिनको अब यह खबर किसी ने ला कर दी थी कि मुगल फ़ौज गुरु महाराज का पीछा कर रही है, परेशान थे।

यह सुनकर नबी खान और गनी खान बांह देकर गुरु महाराज और उनके साथियों को अपनी हवेली में ले गए। बार-बार कहते, पहले हमें कोई मारेगा, फिर हमारे मेहमान को हाथ लगायेगा।

नबी खान और गनी खान के पांव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। खुश बहुत कि उन्हें कलगीधर का मेज़बान होने का मान हासिल था।

नबी खान, गनी खान की हवेली में निश्चिन्त गुरु महाराज ने कागज कलम मंगवा कर औरंगजेब के नाम फारसी में एक चिट्ठी लिखी। वे जानते थे कि सरहिन्द और लाहौर के सूबेदार शहंशाह को ज़रूर सच्ची-झूठी रपट देंगे, इसलिए जरूरी था कि आलमगीर को असलियत से परिचित करवाया जाए। अपनी चिट्ठी में गुरु महाराज ने मोटी-मोटी इन बातों का ज़िक्र किया:

1. जिस ईश्वर ने तुम्हें तख़्त पर बिठाया उसने मुझे धर्म की रक्षा की जिम्मेवारी बख़्शी है।
2. तुम्हें तख़्त पर बैठना बिल्कुल नहीं शोभा देता क्योंकि जो तख़्त पर बैठता है, वह तुम्हारी तरह कभी दम्भ नहीं करता।
3. मैं तुम्हें सुख की सांस नहीं लेने दूंगा, न ही पंजाब का पानी पीने दूंगा।
4. क्या हुआ अगर एक गीदड़ ने धोखे से शेर के दो बच्चों को मार लिया है। पर यह न भूल कि घायल शेर अभी ज़िन्दा है।
5. मुझे तुम्हारी कस्मों पर बिल्कुल भरोसा नहीं। तेरे खिलाफ़ तलवार उठाने के इलावा अब मरे लिए कोई और चारा नहीं रहा।
6. अगर कभी मुलाकात हुई, मैं तुम्हें सच और न्याय के रास्ते की दिशा बताऊंगा।
7. हमारी फ़ौजों को एक दूसरे से दूर रहने दिया जाए। मैं मैदान-ए-जंग में अकेला आऊंगा। तुम बेशक अपने साथ दो घुड़-सवार लेकर आ जाना। हमें आपस में निर्णय करना चाहिए। फ़ौजों को बेकार मरवाने से क्या लाभ ?

चिट्ठी लिखकर गुरु महाराज ने अपने फारसी के उस्ताद इनायत अली को बुलावा भेजा। माछीवाड़े से कोई दो मील की दूरी पर उनका गांव था। वे चाहते थे, फारसी शेरों में लिखा, औरंगजेब के नाम अपनी शाही चिट्ठी, एक नज़र अपने उस्ताद को दिखा लें। सैय्यद इनायत अली ने गुरु महाराज को बचपन में फारसी पढ़ाई थी।

कहाँ गुरु तेग बहादुर का साहिबज़ादा जिसे फारसी की विद्या देने के लिए उसे तैनात किया गया था, और कहाँ यह दरवेश जो सच की न्याय की तलाश में जैसे भटक रहा हो, सैय्यद इनायत अली ने दशमेश को एक नज़र देखा और उसकी आंखें सजल हो गईं।

78

जित न भयो हमरो आवन कह।
चुभी रही सुति प्रभु चरनन महि।

गुरु महाराज को अपनी रचना के ये बोल आज फिर याद आ रहे थे। आज दूसरा दिन था। नबी खान और गनी खान की हवेली में दोनों भाई गुरु

महाराज के पांवों के नीचे जैसे हथेलियाँ रख रहे हों। इतनी खातिरें गुरु महाराज की। गुरु महाराज के साथी गुरुसिक्ख देख-देख कर हैरान होते।

गुरु महाराज का इरादा था कि औरंगजेब के नाम जो चिट्ठी उन्होंने लिखी थी, उसे भाई दया सिंह खुद लेकर दक्षिण जाने पर आलमगीर को अपने हाथों से वे चिट्ठी दें। नबी खान, गनी खान ने भाई दया सिंह के लि घोड़े का इंतजाम कर दिया। यह भी निश्चित किया कि जहाँ तक पंजाब में उनके सफर का सम्बन्ध था, उस ओर कोई आंख उठाकर नहीं देख सकेगा।

गुरु महाराज को माता गुजरी जी और छोटे दो साहिबज़ादों की भी चिन्ता लगी हुई थी, पता नहीं वे कहाँ थे, उनके साथ क्या बीत रही थी। नबी खान, गनी खान ने सुना तो 'माही' नाम के अपने एक भतीजे को गुरु महाराज के यहाँ पेश किया। वह सहेरी गांव जाकर माता गुजरी जी और साहिबज़ादों की सुख शांति की खबर लाने के लिए तैयार था।

भाई दया सिंह को दक्षिण की ओर और माही को सहेरी की ओर भेजकर मुश्किल से हटे थे कि खबर आई, मुगल फ़ौज का एक दस्ता गुरु महाराज की तलाश में इधर आ रहा था। किसी भी समय वे लोग उनके गांव पहुंच सकते थे।

गुरु महाराज ने सुना और फिर उन्हें अपनी रचना का 'चित न भयो हमरो आवन कह। चुभी रही सुति प्रभु चरनन महि'—याद आने लगी।

नबी खान और गनी खान दोनों भाई उधर कितनी देर दलीलों में पड़े रहे। आखिर उन्होंने फैसला किया कि फ़ौजी दस्ते के आने की जो सूचना उन्हें मिली थी, इसका ज़िक्र गुरु महाराज से करना जरूरी था। अगर गैर-फ़ौजी कोई कर्मचारी होते तो और बात थी, वे सम्भाल देते, फ़ौजी दस्ते के सामने उनकी एक न चलेगी।

यह कानाफूसी गुरु महाराज के कानों में पहले ही पड़ चुकी थी। मुश्किल यह थी कि गुरु महाराज के पैरों पर छाले और शरीर पर कांटों की खरोंचे वैसे की वैसे परेशान कर रहीं थी। इस हालात में उनका चल सकना असम्भव था। गुरु महाराज ने सुना और भाई धर्म सिंह और भाई मान सिंह को बुलाकर कहने लगे—आखिर कब तक इस दिन को टाला जा सकता है ? हम सोचते हैं, हमें मुगलों से लोहा लेना होगा। वैसे तो हमने नहीं कहा था:

देह शिवा बरू मोहि इहै,
शुभ करमन ते कबहूँ न डरो।

न डरों अरि सो जब जाइ लरो,
निश्चै कर अपनी जीत करो।
अर सिक्ख हो अपने ही मन को,
इह लालच हउ गुन तऊ उचरों।
जब आव की अउध निदान बनै,
अति ही रण मैं तब जूझ मरो।

(सवैया)

जब गुरु महाराज इस सवैया का उच्चारण कर रहे थे, नबी खान और गनी खान भी उनके कमरे में आ खड़े हुए थे, कि गुरु महाराज इस हालत में मुगल दस्ते का मुकाबला करें, इसके लिए न उनके साथी गुरुसिक्ख राज़ी थे और न ही उनके मेज़बान।

यह जंग होगी पर उसका समय अभी नहीं आया, नबी खान और दोनों की यह राय थी।

और फिर किया जाए ? मुगल दस्ता तो जल्दी-जल्दी माछीवाड़े की ओर बढ़ रहा था।

नबी खान और गनी खान उच्च कोटि के पीर के मुरीद थे। उनका प्रस्ताव था कि गुरु महाराज को पहुंचे हुए पीर का भेष धारण करके माछीवाड़े से बाहर ले जाया जा सकता था।

यह फैसला होते ही गुलाबे की बहन के भेंट किए खद्दर के चोलों को नीले रंग में रंगाकर गुरु महाराज को पहना दिया गया। गुरु महाराज के केश खोलकर उनके कन्धों पर बिखरा दिए गए और नबी खान और गनी खान खुद गुरु महाराज के दो बच्चे गुरुसिक्खों, भाई धर्म सिंह और भाई मान सिंह की मदद से दशमेश को डोली में डालकर चल पड़े। चारों गुरु प्यारों ने कहारों का भेष बनाया हुआ था, कहारों की तरह डोले को 'या अली', 'या अली', करके उठाते कहारों की तरह तेज़-तेज़ कदम, कहारों की तरह बोली बोलते।

फिर भी जब मुगल फ़ौजी दस्ते से उनकी टक्कर हुई, हर किसी को जान के लाले पड़ गए। भगवान की करनी यह कि यह टक्कर सैय्यद इनायत अली के गांव में हुई, सैय्यद इनायत अली के तसदीक करने पर कि डोले में पहुंचे हुए पीर थे, मुगल फ़ौजी दस्ते ने ज्यादा पूछताछ नहीं की।

ऐसे पहुंचे पीर बने हुए गुरु महाराज जटपुरा जा पहुंचे जहाँ वे दीना

गांव गए। यहाँ राय जोध की औलाद लखमीरा, समीरा और तख्तमल ने गुरु महाराज की जी-भरकर सेवा की। सेवा भी की और उनकी सुरक्षा का भी पूरा प्रबन्ध किया। अब सरहिन्द के नवाब वज़ीर खान को इसकी खबर मिली, उसने दोनों के इन तीन भाइयों को धमकी दी कि वे गुरु महाराज को उसके हवाले कर दें नहीं तो उनके विरुद्ध कार्रवाई की जाएगी।

यह सुनकर लखमीरा, समीरा और तख्तमल ने जवाब में नवाब को कहलवा भेजा कि दशमेश गुरु बाबा नानक की गद्दी पर विराजमान हैं। वे लोग बाबा नानक के सिक्ख होने के कारण बाबा नानक की गद्दी के प्रति श्रद्धा रखना उनका परम-धर्म है जैसे नवाब खुद अपने पीरों और बजुर्गों को आदर देता है।

सरहिन्द के नवाब ने दलील को अनसुना करके दीनां पर चढ़ाई कर दी। गुरु महाराज ने यह सोचकर कि अभी मुगलों से लोहा लेने का समय नहीं आया था, दीनां छोड़कर कांगड़े की ओर निकल जाने का फैसला किया।

पर इस दौरान वे चारों ओर अपने गुरुसिक्खों को हुकुमनामे भेजकर उन्हें हथियारबन्द होकर फिर इकट्ठे होने के लिए हिदायत कर रहे थे।

ज्यादा समय नहीं गुज़रा था कि फिर उनके श्रद्धालु गुरु महाराज के चरणों में तन, मन, धन से हाज़िर होने लगे। फिर दशमेश की खालसा सेना तैयार होने लगी। फिर कवायदें होने लगीं। फिर घोड़े भेंट किए जाने लगे। फिर हथियारों की परख होने लगी। फिर अगली टक्कर की तैयारियाँ देखने में आने लगीं।

79

माता गुजरी जी के दो छोटे साहिबज़ादों की खबर लेने गए माही नाम के हलकारे ने जो कुछ सुना, सरहिंद में जो कुछ देखा, उसका हौंसला नहीं हो रहा था कि कलगीधर को लौटकर इसकी सूचना दे।

अपने गांव सहेरी पहुंचकर गंगू के पैर धरती पर न टिकते। माता गुजरी जी और दो छोटे साहिबज़ादे जोरावर सिंह और फतेह सिंह उसके मेहमान थे। उसका तो जन्म-मरण सफल हो गया था। क्या गंगू और क्या उसकी पत्नी माता गुजरी जी के पैरों के नीचे हथेलियाँ रखे रहते। आठ वर्ष के ज़ोरावर सिंह और पांच वर्ष के फतेह सिंह के मनोरंजन की योजनाएं बनाते गंगू को हार रास नहीं आ रही थी। पति-पत्नी अड़ौसी-पड़ौसियों से गुरु

महाराज की उठते-बैठते बड़ाइयाँ करते रहते।

आज तीसरा दिन था गुरु परिवार को गंगू के यहाँ आए हुए। उनके कमरे की सफाई करते गंगू की पत्नी क्या देखती है, माता गंगा जी के साथ आई पोटली, गहनों, अशर्फियों, मोतियों और हीरों से भरी पड़ी है। गंगू की पत्नी की आंखें खुली की खुली रह गईं। इतना धन तो उसने कभी सपने में भी नहीं देखा था। इतना धन उनके हाथ आ जाए तो गंगू की सात पीढ़ियाँ निहाल हो जाएंगी। खूब रेल-पेल हो जाएगी।

इतने में चारों ओर इलाके में गुरु महाराज की चमकौर से मुगल फ़ौज से झड़प की खबर एक आग की तरह फैलने लगी।

एक ओर ढेर सारा धन का लालच, दूसरी ओर शहंशाह के दुश्मन के परिवार को पनाह देने के दण्ड का खौफ, गंगू और उसकी पत्नी का मन विचलित होने लगा।

सारी उस रात उन्हें नींद नहीं आई, सारी रात पति-पत्नी खुसर-पुसर करते रहे; कभी कोई मन बनाते, कभी कोई। इससे पहले के सुबह हुई, आखिर गंगू चुपके से उठा उस पोटली का सारा धन निकालकर अपनी कोठरी के कोने में नीचे दबा दिया।

सुबह हुई तो छत पर चढ़कर आप ही शोर मचाने लगा, उनके यहाँ रात को चोर आ घुसे थे। घर में जो कुछ भी था लूट कर ले गए। माता गुजरी जी ने सुना और उसे समझाने लगीं तुम ऐसे शोर मत करो। लोग पूछेंगे, इतना धन तुम्हारे पास कहाँ से आ गया। जो कुछ हुआ सो हुआ। यही अच्छा है कि इस पर मिट्टी डाली जाए।

इसका मतलब है, आप सोचते हैं कि अपना धन मैंने चुराया है ? गंगू के भीतर का गुनहगार बोल रहा था।

और सब कुछ तुम चाहे रख लो, बस मेरे पोतों के कड़े लौटा दे। इनके पिता की निशानी है। माता गुजरी जी ने सहज स्वभाव से कहा।

गंगू ने सुना तो गुस्साने लगा। पति-पत्नी लाल-पीले होने लगे। यह अच्छा न्याय है। हमने अपनी जान पर खेलकर इन्हें पनाह दी है। मुगल सूबेदार को पता लग जाए तो चाहे हमारा बच्चा घानी में पिलवा दे और यह हमारे माथे चोरी ला रहे हैं। आजकल कोई समय है किसी से भलाई करने का......।

ऐसे जो उनके मुंह में आया पति-पत्नी बकते रहे। माता गुजरी जी

अजीब पशोपेश में थीं। उन्होंने भोर में अपनी आंखों से गंगू को पोटली में से माल निकालकर अन्दर कोठड़ी के कोने में दबाते देखा था।

आखिर जब गंगू अधिक बदतमीज़ी पर उतर आया, माता गुजरी जी, उठे और कोठरी के कोने में से सारा धन ला गंगू की पत्नी की झोली में ला डाला। बस साहिबज़ादों के कड़े निकालकर उनकी कलाइयों में चढ़ा दिए।

गंगू और उसकी पत्नी जैसे रंगे हाथ पकड़े चोर हों, उनके मुंह में जुबान नहीं थी। इसकी बजाए कि गंगू माफी मांगता, अपनी भूल की क्षमा चाहता, वह गांव की चौकी पर गया और माता गूजरी और दोनों साहिबज़ादों को थाने के हवाले कर दिया।

उन्होंने जैसे शुक्र किया हो। वैसे का वैसे उन्हें सरहिन्द पहुंचाया गया। वज़ीर खान ने सुना और उन्हें किले के ठण्डे बुर्ज में कैद रखने का हुक्म दिया। गंगू को खिलियत बख़्शी गई। और फैसला हुआ, साहिबज़ादों को अगली सुबह दरबार में सूबेदार के सामने पेश किया जाए।

सूबेदार वज़ीर खान की जैसे भगवान ने सुनी हो। दो बड़े साहिबज़ादे चमकौर की झड़प में शहीद हो चुके थे। छोटे दो साहिबज़ादे उसके कब्जे में थे। अगर गुरु गोबिन्द सिंह सचमुच जीवित हैं तो उन्हें काबू करना अब मुश्किल नहीं होगा। कुछ इस तरह वह सोच रहा था। आठ साल और पांच साल की कच्ची उम्र में साहिबज़ादों को लालच देकर मुसलमान बनाया जा सकता था। इस तरह वह आलमगीर की प्रशंसा का पात्र बन जायेगा।

किले के जिस बुर्ज में माता गूजरी और साहिबज़ादों को बंदी बना कर रखा गया, वे सिर्फ नाम का ही ठंडा बुर्ज नहीं था, सचमुच उसके कमरे बर्फ जैसे एकदम ठण्डे थे। उनमें गर्मियों में सरकारी मेहमान आकर ठहरा करते थे।

तो भी माता गुजरी जी और साहिबज़ादों को इस बात का अहसास कराया जा रहा था कि वह शाही मेहमान थे, उनकी हर प्रकार की खातिर होगी।

अगली सुबह साहिबज़ादों को बाजार ले जाया गया। शाही मेहमान होने के नाते जो चाहें वे खरीद सकते थे। मिठाइयों की दुकानें थीं। खिलौनों की दुकानें थीं और छोटी-बड़ी चीज़ें बिक रहीं थीं। साहिबज़ादे सब कुछ देखते, आखिर एक असले की दुकान में रुके और हर प्रकार के हथियार देखने लगे। उनके साथ आए सरकारी कर्मचारियों ने जब उन्हें जो वे चाहे

खरीद कर लेने के लिए कहा तो दोनों साहिबज़ादे अपने-अपने मतलब का असला खरीदने के लिए राज़ी हो गए।

वज़ीर खान को जब इसकी सूचना मिली तो वह सोच में पड़ गए। पास बैठे उसके एक चापलूस दरबारी सुच्चानन्द ने सुना और कहने लगा—सांप के सपोले भी उतने ही ज़हरीले होते हैं जितना सांप खुद विषैला होता है।

सूबेदार वज़ीर खान ने गुरु गोबिन्द सिंह को आनन्दपुर में लड़ते देखा था और फिर चमकौर में दो बड़े साहिबज़ादों को भी हज़ारों से अकेले जूझते देखा था। उसके बीच बैठा सिपहसालार, इस तरह के मासूम बच्चों के लहू से अपने हाथ रंगना नहीं चाहता था। वह जानता था, गुरु गोबिन्द सिंह के बेटों ने दरबार में हाज़िर होकर उसे क्या जवाब देना है। न वह उन मासूम जानों को इम्तेहान में डालना चाहता था, न अपने आपको। इधर 80 वर्षों की एक बुर्जुग स्त्री थी। उस गुरु की पत्नी जिसने शीश दे दिया पर सिरर नहीं हारा। उस गुरु की मां जिसकी वीरता का डंका सारे देश में बजता था। अगर साहिबज़ादों को कुछ हो गया तो वह कभी नहीं बचेगी।

आखिर सोच-सोचकर वज़ीर खान को एक तरकीब सूझी। मलेरकोटले का नवाब शेर मुहम्मद खान गुरु गोबिन्द सिंह से सरसा और चमकौर की दोनों जंगों में लड़ा था। इनमें उसका भाई और भतीजा मारे गए थे। वज़ीर खान ने नवाब शेर मुहम्मद खान को बुलाकर दोनों साहिबज़ादों को उसके हवाले करने की पेशकश की। वह अपने भाई और भतीजे का बदला ले सकता था।

शेर मुहम्मद खान राजी नहीं हुआ। वह इस तरह मासूम बच्चों पर जुल्म करने के लिए तैयार नहीं था।

सूबेदार वज़ीर खान को दलीलों में पड़ा देखकर सरहिन्द का एक बनिया, टोडरमल दरबार में हाज़िर हुआ। साहिबज़ादों के सिर का जो मूल्य भी सूबेदार लेना चाहता था, टोडरमल सारा मूल्य चुका कर गुरु गोबिन्द सिंह के साहिबज़ादों को छुड़ाने के लिए तैयार था।

इस प्रकार का सौदा वज़ीर खान को मंजूर नहीं था। इतने में खबर आई कि जो यह समझा जा रहा था कि गुरु गोबिन्द सिंह चमकौर की लड़ाई में शहीद हो गए थे, बिल्कुल गलत था। मुगल और पहाड़ी फ़ौजें वैसे ही आज तक जश्न मना रही थी। गुरु महाराज तो दीना पहुंच गए थे। यही नहीं, वे फिर से सेना इकट्ठी कर रहे थे। उन्हें असला फिर भेंट किया जा रहा था।

उन्हें घोड़े फिर पेश किए जा रहे थे। शमीर, लखमीरा और तख्तमल ने जो गुरु गोबिन्द सिंह के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की थी, वह व्यर्थ नहीं थी। यह जंग लम्बी होने जा रही थी।

वज़ीर खान यह सब कुछ सोचता और भड़क-भड़क उठता।

80

उस दिन साहिबज़ादों को सूबेदार वज़ीर खान के दरबार में पेश होना था। सरकारी कर्मचारी उन्हें दरबार का अदब-आदाब समझा रहे थे। कैसे उन्हें झुक कर कोरनाश बजा लानी थी। सूबेदार को 'हजूर', 'आका', 'अन्नदाता' कह कर मुखातिब होना था। यह भी कहा गया, क्योंकि केसरी रंग मुगल शहंशाह के खिलाफ़ बगावत की निशानी थी, उन्हें केसरी साफे नहीं बांधने होंगे और फिर जब दरबार में से लौटना होगा झुककर तीन बार दांयी बाजू को हिला-हिला कर सलाम करना होगा।

दोनों साहिबज़ादे सुन रहे थे। न इकरार न इंकार, कोई जवाब नहीं दे रहे थे।

माता गुजरी जी सामने एक कोने में ध्यान लगाए बैठी थीं। पिछले कुछ दिनों से कष्ट झेल रहीं वे बार-बार सोचने लगती थीं, शायद उन्होंने अपने बेटे को आनन्दपुर छोड़ने के लिए मज़बूर करके गलती ही की थी। बेशक घेराव के कारण मुश्किलें थीं, पर ऐसे दर-दर उन्हें भटकना तो नहीं पड़ता था। जो कुछ वे आनन्दपुर साहिब से लाए थे, सरसा नदी की भेंट हो गया था। कितने गुरुसिक्ख बह गए थे। कितने शूरमा नदी का पानी अपने साथ बहा कर ले गया था। उन्हें नहीं पता था कि बड़े साहिबज़ादे कहाँ थे ? साहिब देवां और सुन्दरी जी कैसे थे ? गुरु गोबिन्द सिंह खुद कहाँ भटक रहे थे ? सचमुच उन्हें ऐसे अपने बैटे को मजबूर नहीं करना चाहिए था।

अब तो वे यही हाथ जोड़ती थीं, उन्हें और क्लेश न भोगने पड़े। उनका लाल गुरु नानक की गद्दी को सुशोभित कर रहा था। उन्हें उसकी रजा में राज़ी रहना चाहिए था। बेशक उन्होंने उसे जन्म दिया था, पर वे तो दशमेश थे। आदि-अंत की समझ रखता था। लोक-परलोक का मालिक था। ऋद्धियां-सिद्धियाँ उसके दर का पानी भरती थीं। उसे तो भाई नन्दलाल ने कहा था—शहंशाह दरवेश गुरु गोबिन्द सिंह।

ठीक यही बात पुकार कर साहिबज़ादों ने अगले दिन सूबेदार वज़ीर खान के दरबार में कही थी। वज़ीर खान उनके मन में जैसे खौफ़ का

एहसास पैदा कर रहा हो। उन्हें एक मांस में बता रहा था—सिवाय दस-बीस सिपाहियों के जितने भी सैनिक आनन्दपुर से आपने बाबा के साथ आए थे, सभी सरसा नदी में बह गए थे। उनके साथ सारा माल-मत्ता भी जाता रहा, जो आप लोग आनन्दपुर से निकालकर अपने साथ लाए थे, इसे अल्लाह की मार कहते हैं। जो अपने मुल्क के शहंशहा के खिलाफ, आवाज़ उठाते हैं उनका यही हाल होता है। आपके बड़े भाई अजीत सिंह को मैंने अपनी आंखों से नेज़ों से बिंधा हुआ देखा है। छोटे जुझार सिंह का सिर कलम करके गेंद की तरह उसे उछाला गया। हमने तो सोचा था कि आपके पिता का भी यही हश्र हुआ है, उसकी कलगी मैदान-ए-जंग में रूलती हुई पाई गई। पर सुना है, वह 'मूज़ी' बच निकला है। अब जंगलों में बिना सरो-सामान भटक रहा है जैसे कोई भगौड़ा हो........।"

ये शब्द वज़ीर त्रान के मुंह में ही थे कि दोनों साहिबज़ादे एक स्वर में पुकार उठे।

'शहंशाह दरवेश गुरु गोबिन्द सिंह।'

वज़ीर खान साहिबज़ादों की भरे दरबार में यह गुस्ताखी देखकर आवेश में आ गया।

इससे पहले जब वे दरबार में आए, इन्होंने केसरी साफे सजाए हुए थे। जान बूझकर उन्हें उस दरवाजे में से लाया गया जिसमें से झुक कर अन्दर जाना होता था। साहिबज़ादों का आत्म-सम्मान, वे वज़ीर खान जैसे ज़ालिम सूबेदार के आगे झुकने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थे। अन्दर जाने के लिए उन्होंने पहले टांगे अन्दर की, फिर धड़ अन्दर किए। उन्हें दरबार में पेश कर रहे दरबारी ने जान-बूझकर इसका ज़िक्र सूबेदार से नहीं किया, नहीं तो पता नहीं कैसा कहर टूट पड़ता।

फिर जब वे दरबार में हाज़िर हुए, दोनों साहिबज़ादों ने मिलकर फतेह गुंजाई, 'वाहिगुरु जी का खालसा, वाहिगुरु जी की फतेह।'

वज़ीर खान ने सुना और साहिबज़ादों की इस हरकत को बचपना समझकर उसने नजर-अंदाज कर दिया और मुस्कराने लगा।

अब जब साहिबज़ादों ने उन्हें टोक कर यह नारा लगाया।

'शहंशाह दरवेश गुरु गोबिन्द सिंह।'

एक पल के लिए सूबेदार क्रोध में आ गया। पर फिर उसने अपने-आप को संभाल कर साहिबज़ादों को समझाना शुरू किया—इस मासूम उम्र में आप

शायद यह नहीं समझते कि आप क्या कर रहे हो ? आप मेरे बच्चों के जैसे हो। मुझे आप पर बहुत तरस आ रहा है। मैं नहीं चाहता, आपका भी वही हाल हो जो आपके बड़े दो भाइयों का हुआ है। इतने भोले, इतने प्यारे आपके मुखड़े हैं। जैसे दो बिना खिली कलियाँ हों। मैं तुम्हें अपने बेटे बनाना चाहता हूँ। आपके लिए और आपकी दादी के लिए अलग महल बनवा दूंगा। आपकी शिक्षा का, सिखलाई का बढ़िया इंतजाम करूंगा। बड़े होकर आपका मुगल शहज़ादियों से विवाह करवाऊंगा। खुशी-खुशी ऐशो-आराम की जिंदगी आप गुजारोगे। बस आपने एक इस्लाम कबूल करना है।'

"नहीं, नहीं, हरगिज़ नहीं" साहिबज़ादे, वज़ीर खान को टोककर पुकार उठे। हम गुरु गोबिन्द सिंह की संतान, खालसा पंथ के अनुयायी हैं। हमें जीना है। पंथ के लिए; हमें मरना है, पंथ के लिए।

'क्या आपकी मुल्क के शहंशाह के लिए कोई वफादारी नहीं ?'

'बिल्कुल नहीं।' हमें इस ज़ालिम राज्य से जूझना है। हमें न्याय के लिए आवाज़ उठानी है। हमें धर्म-राज्य कायम करना है। वह राज्य जिसमें किसी के साथ भेद-भाव नहीं होगा। न कोई ऊंच, न कोई नीच। हम सबका भला चाहते हैं।' दोनों साहिबज़ादे ऐसे बोल रहे थे जैसे ये सब कुछ उन्हें रटा हुआ हो।

'यह कौन तुम्हें सिखाता रहा है ? वज़ीर खान पूछ रहा था।'

'हम गुरु गोबिन्द सिंह के साहिबज़ादे हैं, यह आपको नहीं भूलना चाहिए' जोरावर सिंह ने सूबेदार को याद करवाया।

वज़ीर खान जल्दी में कोई फैसला नहीं करना चाहता था। उसने साहिबज़ादों को अगले दिन फिर हाज़िर करने के लिए हिदायत की। वह सोचता, शायद समय बीतने से बच्चे अपना रवैया बदल लें। पर वज़ीर खान का यह ख्याल गलत साबित हुआ। अगले दिन साहिबज़ादे और बेबाक थे और निडर होकर जवाब दे रहे थे।

अगर मैं आपको छोड़ दूं तो आप क्या करोगे ? वज़ीर खान ने पूछा।

'हम गुरुसिक्खों को इकट्ठा करके आपके साथ लड़ेंगे और तुम्हें हरायेंगे साहिबज़ादों ने एक स्वर में जवाब दिया।

–अगर आपकी हार हुई ?' वज़ीर खान ने फिर सवाल किया।

'जब तक हम इस राज्य का खात्मा नहीं कर लेते हम सांस नहीं लेंगे।' साहिबज़ादे वैसे के वैसे निडर होकर जवाब दे रहे थे।

सूबेदार वज़ीर खान के दरबार में इस तरह तो कभी नहीं कोई बोलता था जैसे दोनों साहिबज़ादे बोल रहे थे। आखिर चिढ़कर सूबेदार ने हुक्म दिया, एक बागी की इस औलाद को जिन्दा दीवार में चिनवा दिया जाए।

साहिबज़ादों ने सुना और 'बोले सो निहाल, सत श्री अकाल' के जयकारे गुंजाते हुए दरबार से निकल गए।

गुरु गोबिन्द सिंह के साहिबज़ादे, उन्हें जिंदा दीवार में चिनवाना कौन सा आसान था ?

अगले दिन लाख एहतियात से राजगीर उन्हें दीवार में चिनवाने लगे। आगे-पीछे सिपाहियों के पहरे लगे हुए थे, पर शेर के बच्चे दोनों साहिबज़ादे जब दीवार उनकी छाती तक बनकर आती, उसे धक्का देकर गिरा देते। एक बार, दो बार, तीन बार उन्होंने ऐसे ही किया। कच्ची दीवार उनके धक्के के सामने उखड़ कर दूर जा गिरती। पता नहीं कहाँ से इतना ज़ोर उन मासूम जानों में आ जाता था। 'बोले सो निहाल और सत श्री अकाल' कहते हुए इस ज़ोर से दीवार को धकेलते कि पक्की ईंटों की दीवार रेत की दीवार की तरह ढेरी हो जाती। यह देखकर राजगीर ने हार मान ली।

एक दिन और सूबेदार वज़ीर खान के हुक़्म की तामील नहीं हो सकी।

अगले दिन दिल्ली से जलाल नाम का जल्लाद अचानक सरहिन्द में आ पहुंचा। उसने सूबेदार का हुक्म पाकर तलवार खींच ली। पहले ज़ोरावर सिंह की गर्दन पर चलाई, फिर फतेह सिंह के गले पर। यही नहीं, निर्दयी हत्यारे ने मासूम साहिबज़ादों के शीश ले जाकर माता गूजरी की झोली में जा डाले। माता गूजरी जी के लाड़ले पोतों का यह अन्त। एक नज़र उन्होंने देखा और प्राण त्याग दिए।

कहते हैं, जब गुरु महाराज को किसी प्यारे ने यह खबर जाकर दी, उन्होंने अपने तीर की नोक से काही के एक पौधे को उखाड़ते हुए फरमाया; अब इस राज्य की जड़ें उखड़ कर रहेंगी।

81

वह गुरु गोविन्द सिंह जिसके मुखड़े के जलाल की कोई ताब नहीं ला सकता था। वे गुरु गोविन्द सिंह जिसकी कलगी के मोतियों की चमक आंखों को चौंधिया जाती थी। वे गुरु गोविन्द सिंह जिनके बाज़ खुले आकाश में जब उड़ारी लगाते, वन के पखेरू त्राहि-त्राहि कर उठते थे। वे गुरु गोविन्द सिंह जिसके तीर निशाने साधते थे, बींधते थे। वे गुरु गोविन्द सिंह जिसकी

शमशीर की चमक मान वालों के मान का मर्दन करती थी। वे गुरु गोविन्द सिंह जिन्होंने भगवती का स्मरण किया, प्रातः के पाठ को 'जहाज चढ़ना' कहते थे।

वे गुरु गोविन्द सिंह जिन्हें 'अकाल पुरुष' ने 'मैं अपना सुत तोहि निवाजा' कहकर संसार में भेजा ताकि 'जाहि तहा तै धरमु चलाइ। कुबुद्धि करन ते लोक हटाइ।' वे गुरु गोविन्द सिंह जिनके मुंह से निकले बोल अकाल पुरुष की स्तुति के रूप में निकलते थे। वे गुरु गोविन्द जिसके दरबार के दो ऊपर पचास (बावन) कवि अपना सानी नहीं रखते थे। वे गुरु गोविन्द सिंह जिनका संस्कृत, फारसी, ब्रज, मैथिली, पंजाबी का ज्ञान अद्वितीय था।

वे गुरु गोविन्द सिंह जिन्होंने चिड़ियों को बाज़ों से लड़ाया। वे गुरु गोविन्द सिंह जिन्होंने नीच को ऊंचा स्थान दिया। वे गुरु गोबिन्द सिंह जिन्हें बुद्धू शाह ने सज़दा किया। वे गुरु गोविन्द सिंह जिनके बुल्ले शाह ने गुण गाए। वे गुरु गोविन्द सिंह जिन्होंने हीर-रांझे को प्यार किया, खेड़ों को तिरस्कृत किया।

वे गुरु गोविन्द सिंह जिनके महलों के सौंदर्य पर पंजाब की स्त्री जाति को अभिमान था। वे गुरु गोविन्द सिंह जिनके श्रद्धालु उनके दर्शनों के लिए तरसते थे, हाथ जोड़कर प्रार्थनाएं करते थे। वे गुरु गोविन्द सिंह जिनका शिवालिक की वादियों में डंका बजता था। रणजीत नगारे की गूंज चारों ओर सुनाई देती थी। वे गुरु गोविन्द सिंह जिनका दिलों पर राज था, दीनों के मन पर उनकी छाप थी।

वे गुरु गोविन्द सिंह जिनके दीवाने काबुल और कंधार, बलख और बुखारे, ढाका और बंगाल से भेंट लेकर आते थे। वे गुरु गोविन्द सिंह जिनके आनन्दपुर दरबार में केशवदास जैसे पण्डित और नन्दलाल शायर रहकर गौरव महसूस करते थे। वे गुरु गोविन्द सिंह जिन्होंने केशगढ़ जैसे किलों का निर्माण किया। वे गुरु गोविन्द सिंह जिनका हुक्म हुआ और अनुयायियों के आनन्दपुर के पास उनके लिए गुरु का लाहौर स्थापित कर दिया।

वे गुरु गोविन्द सिंह जिन्होंने 16 वर्ष की आयु में कहलूर के भीमचन्द के दांत खट्टे किए, फिर तीन वर्ष बाद कांगड़ा, गुलेर और कहलूर के सम्मिलित हमले को परास्त किया। वे गुरु गोविन्द सिंह जिन्होंने 22 वर्ष की उम्र में भंगाणी की लड़ाई में पहाड़ी राजाओं की सांझी सेना को हराकर जागीरदारी राज के खोखलेपन का उन्हें अहसास करवाया। वे गुरु गोविन्द

सिंह जिन्होंने नदौण और जम्मू के सूबेदार के भेजे अलिफ़ खान को मारकर भगाया। फिर अगले वर्ष लाहौर के सूबेदार के भेजे रूस्तम खान को मात दी। वे गुरु गोविन्द सिंह जिन्होंने हुसैन खान के दांत खट्टे किए। वे गुरु गोविन्द सिंह जिन्होंने एक के बाद एक आनन्दपुर की 6 लड़ाइयों में मुगलों और पहाड़ी राजाओं की हर बार पीठ लगाई। वज़ीर खान और ज़बरदस्त खान जैसे सूबेदारों को वर्षों तक खूब परेशान किया। वे गुरु गोविन्द सिंह जिन्होंने औरंगज़ेब के यह वायदा करने पर--"मैं कुरान की कसम खाकर कहता हूँ कि आपको कोई क्षति नहीं पहुंचेगी। अगर मैं ऐसे करूं तो अल्लाह की दरगाह में मुझे ठिकाना न मिले, लड़ाई बन्द करके मुझे मिलो। अगर मेरे पास न आना चाहो तो जहाँ मर्जी हो, चले जाओ।" आखिर आनन्दपुर को खाली किया।

वे गुरु गोविन्द सिंह जिन्होंने एक हफ़्ते के दौरान अपने चार-के-चार साहिबज़ादे गंवा दिए। जिनकी माता जी यह चोट न सह पाने के कारण उनसे हमेशा-हमेशा के लिए विदा हो गईं। वे गुरु गोविन्द सिंह जिन्होंने सैंकड़ों अपने साथियों को अपने लिए जान कुर्बान करते अपनी आंखों से देखा। वे गुरु गोविन्द सिंह जिसकी कलम की वर्षों की कमाई सरसा के पानी की भेंट हो गई।

वे दशमेश, वे देशभक्त, वे महाकवि गुरु गोविन्द सिंह अपने आस-पास एक नज़र मारते हैं और उन्हें लगता है जैसे चारों तरफ़ वैसी-की-वैसी गहमागहमी हो। वैसी-की-वैसी उथल-पुथल दिखाई दे रही थी। कुछ भी तो नहीं खोया था। कुछ भी तो नहीं छीना गया था। उसका खालसा वैसे-का-वैसा चढ़ती कला में था। वैसे-का-वैसा सबका भला मांग रहा था।

उसका हर सिक्ख अपने-आपको सवा लाख कहलवाता था। अकेला आना हो तो फ़ौजें आ रही बताता था। मौत को चढ़ाई करना कहता था। मुगलों और पठानों को बादाम खाता देखकर जिसने चनों को बादाम कहना शुरू कर दिया था। साधारण साग-पात को जो 'सब्ज पुलाव' कह कर गर्वित था। मामूली से मामूली काम जिसके लिए मोर्चा फतेह करना हो गया था। वह मांगता नहीं था, उगराही करता था, 'मामला' लेता था। उसका डेरा छावनी थी, जिसका टूटा छप्पड़ शीश महल था। जो फ़ाके को 'लंगर-मस्त' कहकर दिन बिता देता था। जिसके लिए कोई चीज़ खानी 'गुरु की खुशियां' लेनी होती थी। जो संकट को 'गुरु का भाणां' (ईश्वरी आदेश) करके मानता था। जो अन्धों को शूरवीर, काने को लाख नेत्रों वाला, बहरे को 'चुबारे चढ़ा',

लंगड़े को 'सुचाला' और गूंगे को 'गुपता' कहकर याद करता था, जिसके लिए शाही ज़ागीर टुकड़ा थी और रुपया एक 'छिलका'।

जिसके लिए थोड़ा सवाया था। बासी रोटी 'मीठा प्रसादा' थी। उजाड़ में बनाया हुआ लंगर 'राम चौका' था। पिसा हुआ नमक-मिर्च 'तुरत पुलाव' था।

जो माया को 'डायन' कहकर याद करता था और अमृत-पाठ करने को 'जहाजे चढ़ना' कहता था। जिस कौम में इस तरह की समझ थी, इस प्रकार का गौरव था, इस तरह का आत्म-सम्मान था, इस प्रकार की निडरता थी, उस कौम को कौन मात दे सकता था ?

अकेले बैठे यह सोच रहे गुरु महाराज के होंठ थिरकने लगे और उनके पवित्र मुखारविन्द से ये शबद सुनाई दिए :

> जुद्ध जिते इनही के प्रसादि इनही के प्रसादि सुदान करे।
> अध ओध टरे इनही के प्रसादि इनही कृपा फून धाम भरे।
> इनही के प्रसादि सुबिदिया लई, इनही की कृपा सब सत्र मरें।
> इनही की कृपा के सजे हम हैं नहीं मौ सो गरीब करोर परे।
>
> (सवैया)

82

तो भी कुछ लोग ऐसे थे जो बहुत परेशान थे। किसी कौम के गुरु महाराज के चार-के-चार साहिबज़ादों को शहीद कर देना। किसी कौम के गुरु महाराज को उनके अपने बसाये शहर से बेदखल कर देना। लोग सोचते, ऐसे तो बाबा नानक के स्थापित पंथ का भी नाश हो जायेगा। कोई सिक्ख जरूरत ढूंढने पर भी नहीं मिलेगा।

इस तरह के लोगों की यह धारणा थी कि गुरु महाराज को मुगलों के मुंह नहीं लगना चाहिए। औरंगज़ेब कट्टर मुसलमान था, उससे बनाए रखने में ही सिक्ख भाईचारे की भलाई थी। राज्य राजाओं को ही करना होता है। सिक्ख थे भी कितने ? पहले पहाड़ी राजाओं से लड़ाई मोल ली, फिर मुगलों से लड़ाई मोल ली, आखिर मुल्क के शासक की फ़ौज की बराबरी कैसे की जा सकती है ? इस तरह के लोगों के हाथ-पांव फूलने लगे। करें, तो क्या ? जायें तो कहाँ ?

सच्चे थे वे चालिस गुरुसिक्ख जो बेदावा देकर लौट आए थे। आखिर कब तक भूखे मरते ? महीनों तक दुश्मन के घेरे में मौत की प्रतीक्षा करना।

गुरु महाराज को आप तो न भूख लगती थी, न प्यास लगती थी। वे तो पहुंच हुए थे। राज योगी, उन्होंने तो अपने पिता को गंवा दिया, अपनी माता को मुगलों के रहम पर छोड़ा जहाँ वे जान पर खेल गईं। आज कहाँ थे उनके घोड़े ? कहाँ थे उनके बाज़ ? कहाँ थी उनकी कलगी ? सब कुछ एक सपना हो गया था।

कई लोग तो इसलिए भी तैयार हो गए कि वे गुरु महाराज को मिलकर उन्हें इसके लिए राज़ी करेंगे कि वे मुगलों से समझौता कर लें। हकूमत को बिगाड़ने का कोई लाभ नहीं। सिक्ख भाईचारे को प्रारंभ हुए अभी दिन ही कितने हुए थे। इस्लाम इतना पुराना मज़हब था। हिन्दू मत सदियों से चला आ रहा था। कोई बात इस्लाम में थी कि वे हर किसी को आगे लगाए फिरते थे। हिन्दुस्तान पर हकूमत कर रहे थे। दुनिया-भर में अहल-ए-सुन्नत का झण्डा लहराता था, एक तरफ चीन और ताज़िकस्तान, दूसरी ओर मिश्र और अफ़रीका। अरब देश तो उनका अपना घर ही था, जहाँ इस्लाम जन्मा, फला-फूला था।

इसके विपरीत वे चालीस गुरु सिक्ख जो आनन्दपुर से बेदावा देकर निकल आए थे, जब अपने-अपने घरों को लोटे थे, उनकी पत्नियाँ क्या और माताएं क्या, उनके तलुए नहीं लगने दे रहीं थीं। बार-बार उन्हें उलाहने और ताने मारतीं। आप चूड़ियाँ पहनकर घर का चूल्हा-चौका सम्भालो। हम गुरु महाराज के कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ेंगी। तुम्हें चुल्लू-भर पानी में डूब मरना चाहिए। अपने गुरु से विमुख होकर आपने अपने कुल का मुंह काल करवा लिया है।

माई भागो नाम की एक गुरु घर की श्रद्धालु ने तो बीड़ा ही उठा लिया था कि वह चालीस के चालीस गुरुसिक्खों को फिर गुरु महाराज की शरण में ले जाएगी। और अगर जान कुर्बान करनी पड़ी तो वे जान भी कुर्बान करेंगे। घर-घर स्यापे होते, कहा-सुनी होती। घर-घर लंघन किए जाते। न चूल्हे में आग, न घड़े में पानी। औरतें अपने मर्दों को, बहने अपने भाइयों को, मां अपने बच्चों को मुंह नहीं लगाती थीं।

इधर लाहौर में जब आलम की शहीदी की खबर पहुंची, वीरांवाली एक जूती उतारती, एक जूती पहनती। गुरु घर के लिए फिर विद्रोह की ज्वाला जैसे उसके भीतर भड़क रही हो। गज़ब का लावा फूटता; लाख-लाख गालियाँ सुनाती, उठते-बैठते बातें मारती रहती। भागां उसे समझाती, मां तुम

फरीदा की ओर देखो, जिसका मंगेतर इस लड़ाई में........मर-कट गया। बेचारी अनब्याही ही विधवा हो गई है। कब उसे कोई और रिश्ता मिलेगा, कब वह पहले को भूल सकेगी ? उनकी हवेली की ओर मुझसे देखा नहीं जाता।

ये दया और धर्म क्यों नहीं आ रहे ? वीरांवाली कहती, वे अब वहाँ क्या ढूंढ रहे हैं ? उन्हें अपने बच्चे नहीं पालने ? अपने घर नहीं बसाने ? गुरु का कमाया तो बहुतेरा खा चुके हैं ?

मां तुम ऐसे क्यों बोलती हो ? यह तुम क्यों भूल रही हो कि गुरु महाराज के अपने चार के चार लाल शहीद हो गए हैं ? उनकी वृद्ध माता जी इस सदमे को सहन न करते हुए ईश्वर को प्यारी हो गई हैं। जब उन्हें अपने पोतों की शहीदी की खबर मिली, वहाँ की वहाँ वे ढेरी हो गईं। भागां अपनी मां को समझा रही थी।

और फिर मैं क्यों जिन्दा हूँ ? मुझे मौत क्यों नहीं आती ? मैंने कौन से पाप किए हैं कि एक के बाद एक तीर मेरे सीने में भौंका जा रहा है ? इस उम्र में आलम ने मेरी बांह पकड़ी थी। वह भी छोड़ गया।

वह अपना जन्म सफल कर गया है। कहते हैं। चमकौर की गढ़ी तक गुरु महाराज की सेवा में हाज़िर था। जहाँ अजीत और जुझार दशमेश के दो लाल अपनी जान पर खेल गए, वहाँ उस जंग के मैदान में आलम चाचा ने शहीदी का जाम पिया। तुम्हें भगवान का शुक्र मानना चाहिए। इससे अधिक भाग्यशाली मौत कौन-सी हो सकती है ? उसका लहू हमारे कलगीधर के साहिबज़ादों के लहू से एकमेक हो गया होगा। मुझे ये बातें नहीं सुननीं, मुझे मेरा आलम चाहिए। मैं गुरु महाराज के यहाँ जाकर शोक करने बैठ जाऊंगी। मुझे मेरा आलम उन्हें लाकर देना होगा।

जब ऐसे उनके रोना पीटना मचा हुआ था, यह बुरी खबर सुनकर फरीदा उनके यहाँ आई। मौसी, कहाँ जाएगी ? सुनने में आया है कि सरहिन्द का सूबेदार वज़ीर खान फ़ौज लेकर आपके गुरु का पीछा कर रहा है। अगले तो उनकी अनख मिटाने पर तुले हुए हैं।

कौन जन्मा है मेरे गुरु की अनख मिटाने वाला ? वीरांवाली एक सिंहनी की तरह गरजी। अभी वह तलवार नहीं बनी जो मेरे गुरु पर वार कर सके। अभी वह बन्दूक नहीं बनी जो मेरे दशमेश की ओर चले, वीरांवाली गुस्से में लाल-पीली हो रही थी।

भागां अपनी मां की ओर देख-देखकर हैरान होने लगी। कभी तोला, कभी माशा। यह औरत अजीब थी। अभी जैसे गुरु महाराज को कोस रही थी और अभी कैसे उनके गुण गाने लगी थी।

फरीदा चोट खाई हुई समझदार औरत थी। एक उदास मनोदशा में कहने लगी, "मौसी हमें अल्लाह के आगे फरियाद करनी चाहिए, यह लड़ाई कभी हुआ ही न करे, लड़ाई तो कयामत होती है। प्रभु, लड़ाई किसी को न दिखाना। इससे बचकर रहना चाहिए। दुनिया की सारी मुसीबतें इस लड़ाई से ही शुरू होती हैं। मेरी ओर देख। मेरे जैसी भी कोई अभागन होगी ? बिना खिले कली तोड़ ली गई। मैं कहती हूँ, मेरा क्या गुनाह है ? फरीदा की आंखों में आंसू भर आए।"

वीरां आगे बढ़ी और उसने फरीदा को अपने कलावे में ले लिया। और फिर कितनी देर वे एक दूसरे को तसल्ली देती रहीं।

ईदम–आदम से लड़ाइयाँ होती रहीं हैं।

ईदम–आदम से शूरवीर जूझते रहे हैं, मरते रहे हैं।

ईदम–आदम से औरतें विधवा होती रही हैं।

ईदम–आदम से बच्चे यतीम होते रहे हैं।

ईसा को सूली पर लटकना पड़ा।

हज़रत मुहम्मद को एक से अधिक बार जंग में तलवार चलानी पड़ी।

गुरु नानक को कैद किया गया।

क्योंकि बदी एक सच्चाई है।

बदी गुरु अर्जुन देव महाराज के आदेश से मिटाई नहीं जा सकी।

बदी लहू मांगती है।

सबसे सजीला सबसे उत्तम,

लाल बिम्ब शूरवीर का लहू।

एक दो तीन चार हज़ार।

इस युग में हर किसी को अपना योगदान देना होगा। इस भण्डारे में हर किसी को अपना योगदान देना होगा।

जब तक लोग एक दूसरे के साथ बैठना नहीं सीखते। एक दूसरे का आदर नहीं करते, जब तक हमें बांट कर खाने का बल नहीं आता। जब तक हम लूट-पाट, छीना-झपटी का खात्मा नहीं करते, जब तक ईश्वर की एकता

को माना नहीं जाता, जब तक अल्लाह के एकेश्वर रूप को पहचाना नहीं जाता, जब तक अड़ौस-पड़ौस के मिलकर बैठना नहीं सीखते, लड़ाइयाँ होती रहेंगी।

फरीदा का सुहाग लुटता रहेगा।

वीरांवाली को विधवा होना पड़ेगा।

83

कांगड़ा में उस दिन पेड़ों के एक निर्जन से झुण्ड के नीचे बैठे सामने के वीराने को निहार रहे, दशमेश को एक-एक करके कुछ दरबारी कवि याद आ रहे थे, आनन्दपुर के उनके साथी जैसे एक-एक करके मूर्ति की तरह उनके नैनों के सामने से गुज़र रहे हों।

ये थे भाई पउपा सिंह। दूध-जैसी सफेद दाढ़ी। चेहरे पर झुर्रियां, नज़र कमजोर, पर आवाज़ वैसे की वैसी करारी। सिक्खी प्रति श्रद्धा वैसे की वैसी हिलोरे ले रही थी। मजाल है कहीं कोई सिक्खी मर्यादा की उल्लंघना हो जाए। भाई चउपा सिंह चार गुरु साहिबान जी की सेवा में रह चुके थे। उनके मां-बाप ने गुरु हरिराय जी को अपना बेटा सेवा के लिए भेंट किया था। गुरु तेग बहादुर जी के साथ वे पूर्व के दौरे पर भी गए थे। कलगीधर को तो उन्होंने बचपन में खिलाया था। उनका नाम ही खिलाने वाला चउपा सिंह पड़ गया था। फिर प्रौढ़ उम्र में गुरु महाराज की आज्ञा पाकर उन्होंने गुरु के सिक्खों के लिए रहतनामा तैयार किया। इसमें भाई देवा सिंह, भाई फतेह सिंह, भाई राम सिंह, भाई टहल सिंह और भाई ईशर सिंह जैसे विवेकी गुरुसिक्खों ने उनकी मदद की। जब 'रहतनामा' तैयार हुआ तो सिक्ख संगत की फरमाइश और भाई चउपा सिंह ने गुरु ग्रन्थ साहब में से हर मर्यादा के लिए प्रमाण ढूंढकर रहत जोड़े, उनके तैयार किए रहतनामे को, हजूरी रहतनामा करके जाना जाने लगा।

भाई चउपा जैसे ही बुजुर्ग भाई ननुआ जी अब दशमेश को याद आ रहे थे। बेशक भाई चउपा की तरह वृद्ध थे, पर उनके जैसी अड़क-मड़क भाई ननुआ जी में बिल्कुल नहीं थी। स्वभाव के वैरागी, किसी चीज़ से कोई अधिक लगाव नहीं। न खाने का चाव, न लगाने की लालासा। एक वैरागी की तरह विचरते। मजाल है आनन्दपुर की गहमा-गहमी की उन पर कोई झलक भी पड़ी हो। पंजाबी में उनकी असावरियाँ दशमेश को याद आ रही थीं :

सजण के वल नैण असाडे, रातीं डीहे खुले वे।
दरशन पूरे सदा हजूरे, वतण डुले डुले वे।
नरक सुरग तृण सुक्के वांगू, दित्ते बलदे चुल्हे वे।
ननुआं दीवा टिकहि न एक पल, जे चउ वाइया झूले वे।

*   *   *

पाइया घुम घुमे के सजण, अंझन साडे फेरा ए।
लूं लूं अन्दर हुई मुकीमी, कीता अपना डेरा ए।
धोखा संसा कोई न रहिउ, कोड़ी दुविधा केरा ए।
ननुआ आपि आरसी अन्दर, सच्चे सच्चा हेरा ए।

और अब अमृतराय लाहौरी गुरु महाराज के स्मृति पटल पर विचर रहे थे। अमृतराय जी ने दशमेश का आदेश पाकर महाभारत के सभा पर्व का उल्था किया था। गुरु महाराज उनके लाहौर शहर से प्रेम के कारण उन्हें चिढ़ाया करते थे। आखिर गुरु का लाहौर भी तो था, पर अमृतराय अपने लाहौर की कहानियाँ कहते न थकते थे, न हारते थे। जब उन्हें अवसर मिलता अपने शहर लाहौर की और लाहौर के साथ बहते दरिया रावी की उपमा की लड़ियाँ बांधने लगते :

वाचत पुरान कहूँ, नाचत नृतकारी
गावत है गीत कहूँ, मीठी धुन मोर ते,
कौतुक कहानी केलि जहाँ तहाँ हांसी खेल,
साधुन मैं मेल डर है न ठग चोर ते।
लोने-लोने रूप सभ भूप भेख देखियत
अमृत सहज सुख सांझ और भोर ते
रति पति भोग तहाँ रोग न वियोग सोग
पाइए क्रोर तउ न जाइये लाहौर ते।

(चित्र विलास)

लाहौर की प्रशंसा में अमृत राय, के ये बोल गुरु महाराज को याद आ रहे थे कि जैसे कोई कानों पर हाथ रखकर ऊंचा-ऊंचा आनन्दपुर साहिब की उपमा का गायन कर रहा कहीं आ निकला हो। यह हंसराम वाजपेयी था। खुला-खुला धड़ल्लेदार कवि हंसराम वाजपेयी फतेहपुर का रहने वाला था। हंसराम ने महाभारत के 'कर्ण पर्व' का अनुवाद करके दशमेश से साठ हजार टका पुरस्कार पाया था। पर आनन्दपुर की महिमा उनकी बहुत ही

प्रशंसनीय थी :

चार बरन चारों जहाँ, आश्रम करत अनन्द।
ताको नाम आनन्दपुर है, अनन्द को नन्द।

* * *

कौन बनारसी बास करै जिह बासक नाग हिये बिलसैं
औध के औसर नाथ भयो रघुनाथ के पाइन पाप नसै।
कर मुण्डन कौन सितासित मैं, जिह देख कै लोक रूदेव हसैं।
इम तेग बहादर नन्द जगे, किन गोबिन्द राय गुरु दरसै।

और अब टहकन दास गुरु महाराज के नैनों के सामने था। रंगीलदास, चोपड़ा का पुत्र। गुजरात के निकट जलालपुर नामक गांव के रहने वाले टहकन दास ने 'असुमेध पर्व' (अश्व मेघ पर्व) का अनुवाद किया था। उसकी पंजाबी में लिखी एक तिलंग काफ़ी गुरु महाराज को बड़ी अच्छी लगी थी :

इको विहड़ा, इको राह, मिलने दा लगे नहीं दाउ।
नेड़े का सुनेहा, मैनू सोने वांगू गालदा। रहाउ।
मंदीयाँ गवांडणी कोई आवहि नहीं गांडणी,
आख के सुनाई कैनू भेती नहीं हाल दा।
टहकन बिहारी हारी जिंद आन मैं तैथों वारी।
घिन्न के गइआ सी कोई ख्याल प्यारे लाल दा।

(राग तिलंग काफी)

अब दशमेश को नन्दराम की याद आ रही थी। नन्दराम दाराशिकोह के मुंशी वलीराम का बेटा जिसने 'कड़वा गोबिन्द सिंह' शीर्षक की एक लम्बी कविता लिखी थी जिसमें भंगाणी से चमकौर तक खालसे की लड़ाइयों का वृत्तांत कलमबद्ध किया गया था। नन्दराम हिन्दी, फारसी, रेख्तां आदि भाषाओं में कविता कहता था। गुरु महाराज को अभी उसका पंजाबी में लिखा एक छन्द याद आ रहा था :

जिस दिन यार विछोड़ा तेरा, सो दिन अज़लो भारी।
पल-पल विच विछोड़ा कुहंदां, अज़ल कुहे इक वारी।
आगे आई दरदां वध्धी, उतों इश्क तुसाडे साड़ी।
नन्दराम इक पलक विछोड़ा, उमर वंझांये सारी।

अचानक कलगीधर के चेहरे पर एक मुस्कान खेलने लगी। अब उन्हें हीर भट भी याद आ रही थी। हृष्ट-पुष्ट एक दिन दरबार में हाज़िर हुआ।

कहा, मुझे भी कविता पेश करनी हैं पर जब उसकी बारी आई, उठ खड़ा हुआ, हवा में बाजुओं को हिलाए जाए पर मुंह से कुछ नहीं बोल रहा था। ऐसे लगता जैसे वह किसी के साथ हाथा-पाई कर रहा हो, लम्बी उसांसे भर रहा हो। दरबार में हर कोई हैरान उसके मुंह की ओर देख रहा था। जब कुछ समय उसे ऐसे करते हुए गुज़र गया, तो गुरु महाराज ने पूछा, भई तुम तो कविता, सुनाने जा रहे थे, यह नाटक तुम क्या कर रहे हो ? हीर भट ने सुना और कहने लगा, हजूर, एक गैबरी योद्धा मुझसे आ चिपटा है और कविता नहीं पढ़ने देता, मैं उसे निपट रहा हूँ। यह सुनकर सभी हंस पड़े और फिर गुरु महाराज के आदेश पर हीर भट ने यह कवित्त पेश किया :

पास ठाडो भगरत, झुकत दरैरै मोहि,
बात न करन पाऊं महाँ बली वीर सों।
ऐसो अरि बिकट निकट बसे निस दिन
निपट निशंक सठ घेरै फेर भीर सों।
दारिद कपूत ! तेरे मरन बनयो है आज
करके सलाम विदा हुज कावि 'हीर' सों
नातुर गोबिन्द सिंह विकुल करैंगे तोहि
टूक टूक हूँ–है गाड़े दानव के तीर सों।

गुरु महाराज हीर भट का कवित्त याद करके बार-बार मुस्कराने लगते। कैसे-कैसे सज्जन साहित्यकार उन्होंने आनन्दपुर में इकट्टे कर लिए थे। सभी तितर-बितर हो गए थे। कोई कहीं, कोई कहीं, निकल गया था और कुछ सरसा नदी की भेंट हो गए थे।

84

वीरांवाली बाज नहीं आई। कुछ दिन बीतने पर वह अमृतधारी गुरुसिक्ख गठड़ी बांधकर तैयार हो गई। कहने लगी मैं दशमेश की सेना में शामिल होऊंगी। इस तरह के रंडापे के दुःख में जीने से आदमी लड़ाई में जूझता, बदी से टक्कर लेते हुए जान पर खेल जाए।

तेरा पुत्र, तेरा दामाद तुम्हें मिलने आ रहे हैं। भागां अपनी मां को समझाती।

उन्हें गुरु महाराज का साथ नहीं छोड़ना। मैं उन दोनों को जानती हूँ। वीरांवाली इरादे की पक्की थी। यह कैसे हो सकता है ? आलम चाचा के अंतिम शोक के समय वे ज़रूर आयेंगे।

उन्हें नहीं आना। मुझे ही जाना होगा। वीरांवाली हमेशा अपनी मनमर्ज़ी करके रहती थी। अगले दिन चूना मण्डी गुरुद्वारे की साध-संगत में गई, अपना साथ ढूंढकर लाहौर से चलने का फैसला कर आई।

जाने से पहले उठती-बैठती अपने दोहते को लेकर बैठ जाती और उसे समझाने लगती—तेरा एक भाई दिल्ली में है। तुम्हारे मामा का पुत्र। तुमसे कुछ महीने बड़ा है। तूं उसे अभी नहीं मिला। आगे-पीछे तुम्हारा मेल हो जाएगा। चाहे वह लाहौर आए, चाहे तुम दिल्ली जाओ। तुम्हें कोई अलग नहीं रख सकेगा।

तुम्हारा पिता जिसे भी तुमने अभी देखा नहीं भाई दुनीचन्द की औलाद है और तुम्हारा दिल्ली वाला भाई भाई मूला के खानदान में से है। भाई दुनीचन्द लाहौर वासी थे और भाई मुल्ला स्यालकोट में रहते थे। दोनों भाग्यशाली थे, गुरु बाबा नानक जी के उन्हें दर्शन हुए थे, गुरु बाबा नानक से उनका वार्तालाप भी हुआ था।

तुम्हें पता है, इस हवेली में सतगुरु नानक आए थे ? उस सामने के कमरे में जहाँ हम पोथी का पाठ करते हैं, उन्होंने विश्राम किया था। भाग्यशाली है यह आंगन। भाग्यशाली ये दीवारें और कोठे हैं, जिनमें बाबा जी ने चरण डाले।

पर तुम्हारे पूर्वज भाई दुनीचन्द जिसके सात झण्डे झूलते थे, जिसके घर चारों ओर उथल-पुथल थी, बाबा जी की शिक्षा से, अनभिज्ञ रहा, पैसे का इतना मान था, सरकार के दरबार में इतनी पूछ थी उसकी, उसे समय कहाँ था इन बातों के लिए।

ऐसे ही तेरे दिल्ली वाले मामा का सबसे बड़ा भाई मूला गुरु बाबा नानक को मिला था। मिलकर फिर बिछड़ गया। गुरु महाराज उसे लेने आए, यह सोचकर कि कहीं वह उनके साथ ही न चल पड़े, उसकी पत्नी ने अपने घरवाले को उपलों वाले कोठे में छिपा दिया और जब बाबा जी ने उसे आवाज़ दी, अन्दर से कह दिया, वह तो बाहर गया हुआ है। इधर भाई मूला की पत्नी ने बाबा जी के साथ यह झूठ बोला, उधर गोबर वाले कोठे में भाई मूला को सांप ने डस लिया और उसकी वहीं मौत हो गई। वह बाहर चला गया।

बिल्कुल ऐसे ही दुनीचन्द की हवेली में से जाने के समय गुरु बाबा नानक भाई दुनीचन्द को एक सुई पकड़ा गए। कहने लगे, अगले जहान जब

हमारी मुलाकात हुई, यह सुई मुझे तुम वापिस कर देना। मेरी अमानत अपने पास रख लो। उस रात जब भाई दुनीचन्द ने अपनी पत्नी से इसका ज़िक्र किया तो उसकी घरवाली उससे पूछने लगी कि सुई अपने साथ वह कैसे ले जाएगी ? तो फिर उसका सारा धन दौलत, वह सब कुछ यहीं का यहीं रह जाएगा ? भाई दुनीचन्द की आंखे खुली की खुली रह गईं। पर बाबा नानक तो जा चुके थे। वे तो दूर निकल चुके थे। जोगी और परदेसी कभी मुड़कर हाथ आते हैं ?

इन दो परिवारों का अभी कल्याण होना है। दसवीं पातशाही गुरु गोबिन्द सिंह जी की सेवा में तुम्हारे पिता भाई दया सिंह और तुम्हारे मामा भाई धर्म सिंह अपने पूर्वजों के कल्याण के लिए प्रार्थी हैं। दिन-रात संघर्ष कर रहे हैं। ईश्वर करे उनका संघर्ष सार्थक हो। नहीं तो यह जिम्मेवारी तुम्हें निभानी होगी। मेरे महताब और मेरे सुक्खे को।

उठते-बैठते इस प्रकार की उधेड़बुन करती रहतीं। जब उसे मौका मिलता बच्चे को लेकर बैठ जाती।

एक दिन इसी प्रकार कुछ बच्चे को समझा रही थी कि उसकी दादी माला ने सुना और भागां से कहने लगी, यह औरत बच्चे से किस प्रकार की बातें करती रहती है ? पांच वर्षों के बालक को भला इस प्रकार के बोल क्या लगेंगे ?

कुछ दिन पहले इसी प्रकार कुछ फरीदा ने भी भागां से कहा था।

भागां सोचने लगी, सचमुच उसकी मां का सिर फिर गया था। जबसे आलम की शहीदी के बारे में उसने सुना था, उल्टी-सीधी बातें करने लगी थी। दिन में दस बार नहाती। मजाल है किसी का साया भी उसके ऊपर पड़ जाए। रोज़ गठड़ी बांधती, फिर खोल देती। अब तो चूना मण्डी के गुरुद्वारे साध-संगत में अरदास भी करवा आई थी।

अगली सुबह तो उसने जाना ही जाना था। उसे कोई रोक नहीं सकता।

उस दिन शाम को अंधेरा पड़ रहा था कि रहरास साहिब का पाठ करके वीरांवाली फिर बच्चे को लेकर बैठ गई।

यह तो मैंने तुम्हें बताया ही नहीं, कि बाबा नानक ने क्यों अवतार लिया ? क्यों उन्हें जरूरत पड़ी इस जग में आने की ? उन दिनों में लोधी पठानों का राज था, जिन्होंने अंधेरगर्दी मचाई हुई थी। जुल्म और भ्रष्टाचार

की काली अन्धेरी रात थी। बाबा नानक ने स्वयं कहा है :

हउ भाल विकुन्नी होई
अन्धेरे राहु न कोई।

राजा प्रजा को लूट रहे थे जैसे बाड़ ही खेत को खाने लगे। भाई गुरुदास जी ने इस बारे में लिखा है :

कल आई कुते मूही, खाज होआ मुरदार गुसाई।
राजे पाप कमांवदे, उल्टी बाड़ खेत को खाई।
परजा अन्धी ज्ञान बिन, कूड़, कुसत मुखहू अलाई।

बाहर इतना अंधेरा था। कहीं रोशनी की किरण नहीं दिखाई देती थी। इसलिए गुरु बाबा अपने आप में खोए रहने लगे। इस तरह उन्हें अपने भीतर प्रकाश दिखाई दिया। एक झलक रोशनी की और गुरु महाराज पुकार उठे:

ना कोई हिन्दू; ना कोई मुसलमान। गुरु बाबा के इस संदेश को सुनकर बहुत सारे लोग उनके पीछे चल पड़े। गुरुसिक्खी का यह परिवार बढ़ता गया, फैलता गया। न कोई हिन्दू; न कोई मुसलमान। सभी इन्सान हैं। गुरु नानक के बाद गुरु अंगद, फिर अमरदास, गुरु रामदास और गुरु अर्जुन देव। सिक्ख संगत के बढ़ते, फूलते इस परिवार को देखकर हकूमत के हाथ-पांव फूल गए। और मुगल हुकमरान ने गुरु अर्जुन देव जी को बुला भेजा और यहाँ के किले में बंदी बना दिया। और फिर इसी शहर लाहौर में यातनाएं देकर उन्हें शहीद कर दिया।

उनके बाद गुरु गद्दी पर बैठे उनके साहिबज़ादे गुरु हरगोबिन्द जी ने पीरी के साथ मीरी का रास्ता भी अपनाया। उन्होंने दो तलवारें ग्रहण की—एक पीरी की एक मीरी की। उन्होंने मुगल फ़ौज से चार लड़ाइयाँ लड़ीं, चारों में जीत प्राप्त की। चारों में बदी की, अन्याय की लूट-खसूट की हार हुई। इतना खून बहा, इतने आंगन उजड़े, इतनी पंजाबिनें विधवा हुईं, इतने बच्चे यतीम हुए कि गुरु महाराज सब कुछ छोड़-छाड़ कर शिवालिक के पहाड़ों में कीरतपुर जा बसे। वे और नहीं लड़ेंगे, उन्होंने फैसला किया। एकांत में ईश्वर को स्मरण करेंगे और बस।

यह देखकर मुगलों को जैसे चिढ़ हो गई। वह तो सारे देश को, हिन्दू प्रजा को मुसलमान बनाना चाहता था। गुरु बाबा नानक ने तो कहा था, न कोई हिन्दू; न कोई मुसलमान। सभी इन्सान हैं। एक ईश्वर एक अल्लाह की औलाद और इधर मुगल तिलक मिटा रहा था, जनेऊ उतार रहा था। यह

सिलसिला कश्मीर से शुरू हुआ। कश्मीर का सूबेदार सवा मन जनेऊ हर रोज़ उतारकर मुंह जूठा करता था।

कश्मीरी पण्डितों का एक जत्था नौंवे पातशाह गुरु तेग बहादुर जी के पास फरियाद लेकर आया। गुरु महाराज ने अन्याय का डटकर मुकाबला किया। पर मुगल तो सारे हिन्दुस्तान को दारूल इस्लाम बनाना चाहता था। मन्दिरों और शिवालयों को मस्जिदों और मदरसों में बदला जा रहा था। वह तो हमारी पहचान खत्म करने जा रहा था। इस अन्याय को बढ़ाने के लिए गुरु तेग बहादुर जी को फिर शीश की कुर्बानी देनी पड़ी।

यह लड़ाई आज तक जारी है। नौंवे पातशाह के बाद गुरु गोबिन्द सिंह, मेरा कलगीधर इस जंग को जारी रखे हुए हैं। तुम्हारे पिता और तुम्हारे मामा भाग्यशाली हैं। वे गुरु महाराज के अंग-संग रहते हैं। यह लड़ाई न्याय के लिए, भाईचारे के लिए है। सह अस्तित्व के लिए है, मिलजुल कर रहने के लिए हैं। गुरुसिक्खी की पहचान की लड़ाई। किसी की किसी पर निर्भरता नहीं होगी जिससे हर कोई जीए और जीने दे। कोई ऊंच नहीं, कोई नीच नहीं। भक्त कबीर ने कहा है :

> अवलि अलह नूर उपाइया, कुदरति के सभ बन्दे
> एक नूर ते सभ जगु उपजिया, कउन भले को मन्दे।
> लोगा भरमि न भूलह भाई।
> खालिकु खलकु, खलक महि खालिकु।
> पूरि रहिउ सब्र ठाई ॥ रहाउ ॥

ऐसे शबद का उच्चारण करती करती वीरां वाली, दूध जैसे सफेद बालों वाली कानों पर हाथ रखकर ऊंचे स्वर में गाने लगी। गाते-गाते उसने सामने बांधकर रखी अपनी गठड़ी उठा ली और फिर नशे में, एक सरूर में, जैसे उसमें कोई दैवीय शक्ति उतर आई हो, वह घर से बाहर निकल गई। किसी की मजाल नहीं हुई उसे रोक पाए। सारा परिवार हक्का-बक्का जैसे किसी पर टोना किया हो, बिटर-बिटर उसकी ओर देख रहा था। दीवानों की तरह वह गा रही थी :

> माट्टी एक अनेक भांति करि, साजी साजन हारे।
> न कछु पोच माटी के भांडे, न कछु पोच कुंभारै।
> सभ महि सचा एको सोई
> तिसका कीआ, सभु कछु होई।

हुकमु पछानै सु ऐको जानै, बन्दा कहीऔ सोई।
अलहु अलखु न जाई लखिआ गुर गुड़ दीना मीठा
कहि कबीर मेरी संका नासी, सरब निरंजनु डीठा।

(प्रभाती—कबीर जी)

ऐसे गा रही वीरांवाली सामने गली में से निकल गई। उसका गायन सुनकर अड़ौसी-पड़ोसी अपने घरों से बाहर निकल आए। खिड़कियों-झरोखों में से झांकने लगे। एक उन्माद में, एक उल्लास में शबद गा रही वीरां दूर निकल गई।

नानी गई ? उसके दोहते ने अपनी मां की ओर देखते हुए कहा। तुम्हारी नानी अब कभी नहीं आएगी। भागां के होठों में से ये बोल निकले और झर-झर करते दो आंसू उसकी पलकों में अटक गए।

85

इधर वीरां वाली जैसे अनगिनत गुरुसिक्ख दशमेश के दीवाने थे। अपना तन, मन, धन गुरु घर के लिए कुर्बान करने के लिए उतावले थे, उधर गुरु महाराज बिल्कुल अकेले कसबा दीनां में कुछ दिन से ठहरे हुए थे। डल्ला नाम का केवल एक ही गुरुसिक्ख उनकी सेवा में था। जब उसने सुना कि सरहिन्द का नवाब गुरु महाराज का पीछा कर रहा है, उसके गुप्तचर गुरु महाराज को ढूंढ रहे थे, डल्ला भी कोई बहाना बनाकर उन्हें छोड़ गया। यह न जानते हुए कि गुरु महाराज ने अपने निकटवर्ती गुरुसिक्खों, मान सिंह आदि को खुद आगे-पीछे गुरु प्यारे इकट्ठे करने के लिए भेज रखा था। एक मुसलमान फकीर ने दशमेश को इस रूप में अकेला देखकर ताना मारा :

ना डल्ला ना मल्ला।
ते गुरु इक्ल्ला।

यह सुनकर गुरु महाराज के होठों पर मुस्कान खेलने लगी और उन्होंने फरमाया :

गुरु नाल अल्ला
गुरु कदे न इक्ल्ला।

वज़ीर खान लश्कर लेकर उनका पीछा कर रहा था, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता था। यह एक असलियत थी। गुरु महाराज दीनां से चलकर आगे बढ़ते गए। उधर गुरुसिक्ख उनकी सेवा में हाज़िर होने के लिए इकट्ठे हो गए थे। माई भागों बेदावा करने वाले गुरुसिक्खों को साथ लिए गुरु

महाराज की ओर चल पड़ी थी और जत्थे जहाँ-तहाँ से दशमेश की सेवा में फिर जुड़ने के लिए आ रहे थे।

इधर ढिलवां नाम के एक गांव में जब गुरु महाराज पहुंचे, पृथिए के खानदान में से सोडी कौल नाम के एक ग्रामीण ने दशमेश को नीले वस्त्रों में देखा और उसका मन पिघल गया। उसके खानदान ने गुरु घर से बड़ा अन्याय किया था। कहाँ सिक्ख गुरु साहिब अकाल तख़्त पर विराजमान होते थे, कहाँ उनके शीश पर छत्र झूलते थे और कहाँ अब वे शहर-दर-शहर, गांव-गांव जैसे भटक रहे हों। उन्होंने तो उनका हरिमन्दिर उनसे छीन लिया था। जहाँ-तहाँ महलों पर कब्ज़ा कर लिया था। पोथी को हथिया लिया था। सबसे अधिक जुल्म जो उन्होंने किया था, वह उनके विरुद्ध मुगल सरकार की यह मुखबरी थी। पंथ की इस दुर्दशा की सारी जिम्मेवारी उन पर थी।

सोडी कौल को अपने आप पर बहुत ग्लानि हुई। उन्हें तो चुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिए था और पहली बात, वह गुरु महाराज के यहाँ हाज़िर हुआ, हाथ जोड़े, एक-एक ज़्यादती के लिए, जो उसके बड़े बुजुर्गों ने गुरु घर से की थी, माफियाँ मांगता रहा। उसने गुरु महाराज को अपने हाथ से काते रेशम का एक जोड़ा पेश किया। कुदरती रंग का सुच्चा रेशम। शरण में आए की लाज रखने वाले गुरु महाराज ने सोडी कौल का श्रद्धा में भेंट किया रेशमी जोड़ा स्वीकार किया। इस पहुंचे पीर ने अपने नीले बाने को उतारा और उसे चीर-चीर कर दिया। ऐसे उस जोड़े को फाड़ रहे गुरु महाराज ने हंसते-हंसते गुरु बाबा नानक की बनाई एक तुक पर कुछ इस प्रकार लय लगाई :

नील बसत्र लै कपड़े पाड़े।
तुरक पठाणी अमलु वाया।

यह तो गुरुबाणी को बिगाड़ना था। एक पल के लिए उनके मन में ख्याल आया। पहले एक बार 'मिट्टी मुसलमान की' की जगह मिट्टी बेईमान की' कहने पर रामराय को गुरु घर से बेदखल कर दिया गया था। गुरु हरिराय जी ने अपने बेटे से नाता तोड़ लिया था।

यह ख्याल आते ही दशमेश के मुखड़े पर फिर एक मुस्कान खेलने लगी। कौन-सी सज़ा थी जो उन्हें मिलनी बाकी थी ? 'आपे गुरु चेला' कलगीधर जी की नज़रों के सामने से एक-एक कहर जिसमें से वे गुज़रे थे जैसे तैर रहा हो।

दिल्ली के चांदनी चौक में एक आदमी की तरह उनके पिता गुरु तेग बहादुर जी के शीश का उनकी पवित्र देह से तमाशबीनों के सामने तलवार के एक ही वार से अलग होना और फिर खून की तलैया में धीरे-धीरे ठण्डा हो जाना।

उनके साहिबज़ादे अजीत का चमकौर की जंग में दुश्मन के छक्के छुड़ाते हुए नेज़े से घायल हो जाना। फिर मुगल फ़ौज का उस पर टूट पड़ना और उनकी आंखों के सामने उनके लाल के शरीर को टुकड़े-टुकड़े कर देना। उसका कीमा बना देना।

और फिर बाबा जुझार सिंह का गढ़ी से बाहर निकलने से पहले एक घूंट पानी के लिए कहना, उसका गला सूख रहा था, पर जब पानी का कटोरा लाया गया, उनका यह कहकर जंग के मैदान में उतर जाना कि अब पानी मैं अपने भाई के पास पहुंचकर पिऊंगा।

या फिर बाबा जोरावर सिंह और बाबा फतेह सिंह-दो मासूम जानों को सरहिन्द में दीवार में चिनवाए जाना। किसी ने उन्हें बताया था जब दीवार पर रद्दे लग रहे थे, साहिबज़ादा फतेह सिंह का शीश क्षत-विक्षत होता देखकर बाबा जोरावर सिंह की पलकों में आंसू भर आए थे। बाबा फतेह सिंह छोटा था और उनका दम पहले निकल जायेगा, उन्हें इसकी चिंता थी।

और वह चित्र, उनकी माता गुजरी जी की झोली में उनके दो पोतों के शीश लाकर किसी का रखना, उनका एक नज़र आकाश की ओर देखना और फिर अपने श्वास छोड़ देना। जैसे उड़कर अपने लाड़ले पोतों के पास पहुंच गए हों।

गुरु महाराज अपनी आंखों के सामने हाथ फेर कर जैसे इस तरह के चित्रों से धूल पौंछ रहे हों, पर कुछ चित्र थे जो बरबस उनके नेत्रों के सामने आ-जा रहे थे।

ये थे माता सुन्दरी जी और माता साहिब देवां जी। फटे-पुराने मैले-कुचैले पहरावे में वह भेष बदलकर भाई मनी सिंह जी के साथ हरिद्वार जा रही थीं। वहाँ से उन्हें दिल्ली जाना था। कलगीधर को भी पता था, माता सुन्दरी और माता साहिब देवां जी भी इस सच्चाई को जानती थीं कि ऐसे जा कर पता नहीं कब वे दशमेश के फिर दर्शन कर सकेंगी। इस उथल-पुथल में जिसका वे लोग शिकार थे, कुछ भी हो सकता था। शायद ही कभी गुरु महाराज दिल्ली आयेंगे, न इनका उन्हें मिलना सम्भव होगा। आनन्दपुर को छोड़कर

वे जायेंगे तो कहाँ ? माता साहिब देवां जब दशमेश के चरणों पर गिरकर उनके अंग-अंग को चूम रही थीं, माता सुन्दरी जी ने अपने सिरताज के मुखड़े की ओर देखा और उनकी आंखें भर आईं थीं। वह दिन जब उनके पहले साहिबज़ादे का जन्म हुआ था, जैसे कल की बात हो। कैसा वह दिन था ! कितनी खुशियां, कितने मल्हार, कितनी गहमा-गहमी थी आस-पास। फिर बाबा जुझार सिंह, फिर बाबा जोरावर सिंह। फिर बाबा फतेह सिंह, हर कोई खुर्द-बुर्द हो गया था; कोई कहीं था कोई कहीं था। क्या मैं अपने सिरताज के पास नहीं रह सकती ? उनकी पलकों में लटके आंसू फरियाद कर रहे थे। नहीं, नहीं। फिर आप-ही-आप उनके अन्दर से जैसे आवाज़ सुनाई दे रही हो।

और कौन-सी तकलीफ़ थी जो उन्हें पहुंचाई जानी बाकी थी ? और कौन सा क्लेश था जो उन्होंने भोगना था ? और कौन-सा दण्ड था, जो उन्होंने भरना था ?

इन सोचों में दशमेश डूबे हुए थे कि भाई मान सिंह उनके ठिकाने पर आ पहुंचे। पर जो खबर वे लाए थे वह कोई अच्छी नहीं थी। सूबेदार वज़ीर खान अपने फ़ौजी दस्तों के साथ जल्दी-जल्दी गुरु महाराज का पीछा कर रहा था। जैसे उनकी राह का पीछा कर रहा हो। कुछ गुरुसिक्खों के दस्ते जो गुरु महाराज की ओर आ रहे थे, उनके साथ उनकी झड़प भी हो चुकी थी। जहाँ कहीं गुरु प्यारे शहीद हुए पड़े थे, मूलियों-गाजरों की तरह कटे-फटे।

और फिर गुरु महाराज की नज़र भाई मान सिंह की दस्तार पर गई। आते ही उसने गुरु महाराज के फाड़े नीले जामे का एक टुकड़ा श्रद्धावश अपने साफ़े के गिर्द लपेट लिया था। गुरु महाराज ने देखा और कहा, 'जैसे कोई निहंग हो' तुम तो ऐसे लग रहे हो। उस दिन से निहंग सिंह अपनी दस्तार के साथ नीले साफे को जरूर सजाते आ रहे थे।

86

वज़ीर खान के साथ झड़प को टाला नहीं जा सकता था। जैसे सरहिन्द का सूबेदार उनका पीछा कर रहा था, मुगल सेना से फिर टक्कर अवश्य होनी थी, पर दशमेश जैसा पैनी दृष्टि वाला जरनैल, वे चाहते थे कि ऐसी जगह पर यह लड़ाई लड़ी जाए जहाँ मुगलों के पूरी तरह दांत खट्टे किए जा सकें और कुछ शूरवीर भी जिनकी गुरु महाराज को प्रतीक्षा थी।

अभी पहुंचे नहीं थे।

धर्म सिंह लाहौर अपनी मां वीरां वाली और बहन भागां को मिलने गया था। लाहौर पहुंच कर उसे पता लगा वीरां वाली तो गुरु महाराज के दर्शनों के लिए माझे के एक जत्थे के साथ पहले ही निकल चुकी थी।

कुछ दिन लाहौर रुक कर उसके कानों में यह भनक पड़ी कि वज़ीर खान फिर गुरु महाराज पर हमला करने के लिए फिर उतावला हो रहा था। इस तरह के हालात में धर्म का वापिस गुरु महाराज के पास पहुंचना जरूरी था और मां वीरांवाली की भी उसे खबर लेनी थी। लाहौर में उन्हें बताया गया था कि उनकी मानसिक हालत ज्यादा अच्छी नहीं थी। आलम सिंह की शहीदी का सुनकर उनका मानसिक सन्तुलन बिगड़ गया था।

धर्म जैसे उन्हीं पांवों लौट गया। हफ़्ता-दस दिन ही लाहौर टिक सका था। तू आया किधर से, चल किधर पड़ा ? उठते-बैठते भागां शिकायत करती। पर गुरु महाराज के लिए श्रद्धा, धर्म मज़बूर था। वह नहीं रुका।

गुरु महाराज को बताया गया कि लक्खी जंगल लांघकर दक्षिण-पूर्व की ओर एक बीहड़ रेगिस्तान है। इस उजाड़ में खिडराणा नाम का एक गांव है, जहाँ पानी मिलता है और कोसों तक बूंद पानी की कहीं नहीं मिलता था। दशमेश जल्दी-जल्दी वहाँ पहुंचे और गांव के बाहर एक टिब्बे पर मोर्चा बना लिया। वहीं उन्होंने उस वर्ष (1705 ई०) की बैसाखी मनाई और आनन्दपुर के सुहाने दिनों को याद किया। इतने में इक्का-दुक्का गुरुसिक्ख अपने गुरु महाराज को ढूंढते हुए पहुंचने शुरू हो गए। वे चालीस सिक्ख जो आनन्दपुर के घेराव के समय गुरु महाराज को बेदावा देकर छोड़कर आए थे, चबाल की माई भागों की कमान में पहुंचे। माई भागों मरदाने लिबास में उनकी अगुवाई कर रही थी।

गुरु महाराज की शरण में आने से पहले उन्होंने खिडराना गांव के बाहर ही एक रात विश्राम करने का फैसला किया। मुश्किल से उन्होंने कमर बंद ढीले किए थे कि उन्होंने देखा सामने क्षितिज पर धूल का एक गुबार जैसे चढ़ रहा हो। यह तो मुगल लश्कर था। वज़ीर खान की अगुवाई में हमला करने के लिए आ रहा था।

यह देख, उन्होंने आगे-पीछे झाड़ों को चादरों से ढक दिया और 'बोले सो निहाल सति श्री अकाल' के जयकारे गुंजाने शुरू कर दिया। इतना शोर था कि कान पड़ी आवाज़ सुनाई नहीं देती थी।

मुगल जब आगे बढ़े, झाड़ों पर पड़ी चादरों को देखकर उन्होंने सोचा दशमेश के पास तो बड़ी भारी फ़ौज थी। साथ ही जयकारों की गूंज जैसे उनके दिल दहला रही हो।

उधर टिब्बे के अपने मोर्चे से गुरु महाराज तीरों की बौछार करने के लिए तैयार बैठे थे। थके हारे मुगल फ़ौजी यह सोच भी नहीं सकते थे कि ऐसे उन्हें पहुंचते ही जंग में कूदना पड़ेगा।

माई भागो की कमान में गुरु सिक्ख जान तोड़कर लड़े। उधर गुरु महाराज टिब्बे के अपने मोर्चे से तीर बरसाए जा रहे थे। एक तो सारे दिन का सफर, दूसरे भूखे-प्यासे, मुगल सारी रात मरते-मारते रहे। घमासान लड़ाई हुई। टिब्बे से छोड़े दशमेश के तीर जैसे मौत बरसा रहे हों, जिधर-जिधर जाते मुगलों को ढेरी करते जाते।

वज़ीर खान को इस तरह की टक्कर का आभास भी नहीं था। उसका अपना घोड़ा प्यास के कारण लड़ाई के मैदान की ओर मुंह भी नहीं कर रहा था। यही हाल उसके सिपाहियों का था। आखिर हार कर उन्होंने मैदान छोड़कर लौटने का फैसला किया।

सुबह हुई तो मुगल फ़ौजियों का कहीं नामो-निशां नहीं था। सुबह के झुकपुके में वे लोग जान बचाकर लौट गए थे।

इस बात से अंजान कि मुगल फ़ौज को मुंह की खिलाने वाले वही चालीस गुरुसिक्ख थे जो कभी उनसे विमुख होकर घरों को लौट गए थे, गुरु महाराज टिब्बे से उतर कर नीचे आए तो माई भागों ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। गुरु महाराज को बताया गया कि ये वही माझे के गुरु सिक्ख थे जो बेदावा देकर अपने-अपने घर लौट गए थे। और आज फिर गुरु महाराज की शरण आ रहे ऐसे जान पर खेल गए थे। सारे के सारे ढेरी हुए पड़े थे। जगह-जगह पर लहू की लीकें बनी हुई थीं। गुरु महाराज आगे बढ़े तो उन्हें एक घायल की छाती धड़कती हुई दिखाई दी। उसके श्वास आ-जा रहे थे। झुककर गुरु महाराज ने उसकी ओर देखा। यह तो महाँ सिंह था। उन्होंने चालीस गुरुसिक्खों को आनन्दपुर के किले में रोक रखा था। पर जब उसकी एक नहीं चली तो अपने साथियों के साथ वह भी निकल गया था। गुरु महाराज की झलक से जैसे महाँ सिंह में पल भर में जान आ गई हो। उसकी आंखों में रोशनी की किरण दिखाई दी। यह तो उसके कलगीधर थे, उसके हाथ जुड़ गए।

गुरु महाराज ने महाँ सिंह को प्यार किया, आशीष दी। महाँ सिंह की आंखों से आंसुओं की जैसे झड़ी लगी हो। दम तोड़ रहा, महाँ सिंह गुरु महाराज से अरज कर रहा था........बाजां वाले, मेरे शहंशाह, अगर रूठे हुए हो तो हमें सब को माफ़ कर दो। हमसें भूल हुई। हमारी बिगड़ी बनाओ।

गुरु महाराज महाँ सिंह की श्रद्धा देखकर भावुक हो रहे थे। सतगुरु, अगर कृपालु हो तो वह बेदावा मेंरे सामने फाड़ दो ताकि मेरे अटके हुए श्वास निकल सकें। महाँ सिंह आगे-पीछे ठण्डे हुए अपने साथियों में पड़ा प्रार्थना कर रहा था। गुरु महाराज ने वहाँ के वहाँ खड़े, अपने ठिकाने से बेदावे का वह दस्तावेज मंगवाया और महाँ सिंह के सामने उसे फाड़ दिया। इधर गुरु महाराज ने बेदावे के कागज़ के दो टुकड़े किए, उधर महाँ सिंह ने अपने श्वास त्याग दिए।

खिडराणा की यह झपट आखरी लड़ाई थी जो दशमेश ने मुगल लश्कर से लड़ी।

माझे के शहीद हुए उन चालीस गुरुसिक्खों को गुरु महाराज ने मुक्त की पदवी दी। उनके संस्कार का प्रबन्ध कर रहे थे कि धर्म सिंह कुछ गुरु सिक्खों के साथ आ पहुंचा।

गुरुसिक्खों के संस्कार के बाद गुरु महाराज का इरादा था कि खिडराणा के तलाब को और गहरा किया जाए और चालीस मुक्तों की स्मृति में उसका नाम मुक्तसर रखा जाए।

आगे-पीछे ठण्डी हुई लाशों को सम्भाल रहा भाई धर्म सिंह एक पोखर की ओर बढ़ा और सहसा उसके कदम रुक गए। वह ठिठक गया। उसकी टांगे कांपने लगीं। मरदाने पहरावे में यह वीरांवाली थी।

इतने में गुरु महाराज भी उधर आ निकले। धर्म को ऐसे स्तब्ध हुआ, एक लाश के पास खड़ा देखकर, वे आगे बढ़े और पूछा-यह कौन है ?

शहीद आलम सिंह की पत्नी है सच्चे पातशाह। धर्म ने रुंधी आवाज़ में कहा।

और मेरे धर्म की मां ! गुरु महाराज के कहा और धर्म को अपने बाहु-पाश में ले लिया।

87

जो चिट्ठी दशमेश ने औरंगजेब को चमकौर की जंग के बाद लिखी, पता नहीं उसे मिली थी कि नहीं। इतने में आलमगीर का एक और हलकारा

उनकी ओर आया। ऐसे लगता, शहंशाह गुरु महाराज को मिलने के लिए आतुर थे।

बादशाह की चिट्ठी देखकर गुरु महाराज को उसके जुल्म देखकर जैसे एक तरह की अति ही हो गई हो। उन्होंने चिट्ठी को एक ओर रख दिया। जवाब देने का उनका कोई इरादा नहीं था। कुछ दिन बाद उन्हें खबर मिली कि शहंशाह सचमुच उन्हें मिलने का इच्छुक था। और जो कुछ चमकौर में हुआ था, उससे शर्मिंदा था। इसका प्रमाण, शहंशाह ने लाहौर के सूबेदार ज़बरदस्त खान को बदलकर अजमेर भेज दिया। लाहौर की सूबेदारी के लिए अपने बेटे मुअज़्ज़म को तैनात किया। मुअज़्ज़म गुरु घर का श्रद्धालु था। साथ ही औरंगजेब ने लाहौर और सरहिन्द के सूबेदारों को हिदायत भेजी कि गुरु महाराज को पूरे राजकीय सम्मान के साथ दरबार में भेजा जाए। खुद औरंगजेब अभी भी दक्षिण में जूझ रहा था। 90 वर्षों की आयु, औरंगजेब को अपना अंत जैसे निकट आ रहा दिखता हो।

इस तरह के हुक्मरान के मुंह लगने का दशमेश का कोई इरादा नहीं था। पर यह देखकर कि दुश्मन बार-बार दोस्ती का हाथ बढ़ा रहा है, वे इसे तिरस्कृत करना भी नहीं चाह रहे थे। साथ ही गुरु महाराज आलमगीर को उसके सूबेदारों की मक्कारी, उसके अपने झूठ, फ़रेब और उनकी गलत नीतियों से परिचित करवाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने शहंशाह से मुलाकात की न सोचकर, उसे चिट्ठी लिखने का फैसला किया।

यह चिट्ठी जो 'जफ़रनामा' नाम से जानी जाती है, एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ है। फारसी शेरों में चित्रित गुरु गोबिन्द सिंह जी ने इस लम्बी 'दास्तान' में औरंगजेब को ऐसा फटकारा है जो दशमेश जैसा शूरवीर ही फटकार सकता था। ऐसे उसकी गलत नीतियों से उसे परिचित करवाया है जैसे कलगीधर जैसे महापुरुष ही कर सकते थे। उनके बीच के शायर ने जैसे हक और न्याय का शीशा शहंशाह के सामने रख दिया।

जैसे उस समय का रिवाज़ था, दशमेश ने अपनी चिट्ठी को अकाल पुरुष के मंगलाचरण के साथ शुरू किया। ईश्वर जो करामाती कमाल रखता है, जो हमेशा कायम रहने वाला है, बख्शनहार है; पालनहार हैं, दुनियावी बन्धनों से मुक्ति दिलवाने वाला है। रहीम है, करीम है :

कमालि करामात कायम रहीम
रज़ा बख्शो राज़िक रिहा कुन रहीमा ॥

ऐसे ही आगे चलकर लिखते हैं, जिसके पास कोई साज़ो-सामान न हो, न कोई फ़ौज हो, न कोई जाजम-बिछौने हों, ईश्वर उसे भी अलौकिक खुशियाँ प्रदान करता है।

ना साज़ो न बाज़ो न फ़ौजो न फरश
खुदाबन्द बख्शिन्दे ऐशो अरश ॥ 4 ॥

और आगे चलकर अकालपुरुष की प्रशंसा स्तुति करते हुए फरमाते हैं कि ईश्वर ब्रह्माण्ड का साहिब है, उस जैसा हसीन नहीं कोई, वह पालनहार है। दया करने वाला है।

कि साहिब दयार अस्त, आज़म अज़ीम।
कि हुसनुल जमाल असत राज़िक रहीम। 7।

इस प्रकार ईश्वर-स्तुति के बाद गुरु महाराज चिट्ठी के असली विषय पर आते हैं। सबसे अधिक शिकायत दशमेश को मुगल कर्मचारियों की झूठ बोलने पर थी। उन्होंने गुरु महाराज से झूठ बोला था। इस तरह के लोगों पर चाहे वह फ़ौजी हों, चाहे दीवानी अमले के, उन्हें बिल्कुल एतबार नहीं था। उनके वचनों पर वे कतई विश्वास नहीं कर सकते थे :

ना कतराह मरा इतबारि बरोसत
कि बख़्शी व दीवां, हमा किजब गोश्त ॥ 4 ॥

न ही गुरु महाराज शहंशाह को बख़्शते थे। उन्होंने लिखा जो कोई तुम्हारी कसम पर विश्वास कर ले, उसे अंत में ख्वार होना पड़ता है। दशमेश को सबसे अधिक अफसोस था औरंगजेब का कुरान की कसमें खाकर किए वायदों से मुकर जाना। अपने बोलों को तोड़ना, बार-बार उसे गुरु महाराज इसकी याद दिलवाते थे :

कसे कोलि कुरआं कुनद इअतबार
हमा रोज़ि आख़िर शबद मरद-ख्वार ॥ 5 ॥

फिर गुरु महाराज शहंशाह को फटकारते हैं, उसका अपने ही नियम तोड़ने वाला लश्कर, तेगों-तलवारों, तीरों और बन्दूकों से लैस, बेतहाशा उन पर टूट पड़ा था :

कि पेमां शिकन बेदरंग आमदंद
मये भेगो तीरों तुफंग आमदंद ॥ 20 ॥

और मजबूर होकर उन्होंने उसका मुकाबला किया। क्योंकि जब हालत सब तरह से ही गुज़र जाती है, जब और कोई चारा नहीं रहता, तो उस समय

शमशीर को हाथ में लेना हलाल होता है :

चुकार अज़ हमा हीलते दरगुज़शत

हलाल असत बुरदन बशमशीर दसत ॥ 22 ॥

दशमेश फिर औरंगजेब को याद करवाते थे कि उसने कसम खाकर उसे तोड़ा था। उन्होंने शहंशाह के वायदे पर एतबार किया और उन्हें जंग लड़नी पड़ी, नहीं तो उन्हें इस तरह अपनाए मार्ग से क्या लेना देना था ?

चि कसमि कुंश मन कुनम इअतबार।

वगरनह तू गोई मन ई रह चिकार ॥ 23 ॥

अब गुरु महाराज लड़ाई का चित्रण करते हैं। सियाह काली वर्दी वाली मुगल फ़ौज मधु मक्खियों के एक झुण्ड की तरह शोर करती हुई उन पर एकदम टूट पड़ी।

बरंग मगम सयाह-पोश आमदंद

बह यक-बारगी दर खरोश आमदंद ॥ 26 ॥

बेशक मुगल लश्कर दहाड़ता, फुंकारता अचानक खालसा पर टूट पड़ा, पर गुरु महाराज ने हौसला नहीं हारा। दशमेश कहते हैं जो कोई दीवार की ओट से बाहर सिर निकालता उसे वे अपने तीर से वहीं पर खून से नहला देते थे, गर्क कर देते थे :

हर आं कस कि दीवार आमद बरूं

बखुरदन थके तीन शुद गरक खूं ॥ 27 ॥

और फिर जब मुगल फ़ौजदार नाहर खान को गुरु महाराज ने जंग में उतरते देखा, बिना देरी किए दशमेश के एक ही तीर ने उसे इसका स्वाद चखा दिया।

चुदीदम कि नाहर बियामद बजंग

चसीदह थके तीरि मन बेदरंग ॥

आखिर वे फ़ौजी जो बाहर खड़े आत्मश्लाघा कर रहे थे, मैदान-ए-जंग से भाग गए। गुरु महाराज शहंशाह को उसकी फ़ौज के मनोबल के बारे में बता रहे थे :

हमाखिर गुरेजंद बजाइ मसाफ़

बसे खाना खुरदंद, बेरू गुज़ाफ ॥ 30 ॥

इसके बाद एक और अफगान तीर छोड़ता और बन्दूक की गोलियाँ बरसाता एक सैलाब की तरह आगे बढ़ा। उसने बढ़ी मर्दानगी दिखाई, कुछ

होशो-हवास में कुछ दीवानों की तरह उसने कई हमले किए, कई जख्म खाए, दशमेश के दो जबानों को मारा पर आप ही जान गंवा बैठा :

कि अफगानि दीगर बयामद बजंग।
च सैलि खां हमचु तीरे तुफंग ॥ 31 ॥
बसे हमला करदंद बमरदानगी।
हम अज़ होशगी, हम ज़ि दीवानगी ॥ 32 ॥
बसे हमला करदे बसे ज़ख्म खुद
दो कस रा बज़ां कुशतु हम जा सुपुरद ॥ 33 ॥

और उधर ख्वाजा मरदूद दीवार की ओट से बाहर नहीं निकल रहा था। अगर वह मैदान में आता, एक बार अगर मैं उसकी शक्ल देख लेता तो लाचार होकर एक तीर उसे भी बख़्शता :

कि आं ख्वाजा मरदूद शायए दीवार
नयामद ब-मैदां ब-मरदान वार ॥ 34 ॥
दरेगा ! अगर रूए ऊ दीदमे
बचन तीर लाचार बख्शीदमे ॥ 35 ॥

तीरों और बन्दूकों की इस लड़ाई में बड़े लोग जख़्मी हुए। दोनों पक्ष खूनम-खून हुए। जैसे तीरों और गोलियों की वर्षा हो रही हो, जमीन लाल सुर्ख हो गई। मरे हुए आदमियों के सिरों-पैरों के ऐसे ढेर लग गए जैसे जंग का मैदान चौगान की गेदों से भर गया हो :

हमाखर बसे ज़खमि तीरो तुरंग
दो सूए बसे कुश्त शुद बेदरंग ॥ 36 ॥
बसे वार बारीद तीरो तुफंग ॥
जिमीं गशत हमचूं गुले लाला रंग ॥ 37 ॥
सरो पाई अंबोह चंदा शुदह ॥
कि मैदां पुर अज़ गू ओ चोगां शदह ॥ 38 ॥

लड़ाई में निरी मर्दानगी क्या कर सकती है जब केवल चालीस जवानों पर बेशुमार लश्कर टूट पड़े :

हम आखिर चि मरदीं कुनद कारज़ार
कि बर चहल तन आयदश बेशुमार ॥ 41 ॥

तो भी जो लोग कुरान की कसम पर एतबार करते हैं, परमात्मा उनका रहनुमा बनता है, उन्हें ईश्वर राह दिखाता है। इस तरह हमारा बाल भी बांका

नहीं हुआ, न हमारे शरीरों को कोई नुकसान पहुंचा। दुश्मन-दमन ईश्वर ने हमें हाथ देकर बचा लिया :

हर आं कस बकोले कुरां आयदश
कि यज़दा बरो रहनुमा आयदश ॥ 43 ॥
न पेचीदह मुऐ न रंजीदह तन ॥
कि बेरूं खुदावुरद दुश्मन शिकना ॥ 44 ॥

तुम्हारी लिखी चिट्ठी, तुम्हारी जुबानी भेजा पैगाम दोनों हमें मिले हैं। अब तुम्हें इस मामले को आगे बढ़ाना चाहिए, पूरा करो। मर्दानगी इसमें है कि बन्दा अपने वचन को निभाए, यही नहीं कि पेट में कुछ और रखे और मुंह में से कुछ और बोले।

नविशतह रसीदे बगुफतह ज़बां
बिबापद कि ई कर राहत रसां ॥ 54 ॥
हमू मरद बायद शबद सुखनवर ॥
कि शिक्में दिगर दर दाहनि दिगर ॥ 55 ॥

तुम्हारे काज़ी ने जो कुछ मुझे कहा है, मैं उसे बाहर नहीं, मुझे वह स्वीकार है। अगर तुम सच्चे हो, तो तुम्हें खुद आना चाहिए। जो लोग सच्ची राह पर होते हैं, वे खुद चलकर आते हैं :

कि काज़ी मरा गुफ्त बेरूं नियम।
अगर रासती खुद बियारी कदम ॥ 56 ॥

अगर तुम्हारी मर्जी हो तो मैं तुम्हें कुरान की कसम खाकर किए गए वचन का करारनामा भेज सकता हूँ, पर अच्छा यही है कि तुम कांगड़ा-देश आओ ताकि यहाँ हमारी मुलाकात हो सके। तुम्हें इधर आने में कोई खतरा नहीं, यहाँ की बैराड़ कौम मेरे हुक्म में है। यही अच्छा है कि तुम यहाँ तशरीफ लाओ। ताकि रू-ब-रू ज़बानी बात हो सके :

तुरा गर बबायद आं कोले कुरां
बनिजदे शुमा रा रसानम हमां ॥ 57 ॥
कि तशरीफ़ दर कसब कांगड़ कुनद
वजां पस मुलाकात बाहम शबद ॥ 58 ॥
न जरह दरीं राह खतर तुरासत
हम कौम बराड़ हुकमि मरासत ॥ 59 ॥
बिया ता शखन खुद ज़बानी कुनेम
बरूए शुमा मिहरबानी कुनेम ॥ 60 ॥

आगे चलकर दशमेश औरंगजेब को समझाते हैं—तुम्हें ईश्वर को पहचानना चाहिए। किसी के कहने पर जुल्म नहीं करना चाहिए। तुम्हें चाहिए कि तुम अक्लमंदी से काम लो और अपने कार्य व्यवहार को अच्छी तरह करो।

बिबायद कि यज़दां शनासी कुनी।
न गुफ्त, कसे कस खरासी कुनी ॥ 62 ॥
बिबायद तू दानिश प्रसती कुनी
बकारे शुमा चीर-दसती कुनी ॥ 74 ॥

ऐसे ही शहंशाह को सुबुद्धि देते हुए कलगीधर उसे जैसे याद करवाते हैं—क्या हुआ अगर तुमने मेरे चार बच्चों को मार दिया ? तुम्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि कुंडली मारे बैठा भयंकर कौड़ीवाला नाग वैसे का वैसा जीवित है। चिंगारी को दबाना कोई मर्दानगी नहीं, जब तुम एक ज़बरदस्त आतिश को भड़का रहे हो, एक बबूले को हवा दे रहे हो :

चिहा शुद कि चूं बचगां कुशत चार,
कि बाकी बमांदसत पेचीदां माह ॥ 75 ॥
कि मरदी कि अखबार खमोशा कुनी ?
कि आतिश दमां रा फरोज़ा कुनी ॥ 76 ॥

मैं तुम्हारे हजूर में नहीं आऊंगा, न ही इस राह पर चलूंगा। मैं तो वहाँ जाता हूँ जहाँ मेरा शाहों का शाह, ईश्वर भेजता है।

हजूरी न आयम न ईं रह शवम।
अगर शाह बखाहद मन आ जा रवम ॥ 85 ॥

अब दशमेश औरंगजेब के अच्छे गुणों का ज़िक्र करके उसे चेतावनी देते हैं : औरंगजेब ! तुम बेशक शाह हो। दस्तूर वाले हो। चाबुक सवार हो। रोशन दिमाग हो। तुम मुल्क के मालिक हो और अमीरों के सिरताज हो। तुम बेशक दुनिया के शहंशाह हो। तुम इस दौर के बादशाह हो; पर तुम अपने दीन से कहीं दूर हो :

खुशरू शाहि राहान औरंगजेब
कि चालाक दस्तूर चाबक रकेब ॥ 86 ॥
बह तरबीब दानिश बह तदबीर तेग,
खुदावन्दे देगो, खुदावन्दे तेग ॥ 87 ॥
शहंशाह औरंगजेब आलमी,
कि दाराह दौर असतु दूर असत दीं ॥ 91 ॥

चिट्ठी में आगे दशमेश पहाड़ी राजाओं का ज़िक्र करते हैं, क्योंकि वे बुत-परस्त हैं मैंने उनके बुतों को तोड़ा है, उन लोगों को मैंने शिकस्त दी है :

मनस कुश्त अम कोहियाँ बुत प्रस्त ॥
कि आं बुत-प्रसतंद मन बुत-शिकस्त ॥ 92 ॥

पहाड़ी राजा पर गुरु महाराज भारी पड़े क्योंकि उनकी राह सच्चाई की थी। दशमेश औरंगजेब से कहते हैं—जो कोई सच्चाई के रास्ते पर चलता है, सच्चाई का पक्ष लेता है, मेहरबान अल्लाह उस पर रहम करते हैं :

हरांकस कि रासत बाजी कुनद।
रहीमे बरेरहिमसाजी कुनद ॥ 98 ॥

इसी तरह अखीर के कुछ शेरों में आलमगीर को चेताते हैं—तुम्हारी निगाह अगर अपने भारी लश्कर और धन पर है, हमारी नज़र ईश्वर की कृपा पर है और अगर ईश्वर यार हो तो दुश्मन कुछ नहीं कर सकता, चाहे वह कितना ही वैर कर ले :

तुरा गर नज़र हसत लश्कर व ज़र,
कि मारा निगाह असत यज़दां शुक्र ॥ 102 ॥
चु हक यार बाशद चि-दुश्मन कुनद।
अगर दुश्मनी रा बसद तन कुनद ॥ 107 ॥

यह चिट्ठी गुरु महाराज ने धर्म के हाथों मुगल सम्राट को भेजी।

88

एक अद्वितीय शूरवीर गुरु गोबिन्द सिंह उतने ही बड़े साहित्यकार थे, कला प्रेमी थे। अपने समय के महान कवि; जब बिह्वल करती कविता वे पढ़ते प्रतिष्ठित कवि उनकी संगत में मान महसूस करते थे।

आजकल खिड़राणा से चलकर वह फिर लक्खी जंगल में थे। लक्खी जंगल के इलाके में जब से आए, यहाँ की माझां लोक गीत ने दशमेश में बैठे कवि का ध्यान अपनी ओर खींचा था। पर इतने दिनों तक एक तो वज़ीर खान के हमले की खबरें, दूसरे बराड़ों के या झगड़े या फिर कोट कपूरे के चौधरी के चकमे, गुरु महाराज को समय ही नहीं मिला था कि इस कला की ओर ध्यान देते। अब जब बराड़ों को जैसे-तैसे अपने पीछे लगा चुके थे, कोटकपूरे के चौधरी को राह पर डाल चुके थे, वज़ीर खान मात खाकर लौट चुका था, दशमेश को माझां सुनने का ख्याल आया।

तेग के धनी शूरवीरों के साथ-साथ ब्रज और पंजाबी कवि भी उनकी संगत में पहले की तरह इकट्ठे हो रहे थे। बेशक आनन्दपुर वाला दरबार नहीं लग सकता था, पर कवि दरबार तो आयोजित किया जा सकता था।

उस शाम कलगीधर का आदेश पाकर कई कवि उनके यहाँ हाज़िर हुए। इनमें अधिकतर विद्वान थे : बिहारी, आडा, जादौ राइ, लाल दास ख्याली, फुतमल्ल, भगतू और केसो गुणी।

बेशक गर्मी का मौसम था, पर इतनी गर्मी भी नहीं थी। एक तालाब के किनारे, खुले घास के मैदान पर कवि दरबार का आयोजन किया गया। पूरे चांद की रात। उधर दशमेश का आगमन हुआ, इधर रेगिस्तान की ओर से ठण्डी मीठी हवा बहने लगी।

पता नहीं कहाँ से इतने श्रद्धालु इकट्ठे हो गए थे। मर्द–औरतें, बूढ़े और जवान; जहाँ तक नज़र काम करती दस्तारें और दुपट्टे दिखाई देते थे। कवि दरबार का सुनकर आस-पास के गांव जैसे टूटकर आ गए हों। एक उत्सुकता गुरु महाराज के दर्शनों की, दूसरे उस समय के प्रतिष्ठित कवियों की ज़बानी उनकी कृतियों को सुनने का शौक, श्रोताओं का चाव उमड़-उमड़ रहा था।

गुरु महाराज ने आसन ग्रहण किया और सबसे पहले बिहारी की ओर इशारा हुआ कि वह अपना कलाम पेश करे। बिहारी हुक्म पाकर मंच पर हाज़िर तो हो गया, पर ज़िद करने लगा, पहले गुरु महाराज से वे कुछ सुनना चाहेंगे। बिहारी की फरमाइश सुनकर श्रोताओं ने भी एक स्वर होकर इस मांग की पुष्टि की। आखिर गुरु महाराज राज़ी हो गए। गुरु महाराज ने अपनी बनाई माझ पेश की :

> सुणके सद्द दा मेहीं, पाणी घाह मुतो ने।
> किसे नाल न रलीयाँ काई, केहो सउक पयो ने।
> गइया फ़िराकू मिलिया मित माही, ताही शुक्र कीतो ने।

गुरु महाराज की माझ सुनकर लोग जैसे नशे में चूर हो गए, 'सुनके सद्द माही दा मेंही, पाणी घाह मुतो' बार-बार लोग गा उठते। कितनी देर आनन्दित हुए श्रोता दशमेश की माझ को सराहते रहे।

अब बिहारी जी अपनी माझ सुनाने के लिए उठे। बिहारी उदासी सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखते थे, पर गुरु महाराज के एक बार दर्शन कर वे पूरी तरह दशमेश के हो गए। उन्होंने गुरु गोबिन्द सिंह की महिमा में कई माझें लिखी। पर पहले उन्होंने अपनी एक प्रसिद्ध माझ पेश की :

तीरां कोलों तिखीआं पलकां, ज़ालम करन तकबीरां।
कामणहारी कामन पाये, इह तन कीता लीरां।
महबूबां दी यह वहिदत, लूं लूं देंदी सीरां।
महबूबां दे घाउ बिहारी सहणे पए फ़कीरां।

बिहारी जी ने अपनी माझ समाप्त की और कितनी देर वाह-वाह होती रही। अब बिहारी जीने दशमेश की स्तुति में लिखी माझो में से एक मांझ पेश की :

लटक तुहाड़ी मैं लोटन कीती, फिरां लुटींदी राहीं।
तागत कड़ खड़ी विछोड़े, मैं कत्तां कैं दी वाहीं।
जांहा सवां तां नाले संवे, जा चलना उठि राहीं।
गुरु गोबिन्द ! जब भीतर देखां, तूं हैं, हैं मैं नाहीं।

बिहारी ने अपना कलाम खत्म किया और कितनी देर फिर तालियाँ बजतीं रहीं। अब आडा की बारी थी। आडा ने अधिकतर माझें सस्सी के बारे में लिखीं थीं। यह माझ उन्होंने गुरु गोबिन्द सिंह की स्तुति में लिखी थी :

गुरु गोबिन्द जिन्हाँ दे सिर ते, तिना कमी ना काई।
करन अरदासि संगत कै आगै, सतगुरु होई सहाई।
आडा मैं कुरबान तिना नू, जिन्हाँ मन प्रतीत वसाई।
मन प्रतीत जिन्हाँ दे वुठी, कम उन्हाँ दे होए।
जिन्हाँ गुरु गोबिन्दा दा दरशन कीता से, मुकत प्राप्त होए।

बिहारी के बाद आडा जम नहीं सका, फीकी-सी दाद उसे मिली। अब गुरु महाराज ने जादो राय की ओर इशारा किया।

जादो राय भी उदासी साधू थे। बालू हसने का मुरीद। इसकी मांझों में गुरु गोबिन्द सिंह के प्रति श्रद्धा उमड़-उमड़ पड़ती है। खास तौर पर मुहावरे, शब्दों का दोहरा कर वे एक अजीब तरन्नुम पैदा कर देते थे। उन्होंने यह माझ पेश की :

ज़रा ना डरां जे सिटि घतीवां, कोई हा हू दोज़क तपै।
ज़रा ना डरां जे सिटि घतीवां, कोई माते हाथी अगे।
ज़रा ना डरां विधताा कोलहूँ, जिनि सच्चे अखर लिखे।
जादों डरां विछोड़े कंतहूँ, मत रब विछोड़ा घते।

जादों राय के बाद लाल दास को पुकारा गया। लाल दास 'ख्याली' के उपनाम से जाने जाते थे। एक उदासी सम्प्रदाय के महन्त थे। उनकी माझों

में कुछ इस तरह का रंग है जो हाशम की कविता में अधिर उभरा। उनके बोल वैराग्य के अनुभवों से जैसे निचुड़ रहे हों। पहले उन्होंने यह माझ पेश की :

जित दिन आए इश्क की चउंकी, पहलां अकल रंवाणै।
गूंगे दे गुड़ खादे वांगू किआ कोई आखि वखाणै।
लख चतराइयाँ अैवें जासन, उडन वांग टिनाणै।
लाल ख्यालि प्रेम दीयाँ झोकां कोयल होई सू जाणै।

लालदास की इस माझ से जैसे तस्सली न हुई हो। अभी वाह-वाह हो ही रही थी श्रोता 'कोयल होई सू जाणै', गा-गाकर सिर हिला रहे थे कि कवि ने एक और माझ सुनानी शुरू की :

महबूबा दे दरशन कारण, कख गली दां थीवां।
वगे वाउ पूरे दी जिउं-जिउं दर ते जाइ सुटीवां।
आंदे-जांदे दा दरशन पावां, चरणी कदी छुहीवां।
चरण धूड़ बन सतगुरु वाली, मर मर के मैं जीवां।

लालदास जी ने यह माझ खत्म ही की थी कि श्रोताओं में से किसी जानकार ने 'रहू वे काजी' वाली माझ की फरमाइश की। लालदास जी ने एक नज़र दशमेश की ओर देखा और उनकी इज़ाजत पाकर वह माझ पेश की :

रहू वे काज़ी। मैंडी जान न राज़ी मैं जरीआं तुध धीयां।
मितू रांझण पोसत मैंडी हडीं रविया, पीते बाझ न जीवां।
अके त रांझण आणि मिलावहू अके मैं बैरागणि थीवां।

कितनी देर इस माझ की श्रोताओं की ओर से दाद दी जाती रही।

अब फतमल्ल की बारी थी। फतमल ने लालदास ख्याली की आखरी माझ के अंदाज का यह छन्द सुनाया :

सीने दे बीच सबज़ किआरी, जैदां किशक अराई।
बीजदियाँ प्रदेश सिधावे, मैं किचरक पाणी पाईं।
तुहि जिहा किरसाण न कोई, मैं ढूंढ रही सब जाईं।
फतमल्ल हीर पई रिच हुजरे, कूके काही माही ॥

फतमल्ल के बाद केसो गुणी मंच पर आए। उन्होंने भी दर्द, वियोग की एक माझ पेश की :

तैंडी सूरत मैंडे मित्र पिआरियाँ दिल तों लहंदी नाहीं।

एक घड़ी पल नज़र न आवे, मैंडे सीने भड़कन भाहीं।
बिछुड़ि यार गए दुरेडे तां माहिअै क्यों करि नाहीं।
केशो यार मिलियाँ दिल शादी, मिटनि दरद दीयाँ आहीं।

आखिर में भगतू कवि को मौका दिया गया। भगतू की कविता में आलौकिक रंग था और गुरु महाराज के प्रति अपार श्रद्धा। भगतू ने यह दो बन्द पेश किए और उसे बहुत अधिक दाद मिली :

बेफिक्रां नूं फिकर ना कोई, सदा रहिहं मतवाले।
अठे पहर रहण विच गिणती, बहुती माइया वाले।
इस माया दे दूर खड़ोते, कोई विरले साध सुखाले।
कम सुखाला ते बेड़े भगतू, मैंडा सतगुरु आपि समाले।
सतजुग, त्रेता, द्वापर वरते, वरतणगे जुग चारे।
दया बराबर तीर्थ नाहीं, ब्रह्म बिशन पुकारे।
तीर्थ नातियाँ एक फल पाया, साध मिलिया फल चारे।
सतगुरु मिलिया पूरा नावण, नदरि करे निसतारे।

भगतू की रचना से लक्खी जंगल का यह कवि दरबार समाप्त हुआ। रात बहुत हो गई थी तो भी लोग गुरु महाराज की जय-जय करते कवियों सहित उन्हें अपने ठिकाने पहुंचाकर अपने-अपने घर लौटे।

89

गुरु महाराज का संदेश औरंगजेब तक पहुंचाने के लिए भाई धर्म सिंह को कई जुगत करनी पड़ीं। आखिर वह कामयाब हो गया। औरंगजेब तो जैसे दशमेश की ओर से ललकार की प्रतीक्षा में था, पर उसके दरबारी और कर्मचारी बाधाएं डालते रहे थे। और दरबारियों की मर्जी के बिना मुगल दरबार में पत्ता भी नहीं हिल सकता था।

दशमेश की चिट्ठी पढ़कर औरंगजेब को ऐसे लगा जैसे कोई तीरों का मुट्ठा उसकी छाती में आ घुसा हो। पहली बार उसे अहसास हुआ, वह जो स्वयं को बड़ा पाकबाज़ समझता था, खुदा का खौफ़ खाने वाला समझता था, नमाज़-रोज़े का पक्का, हाथ का सुच्चा, वह तो अपनी सारी उम्र अपने आप को धोखा देता रहा था। कोई ऐब नहीं था, जो उसमें न हो।

सचमुच उसने कुरान की कसम खाकर गुरु महाराज से कुछ वायदे किए थे और उनसे मुकर गया था। उस जैसा भी गुनाहगार कोई होगा ? यह मक्कारी थी। बेशक जो कुछ दगा और फरेब किया था, उसके

कर्मचारियों ने किया था, पर इसमें उसकी रजामंदी शामिल थी। सचमुच मुगल-दरबार ने गुरु गोबिन्द सिंह को अल्ला को हाज़िर-नाज़िर जानकर वायदा किया था कि अगर वे आनन्दपुर खाली कर दें तो वे जहाँ भी चाहें अमन-अमान से जा सकेंगे, उनका कोई बाल भी बांका नहीं करेगा। उसने तो इतना भी कहा था, सिक्ख गुरु महाराज चाहें तो उस जगह भी आ सकते हैं। गुरु गोबिन्द सिंह के इन शब्दों में कितनी सच्चाई थी :

चि कसमि कुंरा मनकुनम इतबार।
वगरनह तू गोई मन ईं रह चि कार ॥ 23 ॥

सचमुच दशमेश ने औरंगजेब की कुरान की कसम पर विश्वास किया था, नहीं तो उन्हें इस रास्ते से क्या वास्ता था ?

जैसे गुरु गोविन्द सिंह ने उसके मुंह पर चपेट मारी हो, जब उन्होंने यह कहा था कि मर्द को चाहिए अपने वचन का पक्का हो। यह नहीं कि पेट में कुछ और हो और मुंह पर कुछ और :

हमू मरद बायद शबद सुखनवर।
न शिकमे दिगर दर दहानि दिगर ॥ 55 ॥

बेशक, उसका कुरान की खाई कसम के कारण यह फर्ज़ बन जाता था कि अपने कहे पर पूरा उतरे। दशमेश ने कैसे उसे लताड़ा था :

कि बर सर तुरा फरज़ कसमि कुरां।
बगफ़तह शुमा कार खूबी रसां ॥ 72 ॥

गुरु महाराज का औरंगजेब को यह याद करवाना कि पहाड़ी राजा जिनकी वह मदद कर रहा था बुत परस्त थे, उनके विपरीत सिक्ख गुरु बुत-शिकन थे, ऐसे इस्लाम के कौन निकट हुआ ? दशमेश तो वही कुछ कर रहे थे जो कुछ आलमगीर खुद करने जा रहा था। कलगीधर के ये बोल बार-बार उसके सीने को कचोटते :

मनम कुशतह अम कोहियाँ बुत परस्त ॥
कि आं बुत परसतंदो मन बुत शिकन ॥ 92 ॥

और फिर जो उन्होंने यह कहा था कि बेशक औरंगज़ेब वक्त का बादशाह था, पर दीन से दूर था, यह एक हकीकत थी। औरंगजेब सोचता, कोई मामूली आदमी उसे यह याद नहीं करवा सकता था। यह तो गुरु गोबिन्द सिंह जी ने शीशा लाकर उसकी आंखों के सामने रख दिया हो :

शहंशाही औरंगज़ेब आलमी।
कि दाराइ दौर असतु दूर असत दीं ॥ 91 ॥

गुरु गोबिन्द सिंह जी के शब्द 'दूर असत दीं' बार-बार औरंगजेब के कानों में गूंज रहे थे। जैसे उसे चिकौटी काट रहे हों।

जैसे किसी बिल्ली के कब्ज़े में कोई चूहा आ जाए और वह उसे झंझोड़ने लगे, कुछ इस तरह आलमगीर को महसूस हो रहा था, गुरु गोविन्द सिंह उसकी करतूतों का कच्चा चिट्ठा उसकी आंखों के सामने रख रहे थे, सचमुच उसका ईश्वर से कोई वास्ता नहीं था। सचमुच वह अल्ला की पहचान नहीं रखता था। इस प्रकार की दिल दुखाने वाली करतूतें करने वाला ईश्वर को कभी प्यारा नहीं हो सकता। बेशक उसके पास दौलत थी पर वह खुदावन्द करीम को नहीं पहचान सका था। किस बेबाकी से गुरु गोविन्द सिंह ने उसे लिखा था :

तुरा मन नदानम कि यज़दा-शुनास
बरामद कि तूं कारहा दिल-खराश ॥ 82 ॥
शनासत हमीं तूं न यज़दां करीम।
न ख्वाहद हमीं तू बदौलत अज़ीम ॥ 83 ॥

फिर गुरु महाराज ने औरंगजेब को याद कराया कि अगर उसको लश्कर और अपनी दौलत का घमंड है तो दशमेश की निगाह ईश्वर के शुक्र पर है। इस तरह भला कौन ज़्यादा परहेज़गार हुआ ?

तुरा गर नज़र असत लशकर व ज़र।
कि मारा निगाह असत यज़दा शुकर ॥ 102 ॥

और फिर उन्होंने आलमगीर को अपने पास आने के लिए आमन्त्रित किया था ताकि वह खुद असलियत का गवाह बन सके :

कि मा, बारगहि हज़रत आयद शुमा।
अज़ां रोज़ बाशद शाहिद शुमा ॥ 73 ॥

पर वह आता तो कैसे ? गुरु गोबिन्द सिंह जी का संदेश पढ़कर उसकी तो जैसे कमर ही टूट गई हो। शहंशाह की बातें गुस्से को उबाल दे रहीं थीं। उसे लगता उसकी तो जीत कर भी हार हुई थी। वह तो अज़ीम शायर की कलम का दस्तावेज 'जफ़रनामा' था।

चिट्ठी पढ़कर औरंगजेब अपनी आरामगाह में पलंग पर उल्टा जा पड़ा। उसके बाद वह फिर उठ नहीं सका।

आलमगीर की आंखों के सामने अजीब चित्र घूम रहे थे। उसे लगता जैसे सारी उम्र की भटकन के बावजूद उसकी हार हुई हो। उसकी प्रजा और

खुद शहंशाह, न वे अच्छे इंसान थे, न अच्छे मुसलमान थे। इस्लाम के पीछे लगकर उसने अपना ईमान गवां दिया था। हिन्दुस्तान को दारूल-इस्लाम बनाते-बनाते उसने सारे देश में फिरकापरस्ती और नफ़रत के बीज बो दिए थे। उसका इस्लामी साम्राज्य एक छलावा था जिसके पीछे पड़कर उसने बेकार अपनी जिन्दगी गंवा ली थी।

न वह अच्छा सियासतदार था, न वह अच्छा शासक था। समुन्द्र में आए ज्वार-भाटे की तरह उसकी हुकुमत शिखर पर पहुंचकर समुद्र की लहरों की तरह टूट-टूट गई थी। उसके साथ एक साम्राज्य का अंत ही नहीं हो रहा था, देश की अधोगति का एक दौर भी शुरू हो रहा था। अब कोई मुगल शहंशाहियत के सपने नहीं ले सकेगा। कोई आलमगीर होने के ख्वाब नहीं देख करेगा। उसके देश में न अमन था न सुख सुविधा थी। सड़कों का बुरा हाल था। राहगीर लुटेरों और डाकुओं के हाथों परेशान थे। देश के अधिकतर हिस्से में खेती, दस्तकारी और व्यापार उपेक्षा का शिकार थे। लगातार लड़ी गई लड़ाइयों के कारण सरकारी खजाना खाली हो चुका था। भुखमरी और बीमारियों से आम लोग तंग थे। दक्षिण में आखिरी जंग से औरंगजेब लौटा उसे सारे का सारा हिन्दुस्तान एक जंगल-सा प्रतीत हो रहा था। एक उजाड़, बियाबान।

औरंगज़ेब को अपना अंत नज़दीक आ रहा दिखाई दे रहा था। उसे बार-बार यह एहसास कचोट रहा था कि बेशक वह हिन्दुस्तान का बादशाह था पर उससे कोई भला काम नहीं हो सका, उसकी ज़मीर हमेशा उसे फटकारती थी, उसे बार-बार याद दिलाती थी कि वह पापी था।

अपनी वसीयत में औरंगजेब ने कुछ इस तरह लिखा :

मेरे सेवक आया बेग के पास मेरा एक बटुआ है जिसमें मेरी कमाई के चार रुपये दो आने बचे रखे हैं। मेरे मरने के बाद मेरा कफ़न इसी रकम से खरीदा जाए और इससे मेरी मृतक देह को ढका जाए। इस गुनाहगार बुत को दफनाने के लिए और कोई खर्च न किया जाए।

"मेरी मज़ार बीहड़ वीराने में बनाई ज़ाए। मुझे दफनाते समय मेरे मुंह को अनढका रहने दिया जाए। मेरे चेहरे पर मिट्टी न डाली जाए। कोई कह रहा था, नंगे मुंह जाने वाले को अल्लाह की अदालत में बख़्शा जाता है, उनके गुनाह माफ़ कर दिए जाते हैं।"

"पिछले कुछ महीनों से मैं अपने फ़ौजी अमले को तनखाह नहीं दे पाया।

शाही खज़ाना खाली पड़ा है। सिपाहियों और बाकी कर्मचारियों को उनका मुआवज़ा देने का प्रबन्ध किया जाए।

मेरी मज़ार पर कोई पेड़ नहीं लगाया जाए। न ही उसके निकट कोई दरख्त उगाए जाएं। मेरे जैसे गुनाहगार का कोई हक नहीं कि उसकी कब्र किसी ठण्डी छाया का सुख उठा सके।

अल्लाह किसी को बादशाह न बनाए। बादशाह जैसा बदकिस्मत इंसान कोई नही होता। मेरे जाने के बाद मेरी चर्चा न की जाए। मेरी यह ज़िंदगी सारी बेकार गई है। इसका ज़िक्र करना बेकार होगा।"

90

पटना में प्रकट हुए, जहाँ उनका सुहाना बचपन बीता। गंगा के पानी से खेलते रहे। आनन्दपुर में परवान चढ़े। महल और हवेलियां। शिवालिक की गोद में उनके नीले घोड़े की टापें गूंजती रहतीं। पटना छोड़कर, आनन्दपुर त्याग कर, अब गुरु महाराज किसी ठिकाने की तलाश में थे, कोई स्थान जहाँ फिर से खालसा एकत्रित हो सकें। जहाँ फिर कलगीधर अपने सम्प्रदाय को पल्लवित कर सकें। बाबा नानक के पंथ की पहचान को बनाए रखना अहम था। बदी से टक्कर होकर रहनी थी। अन्याय और अंधविश्वास, फिरकापरस्ती और जुल्मों को मिटाना जरूरी था।

खिडराना छोड़कर गुरु महाराज मालवा के लक्खी जंगल में से होते हुए गांव-गांव विचर रहे थे। ये वे प्रदेश थे जहाँ गुरु हरगोबिन्द, गुरु हरिराय और गुरु तेग बहादुर चरण डाल चुके थे। मालवा के निवासी खुले-खुले स्वभाव के साधारण रहन-सहन वाले श्रद्धावान लोग थे।

झुण्ड के झुण्ड लोक कलगीधर के दर्शनों को आने लगे। फिर गहमा-गहमी रहने लगी। अमृतपान कराया जाने लगा। कमर पर कृपाणें लटकने लगीं। फिर से असला इकट्ठा किया जाने लगा। फिर से तीर और तलवारें चंडवायी जाने लगीं। घोड़े हिन-हिनाते, बाज़ आकाश में उड़ाने भरते दिखाई देते। फिर से आस-पास 'सति श्री अकाल' के जयकारे गूंजने लगे। 'धन गुरु गोबिन्द सिंह' की ध्वनि सुनाई देने लगी।

ऐसे चलते-चलते दशमेश तलवन्डी साबो पहुंचें। यह कस्बा उन्हें जंचता प्रतीत हुआ। एक ओर को भी था और केन्द्र से इतना हटकर भी नहीं था। दूर-नज़दीक से गुरुसिक्ख यहाँ आ भी सकते थे और जब तक उनकी मर्जी न हो, उनकी जत्थेबन्दी को आंखों से बचाकर भी रखा जा सकता था। गुरु

महाराज एक ऊंचे टिब्बे पर चढ़ गए। उसे इकसार करके उन्होंने वहीं रहने का फैसला किया। कहीं महीनों के बाद गुरु महाराज ने उस जगह जैसे सांस 'दम' लिया। समय पड़ने के साथ यह स्थान दमदमा साहिब नाम से जाना जाने लगा। यहाँ गुरुद्वारा, गुरुसर, गुरु महलों का निर्माण किया गया। दीवान सजते, गुरुसिक्ख अपने ईष्ट की शरण आते, कवायदें होतीं, निशाने साधे जाते। फिर से गुरु महाराज शिकार के लिए निकलते। आस-पास के जंगल में खलबली मच जाती।

कहते हैं, उस वर्ष गुरु महाराज के जन्म-दिन पर जो अमृत तैयार हुआ, उसमें अस्सी हजार गुरुसिक्खों ने अमृतपान किया और बाकी आसपास के झाड़ों पर छिड़क दिया गया। गुरु महाराज ने फरमाया, उनमें से लाल सुर्ख बेरों की तरह शूरवीर उत्पन्न होंगे।

तलवण्डी साबो पहुंचने से पहले लक्खी जंगल में कलगीधर की भेंट इब्राहीम नाम के एक मुसलमान दरवेश से हुई। लाख मुगलों से लड़ाइयाँ थी, यह मुसलमान फकीर गुरु महाराज का दीवाना था। यही ज़िद्द के मुझे आपका मुरीद बनना है। गुरु महाराज ने उसे अमृतपान करवाया और उसका नाम अजमेर सिंह रखा गया। कलगीधर के अत्यन्त निकटवर्ती गुरुसिक्खों में से भाई अजमेर सिंह गुरु महाराज के अंग-संग रहने लगा। जब गुरु महाराज लक्खी जंगल में से चले, वह भी उनके साथ हो गया।

तलवण्डी साबो का चौधरी डल्ला गुरु महाराज का पुराना श्रद्धालु था। उसकी इच्छा थी कि कलगीधर उसके किले को अपना ठिकाना बनाएं पर गुरु महाराज इसके लिए राज़ी न हुए।

डल्ला चौधरी ने लगभग पांच सौ जवानों की निजी सेना भी इकट्ठी कर रखी थी। घुड़सवार और पैदल असला भी उसके पास काफ़ी था।

एक दिन दशमेश के हजूर में बैठा डींगें हांकने लगा—"सच्चे पातशाह ! आपने इतने कष्ट सहे, इतना नुकसान करवाया। इतनी ज़्यादतियाँ आपको झेलनी पड़ीं। इस तरह चारों के चार साहिबज़ादों को गवां देना। माता गुजरी जी का विछोड़ा दे जाना। कौन-कौन सी यातनाएं हैं जो आपने नहीं झेली ?"

बेशक आपके पास कितने ही गुरुसिक्ख थे कितने ही शूरवीर थे, हजूर को किसी चीज़ की कमी नहीं। पर काश आपने ज़रूरत के समय दास को याद किया होता। मेरी सेना को मौका दिया होता, हजूर की सेवा कर सकते।

मेरे पास शीश हथेली पर रखने वाले शूरवीर हैं। वे लोग जो मेरे कहे पर लाख बार जान कुर्बान करने के लिए तैयार-बर-तैयार रहते हैं। आपका इशारा होता तो मैं इन्हें लेकर आपके पास हाज़िर हो जाता। अगर मरना था तो हम मरते, साहिबज़ादों को तो आंच न आने देते।

मेरे पास शूरवीर हैं जो श्रद्धा में अपना सानी नहीं रखते। मेरे पास शूरवीर हैं जिनका बाहुबल बेजोड़ है। मेरे पास शूरवीर हैं जो आठों पैहर तैयार-बर-तैयार रहते हैं। हजूर कभी भी उन्हें आज़मा सकते हैं। अपने एक इशारे पर वे जान कुर्बान करने के लिए उतावले रहते हैं.....।

गुरु महाराज कितनी देर से डल्ला का वार्तालाप सुन-सुनकर ऊब रहे थे। उन्हें समझ नहीं आ रही थीं, कैसे उसे खामोश किया जाए, कैसे उससे पीछा छुड़ाया जाए। और भी श्रद्धालु उनके दर्शनों के इच्छुक थे। खास तौर पर एक गुरुसिक्ख था, नया आया यात्री प्रतीत होता था, हाथ में बन्दूक लिए बार-बार टोह ले रहा था। इस बार झिझकते हुए जब उसने अन्दर झांका तो गुरु महाराज ने उसे इशारा करके अन्दर बुला लिया।

यह गुरुसिक्ख अपने हाथों बनाई एक बन्दूक गुरु महाराज को भेंट करने के लिए लाया था। कहता, इसका निशाना खास तौर पर अचूक है। कभी वार खाली नहीं जाता। गोली अगले को छलनी करके रख देती है। जहाँ जाकर लगती है सुराख कर देती है। इससे साही से लेकर शेर तक का शिकार किया जा सकता है।

गुरु महाराज बन्दूक को पकड़कर निरीक्षण कर रहे थे। फिर अचानक बोले, 'भाई डल्ला ज़रा अपने दो सैनिकों को तो बाहर से बुला, हम इस बन्दूक से निशाने की परीक्षा करना चाहेंगे।

'हजूर, क्या मतलब ? डल्ला चौंका।

'मैंने कहा, अपने दो नौजवानों को तो बुला लिया, हम इस बन्दूक के निशाने को आज़मा कर देखना चाहेंगे कि गोली ठीक लगती है कि नहीं।'

'हजूर !' डल्ला बौखला रहा था।

'हाँ, हाँ, हमें इस बन्दूक का निशाना परखना है। गुरु महाराज ने दृढ़ निश्चय से कहा।

'पर, सच्चे पातशाह.....।' डल्ला को कुछ समझ नहीं आ रही।

'देखना है कि निशाना मार भी करता है कि नहीं।' गुरु महाराज अपने इरादे पर अटल लगते थे।

डल्ला को याद आया, यही वह दशमेश थे जिन्होंने एक बैसाखी वाले दिन आनन्दपुर में पांच गुरुसिक्खों के शीशों की एक के बाद एक फरमाइश की थी।

ऐसे करो, आप अपनी पांच सौ की सेना में से दो जवानों को पकड़ लाओ। हम इस गुरुसिक्ख की भेंट की परख करेंगे। गुरु महाराज ने डल्ला को रवाना कर दिया।

अनमना, अनमना-सा, कमर हिलाता डल्ला चल दिया। अभी-अभी जो शेखियाँ मार रहा था, जैसे उसे वह सब कुछ भूल गया हो। सोच में डूबा, करे तो क्या ? वह कैसे अपने किसी सैनिक से कहेगा कि वह किसी की गोली का निशाना बने। अगर कहेगा भी तो अगला मानेगा क्यों ? किसी का सिर थोड़े ही फिरा हुआ था कि अच्छा भला उठकर किसी की बन्दूक के सामने जा खड़े और वह भी इसलिए कि किसी ने चांद मारी करनी थी। बन्दूक का निशाना परखना था।

कितनी ही देर हो गई, डल्ला नहीं लौटा। घट-घट की जानने वाले, गुरु महाराज डल्ला की मज़बूरी को जानते थे। कुछ समय बाद उन्होंने एक गुरु सिक्ख को बुलाकर डल्ला को बुलाने भेजा।

जैसे डल्ला खाली हाथ गया था, सिर झुकाए, नीची नज़रें किए, गुरु महाराज के सामने हाज़िर हुआ।

'क्यों तुम्हारे सैनिक नहीं आए ?' कलगीधर ने डल्ला से पूछा।

'हजूर...... ' डल्ला के मुंह में से बोल नहीं फूट रहे थे। कहे तो क्या ? हाथ जोड़कर खड़ा था।

अच्छा, तो तुम्हारा कोई सैनिक तैयार नहीं हुआ, अब ऐसे कर, सामने वे दो गुरुसिक्ख खड़े साफा बांध रहे हैं, उनसे जाकर कहो कि हमें बन्दूक का निशाना परखने के लिए दो जवानों की ज़रूरत है।

डल्ला की जैसे जान छुटी हो। तेज़-तेज़ सामने मैदान में खड़े दो गुरुसिक्खों को जाकर उसने सारी बात बताई। गुरु-सिक्खों ने सुनते ही गुरु महाराज की ओर जैसे दौड़ लगा दी। एक सिक्ख के सिर पर साफा नहीं था, वह तेज़-तेज़ लपेट कर आ रहा था।

गुरु महाराज के हजूर में पहुंचे, अब उनमें यह तकाजा हो रहा था, कौन पहले निशाना बनेगा। एक कहता "पहले मैं दौड़ा था" दूसरा कहता, पहले मैं हजूर के सामने पहुंचा था। वह कहता, मैं साफा लपेटे बिना कैसे हजूर

की हाज़री में आता ? दूसरा कहता मैं साफा बांधकर तैयार-बर-तैयार था। गुरु महाराज का फ़रमान है खालसा आठों पहर सावधान रहता है।

इस तरह का झगड़ा. देखकर डल्ला की आंखें खुल गईं। उसका सिर गुरु महाराज के चरणों में गिर गया। बार-बार कहता, गुरु का सिक्ख बनना बड़ी कठिन परीक्षा है। सच्चे पातशाह, मुझे अपना सिक्ख बना लो। मुझे अमृत की दात बख़्शो। आंसू थे कि डल्ला की आंखों से एक झड़ी की तरह बह रहे थे।

91

'जिथे जाइ बहे मेरा सतगुरु सो थान सुहावा राम राजे।'

कुछ दिन से दमदमा साहिब में नित दीवान सजने लगा। नित कीर्तन होता, गुरु सिक्ख एकत्रित होते। संगतें बार-बार हुम-हुमाकर आतीं। फिर नगाड़ा बजता। शंख बजाए जाते। कड़ाह प्रसादि तैयार किया जाता। अरदासें होतीं। लंगर वरताया जाता। फिर से दशमेश के सिर पर कलगी सजने लगी। बाज़ वाले घोड़े की सवारी करते, शिकार को निकलते।

कभी-कभी ऐसे लगता जैसे बिल्कुल आनन्दपुर साहिब का वातावरण हो। ठीक उसी प्रकार की गहमा-गहमी ! उसी तरह की श्रद्धा। उस तरह का प्रेम। गुरु प्यारे वैसे ही दूर-नज़दीक से आते निहाल होकर लौटते। हर किसी की मनोकामनाएं पूरी होती। बेआसरों के आसरा, गुरु महाराज संगतों को निहाल करते रहते।

हर-रोज़ की तरह उस दिन भी भोर से ही दीवान सजा हुआ था। दीवान में कई जाने-पहचाने चेहरे थे।

अजमेर सिंह था, इब्राहीम नाम का मुसलमान फकीर, अमृत का पान करके कितना सुन्दर लगता था। मजाल है कि कभी नागा कर जाए। परछाईं की तरह गुरु महाराज के अंग-संग रहता, आंखें मूंदे श्रद्धा में हाथ जोड़े, कीर्तन सुन रहा, निहाल होता रहता।

सबसे अगली पंक्ति में कोट-कपूरे का चौधरी कपूरा बैठा था। हर समय दोष भी निकालता रहता, पर जब भी मौका मिलता गुरु महाराज के यहाँ हाज़री भरता। पिछली बार जब गुरु महाराज के दर्शनों को आया तो यह देखकर कि दशमेश के पास एक चौकी पर हर तरह के अस्त्र सजाकर रखे थे। उन पर महीन पीढ़ियों वाली रेशमी झालर को जोड़कर बनाई चादर पड़ी है, जैसे हथियारों को आदर से ढांपा गया हो। और चौकी के पीछे आदर

से खड़ा एक गुरुसिक्ख मोर के पंख लिए अस्त्रों को चंवर रहा था। गुरु महाराज को तो चंवर किया जाना उसे समझ आ सकता था पर हथियारों को ऐसे करना चौधरी कपूर को अटपटा-सा लगा। गुरु महाराज ने उसे समझाया, अस्त्र शक्ति का प्रतीक हैं; ईश्वर शक्ति है। हथियारों का आदर, हथियारों की उपासना, अकाल पुरुष की उपासना है। कपूरे चौधरी की जैसे आंखें खुल गईं। वह जो मुगलों से डरता, गुरु महाराज को कुछ देर के लिए अपने कपूरे के किले में ठहरवाने से हिचकिचा रहा था, यह सुनकर छोटा-छोटा महसूस करने लगा। उसे लगा जैसे शक्ति का अवतार उसके सामने खड़ा हो और उसके हाथ जुड़ गए थे।

उसके साथ दायीं ओर डल्ला चौधरी बैठा था। हाथ जोड़े, आंखें मूंद जैसे नम्रता, धर्म का जीवंत रूप हो। अब कभी अपनी निज़ी सेना, अपने घोड़ों, अपने हाथियों का उसने अभिमान नहीं किया था। साफ दिल साधु-संगत में हाज़िर होता, गुरु महाराज की खुशियों का भागी बनता, वह केवल आप ही दीवान में हाज़िर नहीं होता बल्कि उसका सारा परिवार सतगुरु का श्रद्धालु हो गया था।

कपूरे के चौधरी के बाईं ओर रामा और तिलोका बैठे थे। अमृत छककर राम सिंह और तिलोक सिंह बन गए थे। गुरु महाराज की खुशियों के अधिकारी थे। इन दोनों ने अपनी जान को बहुत खतरे में डालकर चमकौर की जंग के बाद बाबा अजीत सिंह और बाबा जुझार सिंह की काटी-कूटी देहों को चुनकर उनका आदर से संस्कार किया था और उनके फूल पूरे आदर से सरसा नदी में प्रवाहित किए थे। गुरु महाराज की उन पर बड़ी कृपा थी। भाई राम सिंह के खानदान को गुरु महाराज ने पटियाला की हकूमत और भाई तिलोक सिंह के परिवार को नाभा और जींद की रियासतों की सरदारी बख़्शी।

उस दिन ढड-सारंगी का जत्था गुरु महाराज के आदेश पर भंगाणी की जंग की वार का प्रसंग पेश कर रहा था। सभी एक-टक देख रहे थं, दशमेश अंतर्मुखी हो कर बैठे थे कि मंच पर एक तरफ़ खड़े ऊंचे बहुत ऊंचे, हेक में गा रहे ढाढी अचानक रुक गए। और टकटकी लगाकर सामने जैसे देख रहे हों! ऐसे कीर्तन कर रहे जत्थे का सहसा रुक जाना, साधु-संगत पलकें खोलकर आस-पास देखने लगी। गुरु महाराज की वृत्ति भी उखड़ गई। क्या देखते हैं, सामने माता सुन्दरी और माता साहिब देवां जी साधु-संगत में पधार रहीं हैं।

चारों ओर एक चुप्पी सी छा गई। मंच पर गुरु महाराज के निकट एक पल में ही जगह खाली कर दी गई।

इतने में संगत की दूर तक फैली पंक्तियों को लांघते, दर्शनों की विह्वलता, विछोड़े का क्लेश, श्रद्धा का उमड़ता सागर, माता सुन्दरी और माता साहिब देवां गुरु महाराज के चरणों में गिर पड़ीं। चूम-चूमकर उन्हें सुध-बुध नहीं आ रही थी। आंसुओं की झड़ी से चरणों को धो रहीं थी। विछोड़े के आंसू, मिलाप के आंसू चकवियाँ चकोर से मिल रही थीं। वियोग की घुप-काली, लम्बी रात के बाद, इस बात से अनजान कि उनकी गैर-हाज़री में चमकौर की गढ़ी और सरहिंद की सूबेदारी में क्या कुछ गुज़र चुका था।

उधर इस सबसे परिचित साधु-संगत आंसुओं की झड़ी बरसा रही थी। बीच-बीच में कई श्रद्धालु औरतों की चीखं निकल जातीं, मर्दों के कण्ठ अवरुद्ध थे, बार-बार हूक निकल जाती। भाई मनी सिंह जो माताओं के साथ आए थे, हाथ जोड़े एक दूरी पर खड़े हैरान हो रहे थे। माताओं के मिलाप के समय खुशी के आंसू समझ आ सकते थे, पर साधु-संगत क्यों ऐसे व्याकुल हो रही थी। रो-रोकर बेहाल हो रही थी ? उन्हें कुछ समझ नहीं आ रहा था।

कुछ समय बाद गुरु महाराज ने माता सुन्दरी और माता साहिब देवां के सिर पर हाथ रखा, दायाँ हाथ माता सुन्दरी के सिर पर, बायाँ हाथ माता साहिब देवां के सिर पर। साथ ही ढड-सारंगी वाले जत्थे को आंखों ही आंखों में इशारा किया कि वे कीर्तन शुरू करें।

पर इस तरह के हालात में कोई ढड कैसे बजाए ? किसी के गले से आवाज़ कैसे निकले ? संगत थी कि रो-रोकर बेहाल हो रही थी। हिचकियाँ और सिसकियां।

गुरु महाराज ने अब माता सुन्दरी और माता साहिब देवां के शीश अपने हाथों चरणों से हटाकर उन्हें अपने साथ मंच पर बिठाया। माता सुन्दरी जी दाएं, माता साहिब देवां जी बाएं।

रागी जत्था अभी भी वार का गायन शुरू नहीं कर पा रहा था और अब माता सुन्दरी और माता साहिब देवां टुकर-टुकर आगे-पीछे साधु संगत में से जैसे कोई चेहरे ढूंढ रही हों। इधर से उधर, उधर से इधर, दाएं से बाएं, बाएं से दाएं, नज़दीक से दूर, दूर से नज़दीक, उनकी निगाहें कुछ ढूंढ रहीं थीं।

यह देख साधु-संगत और ऊंचे- ऊंचे क्रंदन करने लगीं और-और बेहाल होने लगीं लोग जानते थे, माताओं को किसकी तलाश थी और वे जिनकी उन्हें तलाश थी कहीं भी नहीं थे।

माता सुन्दरी जी और माता साहिब देवां जी अजीत को ढूंढ रही थीं, जुझार को ढूंढ रहीं थीं, जोरावर को ढूंढ रहीं थीं, फतेह को ढूंढ रही थीं। चार नैन माता सुन्दरी और माता साहिब देवां जी के जैसे फिरकी की तरह आगे पीछे फिर रहे थे। वे माता गुंजरी जी को तलाश कर रहीं थीं ताकि उन्हें आदर दे सकें। अपनी सास रानी के चरणों पर माथा टेकें। वे तो कहीं भी नहीं थीं। गुरु जी अपने साथ उन्हें आसन दिया करते थे। माता गुजरी जी कहाँ थी ? शायद अभी संगत में आईं न हों।

'हमारे लाल कहाँ हैं ?' पल भर और प्रतीक्षा कर साधु-संगत को वैसे आंसू बहा रहा देख, माता सुन्दरी और माता साहिब देवां जी ने एक साथ ही गुरु महाराज की ओर देखते हुए पूछा।

दशमेश चुप।

'हमारे साहिबज़ादे कहाँ हैं ?' इनकी आवाज़ तीखी हो गई थी।

कलगीधर अभी भी चुप।

उधर साधु-संगत का क्रंदन, चीखें और बैन, एक कोहराम मच गया।

'क्या मतलब ?' माता सुन्दरी और माता साहिब देवां जैसे दो सवालिये निशान हों, उड़े-उड़े चेहरे निराश हुए, डरे हुए, पसीना ही पसीना, पसीने की बूंदे एक दम उनकी भवों पर ढुलक आईं।

'मेरे लाल कहाँ हैं ?' माता सुन्दरी जी की छाती में जैसे कोई शूल उठा हो, उनकी आवाज़ फटी हुई थी।

'मेरे साहिबज़ादे कहाँ हैं चार के चार ?' माता साहिब देवां जी के अंदर का खौफ़, वे चीख उठीं, आंखों में से आंसू ढुलक पड़े।

उधर साधु-संगत जैसे एक फरियाद, एक अनुरोध एक व्याकुलता का साक्षात रूप हो।

फटी-फटी नजरों से माता सुन्दरी और माता साहिब देवां गुरु महाराज की ओर देख रहीं थीं कि दशमेश ने सामने बेहाल हो रही हजारों की साधु-संगत की ओर बांह से इशारा करते हुए फरमाया :

इन पुतरन के शीश पै वार दीए सुत चार।
चार मुए तों भिआ हुआ, जीवत कई हज़ार ॥

92

'आवो सिक्ख गुरु के पिआरिउ गावहु सच्ची बाणी।'

जैसे-जैसे साहिबज़ादों की शहीदी के विवरण माता सुन्दरी जी और माता साहिब देवां जी को पता चलते, आठों पहर वे विलाप करती रहतीं। माता साहिब देवां जी कुछ हौंसले में थीं, पर फिर माता सुन्दरी जी को कलपते देख उनका हौंसला भी टूट-टूट जाता। वे भी अपने आंसू न रोक पातीं। न खाना किसयी को अच्छा लगता, न पीना। घर में शोक की तरह एक घटा-टोप छाई रहती।

गुरु महाराज स्वयं जैसे कई बार माता सुन्दरी जी और माता साहिब देवां जी का विलाप सुनकर रूआंसे जैसे हो जाते। बेशक गुरुबाणी होनी को मानने को कहती थी और उन्होंने एक शूरवीर की तरह होनी मान भी ली थी, पर वह मां जिसकी कोख में से कोई लाल जन्मा हो, उसके ऐसे शहीद हो जाने पर कोई कैसे उसे होनी मानने को कहे ? उन्हें कुछ समझ नहीं आ रही थी।

और फिर गुरुसिक्खों के साथ बैठे एक दिन इस विषय पर चर्चा होने लगी। भाई मनी सिंह जी को विशेष चिंता थी। गुरु महाराज सुनते रहे, सुनते रहे। फिर उन्होंने भाई मनी सिंह को सामने पेड़ का एक पत्ता तोड़ने के लिए कहा। भाई साहब ने पत्ता तोड़ा। गुरु महाराज ने पूछा, जहाँ से पत्ता टूटा है, उस जगह का क्या हाल है ? गीली हो गई है, जैसे अन्दर से कोई सेजल फूट आई हो। भाई मनी सिंह ने कहा। इसे आंसू कहते हैं' गुरु महाराज ने फरमाया। और फिर आगे-पीछे हर किसी की तसल्ली हो गई।

तो भी गुरु महाराज इस तरह के वातावरण से खुश नहीं थे। इस प्रकार के भावावेश में बह जाना, गुरु सिक्खी की मर्यादा के अनुकूल नहीं था। इसका इलाज एक ही था। गुरुवाणी के पाठ। जैसे पहले गुरु घर में ऐसे अवसरों पर होता रहा था। पोथी का समूचा पाठ। पर पोथी को तो धीरमल्ल की औलाद जकड़े बैठी थी। करतारपुर में वे किसी को घुसने नहीं देते थे।

धीरमल्लियाँ का पोथी की बीड़ पर कब्जा, गुरु महाराज को इसमें कई दूरस्थ-चिंताएं अनुभव हो रहीं थी। पोथी का गुरु घर में होना ज़रूरी था। पोथी परमेश्वर का स्थान है। पोथी की अगुवाई गुरुसिक्खों के लिए अनिवार्य है। आज अगर पोथी उनके होती तो उसका अखण्ड-पाठ माता सुन्दरी और माता साहिब देवां जी का सहारा बन सकता था। पोथी का पाठ गुरुसिक्ख

का बुनियादी सहारा होता है। पोथी का पाठ गुरुसिक्ख को सही राह दिखाता है। होनी को मानने का बल बख़्शता है।

और अब जब चारों साहिबज़ादे ईश्वर को प्यारे हो चुके थे, गुरु महाराज को प्रतीत होता, सोढ़ियों का वंश जैसे किसी बंद गली में आ खड़ा हो। कल गुरु महाराज को गुरु गद्दी बख़्शनी होगी। किसे ?

यह ख़्याल आते ही दशमेश ने फैसला किया पोथी को फिर से तैयार करना ज़रूरी था। एक ही तरीका था कि कुछ प्रतिष्ठित सिक्खों को करतारपुर भेजकर पोथी को कुछ समय के लिए मंगवाया जाए और उसकी नकल करवा ली जाए। मूल पोथी बेशक धीरमल्लों को लौटा दी जाए। पहले भी तो गुरु हरगोबिन्द जी ने धीरमल्ल से गुरुसिक्खों द्वारा छीनी पोथी उसे लौटा दी थी।

यह विचार आते ही भाइ मनी सिंह की अगुवाई में एक जत्थे को करतारपुर भेजा गया। धीरमल्ल तो पांव पर पानी पड़ने देते। वे तो इस प्रकार की कोई बात सुनने के लिए तैयार नहीं थे। गुरुसिक्खों ने बड़ा समझाया, बड़ी मगज़-खपाई की, अनुनय की, वायदे किए, अपनी-अपनी गवाही भरने के लिए कहा, पर अगलों ने उनकी एक न सुनी। जैसे गए थे, भाई मनी सिंह और बाकी प्रतिष्ठावान गुरुसिक्ख खाली हाथ लौट आए। अब एक ही रास्ता रह गया था कि भई बन्नों की बीड़ को ढूंढा जाए और उसके आधार पर नई पोथी तैयार की जाए। यह सम्भव था। पर उस बीड़ के बारे में भाई मनी सिंह जी को एक चिंता थी। उस बीड़ में कुछ स्थानों पर कुछ आप बीतियाँ गढ़ी गई थीं, कहीं-कहीं मिलावट की हुई थी।

वह कौन-सी पत्नी है, जो अपने पति के बोल नहीं पहचानती ? गुरु महाराज ने कहा और भाई बन्नों की बीड़ की प्रतीक्षा किए बिना पोथी का पाठ मुंह-जबानी लिखाना शुरू कर दिया। गुरु अर्जुन देव जी की तरह इसके लिए अलग तम्बू गाढ़ा गया। दशमेश ने फैसला किया कि मूल पोथी के क्रम को ज्यूं का त्यूं रहने दिया जाएगा। केवल गुरु तेग बहादुर जी की बाणी को अपने-अपने रागों में दर्ज किया जाना था। अपनी बाणी वे मूल ग्रंथ में शामिल करने की नहीं सोच रहे थे। अपने ग्रंथ को उन्होंने 'यह हमारी है खेल' कहा। हर-रोज़ भोर में उठकर, दशमेश स्नान आदि अपनी दिनचर्या से फारिग होकर छः घंटे लगातार भाई मनी सिंह को गुरुबाणी लिखवाते। इस तरह कोई तीन महीनों में यह योजना निर्विघ्न समाप्त हुई।

एक बार लिखाई सम्पूर्ण हुई तो गुरु महाराज ने चालीस और गुरुसिक्खों से पोथी का अखण्ड पाठ श्रवण किया। कहते हैं, सारे का सारा समय गुरु महाराज और गुरुसिक्ख आंखें मूंदे, अन्तर्ध्यान, दत्तचित्त पोथी का पाठ सुनते रहे।

जब पाठ का भोग पड़ा, वह बैसाखी का दिन था। आनन्दपुर की बैसाखी की तरह शब्द-कीर्तन, कड़ाह-प्रशादि और खुले लंगर से सारा दिन संगत निहाल होती रही।

यह पोथी दशमेश की सबसे प्यारी उपलब्धि थी। इसको वह अपनी छाती से लगाए रखते। बाहर जाना होता, पोथी उनके साथ जाती। पोथी को वही आदर दिया जाता, जो गुरु अर्जुन देव और उनके उपरांत और गुरु साहिबान इसे दिया करते थे। पोथी की दुबारा लिखाई सम्पूर्ण होने पर गुरु महाराज ने स्याही और कलमें आदि को इस प्रयोजन के लिए गाढ़े गए, तम्बू के पास सरोवर में प्रवाहित कर दिया, यह कहते हुए कि यह स्थान गुरुसिक्खों की काशी कहकर जाना जाता है। इस तालाब का नाम–'लिखनसर' मशहूर हो गया। उस स्थान को गुरु की काशी के नाम से जाना जाने लगा। दमदमा साहिब में कितनी देर तक गुरु ग्रन्थ साहिब की बीड़ की नकलें तैयार की जातीं रहीं और उन्हें प्रामाणिक माना जाता था। यहाँ के लिखारियों की लिखावट खास-तौर पर बढ़िया थी। यहाँ के गुरुमुखी अक्षरों को छापे की फौंड के लिए नमूने के तौर पर मान्य किया गया। कोई समय था जब यह इलाका गुरुसिक्ख साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों और सिक्ख विद्वानों का केन्द्र जाना जाता था।

गुरु गोबिन्द सिंह जी की सिक्ख धर्म को देन अद्वितीय है। उन्होंने सिक्ख पंथ का संगठन किया, जो कुछ आज सिक्ख भाईचारे का स्वरूप है, कलगीधर की बख्शीश है, पर अगर कभी दशमेश ने दमदमा साहिब के अपने लगभग नौ महीनों के कयाम के दौरान श्री गुरु ग्रंथ साहिब का फिर से संपादन न किया होता तो जैसे कुछ देर बाद नंदेड़ में कलगीधर के साथ द्रोह किया गया, गुरुगद्दी सौंपने की समस्या बहुत भयानक रूप ले लेती।

93

औरंगजेब का एक और पैगाम गुरु महाराज के नाम आया था। दरअसल जैसे-जैसे शहंशाह को अपना अन्त नज़दीक आ रहा दिखाई देता, वैसे-वैसे उसे अपनी करनी आप परेशान करने लगी थी। वैसे-वैसे वह

उतावला होने लगा था, कोई उसकी भूलों को बख़्शवा दे, कोई कंधा देकर उसका पार उतारा करा दे। इस बार तो औरंगजेब ने शेख मुहम्मद यार मनसबदार और मुहम्मद बेग गुज़रबरदार को खास तौर पर बुलाया था कि 'नानक परस्त गोविन्द राय को उसके पास लाएं, साथ ही दिल्ली में अपने वज़ीर मुनीम खान को हिदायत दी कि दशमेश को सफर खर्च दिया जाए और राहदारी का विशेष प्रबन्ध किया जाए। एक सूबे से दूसरे सूबे में जाने से पहले सरहद पर उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध किया जाए।

यह जानकर गुरु महाराज औरंगजेब को मिलने के लिए तैयार हो गए। पर उनके निकटवर्ती गुरुसिक्ख इसके लिए तैयार नहीं थे। जब उन्होंने दक्षिण जाने का अपना इरादा प्रकट किया तो सब एक स्वर में कहने लगे, "भाड़ में जाए दक्खन।" पर गुरु महाराज अपने फैसले पर कायम थे। दोस्ती का हाथ बढ़ाया गया था। वह उसे पकड़ेंगे ज़रूर। निजी तौर पर तो औरंगजेब से कोई बैर नहीं था। बल्कि वह शहंशाह को पाकबाज़ समझते थे। यही तो उन्होंने 'ज़फरनामा' में लिखा था। एकाधिक बार कहा था–औरंगजेब तुम तेग और देग के धनी हो–

बात तरतीब दानिश बा तरतीब तेग।
खादावंदे देगे, खुदावंदे तेग॥ 87 ॥

यही नहीं उन्होंने कहा था.... औरंगजेब तुम हसीन हो, रोशन-दिमाग हो। तुम मुल्क के मालिक हो और हाकिमों के सरदार हो–

कि हसनुल जमाल असतों रोशन जमीर।
खुदावंदि मुलक असत साहिब अमीर॥ 88 ॥

इस तरह वे उसकी चापलूसी नहीं कर रहे थे, ऐसा कर रहे वे असलियत का बयान कर रहे थे। यह सब कुछ कहकर उन्होंने शहंशाह को लताड़ा भी था, '..... औरंगजेब, तुम बेशक आलम के शहंशाह हो, पर तुम दीन से दूर हो–

शरनशाहि औरंगजेब, आलमा।
कि दाराइ दोर अस्तु दूरअस्त दीं॥ 91 ॥

अगर वे सच्चे धर्म से बहुत दूर थे तो उसे धर्म की ओर लाना गुरु महाराज का फर्ज़ बनता था। इसीलिए तो वे जग में आए थे। इसीलिए तो उन्होंने अवतार लिया था।

यही नहीं, गुरु महाराज ने अपने सिक्खों को भी यह हुकमनामा भेजा था–

१ੴ सिरी सतिगुरु जी,

सिरी गुरु की आज्ञा है, सरबत संगति बेराड़ की गुरु रखेंगा चार अच्छे बैल भेजने की बात हजूर देखते। मैं तुमसें खुश हूँ। हमने दक्षिण के लिए कूच किया है। जिनि सिक्ख साडे नाल चलना होई तिनि हुक्म देखदियाँ हजूर आवणा। तुसां ऊपर खुशी है। गुरु जी तुहाडी रखेगा। सम्मत 1763, मिति कत्तक 20

इसके अलावा, गुरु महाराज जानते थे कि दक्षिण में मराठों ने औरंगजेब की नाक में दम कर दिया था। कई वर्ष आलमगीर को उनके साथ जूझना पड़ा। अब भी वे कौन से उसके काबू में आ रहे थे। इस तरह के लोगों से गठजोड़ करके मुगल साम्राज्य की नाक में नकेल डाली जा सकती थी। कुछ इस तरह कलगीधर सोच रहे थे।

यह भी उन्हें बताया गया था कि दक्षिण में गोदावरी के किनारे नंदेड़ नाम के कस्बे के बाहर एक पहुंचा हुआ बैरागी था। और सर्वज्ञ गुरु महाराज को इस बात का अहसास था कि उससे जो काम वे करवाना चाहते थे, करवाया जा सकता था।

गुरु महाराज ने माता सुन्दरी और माता साहिब देवां को फिर से भाई मनी सिंह की सपुर्दगी में दिल्ली भेज दिया और स्वयं गुरु सिक्खों को ज़रूरत के दायित्व दे कर 21 अक्तूबर, 1706 को दक्षिण के लिए चल दिए। गुरु महाराज राजस्थान की ओर से जा रहे थे। हिसार, सिरसा, सादोलपुर, चुरू, शिकार, रिंगास और फुलेरा होते हुए नारायण पहुंचे। यहाँ उनकी जैत राम मुहानी नाम से एक महंत से मुलाकात हुई। गुरु महाराज ने महंत से पूछा कि क्या राजपूत मुगलों के खिलाफ उनकी लड़ाई में शामिल हो सकेंगे ? महंत का कहना था कि यह मुमकिन नहीं हो सकेगा क्योंकि मारवाड़ में राठौरों की मुगलों से लड़ाई जारी थी; अजीत सिंह इसके लिए कोई मदद नहीं कर सकेगा। राजपूत राजाओं में नगौड़ का मोहकम सिंह औरंगजेब का साथ दे रहा था। ऐसे ही जयपुर का नौजवान राजा जय सिंह मुगलों से मिला हुआ था। महंत जैतराम ने गुरु महाराज को माधो दास बैरागी के बारे में बताया। उसकी बहुत महिमा सुनी जाती थी, बड़ा दमखम वाला धड़ल्लेदार पंजाबी राजपूत था। वह गुरु महाराज का ज़रूर साथ देगा। साथ ही उसे मराठों के लड़ने के ढंग की भी जानकारी थी। माधोदास बैरागी के लिए यह दूसरी

बार पुष्टि हो गई। गुरु महाराज को ध्यान आया, शायद यह माधोदास पाउंटे वाला लक्ष्मण दास था।

गुरु महाराज अभी राजस्थान में भगौड़ नाम के शहर में थे कि भाई दया सिंह और भाई धर्म सिंह उनसे आ मिले। उन्होंने गुरु महाराज के ख़त शहंशाह तक पहुंचा दिए थे और उन्होंने बताया कि शहंशाह गुरु महाराज से मुलाकात करने के लिए बेताबी से इंतजार कर रहा था। पर गुरु महाराज अभी भगौड़ा में ही थे कि उन्हें सूचना मिली कि 20 फरवरी, 1707 को औरंगजेब का अहमद नगर में इंतकाल हो गया था।

यह सुनकर कलगीधर दिल्ली की ओर चल दिए। वहाँ माता सुन्दरी और माता साहिब देवां जी थी। दिल्ली में गुरु महाराज पहले हुमायूं के मकबरे के पीछे उस स्थान पर रुके जहाँ आजकल दमदमा साहिब का गुरुद्वारा है। यहीं गुरु हरिकृष्ण ज्योति-ज्योति समाये थे। फिर वे भाई जैता जी की बरादरी का आदर रखने के लिए मोची बाग में जा रुके। भाई जैता ने गुरु तेग बहादुर जी का शीश आनन्दपुर पहुंचाने में अद्वितीय वीरता दिखाई थी। मोची बाग की बस्ती का नाम बदलकर गुरु महाराज ने मोती बाग रखा। सचमुच वहाँ मोतियों जैसे इंसान रहते थे जो विधि-अनुष्ठान (किरत-कर्म) करते थे और बांट कर छकते थे।

मोती बाग में गुरु महाराज के कयाम के दौरान एक गुरुसिक्ख उनके सामने हाज़िर हुआ। उसके संतान नहीं हुई थी। एक बेटे के लिए विनती कर रहा था, हर रोज़ हाजिर होता, हर रोज़ हाथ जोड़ता। इस दिन गुरु महाराज शिकार के लिए निकले कि वह गुरुसिक्ख भी सतगुरु के पीछे-पीछे चल पड़ा। वे बहुत दूर नहीं गए थे कि गुरु महाराज ने देखा, एक औरत चुपके से एक नवजात बच्चे को एक झाड़ी के पीछे छिपाकर आप चल दी थी। गुरु महाराज ने अपने पीछे आ रहे गुरुसिक्ख को हिदायत दी कि वह उस बच्चे को गोद ले ले।

शाम को शिकार से लौटकर जब गुरु महाराज ने इस घटना का माता सुन्दरी और माता साहिब देवां से ज़िक्र किया तो दोनों महिलाएं सहमी-सहमी नज़रों से गुरु महाराज की ओर देखने लगीं।

मिहरां के साईं सन !
टूटी गंडनहार सन !

94

औरंगजेब की मौत के बाद मुगल तख़्त के लिए शहंशाह के बेटों में कशमकश शुरू हो गई। औरंगजेब के चार बेटे थे जिनमें से अकबर तो पहले ही बागी होकर देश-निकाले की जिन्दगी भोग रहा था, बाकी तीन बेटों में मुअज्ज़म सबसे बड़ा था, पर वह काबुल में था। औरंगजेब ने उसे उत्तर-पश्चिम की सूबेदारी दे रखी थी। उससे छोटे दो आज़म और कमबख्श औरंगजेब की मृत्यु के समय उसके पास अहमद नगर में थे।

आलमगीर की मौत का सुनकर आज़म ने दक्षिण में और मुअज्ज़म ने काबुल अपने आप को गद्दी का वारिस घोषित कर दिया और दोनों अपनी-अपनी सूबेदारियों को छोड़कर दिल्ली, आगरा की ओर चल दिए, ताकि विधिवत तख़्त पर कब्ज़ा जमा सकें।

मुअज्ज़म स्वभाव से खुला-डुला था, अपने पिता की तरह इतना तंग नज़र, इतना फिरकापरस्त नहीं था। रोशन दिमाग। औरंगजेब ने उसे उत्तर-पश्चिम का सूबेदार तैनात करते हुए खास-तौर पर हिदायत की थी कि वहपंजाब में गुरु गोविन्द सिंह को लगाम डाले। पर उसने इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। कन्नी काट कर सह काबुल जा बैठा था।

भाई नन्दलाल किसी समय मुअज्ज़म का मीर मुंशी रह चुका था। जब भाई नन्दलाल की योग्यता से प्रभावित होकर औरंगजेब उसे इस्लाम कबूल करने के लिए कह रहा था, यह शहजादा मुअज्ज़म ही था जिसने अपने मुंशी को शहंशाह के इरादे से परिचित करवाया और सलाह दी कि वह इधर-उधर हो जाए। यह जानकर भाई नन्दलाल दशमेश जी के पास आनन्दपुर आ गए थे।

दिल्ली के लिए जाते हुए पंजाब में मुअज्ज़म ने फिर भाई नन्दलाल के साथ सम्पर्क किया। इस मुलाकात के दौरान भाई नन्दलाल ने शहजादा मुअज्ज़म को सलाह दी कि उसे गुरु गोबिन्द सिंह की सहायता लेनी चाहिए थी। गुरु महाराज उन हालात में बेशक कोई विशेष फ़ौजी मदद नहीं कर सकेंगे, पर उनकी हमदर्दी उसके लिए लाभदायक होगी। अगर गुरु महाराज उसके लिए अरदास करें तो उसकी कामयाबी निश्चित होगी। वे तो दोनों जहान के मालिक हैं। लोक-परलोक के रक्षक हैं।

शहजादा मुअज्ज़म ने जैसे उसे सलाह दी गई थी, गुरु महाराज से मदद के लिए निवेदन किया। दशमेश ने सिद्धान्त रूप में उसकी मदद करना मान

लिया। उन्होंने भाई धर्म सिंह की कमान में सिक्ख शूरवीरों की एक टुकड़ी उसके साथ कर दी।

आखिर आगरा के पास जैजू नामक स्थान पर दोनों भाइयों में लड़ाई हुई। इस लड़ाई में आज़म अपने दो जवान बेटों के साथ मारा गया और विजयी मुअज्ज़म तुरन्त बहादुरशाह के नाम से मुगल तख़्त पर काबिज़ हो गया।

मुगल बादशाह गुरु महाराज की सहायता के लिए उनका ऋणी था। उसने गुरु महाराज को आगरा मिलने के लिए आमंत्रित किया। दशमेश इस अवसर से लाभ उठाना चाहते थे। वे राज़ी हो गए। वे चाहते थे कि वज़ीर खान और कुछ और मुगल कर्मचारियों को, जिन्होंने सिक्ख भाईचारे पर जुल्म ढाए थे,उनकी करतूतों के लिए दण्ड दिया जाए। उधर बहादुरशाह को निश्चय था कि वह गुरुसिक्खों की मदद के बिना यह लड़ाई कभी नहीं जीत सकता था। आज़म की मौत ही भाई धर्म सिंह की फ़ौजी टुकड़ी के लक्खी जंगल के एक शूरवीर के तीर से हुई थी। गुरु गोविन्द सिंह की तरबीयत, सिक्ख शूरवीर जान हथेली पर रखकर लड़े थे। तलवार के धनी, उनके तीर जिधर-जिधर बरसते मौत बांटते जाते। गुरु महाराज 31 जुलाई, 1707 ई० को आगरे पहुंचे। जैसे एक नरेश की दूसरे नरेश से मुलाकात होती है, गुरु महाराज ने आगरा शहर से लगभग पांच मील की दूरी पर अपना ठिकाना रखा। तम्बू और छोलदारियाँ गाड़ी गईं। गुरु महाराज के साथ उनके दरबारी थे, अंग-रक्षक थे। गुरु महाराज के आगमन का सुनकर बहादुर शाह ने अपने वज़ीर मुनईम खान को उनके स्वागत के लिए भेजा। फूलों, फलों और मिठाइयों के इक्हत्तर सौ थाल और बहुत कुछ। बादशाह से मुलाकात 2 अगस्त को निश्चित की गई। इतने में आगरे की सिक्ख संगत गुरु महाराज के दर्शन करके निहाल होती रही। दीवान सजते, कीर्तन होता, वारें गाईं जातीं। अमृत का प्रचार होता।

मुलाकात वाले दिन दशमेश एक ईश्वर भक्त के वस्त्र न पहनकर एक शूरवीर की तरह सज्जित हुए। सुनहरी दस्तार, शीश पर कलगी। जरबफ़्त के जूते। कमर पर तलवार। अपने तम्बू से निकलने से पहले माता साहिब देवां जी ने, जो उनके साथ आईं थीं हजूर पर पानी वार कर पीया।

आगरा के किले में मुगल बादशाह से मुलाकात के लिए; बहादुर शाह के भेजे रथ पर न बैठकर गुरु महाराज ने अपने घोड़े पर जाने का फैसला

किया। उनके पीछे उनके दरबारी अपने-अपने घोड़ों पर थे। जैसे किसी शहंशाह का जलूस होता है। बाअदब बामुलाहिजा होशियार, पुकारते शाही कर्मचारी सड़क के दोनों ओर खड़े थे। अंगरक्षकों की एक टुकड़ी गुरु महाराज के आगे, एक टुकड़ी पीछे। गुरु महाराज जब किले के द्वार पर पहुंचे, बादशाह ने बाहर निकलकर उनका स्वागत किया, दशमेश को घोड़े से उतारकर अपने साथ उन्हें ले चला। दरबार में उन्हें विशेष मसनद पर विराजमान किया गया।

गुरु महाराज के स्वागत में बहादुर शाह ने कहा.... 'हे वाहिगुरु को पहचानने और पूजने वालों के सरदार ! हे ईश्वर तक पहुंचे हुए ज्ञानियों के सरताज, 'रामदास' जी ! आपकी कृपालुता के कारण शरीर आनन्द प्रसन्न है ? आपके सुखदायी दर्शनों से सारे गम और फिक्र मन से दूर हो गए हैं। बल्कि यह सल्तनत बादशाही, इस सच्चे सेवक को केवल आप की कृपा वाली दात कई तरह की दुआओं से प्राप्त हुई है। आपके आदेश सिर और आंखों पर रखकर पूरे करने की ज्यादा से ज्यादा कोशिश करूंगा।

इसके बाद बहादुर शाह ने गुरु महाराज को कई सौगातें पेश कीं। इनमें एक हीरे और मोती जड़ी कलगी, एक जरी वाली राईफ़ल और सुनहरी खिलियत आदि थीं। इसके अलावा बादशाह ने गुरु महाराज को बड़ी भारी जागीर भी पेश करनी चाही। पर जागीर के लिए गुरु महाराज राज़ी नहीं हुए। बाकी सभी सौगातें स्वीकार करके उन्होंने अपने साथ लाए भाई धर्म सिंह के हवाले कर दीं।

बहादुर शाह के दरबारियों को गुरु महाराज का ऐसा करना शाही सम्मान की बेअदबी प्रतीत हुई। चाहिए तो यह था कि हुकमरान की ओर से बख़्शी सौगात को ग्रहण करके गुरु महाराज उसे दरबार में ही कन्धों पर उठा लेते। गुरु महाराज ने ऐसे नहीं किया, जिसका अर्थ था कि वे अपने आपको बहादुर शाह के बराबर या उसे श्रेष्ठ समझते थे।

इस प्रकार चिढ़े हुए दरबारी ने कलगीधर से पूछा, कौन सा मज़हब अच्छा है, हमारा कि आपका ? गुरु महाराज ने फरमाया, आपको आपका धर्म मुबारक, हमें हमारा। गुरु महाराज हरेक के अपने-अपने धर्म की स्वतन्त्रता के हामी थे। वे किसी के धर्म में दखल देना ठीक नहीं समझते थे।

फिर किसी ने गुरु महाराज को करामात दिखाने के लिए कहा। अगर वे पहुंचे हुए फकीर थे तो बाकी दरवेशों की तरह उन्हें कोई करामात करनी

होगी। गुरु महाराज ने म्यान में से अपनी चमकती तलवार निकालकर कहा, यह करामात है।

'वह कैसे ?' दरबारी ने हैरान होकर पूछा।

कल जो औरों के जैसा सूबेदार था; इसके तेज से आज तख़्त का मालिक है। गुरु महाराज ने बहादुर शाह की ओर इशारा किया, 'करामात' 'करतब' है।

फिर एक दरबारी ने कहा रोज़े कयामत केवल वही कबूल होंगे जिनकी रसूल अल्लाह (मोहम्मद साहिब) सिफारिश करेंगे। यह सुनकर गुरु महाराज ने एक अशरफी दरबार के कर्मचारी को दे कर कहा बाजार में उसका मोल डलवा आए। अशरफी को देख कर दरबारी ने कहा, अशरफी तो खोटी हैं उसका मूल्य कोई क्या लगायेगा ? पर उस पर शाही मोहर तो वैसे की वैसे लगी थी जैसे बाकी अशरफियों पर लगी होती है। जब धातु खोटी हो तो अशरफी बेकार होती है। जब आदमी के अमाल खरे न हों तो रसूले अल्लाह की सिफारिश भी काम नहीं आती। यह सुनकर दरबारियों की आंखें खुल गई।

गुरु महाराज ने बहादुर शाह को उसे मुलाकात के दौरान हुई कई बातों की हिदायत की जिनमें से प्रमुखतः ये थीं :

1. सरकार को हरेक धर्म से बराबर की दूरी रखनी चाहिए।
2. काज़ी को हर फैसला केवल न्याय के आधार पर करना चाहिए।
3. काज़ी और प्रशासक को एक दूसरे के काम में दखल नहीं देना चाहिए।

जब गुरु महाराज बहादुर शाह के साथ अकेले हुए तो उन्होंने सिफारिश की जैसे जहांगीर ने चन्दू शाह को गुरु हरगोबिन्द जी के हवाले कर दिया था ताकि वे उसे गुरु अर्जुन देव जी के साथ किए गए अत्याचार की सज़ा दे सकें। बहादुर शाह को भी कुछ कर्मचारी गुरु गोबिन्द सिंह के हवाले कर देने चाहिए थे। वे जिन्होंने पंजाब में जुल्म ढाए थे। ऐसे लगता बहादुर शाह मुगल तख़्त पर ज़रूर काबिज हो गया था; पर उसकी इतनी मजाल नहीं थी कि किसी सूबेदार को हाथ डाल सके। उसने इस मामले को कुछ देर के लिए पीछे छोड़ दिया। अभी तो उनकी कई मुलाकातें होने जा रही थीं, उसने यह कह कर गुरु महाराज को टाल दिया।

इस मुलाकात के बाद जब गुरु महाराज किले में से निकल रहे थे, तो

आस-पास एक अत्यन्त मधुर स्वर में इस सहगान की धुन सुनाई दे रही थी :

दया धार हमरो घर आए।
तख़्त बख़्त तुम ते प्रभ पाए॥

95

'बहादुर शाह गुरु महाराज के साथ बनाकर रखना चाहता था जिससे पंजाब में अमन-चैन कायम रह सके। सिक्ख सम्प्रदाय और मुगल दरबार में पड़ी दरार को वह मिटाना चाहता था। दशमेश भी यही चाहते थे पर उनकी यह धारणा थी कि जब तक वज़ीर खान जैसे पापी कर्मचारियों को दण्ड नहीं दिया जाता यह मुमकिन नहीं होगा।

गुरु महाराज ओर बहादुर शाह की मुलाकातें जारी थी कि खबर आई कि राजस्थान में राजपूत बागी हो गए थे। उधर हैदराबाद दक्षिण में भी बहादुर शाह के छोटे भाई कामबख़्श ने बगावत का झंडा बुलन्द कर दिया था। बहादुर शाह की इच्छा थी कि गुरु महाराज भी उसके साथ इस मुहिम पर चलें। दशमेश राज़ी हो गए। उनका मनोरथ वज़ीर खान को अपने कब्जे में लेना था, उसे उसकी करतूतों के लिए सज़ा देनी जरूरी थी। और अगर बहादुर शाह इसके लिए नहीं मानता तो वे दक्षिण में माधो दास बैरागी से मिलकर सरहिन्द के सूबेदार को मारने के लिए अपनी नई योजना बनायेंगे। जो कुछ वज़ीर खान ने दो छोटे साहिबज़ादों से किया था, उसकी सज़ा उसे भुगतनी पड़ेगी। माधोदास बैरागी पाउंटा में गुरु महाराज के साथ शिकार खेला करता था। उसकी शूरवीरता से गुरु महाराज बहुत प्रभावित थे। बड़ा करामाती संन्यासी माना जाता था।

इधर जैसे-जैसे गुरु महाराज बहादुर शाह को नज़दीक से देख रहे थे, उसमें उसका बाप उन्हें दिखाई देता था। औरंगजेब की तरह बहादुर शाह ने दिल्ली के शाही कोतवाल को फरमान ज़ारी किया था कि हिन्दू न पालकी की सवारी कर सकते हैं न अरबी या ईराकी घोड़े पर बैठ सकते हैं। अगर किसी हिन्दू को कचहरी में हाज़िर होना पड़े तो उसे कानों में से मुंदरियाँ उतार कर आना होगा और उसकी दाढ़ी कटी हुई नहीं होनी चाहिए। हिन्दुओं से जजिया और धर्मस्थानों की यात्रा के कर वैसे के वैसे वसूल किए जायेंगे।

इन्हीं दिनों में ही जब नर्मदा के किनारे शाही फ़ौजें कुछ दिनों के लिए रुकी हुई थीं, आपस की एक झड़प में किसी मुगल सिपाही ने भाई मान सिंह

को, जो चमकौर की जंग के ज़माने से गुरु महाराज के अंग-संग रहते आ रहे थे, धोखे से कत्ल कर दिया। असल में मुगल कर्मचारी जो आदर बहादुर शाह दशमेश को देता था, जो खातिरें सिक्ख फौज़ियों की होती थीं, उस सब कुछ से वे चिढ़े रहते थे। इस हादसे के कारण गुरु महाराज और मुगल बादशाह में सम्पर्क बिगड़ सकते थे, पर बहादुर शाह ने मामले को सम्भाल लिया। उसने उस मुगल सिपाही को जिसने भाई मान सिंह पर वार किया था, गुरु महाराज के हवाले कर दिया। जो चाहे वे उसके साथ कर सकते थे। कोई भी सज़ा उसे दी जा सकती थी। गुरु महाराज ने उस मुसलमान सिपाही को माफ कर दिया।

यह देखकर मुगल सिपाही अचम्भित हो गए। उन्हें जैसे विश्वास न आ रहा हो कि दशमेश उस हत्यारे के प्रति इतने उदार हो सकते हैं, जिसने उनके निकटवर्ती गुरु सिक्ख की हत्या की थी। आजकल गुरु महाराज बिना लाग लपेट के ऐलान करते, उनका किसी और से वैर नहीं था, वे तो बस वज़ीर खान को उसके कुकर्मों की सज़ा देना चाहते थे।

गुरु महाराज इससे वाकिफ नहीं थे कि उस जमाने में मुल्क का हर सूबेदार अपना कोई-न-कोई पिछलग्गू शाही दरबार में रखता था, जिसका यह फर्ज़ होता था कि अपने सूबेदार को हर मामले की जानकारी पहुंचाता रहे, जो कुछ गुरु महाराज ने बहादुर शाह को आगरे में कहा, जो कुछ वे उसके बाद एक से अधिक बार उसे वज़ीर खान के बारे में कह चुके थे, उसकी सूचना बकायदा वज़ीर खान को पहुंच रही थी।

वज़ीर खान इस बात को भी जानता था कि बहादुर शाह ने गुरु गोविन्द सिंह को खिलियत पेश की थी। यह भी वह जानता था कि दशमेश की मदद से ही उसने मुगल तख़्त पर अपना कब्ज़ा जमाया था। इससे भी वह अनजान नहीं था कि चन्दू शाह को जहांगीर ने गुरु हरिगोविन्द जी के हवाले किया था और उसका क्या हश्र हुआ था। इससे पहले कि उसके साथ भी इसी प्रकार का कुछ हो, उसने मन ही मन यह फैसला कर लिया कि वह गुरु गोविन्द सिंह वाले कांटे को निकालकर रहेगा। मुगल दरबारी कुटिल नीति, मक्कारी, धोखे और बेईमानी के लिए अपना सानी नहीं रखते थे।

इधर इतने दिन से बहादुर शाह से वार्तालाप कर रहे, इतने दिन से बार-बार उसे अपने मनोरथ की याद दिला रहे थे। गुरु महाराज के सब्र का प्याला जैसे लबालब भर गया था। उस दिन उन्होंने बहादुर शाह को मज़बूर

कर दो टूक फैसला करने के लिए कहा।

बहादुर शाह ने अपनी मजबूरी जाहिर की। बेशक वह बादशाह था। पर वज़ीर खान जैसे सूबेदार को वह खफ़ा नहीं कर सकता था। सलतनत के मामलों पर उसकी पकड़ अभी इतनी मज़बूत नहीं थी।

यह देख गुरु महाराज ने अपने-आपको बहादुर शाह के लश्कर से अलग कर लिया। उन दिनों वे गोदावरी के किनारे नंदेड़ में ठहरे हुए थे। जब मुगल फ़ौज ने नंदेड़ से कूच किया, गुरु महाराज उसके साथ नहीं गए।

इधर गुरु महाराज बहादुर शाह से नाता तोड़ रहे थे और उधर उनकी आगरे की मुलाकात के बाद खालसे को भेजी चिट्ठी गांव-गांव धर्मसाल में पढ़ी सुनी जा रही थी। इस चिट्ठी में कलगीधर ने लिखा था :

१ੴ सतिगुरु जी,

"धौल नगरी की सर्व संगत आप मेरा खालसा हो ! गुरु रखेगा। गुरु-गुरु जपना जन्म संवरेगा। सब सुख नाल पातशाह पासि आए ! सिरपाउ अर सउि हज़ार की धुखधुखी जड़ाउ इनाम। होर भी काम गुरु का सदका होते हैं। असीं भी थोड़े दिनां नूं आवते हाँ। सरबत संगत खालसा को मेरा हुकम है, आपस में मेल करना। जद असीं कहलूर आवते, तदि सरबत खालसे हथियार बनि के हजूर आवना। सम्वत् 1964, 4 कत्तक।"

अगर मुगल दरबारियों को बहादुर शाह की गुरु महाराज ने घनिष्ठता नहीं भाती, गुरु महाराज के निकटवर्ती गुरुसिक्खों को भी दशमेश की मुगल हुक्मरान के वादों पर विश्वास करना कोई अच्छा नहीं लगता था। वे औरंगजेब से पहले ही धोखा खा चुके थे। अगर वे शहंशाह के कुरान की कसम खाकर किए इकरार पर एतबार न करते तो वे सोचते, आज ऐसे खज्जल-ख़्वार न हो रहे होते, राज़ी-खुशी आनन्दपुर अपने-अपने घर में बैठे होते।

अब जब बहादुर शाह का लश्कर हैदराबाद के लिए चल दिया था, गुरुसिक्खों के पास खाली समय था। एक बात जो उन्हें कुछ दिनों से परेशान कर रही थी। रास्ते में दादू द्वारे के पास से निकलते, गुरु महाराज ने आदर के तौर पर सिर झुकाया था। अमृतधारी गुरु सिक्खों को यह अच्छा नहीं लगा था। कम से कम अमृतपान करवाते समय जो शिक्षा उन्हें दी गई थी, ऐसे

करना उसके विपरीत था। उन्हें तो बताया गया था कि मढ़ी-मसान, कब्रिस्तान, समाधि की पूजा वर्जित है और इधर गुरु महाराज स्वयं एक फकीर की समाधि पर अपना शीश झुकाते देखे गए थे।

गुरु महाराज ने सुना और उनके बीच के लोकतांत्रिक रुचियाँ रखने वाले नेता ने तुरन्त अपनी गलती स्वीकार कर ली, यही नहीं उन्होंने धर्म सिंह, दया सिंह आदि अपने गुरु प्यारों को कहा कि जो तनख्वाह इस कसूर के लिए वे लायेंगे, गुरु महाराज भरने के लिए तैयार होंगे। जो मर्यादा उन्होंने गुरुसिक्खों के लिए निर्धारित की थी, वही रहतल गुरु महाराज पर भी लागू होती थी।

वास्तव में सच्चाई यह है कि दादू की समाधि के सामने से गुज़र रहे गुरु महाराज का कंठ किया हुआ सुखमनी साहिब का पाठ समाप्त हुआ था और आख़री तुक पर उनका शीश झुक गया था। पर गुरु महाराज अपने गुरु सिक्खों को इस असलियत की जानकारी न देकर इस बात को सुनिश्चित कर रहे थे कि गुरु सिक्ख अपने निर्धारित सिद्धांतों की रक्षा करें।

नंदेड़ में उस स्थान का, जहाँ गुरु महाराज ने अपना डेरा स्थापित किया था, कभी-कभी इस अपनापे से ज़िक्र करते जैसे वे उस परिवेश को युगों से जानते हों। एक दिन धर्म सिंह और दया सिंस से रहा न गया, उन्होंने दशमेश से इस शंका का ज़िक्र किया। गुरु महाराज ने सुना और उनके मुखड़े पर शरारत खेलने लगी। उन्होंने अपने गुरुसिक्खों से कहा मैं यहाँ एक तीर छोड़ूंगा, जहाँ यह तीर जाकर गिरे, उस जगह को खोदा जाए। एक-दो हाथ भूमि के नीचे एक कोठा मिलेगा, जिसमें फलां-फलां मेरे बर्तन होंगे।

धर्म ने और दया ने वैसे ही किया और जैसे कलगीधर ने कहा था पहले कोठा दिखाई दिया। कोठे के पट जब खोले गए, उसमें गुरु महाराज ने जैसे बताया था सभी वे बर्तन रखे पड़े थे।

सतयुग में गुरु महाराज ने उस स्थान पर तपस्या की थी।

यह सुनकर गुरुसिक्खों ने भूमि का वह सारा टुकड़ा उसके वर्तमान मालिक से मोल ले लिया और उस स्थान का नाम अबचल नगर रखा।

'अबचल नगर गोबिन्द गुरु का नामु जपति सुखु पाइया'

96

गोदावरी के किनारे, एक ऊंचे टीले पर किसी संन्यासी का डेरा था। जबसे वे नंदेड़ आए थे, दशमेश ने दया सिंह को हिदायत दी थी कि वह

बैरागी के डेरे पर नज़र रखे, और जब बैरागी डेरे से बाहर गया हो गुरु महाराज को बताए। दशमेश उस संन्यासी से मिलना चाहते थे।

भाई दया सिंह को यह बात समझ नहीं आई। गुरु महाराज उसे मिलना चाहते थे पर इस इंतजार में थे कि जब बैरागी अपने डेरे से बाहर गया हो।

मेरे लीलाकारी स्वामी भाई दया सिंह अपने आप से कहता और अपना फ़र्ज निभा रहा था। आज कितने दिन हो गए थे। अब तो बहादुर शाह भी अपने अमले के साथ चला गया था। गुरु महाराज का डेरा शहर के दूसरी ओर कोई एक कोस बाहर को था।

उस दिन भोर में दीवान के बाद गोदावरी के किनारे बैरागी की टोह लेने के लिए जाने से पहले भाई दया सिंह से जैसे रहा न गया और वह गुरु महाराज से पूछने लगा, सच्चे पातशाह ! यह कौन है जिसे हजूर मिलना चाहते हैं ? पर तब जब वह अपने डेरे से बाहर गया हो ?

गुरु महाराज मुस्कराने लगे और उन्होंने भाई दया सिंह से कहा : बैरागी उत्तर पश्चिम का रहने वाला है। किसी समय पाऊंटा में यह हमारे साथ शिकार खेला करता था। इसकी कहानी बड़ी दिलचस्प है।

बचपन का इसका नाम लक्ष्मण देव था। इसका जन्म कार्तिक की 13 सम्वत् 1727 बिक्रमी पुंछ के एक शहर राजौरी में हुआ था। पुंछ कश्मीर के पश्चिम में है। इसका पिता रामदेव एक मामूली किसान था। यह भी सुनने में आया है कि ये जाति के सोढ़ी हैं।

बचपन में बहुत चंचल और खिलंदड़ था। मालिश करवाता और अखाड़े में कुश्ती लड़ता। गली मुहल्ले के बच्चों की टोलियाँ बनाकर ये लोग दौड़ लगाते, छलांगे लगाते, खेल खेलते एक दूसरे को हराते जीतते रहते। जरा बड़ा हुआ तो इसने शिकार खेलना शुरू कर दिया। तलवार का धनी, बन्दूक, तीर का इसका निशाना कभी खाली नहीं जाता था। हृष्ट-पुष्ट, गठा हुआ, इसे रास आता, कोठे जितना कद, शीशम जैसा जवान। इसकी छाती जैसे इस्पात की बनी हो। इसके डौले चम-चम चमकते। दमदमाता मुखड़ा, इसके चेहरे की ओर देखा नहीं जाता था। खुला-चौड़ा माथा न किसी का डर न खौफ, जैसे सांड हो। जो मन भाता, करता। जहाँ मन करता, जाता। घर वाले इससे तंग थे। खेती बाड़ी के काम-काज में इसकी कोई रुचि नहीं थी। न कभी हल के पीछे खड़ा था न कभी दरांती लेकर इसने पक्की फसल को काटा था। इसके मां-बाप क्या और इसके पड़ौसी क्या इसकी ओर देख-देखकर

परेशान होते रहते। कोई बात अच्छे नौजवानों वाली इसमें नहीं थी। आठों पहर अपने साथी लड़कों के साथ दनदनाता रहता। इधर से आता, उधर निकल जाता, उधर से आता इधर निकल जाता। शाम को घर लौटता, ढेरों शिकार से लदा-फदा होता, शेर, चीते, बाघ, बारह सिंघे, कस्तूरी हिरन, सीहे, तीतर, मुर्गाबियां। इसकी मां, गली-मुहल्ले में शिकार बांट-बांटकर थक जाती।

फिर एक दिन इसके जीवन में एक अजीब घटना घटी। शिकार के लिए निकला, यह सारा दिन भटकता रहा। कोई बड़ा शिकार इसके हाथ न लगा, न कोई शेर न कोई चीता, न कोई बाघ न कोई रीछ। बस सहे और सूअर आगे-पीछे घूम रहे थे जिनका शिकार करना इसकी गैरत इज़ाजत नहीं देती थी। निराश होकर शाम को यह घर लौट रहा था कि अचानक एक हिरनी झाड़ियों में से कूद कर इसके सामने आ गई। जैसे इसके बीच के शिकारी को ललकार रही हो। सहसा इसने कमान को चढ़ाया और इसके तीर ने जैसे हिरनी के पेट को चीर कर रख दिया हो।

आगे बढ़कर लक्ष्मण देव ने देखा, हिरनी तो मां बनने वाली थी। इससे पहले उसने तड़प-तड़प कर दम तोड़ा उसके पेट में से दो बच्चे निकले। फिर एक के बाद दूसरा, मासूम जानों ने भी तड़प-तड़प कर जान दे दी। लक्ष्मण देव के देखते-देखते तीन जानें जाती रही थीं।

चाहे कितना अल्हड़, कितना अपने में मस्त था, लक्ष्मण देव का दिल का बड़ा कोमल छुई-मुई की तरह था। वैसे का वैसे तीर कमान वहीं फैंककर यह संन्यासी हो गया। घर बार छोड़ कर बैरागियों की एक टोली से जा मिला। इस टोली के प्रमुख महन्त जानकी प्रसाद बैरागी थे। वे लोग अमरनाथ की यात्रा के लिए जा रहे थे। लक्ष्मण देव भी उनके साथ हो लिया। अमरनाथ की यात्रा के बाद यह आत्म ज्ञान की तलाश में भटकता कसूर के स्वामी रामदास की शरण में चला गया। यहाँ इसका नाम बदलकर माधोदास बैरागी रखा गया।

पर यह कसूर में भी अधिक समय न टिका सका। घूमता-घूमता यह नासिक के नजदीक जंगल में पंचवटी नामक स्थान पर जा निकला। यहाँ इसकी भेंट एक वृद्ध तांत्रिक उघरनाथ से हुई जिसने इसे योग और जादू-टोनों के रहस्य सिखाए। जंतर-मंतर और तन्त्र की सिखलाई दी। ऋद्धियां-सिद्धियाँ इसके काबू में आईं। इसने नाटक-चेटक और इसी प्रकार के चमत्कार करने शुरू कर दिए। कहते हैं, हनुमान और भैरव का इसने

वशीकरण किया हुआ था।

अपने गुरु उघरनाथ के देहान्त के बाद यह एकांत की तलाश में गोदावरी के किनारे यहाँ नंदेड़ के निकट आ बैठा और यहीं उसने अपना आश्रम बना लिया।

गुरु महाराज भाई दया सिंह को माधो दास बैरागी की कहानी बता रहे थे कि उन्होंने देखा सामने बहादुर शाह आ रहा था। दो चार मंजिलें चलकर जब बादशाह ने देखा कि दशमेश सचमुच पीछे नंदेड़ में ही टिक गए थे, उसके साथ नहीं आ रहे थे तो वह लौटकर गुरु महाराज के यहाँ क्षमा याचना करने आया। उसका जमीर उसे कचोट रहा था। उसने अपने किए वायदे पूरे नहीं किए थे। यह उसकी मजबूरी थी। बेशक वह मुल्क का बादशाह था पर वज़ीर खान जैसे सूबेदार को हाथ डालना उसके वश की बात नहीं थी। इस्लामी रहत (मर्यादा) की मजबूरियाँ अलग थीं।

गुरु महाराज ने बहादुर शाह को बिना लाग लपेट के साफ-साफ शब्दों में बता दिया कि वज़ीर खान को उसके कुकर्मों का फल भुगतना पड़ेगा। अगर बादशाह यह ज़िम्मेवारी लेने के लिए तैयार नहीं था तो गुरु महाराज को कोई और उपाय ढूंढना पड़ेगा।

एक कमजोर बादशाह बस माफी मांग सकता था। वह बार-बार अपनी मजबूरी बता रहा था।

चलने से पहले बहादुर शाह ने कलगीधर को एक हीरा भेंट किया। यह हीरा दक्षिण के तानाशाह को मारकर औरंगजेब ने उसकी पगड़ी में से निकाला था। गुरु महाराज ने एक नज़र हीरे को देखा और उसे सामने गोदावरी के पानी में फैंक दिया। बहादुर शाह और गुरु महाराज इस मुलाकात के दौरान दरिया के किनारे टहल रहे थे।

बहादुर शाह दशमेश की इस बेनियाज़ी पर स्तब्ध होकर रह गया।

'किबला, यह हीरा तो लाखों रुपये का था।' बादशाह ने परेशान लहज़े में कहा। तो फिर क्या ? आपको ऐसे कितने हीरे चाहिएं ? गुरु महाराज ने बहादुर शाह से कहा और अपने एक गुरुसिक्ख को हुक्म दिया कि वह गुबची मारकर बादशाह को गोदावरी के तल में से हीरों की खोंच भरकर ला दे।

अगले ही क्षण गुरु सिक्ख दरिया में कूद पड़ा और बादशाह के देखते-देखते चम-चम करते हीरों की भरी-सी खोंच बहादुर शाह के सामने जा रखी। बादशाह यह देखकर चकित रह गया।

विदा होने से पहले बहादुर शाह ने गुरु महाराज को बताया कि जितनी ज़्यादितियाँ वज़ीर खान से हुई हैं। उनके दण्ड के तौर पर बादशाह ने उसे आदेश दिया था कि सरहिन्द के खजाने से तीन सौ रुपया प्रति दिन गुरु गोबिन्द सिंह को पहुंचाया जाए।

गुरु महाराज ने यह सूचना जैसे अनसुनी कर दी।

97

अगले दिन दशमेश को सूचना मिली कि बैरागी माधो दास गोदावरी पार जाता देखा गया था। गुरु महाराज ने सुना और कुछ निकटवर्ती गुरुसिक्खों के साथ बैरागी के डेरे की ओर चल पड़े।

बैरागी के बारे में कहा जाता था कि चाहे गोदावरी के इस घाट पर नाव जरूर पड़ती थी, पर उसे कभी नाव की जरूरत नहीं पड़ी थी। पानली पर चलकर नदी पार कर लेता था। चाहे गोदावरी में कितनी बाढ़ आई हो, वह अपनी चाल पानी पर फटाफट इधर से उधर, उधर से इधर लांघ जाता था। गोदावरी में भयानक घड़ियाल सुने जाते थे। अक्सर नदी के किनारे रेत पर आकर ऊंघ रहे होते थे, नदी पर नहाने आए शहरियों को या प्यास बुझाने आए जानवरों को, जंगली जानवरों को, घड़ियाल अपने जबड़े में कसकर नदी में उतर जाते और फिर किसी की खोज-खबर सुनाई नहीं देती थी।

एक और बात बैरागी के डेरे के बारे में सुनी जाती थी। उसने अपने आश्रम को कभी ताला नहीं लगाया था। न कभी किसी ने उसका दरवाजा भिड़ा देखा। उसके चेले चाहे डेरे पर हों या न हों आश्रम के द्वार खुले रहते थे। किसी की मजाल नहीं हुई थी उसकी गैर हाजरी में डेरे में कदम रख सके। अगर कोई डेरे में पांव डालता, तो उल्टा हुआ बाहर गिर पड़ता। उसके डेरे की रक्षा जिन-भूत करते सुने जाते थे। एक बार एक बाघ उसके आश्रम पर आ गया। आश्रम के खुले घास के मैदान में चर रही बकरियों पर झपटना चाहता था। बाघ मुख्य द्वार में से घुसने की कोशिश करता, हर बार कोई दैवीय शक्ति उसे पछाड़ कर बाहर गिरा देती। एक बार, दो बार, तीसरी बा, जब बाघ कूदकर अन्दर जाने लगा, इस शिद्दत से उसे पटका गया कि चार दीवारी के बाहर जा उल्टा गिरा, उसके प्राण निकल गए। उसके मुंह में से लहू की लारें बहने लगीं।

यह भी सुनने में आया था कि बैरागी के चूल्हे में कभी आग नहीं जली थी। चाहे एक मेहमान हो, चाहे इकहत्तर सौ, उसका लंगर आठों पहर चलता

था। पता नहीं कहाँ से थल परोसे हुए मेहमानों के सामने लग जाते थे। दुनिया की कोई नियामत नहीं थी जो उसके आश्रम में पाई न जाती हो। जब कोई चाहे जो कोई चाहे फल खा सकता था, चाहे उसकी बहार हो न हो। जब कोई चाहे जो भी चाहे मिठाई खा सकता था चाहे कहीं से भी लानी हो।

उसके आश्रम में कई बार लोगों ने परियों को गाते सुना था, नाचने की ध्वनि सुनाई देती थी। जैसे सैंकड़ों कण्ठ मिलकर गा रहे हों, अनगिनत पग एक ताल पर नाच रहे हों। घुंघरूओं की छनकार और तबले की थप रात-रात भर सुनाई देती रहती।

इधर संध्या होती, उधर बैरागी के आश्रम के चिराग आप ही आप जग-मग करने लगते। कई बार जब दिन में काली घटा छाने लगती। घिर-घिर कर आए बादल सूरज को ढक लेते बैरागी के आश्रम की बत्तियाँ आप ही आप जल पड़तीं।

बड़े-बड़े पहुंचे हुए योगी उसके यहाँ आते, न वार्तालाप में, न करनी में बैरागी ने कभी हार मानी थी। जो कोई भी आता, उसका प्रताप मानकर लौटता था। कई को तो बैरागी ऐसे जलील करता कि वह कानों पर हाथ लगाकर माफियाँ मांगकर लौटते।

जब से नंदेड़ आए थे, दशमेश बैरागी के बारे में इस तरह की बातें सुन रहे थे, सुनकर अनसुनी कर देते कभी सुनकर मुस्कराने लगते। उस दिन गुरु महाराज ने अपने कुछ साथियों के साथ बैरागी के आश्रम की ओर जाते नंदेड़-वासियों ने सुना तो उन्हें रोकने लगे। बड़ा बिगड़ा हुआ, फकीर था, उसे मुंह क्यों लगाना ? पर गुरु महाराज किसी बात पर कान नहीं दे रहे थे। यह देख कई तमाशबीन भी उनके साथ चल पड़े।

नंदेड़वासियों को निश्चय था कि जैसे ही गुरु महाराज और उनके साथी बैरागी के आश्रम में कदम रखेंगे, उल्टे वे बाहर आ गिरेंगे। जिन-भूत उसके आश्रम की रक्षा करते थे। शहरी कहते, कई बार उन्होंने देखा था कि तेगों-तलवारों के साथ लैस सिपाही उसके आश्रम के बाहर पहरा दे रहे थे।

पर आज उनकी हैरानी की हद नहीं रही। इस तरह का कुछ नहीं हुआ था। आगे-आगे गुरु महाराज और उनके पीछे गुरुसिक्ख बेखटक आश्रम में जा घुसे थे। इधर-उधर घूम कर जैसे बैरागी के डेरे का निरीक्षण कर रहे हों। कितनी देर चारों ओर घूमते रहे। अब गुरु महाराज जूतों सहित बैरागी की नई कुटिया में जा घुसे थे। आश्रम के बाहर खड़े तमाशबीन सोचते, अभी

कुछ होगा और दशमेश बाहर निकल आयेंगे। पर इस तरह का कुछ भी नहीं हुआ था। अब गुरु महाराज बैरागी के आसन पर आराम से लेट गए थे। उन्होंने तो सुन रखा था, उसके पलंग पर अगर कोई बैठता, बैरागी उसे पटककर नीचे गिरा देता था। पर इस तरह का तो कुछ भी नहीं हो रहा था और अब ऐसे लगता जैसे कलगीधर पक्की नींद में सो गए थे। बैरागी इस तरह की गुस्ताखी के लिए अपनी शक्ति से अगले को भस्म कर सकता था। चाहे वह आश्रम में हो, चाहे न हो। पर इस तरह का तो कुछ भी नहीं हो रहा था।

कुछ समय बाद नंदेड़ के शहरियों ने देखा, गुरु महाराज के साथ आश्रम के भीतर गए गुरुसिक्ख बैरागी के एक बकरे को पकड़ रहे थे। बकरा उनके काबू नहीं आ रहा था। फिर एक गुरुसिक्ख ने अपने तीर से बकरे को मार गिराया। यह क्या हो रहा था ? बैरागी के डेरे में उसके ही पालतू बकरे को अगलों ने ढेरी कर दिया था। यह तो अनर्थ था। बैरागी जमीन-आसमान एक कर देगा।

यही नहीं, नंदेड़ के शहरियों ने देखा तो उनके होश-हवाश उड़ गए। गुरु महाराज के साथी बकरे को झटका कर उसका मास पकाने जा रहे थे। एक वैष्णव बैरागी के आश्रम में यह क्या कहर ढाया जा रहा था ? आज तो प्रलय आने वाली थी। उनमें से कुछ तमाशबीन तो डरकर पसीना-पसीना हुए वहाँ से खिस्क गए। कुछ नौजवान बाकी थे, यह देखने के लिए कि जब बैरागी लौटेगा तो आश्रम में क्या नाटक खेला जाए। वे उत्सुक थे यह जानने के लिए।

अब उनमें से कुछ मनचले बैरागी को इत्लाह करने के लिए चल पड़े कि उसके डेरे में क्या उपद्रव हो रहा था। नदी पार ही तो गया था। परली पार एक किनारे पर बैठकर अन्तर्ध्यान हो जाता था। कितनी-कितनी देर ऐसे समाधि में डूबा रहता। कई बार नंदेड़वासियों ने देखा था उसके आस-पास खूंखार घड़ियाल लम्बी तान कर सोए होते जैसे उसकी अरदल में हाज़िर हो रहे हों।

कुछ नंदेड़-वासी सोचते बैरागी तो अगम-निगम की समझ रखता था। सर्वज्ञ था। उसे इसकी जरूर समझ हो गई होगी कि उसके पलंग पर कोई फालतू आदमी विराजमान हैं। एक कट्टर वैष्णव के आश्रम में उन्होंने उसका बकरा झटकाया था और अब उसे पका रहे थे।

यह सब कुछ कैसे सम्भव था ? आज धरती फटेगी। आज आकाश में से आग बरसेगी। आज तारे टूटेंगे। आज कयामत आएगी।

पर उधर बैरागी को खबर करने गए नंदेड़-वासी हैरान होते रहे। बैरागी माधोदास यह सूचना पाकर लाल पीला, क्रोध में गोदावरी के किनारे पहुंचा। इसकी बजाए कि हमेशा की तरह नदी के पानी पर वह धीरे से चलने लगे, उसके कदम पानी में फिसल-फिसल जाते। यह क्या हो रहा था ? और क्रोध में आकर उसने और आगे कदम रखने की कोशिश की। इस बार तो मुश्किल से वह डूबने से बचा। अगर उसे तैरना न आता होता, उसे तो गोदावरी की लहर अपने साथ बहाकर ले जाती।

यह देख, सामने किनारे से आकर एक नाविक ने बैरागी को नदी पार करवाई।

बैरागी का गुस्सा अभी भी वैसे का वैसा था। गुस्से में फुंकारता वह अपने आश्रम की ओर बढ़ा। उसके खुले आंगन में बकरे का मांस रींधा जा रहा था और सामने उसकी बैठक में कोई उसके पलंग पर लम्बी तानकर लेटा हुआ था। बैरागी ने वहीं का वहीं खड़े होकर, आंखे बन्द किए कोई मंत्र मुंह में पढ़ा। आस-पास तमाशबीन इंतज़ार कर रहे थे कि अगले क्षण पलंग पर लेटा अजनबी नीचे धरती पर उल्टा जा गिरेगा जैसे पहले कई बार होते उन्होंने सुना था। पर इस तरह का तो कुछ भी नहीं हुआ था। फिर बैरागी ने तमतमाते हुए चूल्हे पर चढ़े मांस के देग की ओ देखकर मुंह से कोई मन्त्र उच्चारा। एक बार, दो बार, तीन बार, ऊंचा और ऊंचा। कुछ भी तो नहीं हुआ। बैरागी के चेले सोच रहे थे कि चूल्हे की आग ठण्डी पड़ जाएगी। मांस पका रहे बिन बुलाए आश्रम में घुसे लोगों के पांवों के नीचे धरती तवे की तरह तपती हुई लगेगी। उनके तलुओं में छाले पढ़ जायेंगे और वे आश्रम छोड़कर बाहर भाग जायेंगे। पर इस तरह का कुछ भी नहीं हो रहा था।

अब झुंझला कर बैरागी, बेहाल, नज़र झुकाए कमर हिलाता आश्रम में आया। भीगी बिल्ली की तरह सामने अपनी बैठक की ओर बढ़ा। उसे आता देख गुरु महाराज उठकर पलंग पर बैठ गए। एक नज़र दशमेश को देखकर बैरागी ने कहा.... तुम कौन हो ?

गुरु महाराज : वही जिसे तुम जानते हो।

बैरागी : मैं किसी को नहीं जानता ?

गुरु महाराज : अपने भीतर झांक कर देख।

बैरागी : तो आप गुरु गोबिन्द सिंह हो।

गुरु महाराज : हाँ।

बैरागी : आप किधर ?

गुरु महाराज : ताकि तुम्हें अपना सिक्ख बनाऊं।

बैरागी : मैं हाज़िर हूँ, मैं आपका बन्दा हूँ।

और बैरागी माधोदास गुरु महाराज के कदमों में गिर पड़ा। सामने खड़े नंदेड़वासी यह नाटक देखकर चकित हो गए।

98

पहली बात गुरु महाराज ने बैरागी को अमृत पान कराया। जैसे इसी स्वाति बूंद को वह तरस रहा हो, वह ठण्डा-ठार हो गया फूल-सा हल्का। माधोदास का नाम बन्दा सिंह रखा गया। पर उसे बन्दा बैरागी कहलवाना अच्छा लगता था। वह तो सेवक था गुरु गोविन्द सिंह का। बन्दा सिंह बहादुर करके वह जाना जाने लगा। यही उसकी मनोकामना थी। कभी पाऊंटा में वह दशमेश का दर खटखटा चुका था पर तब उसकी सुनवाई नहीं हुई थी।

अमृत का एक छींटा और बन्दा बैरागी को सारे जन्तर-मन्त्र, टोने-टोटके, कर्म-काण्ड, ऋद्धियां-सिद्धियां, देवी-देवता भूल गए। तीर और कमान, खण्डा और कृपाण, तेग और तलवार उसके अंग-संग रहने लगे। उसके सहायक बन गए और दशमेश की कृपा-दृष्टि। सतगुरु की मेहर।

गुरु महाराज ने उसे बताया-"बाबा नानक का दिखाया मार्ग, सिक्ख धर्म सबका भला मांगता है। गुरु नानक ने कहा था, न कोई हिन्दू न कोई मुसलमान, सभी इंसान हैं। सभी बराबर हैं। हिन्दुओं को अच्छा हिन्दू बनने के लिए बाबा ने हिदायत की; मुसलमानों को अच्छा मुसलमान बनने के लिए तलकीन की।"

यही उपदेश दूसरे गुरु अंगदेव जी ने हुमायूं को दिया जब वह उनके यहाँ हाज़िर हुआ। इसी दुर्गम रास्ते पर महाबली अकबर चला और इसी उपदेश में बन्धा हुआ वह तीसरे गुरु अमरदास जी के दर्शनों के लिए गोइंदवाल आया। यही धारणा चौथे गुरु अमरदास जी की थी जिसका कायल काबुल की मुहिम से लौटते समय अकबर इस बार गुरु की नगरी अमृतसर पधारा। और उसने 12 गांवों की ज़ागीर गुरु महाराज को पेश करने का प्रस्ताव रखा। यह हिन्दू, मुसलमान की एकता थी जिसे मुख्य रखते हुए पांचवें गुरु अर्जुन देव जी ने एक मुसलमान फकीर मीयाँ मीर को सिक्खों के

काबे, हरिमन्दिर साहिब का नींव पत्थर रखने के लिए आमन्त्रित किया। श्रद्धा, भाईचारा कौमी-सह-अस्तित्व की एक मिसाल कायम की।

फिर भी गुरु अर्जुन देव जी को शहीद होना पड़ा। उन्हें असहनीय और अकथनीय कष्ट दिए गए गर्म तवे पर बिठाया गया। गर्म रेत उनके सुंदर शरीर पर लगाई गई। उबलते पानी की देग में उन्हें बैठने को कहा गया और ऐसे अन्त में उनके मृत शरीर को रावी के पानी में प्रवाहित कर दिया गया। यह देख छठे गुरु हरगोविन्द जी ने पीरी के साथ मीरी भी अख्तियार की। उन्होंने दो तलवारें धारण की; एक पीरी की एक मीरी की। नाम जपने वाले, कीरत करके बांटकर खाने वाले गुरुसिक्ख अब संत सिपाही बन गए। गुरु हरगोविन्द सिंह जी की मुगल सेना के साथ चार झड़पें हुई, चारों बार मुगलों को मुंह की खानी पड़ी। हर बार मुगलों की करारी हार हुई।

फिर भी जब जहांगीर ने दोस्ती का हाथ बढ़ाया, गुरु हरगोविन्द जी ने उसे ठुकराया नहीं। शिकार खेलते शहंशाह को खुंखार शेर के हमले से अपनी जान को खतरे में डालकर बचाया। आसपास हर कोई चकित रह गया। पर पहली बात इस तलवारबाज़ी के बाद गुरु हरगोविन्द जी को ग्वालियर के किले में कैद कर दिया गया, कि उन्हें लोग 'सच्चा पातशाह' क्यों कहते हैं।

ग्वालियर के किले से रिहाई के समय गुरु हरिगोविन्द जी की शर्त थी कि उनके साथ और 52 राजाओं को रिहा किया जाए जो किले में कई वर्षों से कैद में सड़ रहे थे। इनमें हिन्दू भी थे मुसलमान भी थे।

सातवें गुरु हरिराय जी ने अपना ठिकाना जानबूझकर शिवालिक की पहाड़ियों के एकांत में कीरतपुर में रखा जिससे मुगलों से रोज़ की खट-पट से बचा जा सके। उन्होंने केवल 2200 सैनिक अपनी सुरक्षा के लिए जरूरी समझे। शाहजहाँ का बड़ा बेटा दारा जब बीमार पड़ा उसे अपने दवाखाने में से शहंशाह के निवेदन पर दवा भेजी, शहज़ादे को ठीक करने के लिए अरदास की।

आठवें गुरु हरिकृष्ण जी माता की महामारी में जनता की सेवा करते हुए खुद बीमारी की लपेट में आ गए। दिल्ली में ही वे ज्योति-जोत समाए। गुरु तेग बहादुर जी ने अपने आवास के लिए आनन्दपुर को चुना। इसलिए कि पिछड़ी हुई जनता में जागृति पैदा की जाए। उनमें आत्म सम्मान जगाया जाए। पहाड़ी राजाओं को यह मंजूर नही था। वे नहीं चाहते थे कि ऊंच-नीच

का भेद मिटाया जाए। मुगलों ने पहाड़ी राजाओं का साथ दिया। औरंगजेब जिसने सारे हिन्छुस्तान को दारूल इस्लाम बनाने का फैसला कर रखा था, हिन्दू मन्दिरों को मस्जिदों में बदल रहा था, तिलक पोंछे जा रहे थे, जनेऊ उतारे जा रहे थे, पहाड़ी राजा उसके पीछे हो गए। गुरु बाबा नानक ने जनेऊ पहनने से इंकार किया था। गुरु तेग बहादुर ने अपना शीश कुर्बान कर दिया ताकि जनेऊ पहनने का हिन्दू जनता का हक वैसे का वैसे बना रहे।

यह जंग जारी है। दारूल इस्लाम हमारी पहचान को मिटाता है। हमने इसके खिलाफ़ आवाज़ उठाई है। हिन्दू से अच्छा हिन्दू बनने का उसका हक उससे कोई नहीं छीन सकता, न ही गुरुसिक्ख को गुरुसिक्खी के मार्ग पर चलने से कोई नहीं रोक सकता है। इस जंग में हमारे दो साहिबज़ादे बाबा अजीत सिंह और बाबा जूझार सिंह चमकौर में शहीदी का जाम पी चुके हैं। छोटे दो साहिबज़ादे बाबा जोरावर सिंह और बाबा फतेह सिंह को सरहिन्द में दीवार में चिनवा दिया गया क्योंकि वे अपनी पहचान को मिटाने के लिए राज़ी नहीं हुए थे। इस्लाम कबूल करने से उन्होंने इनकार कर दिया था।

औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद हमने बहादुरशाह की मदद की। उसका साथ दिया। उसे तख़्त पर बिठाने के लिए सिक्ख शूरवीरों को शहीद होना पड़ा। इसलिए कि हम शान्ति और भाईचारा चाहते थे कि हिन्दू और मुसलमान इस देश में मिल-जुल कर रहें।

हम चाहते हैं, ज़ुल्म का, कट्टरपन का, लूट-खसूट का राज समाप्त हो। हम चाहते हैं, वज़ीर खान जैसे सरहिन्द के सूबेदारों को सबक सिखाया जाए ताकि फिर किसी के बच्चों को दीवार में न चिनवाया जाए बहादुर शाह ने हमारे साथ सारे वायदे किए। उसकी कुछ मजबूरियाँ थीं। हमने इसे परवान किया। उसने एक साल की मुहलत मांगी। हम राज़ी हो गए। अब एक वर्ष बीत गया है और उसकी मजबूरियाँ वैसे की वैसे धरी पड़ी हैं।

अब हमारा फैसला है कि सबके भले के लिए इसलिए कि हमारी पहचान को कोई न मिटा सके, यह जंग हमें खुद लड़नी होगी। बुराई का, फिरकापरस्ती का, कट्टरपन का, मुकाबला हमें आप करना होगा।

और यह महान काम हम बन्दा सिंह बहादुर को सौंप रहे हैं। इसीलिए हम सैंकड़ों कोस पैदल चलकर यहाँ आए हैं।

यह सुन रहा, बन्दा बैरागी गुरु महाराज के चरणों में गिर पड़ा। दशमेश ने उठाकर उसे गले से लगाया सबसे पहले उसे अपना खण्डा दिया जो उसने

अपने गले में लटका लिया। एक नगारा और एक निशान साहिब बख़्शे। उसके साथ पांच प्यारे भाई बिनोध सिंह, भाई काहन सिंह, भाई बाज सिंह, भाई दया सिंह और भाई रण सिंह किए। उनके मशवरे से उसे चलना होगा।

इसके अलावा सबसे अधिक ज़ोर गुरु मूहाराज ने आचरण पर दिया। बन्दा बहादुर को ब्रह्मचारी रहना होगा। हर काम पांच प्यारों की सलाह से और अकाल पुरुष के आगे प्रार्थना करके आरम्भ करना होगा, न्याय करना होगा। गरीब अनाथ की रक्षा करनी होगी। जहाँ वज़ीर खान जैसे का नाश करना होगा, वहीं पीर बुद्धू शाह को कत्ल करने वालों को भी सजा देनी होगी। खालसे का राज कायम करना होगा, अपने नाम का सिक्का नहीं चलाना। सिक्ख रहत मर्यादा का पालन करना होगा।

यह सब कुछ कहकर दशमेश ने बन्दा बहादुर के चेहरे की ओर ममता भरी निगाहों से देखते हुए कहा, अगर यह सब कुछ तुम कर सकोगे तो सारे देश की बादशाही तुम्हारी होगी।

यह सुन रहे आगे-पीछे खड़े गुरुसिक्ख जैसे स्तब्ध रह गए हों। गुरु महाराज ने तो सब कुछ ही बैरागी को बख़्श दिया था, जैसे वह उनका उत्तराधिकारी हो। वह तो खालसा पंथ का वारिस बन गया था।

यह कैसे हो सकता था ? अभी तो कल उसने अमृतपान किया था। अमृतपान तो हज़ारों लोग करते हैं। अमृत-पान करके भी कई कुपथ पर पड़ जाते हैं। आखिर बेदावा भरने वाले 40 गुरुसिक्ख भी तो अमृतधारी थे। अमृतपान कर लेना किसी को इसका हकदार नहीं बना देता था कि वह गुरुगद्दी का उम्मीदवार बन जाए।

ऐसे रोते-कलपते गुरुसिक्खों की वह टोली भाई धर्म सिंह की अगुवाई में गुरु महाराज को एकांत पा कर मिली। गुरु महाराज उनका तर्क सुनते रहे। जो वे कह रहे थे, उसमें बेशक वज़न था। खण्डा खालसा पंथ का चिन्ह है। बन्दा बहादुर को वे खालसा फ़ौज की सरदारी बख़्श रहे थे। खण्डा उसे देना शायद वाजिब नहीं था। लोकतंत्र के समर्थक गुरु महाराज ने अपने गुरुसिक्खों की जत्थेबन्दी का निश्चय करवाया कि वह खण्डा वे बंदा बहादुर से वापिस लेकर उसके स्थान पर कुछ तीर अपने तरकश में से उसे बख़्श देंगे ताकि उनका हाथ उसकी पीठ पर रहे। जो जंग गुरु महाराज ने खुद शुरु की थी, उसे वह जारी रखने जा रहा था।

इसके साथ ही गुरु महाराज ने चारों ओर अपने गुरुसिक्खों को

हुकुमनामे भेजकर हिदायत की कि वे बन्दा बहादुर के साथ मिलकर सबका भला चाहने वाली सेना तैयार करें और खालसे की पहचान को बट्टा न लगाएं, वैसे की वैसे बनाए रखें। वाहिगुरु जी का खालसा। वाहिगुरु जी की फतेह हो।

99

अभी बन्दा बहादुर जाने की तैयारियों में ही था कि गुरु महाराज ने माता साहिब देवां जी को दिल्ली माता सुन्दरी जी के पास लौट जाने के लिए राज़ी कर लिया। वे मानती नहीं थी, पर गुरु महाराज का आदेश न मानना भी मुमकिन नहीं था। भाई राम कंवर तथा कुछ और गुरुसिक्खों की सुपुर्दगी में माता साहिब देवां जी को चलने से पहले दशमेश ने अपने साथ लाए श्री साहिब के पांच और पवित्र शस्त्र जो गुरु हरिगोविन्द जी की निशानी वे अपने साथ लिए फिरते थे, भेंट किए और कहा इनका सत्कार करना, इनमें आपको हमारे दर्शन हुआ करेंगे। कुछ इस तरह की आस्था गुरु महाराज को शस्त्रों में थी। ऐसे लगता जैसे उन्होंने अपने आपको भगवती से अभेद कर लिया हो। शायद समय की यही मांग थी।

गुरु महाराज ने मूल्य देकर अबचल नगर नाम की बस्ती की ढेर सारी भूमि नंदेड़ में खरीद ली थी, और अब उस पर एक तरह से स्थाई तौर पर बस गए थे, आस-पास हर तरह की चमकोइयाँ होने लगीं।

और जैसे सौंप-संपानी करके बन्दा बहादुर को पंजाब भेज रहे थे,अगर उन्होंने आप जाना होता तो ऐसे बन्दा बहादुर को सब कुछ समेट कर क्यों बख़्शते ? आसपास और खुसर-फुसर होने लगी।

हर प्रकार की समस्याएं गुरुसिक्खों को परेशान कर रही थीं। गुरु महाराज तो नंदेड़ से सतयुग का नाता बता रहे थे। उन्होंने तो उस बैठक की भी निशानदेही कर दी थी जिसमें वे कभी तपस्या करते रहे थे। पंजाब से इतनी दूर उनका बस जाना, पंथ का क्या बनेगा ? किसकी अगुवाई गुरुसिक्खों को प्राप्त होगी ? पहले ही खालसा पर इतनी आफत पड़ी हुई थी।

खास तौर पर गुरु महाराज के साथ नंदेड़ आए बैराड़ परेशान थे। वे जैसे उजड़ गए थे। अपने घर, अपने परिवार उन्हें याद आ रहे थे। एक जत्था बनाकर वे गुरु महाराज के यहाँ पेश हुए और अपनी-अपनी तनख्वाह का तकाज़ा करने लगे। वे चाहते थे कि वे भी पंजाब लौट जाएं और उनसे विदेश नहीं रुका जा रहा था। दशमेश उनकी प्रार्थना सुनते रहे। उनके साथ

हजूर की सहानुभूति भी थी, पर गुरु महाराज की मज़बूरी; अभी एक दिन उन्होंने ढेर सारी रकम निकाल कर अबचल नगर की भूमि खरीदी थी। बेशक किसी समय वह भूमि उनकी ही थी पर यह हकीकत समय की हकूमत थोड़े ही मानती थी। बैराड़ अपनी जिद्द पर अड़े हुए थे। वे तो अपनी बनती रकम लेकर स्वदेश लौटना चाहते थे। यह देख, गुरु महाराज ने भाई दया सिंह को आज के माल टेकड़ी नाम के स्थान की निशानियाँ बताईं, जहाँ एक मुसलमान फकीर की दरगाह थी और हिदायत की कि उस स्थान पर गुरु बाबा नानक जी ने अपने दक्षिण के दौरे के दौरान ढेर सारा धन दबाया था, उसे निकाल लाया जाए। भाई दया सिंह ने ऐसे ही किया और गुरु महाराज ने बैराड़ों को उनकी बनती रकम देकर भेज दिया।

बहुत दिन नहीं गुजरे थे कि एक सुबह जब भोर का दीवान समाप्त हुआ तो दो पठान गुरु महाराज के यहाँ हाज़िर हुए। घोड़ों के व्यापारी थे। उन्होंने गुरु महाराज को एक दस्तावेज़ पेश किया। गुरु महाराज की अपनी लिखत थी। इसके मुताबिक दशमेश को पठानों से खरीदे घोड़ों के लिए 11 हजार रुपया देना बनता था। घोड़ों के पठान व्यापारियों ने आनन्दपुर साहिब में गुरु महाराज को घोड़े बेचे थे और यह रकम बकाया थी। फिर आनन्दपुर की जंग शुरू हो गई और पठान गुरु महाराज के यहाँ हाज़िर नहीं हो सके थे। न ही अपनी रकम के लिए तकाज़ा कर सके। बेशक रकम दूध से धोकर उन्हें वापिस की जाएगी। पर उन्हें इसलिए कुछ देर और प्रतीक्षा करनी होगी। पठान व्यापारियों को दशमेश की मजबूरी समझ आ गई। गुरु महाराज ने उन्हें तसल्ली दी, कि कुछ समय बाद वे गुरु महाराज की लिखत पंजाब में किसी गुरुसिक्ख सरदार को दिखाकर अपनी रकम वसूल कर सकते हैं। उनकी मूल रकम ही नहीं, इतनी देर का सूद भी उन्हें दिया जाएगा। पठान कहने लगे, सूद उनके लिए हराम था। वे तो खुश होंगे अगर उनका मूल उन्हें मिल जाए। कुछ देर बाद जब बन्दा बहादुर ने सरहिन्द की ईंट से ईंट बजाकर जलन्धर से करनाल तक खालसा राज कायम कर लिया था तो उन्होंने पठानों की रकम जिस पहले सिक्ख सरदार को गुरु महाराज की लिखत में दिखाई, उन्होंने उतार दी।

उधर सरहिन्द में वज़ीर खान को बहादुर शाह की गुरु महाराज से दोस्ती का सुनकर पिस्सू पड़ रहे थे। आगरे की मुलाकात की उसे खबरें मिली। कैसे गुरु महाराज का स्वागत किया था। कैसे उन्हें कीमती सौगातें

पेश की गईं थीं। वज़ीर खान सुनता और तिलमिला कर रह जाता। फिर उसने सुना, बहादुर शाह गुरु महाराज को अपनी राजस्थान की मुहिम पर भी साथ ले जा रहे थे। वज़ीर खान और कलपा। उसे उसकी करतूतें परेशान कर रहीं थीं। फिर उसे सूचना मिली कि राजस्थान से गुरु महाराज और बहादुर शाह दक्षिण के दौरे के लिए निकल गए थे। यह हो क्या रहा था ? वज़ीर खान के हाथ पांव फूल गए। उसे लगता, उसकी नौकरी तो किसी समय भी जा सकती है। वह बहुत परेशान रहने लगा। न दिन का चैन न रात को आराम। फिर वज़ीर खान को भनक पड़ी कि नंदेड़ में बहादुर शाह और गुरु गोविन्द सिंह के डेरे नज़दीक-नज़दीक थे और हर दूसरे-चौथे दिन उनकी मुलाकात होती थी। बादशाह और गुरु साहिब की यह दोस्ती सचमुच उसके लिए घातक हो सकती थी और इसके पहले कि उसे कोई नुकसान पहुंचे, वज़ीर खान ने गुलखान और जमशेद खान को तैयार किया कि वह नंदेड़ जाकर गुरु महाराज को खत्म कर दें। ये दोनों पैदां खान के पोते थे। उनके दादा को गुरु गोविन्द सिंह के दादा गुरु हरिगोविन्द जी ने करतारपुर की जंग में मार दिया था। वज़ीर खान ने उन्हें उकसाया,पठान की औलाद, उन्हें अपने दादा का बदला लेना चाहिए था। और फिर अगर वे इसमें कामयाब होते हैं, तो वज़ीर खान उन्हें धन-दौलत से मालामाल कर देगा।

गुलखान और जमशेद खान राज़ी हो गए और दिन रात मंजिलें तय करते नंदेड़ आ पहुंचे। गुरु महाराज के पास सैंकड़ों श्रद्धालु हर रोज़ दर्शनों के लिए आते थे। उनमें हिन्दू भी थे मुसलमान भी। गुरुसिक्ख तो दूर-दूर से रास्ता तय करते हुए अपना जीवन सफल करने आते। इस तरह के श्रद्धालुओं में गुलखान और जमशेद खान भी गुरु महाराज के हाज़िर हुए, कथा-कीर्तन सुनते, कि वह पैदां खान के पोते थे, गुरु महाराज के दिल में उनके प्रति एक खास तरह की ममता थी। उनके दादा को उन्होंने बड़े लाड़ से पाला-पोसा था। पैदां खान को करतारपुर की जंग में मारकर गुरु हरिगोबिन्द जी ने उसके मुंह को धूप के सेंक से बचाने के लिए अपनी ढाल से ढका था।

और अब वे इस टोह में थे कि कब गुरु महाराज अकेले हों और वे उन पर वार करें। जब से माता साहिब देवां जी दिल्ली चले गए थे, दशमेश का तम्बू अक्सर बंद होता था। बस बाहर लखा सिंह नाम का एक सेवक बैठा चौकीदारी करता था। वृद्ध उम्र, अक्सर उंघता रहता।

उस दिन सुनने में आया कि किसी गुरुसिक्ख कारीगर ने गुरु महाराज

को इस्पात की दो कटारें भेंट की थीं। कटारों की बनावट, उनकी तेज़ धार, उनकी नोक, उनकी इस्पात की चमक की आगे-पीछे प्रशंसा हो रही थी। गुरु महाराज ने भेंट कबूल करके दोनों कटारें अपने तम्बू में ही अपने आसन के पास रख ली थीं। शस्त्रों के शौकीन, अगर कोई भी गुरु महाराज को मिलने जाता, देख-देखकर हैरान होता, कभी एक कटार, कभी दूसरी कटार को उठाकर दशमेश निहारने लगते, सहलाने लग जाते।

गर्मियाँ जा चुकी थीं। जाड़ा अभी नहीं आया था। कार्तिक का सुहाना मौसम था। सांझ ढल चुकी थी। गुरु महाराज प्रशाद छक कर अपने तम्बू में विश्राम के लिए पलंग पर लेटे थे। शीश दक्षिण की ओर, चरण उत्तर की ओर। बाईं करवट के भार अपना बायाँ हाथ सिरहाने पर रखे उनका मुख पश्चिम की ओर था। तम्बू के द्वार की ओर पीठ। सोच में डूबे गुरु महाराज प्रशाद की खुशबू में जैसे ऊंघ रहे हों।

यही हाल उनके तम्बू के बाहर बैठे सेवक लखा सिंह का था। ऊंघते हुए बार-बार उसका सिर नीचे गिरता। बार-बार वह संभालने की कोशिश करता।

गुरु महाराज के तम्बू के दूसरे तरफ बुरहानपुर से दर्शनों के लिए आया संत आत्मा-दास समाधि में लीन था। सामने इमली के पेड़ के नीचे ताक में खड़े पठान बंधुओं ने सोचा, इस अवसर को वे नहीं गवायेंगे। आसपास बाकी गुरुसिक्खों में कोई लेट गया था। कोई लेटने की तैयारी कर रहा था। गुरु महाराज का तम्बू लगा था। इतने में एक गुरुसिक्ख गुरु महाराज को कीर्तन सोहिले का पाठ सुनाने के लिए आया, गुलखान भी उसके साथ दशमेश के तम्बू में चला गया। गुरु महाराज ने सुखासन में बैठ कर पाठ सुना। पर ऐसे लगता था जैसे वे अब भी नींद में थे। पाठ सुनाकर पाठी गुरुसिक्ख बाहर चला गया। पर गुलखान जैसे जाता-जाता रुक गया हो। एक बिजली की तेजी के साथ गुलखान ने सामने पड़ी कटार उठाकर उसको गुरु महाराज की पसली में भोंक दिया, यह देखकर गुरु महाराज सम्भले और उन्होंने पलंग के पास पड़ी दूसरी कटार से गुलखान को वहीं का वहीं ढेरी कर दिया। शोर मचा, गुरुसिक्ख दौड़ते हुए आए। गुलखान के साथी पठान जमशेद खान को बाहर नीम के पेड़ के नीचे पकड़ लिया गया।

बहादुर शाह बेशक चला गया था, पर उसका कुछ अमला अभी भी पीछे उसके डेरे में जाने की तैयारियों में था। कलगीधर पर घातक हमले का

सुनकर दरबारी ज़र्राह दौड़ते हुए आए, गुरु महाराज के घाव का झटपट उपचार हुआ। ज़ख्म को सिला गया। मरहम पट्टी की गई।

गुरुसिक्खों की हिरासत में जमशेद खान ने कबूला कि उन्हें वज़ीर खान ने जागीर और धन का लालच देकर भेजा था। यह काम उन्होंने उसकी शह पर किया था।

इस घटना पर गुरु महाराज के डेरे में हर कोई उत्तेजित था। बन्दा बहादुर का जैसे खून खौल-खौल रहा हो। वह सोचता, काश उसके पंख होते, वह उड़कर पंजाब पहुंचता और वज़ीर खान से उसकी करतूत का बदला ले सकता।

दो-चार और दिन बीते जब उसे तसल्ली हो गई कि गुरु महाराज का घाव भरने लगा है, उनकी तबियत ठीक थी, बन्दा बैरागी पांच प्यारे जिनमें दया सिंह भी शामिल था तथा और दूसरे बीस शूरवीर जिन्हें गुरु महाराज ने तैनात किया था, अपने साथ लेकर पंजाब के लिए चल पड़े।

दया सिंह खुश था, वह लाहौर जा रहा था। धर्म खुश था, वह पीछे गुरु महाराज की सेवा में रह रहा था।

100

गुरु महाराज का घाव बेशक सिल गया था, बेशक उसकी मल्हम पट्टी तसल्ली बख़्श हो रही थी। फिर भी इस हालत में जिसमें दशमेश थे, उनकी सेवा बहुत ज़रूरी थी। घोड़ों की सवारी करने वाले, रोज़ शिकार के लिए जाने वाले कौतुकी प्रीतम पलंग पर पड़ गए थे। पता नहीं और कितने दिन उन्हें ऐसे ही पड़ा रहना था। घाव को तो भरते-भरते ही भरना था। अब जब माता साहिब देवां जी भी दिल्ली चल दिए थे, गुरु महाराज की टहल का जिम्मा भाई धर्म सिंह ने अपने सिर ले लिया था। एक क्षण के लिए उनसे अलग न होते।

मुगलों के डेरों से ज़र्राह को बुलाकर नित अपने सामने मरहम पट्टी करवाते। गुरु महाराज को पंच स्नान करवाते, उनके वस्त्र बदलवाते। गुरु महाराज को दोनों समय नित-नेम का पाठ सुनाना, उन्हें अपने हाथों भोजन करवाना, इस तरह के सारे काम उन्होंने अपने जिम्मे लिए हुए थे।

भाई धर्म सिंह पहले भी गुरु महाराज के निकट था पर इन दिनों की इस सेवा के कारण वह गुरु महाराज के और निकट आ गया। अक्सर अकेले बैठे उसे गुरु महाराज के शुभ वचन सुनने के अवसर प्राप्त होते रहते।

दोनों की चालीस वर्षों की आयु, खुला चौड़ा माथा, घनी भवें, लट-लट करते निष्कपट, एक दम काले नैन, पैनपी नजर, विशाल दृष्टि,गुलाबी गाल, खिला-खिला मुखड़ा, मोतियों की तरह जड़े हुए चम-चम करते दांत, रस भरे होंठ, फर-फर करती संवरी हुई शाह काली घनी दाड़ी, केसरी दस्तार पर हीरे जड़ी कलगी जब पलंग पर विराजमान होते, ऐसे लगता जैसे कोई आसमान से उतरा फरिश्ता हो। धरम पर तो मानो कोई टोना हो गया हो। मदहोश हुआ एक टक दशमेश की ओर देखता रहा। उसे लगता जैसे उनमें से मदभरी कोई सुगन्ध फूट रही हो। एक मधुर संगीत लहरी उसके कानों में गूंजती रहती :

जले हरी। थले हरी। उरे हरी। बने हरी ॥ 1 ॥
गिरे हरी। गुफ़े हरी। छिते हरी। नभे हरी ॥ 2 ॥
इहाँ हरी। ऊहाँ हरी। ज़िमीहरी। जमां हरी ॥ 3 ॥

इस तरह की नाम की धुन जैसे आठों पहर उनके स्वांस-स्वांस से आ रही हो। उनकी सूरत निरंकार से जुड़ी रहती। भाई धर्म संह नाम की इस खुमारी में विभोर होता।

और जब वह अपने मुखारविन्द से कोई शब्द बोलते, हमेशा चढ़ती कला में होते। निर्भय ! निरवैर ! कभी उन्होंने अपने पिता की अद्वितीय शहीदी का ज़िक्र नहीं किया। कभी याद नहीं किया कैसे लालों जैसे चार साहिबज़ादे कहर और कटार, बदी और बेईमानी से जूझते हुए जान पर खेल गए। कभी उन्होंने माता गुजरी जी का मुगलों की कैद में से हमेशा-हमेशा के लिए बिछड़ जाना याद नहीं किया। जब बोलते बस यही कहते राज करेगा खालसा। उन्हें बन्दा बहादुर में अपने सपनों का निर्माण होता दिखाई देता। वे ज़िक्र करते उस दिन का जब बन्दा बहादुर की सेना वज़ीर खान और उसकी फ़ौज का मलियामेट करके सतलुज से जमना तक सरहिन्द के सारे सूबे में खालसे का राज कायम करेगी। गुरु नानक का सिक्का चलेगा। और फिर वह दिन जब सिन्धु से लेकर गंगा तक सारे उत्तरी पश्चिमी भारत पर केसरी झण्डा लहरायेगा फिर वह दिन जब काबुल और लद्दाख में खालसे का बोलबाला होगा। किसी जुल्मी की धौंस नहीं माननी होगी। हर किसी को उसका हक मिलेगा। कोई किसी की लूट-खसूट नहीं कर सकेगा। अपना सुराज होगा।

यह सब कुछ पर अपने निज के लिए कुछ भी नहीं नम्रता के पुंज। अमृत के दाता। आज़ादी के दीवाने। बराबरी के हमायती। नीचे से ऊपर उठाने

वाले। वे जिन्होंने सवा लाख से एक को लड़ाया। वे जिन्होंने चिड़ियों से बाज़ों को क्षत-विक्षत कराया। वे जो स्वयं ही गुरु और स्वयं ही चेला बने। किसी के मुल्क को हथियाना क्या, वह तो अपने आपको ईश्वर का सेवक मानते थे, जब बोलते यही कहते—यह संसार ईश्वर की खेल है, मैं तो बस यह नाटक देखने आया हूँ :

जो मुझको परमेसर उचर है। ते सभ नरक कुण्ड महि पर है।
मोकउ दास तवन का जानहु। या मैं भेद न रंच पछानहु।
मैं हो परम पुरख को दासा। देखन आयो जगत् तमाशा।

(बचित्र नाटक)

शक्ति के धारक पर भक्ति का पल्ला उन्होंने कभी न छोड़ा। जब बोलते यही कहते, भक्ति मन्दिर बना सकती है, भक्ति मथुरा और वाराणसी, द्वारका और हरिद्वार जैसे शहर बसा सकती है, पर शक्ति के बिना उन्हें सुरक्षित नहीं रखा जा सकता। भक्ति सच्चाई की सूझ दे सकती है। पर सच के लिए लड़ने का बल शक्ति की देन हैं। शक्ति बल है। सच के लिए लड़ने का, लड़ते हुए अपने आपको कुरबान कर देने का। एक सरूर में आकर बार-बार गाने लगे:

देहि शिवा वर मोहि इहै शुभ करमन ते कबहूँ न टरों,
न टरों अरि सों जब जाई लड़ो, निशचै करि अपनी जीत करों।
अर सिखहों अपने ही मन के इह लालच हऊ गुण ते उचरों,
जब आव की अउध निदान बने, अति ही रण मैं तब जूझ मरों।

(चण्डी चरित्र, उक्ति विलास)

जो बात गुरु महाराज को सबसे अधिक प्रिय लगती वह प्रेम की भावना थी। प्रेम क्षत्रिय और ब्राह्मण में, प्रेम ब्राह्मण और शूद्र में, प्रेम हिन्दू और मुसलमान में, प्रेम सुन्नी और शिया में, प्रेम सूफ़ी और संत में। बार-बार कहते। अकाल पुरुष को पाने का एक ही तरीका प्रेम है। अपने इस सवैये को अक्सर सुनाया करते :

कहाँ भयो दोऊ लोचन मूंद कर बैठ रहउि थक ध्यान लगाईऊ।
नरात फिरिउ लीए सात समुंद्रनि, लोक गयो परलोक गवाइऊ।
बास कीउ बिखिआन सौं बैठ कै ऐसे ही ऐस सु बैस बिताइआ।
साचु कहो, सुनि लहू सभै जिन प्रेम कीउ तिन ही प्रभ पाइया। 9।

(त्रप्रसादि सवैया)

एक ओर उनके जैसा तलवार का धनी नहीं था कोई, निडर शूरवीर

नहीं था कोई। और दूसरी ओर हिन्दी, पंजाबी, फ़ारसी के वे बेजोड़ कवि थे। वे जिन्होंने हिन्दी में जापु जैसी महान कविता की रचना की। अक्सर अपने तम्बू में लेटे-बैठे अपनी कविता में से कोई न कोई पद सुनाते और भाई धर्म सिंह का अंग-अंग पुलकित हो उठता :

धन्न जीउ तिह के जग महिं, सुख ते हरि चित महि जुध बीचारै
देह अनित न नित रहिह, जस नाव चढ़े भवसागर तारै।

* * * *

जिमीं जमां के बिखै समसत एक ज्योति है।
न बाद है, न घाट है, न बाढ़ घाट होत है।

* * * *

मित्र पिआरे नूं हाल मुरीदां दा कहिणा।
तुध बिना रोग रजाइयाँ दा उढण, नाग निवासां दा रहिणा।

* * * *

पांई गहे जब ते तुमरे तब ते कोऊ आंख तरे नहीं आनिउ।

* * * *

चूंकार अज़हमा हीलते दर गुज़शत
हलाल असत बुरदन बशमशीन दसत।
तुमहि छाडि को अवर न धियाहू।
जो बर चहऊं सो तुम ते पाऊं।

* * * *

बिदेह साकीया सागरि सबज़ रंग।
कि मारा बीकारसत, दर वकति जंग।

कोई 16 दिन बाद गुरु महाराज का घाव भर चुका था, उसमें पपड़ी बन चुकी थी। दिवाली का त्यौहार था। दशमेश को किसी श्रद्धालु कारीगर ने हरे रंग के दो धनुष और इनके साथ प्रयोग करने के दो तरकश तीरों के भेंट किए। उन्होंने नए हथियारों को बाकी शस्त्रों के साथ स्नान कराया। चमकाया-लिशकाया गया, केसर के तिलक लगाए गए। फिर एक दीवान पर उन्हें सजाया गया। धूप दी गई। अगरबत्तियाँ जलाई गईं। रात को दीपमाला की गई।

अगले दिन सुबह नए भेंट किए धनुष और तीर लेकर गुरु महाराज शिकार के लिए निकल पड़े। गुरुसिक्खों ने एतराज़ किया पर दशमेश ने एक

न सुनी। बार-बार भाई मनी सिंह याद करवाते हज़ूर के ज़ख्म अभी हरे हैं। कलगीधर अनसुनी कर रहे थे। इतना सुहाना मौसम था। वे शिकार को जरूर जायेंगे। अपने साथ केवल भाई धर्म सिंह को लिया। इधर दिन-रात सेवा के कारण, हर कोई सोचता, धर्म सतगुरु के अत्यन्त समीप हो गया था। 'भाग्यशाली है !' गुरु महाराज के साथ घोड़े पर सवार शिकार को जाते उसे देखकर हरेक के मुंह से निकलता।

भगवान की करनी उस दिन शिकार की टोह में गुरु महाराज कोई दो कोस आगे निकल गए, पर कोई शिकार उनके हाथ नहीं आया। निराश लौट रहे थे कि एक खरगोश फुदक कर सामने एक झाड़ में से निकला, किसी और झाड़ की ओर जाने के लिए कूद रहा था कि गुरु महाराज ने नए भेंट किए तरकश का चिल्ला चढ़ाकर ऐसा तीर छोड़ा कि खरगोश वहीं का वहीं बिलबिलाता रह गया। खरगोश तो ज़ख्मी होकर चकरियाँ काटने लगा, पर ऐसे लगता, नए धनुष का चिल्ला चढ़ाते समय गुरु महाराज के हरे ज़ख्म खुल गए। जर्राह के लगाए टांके उधड़ गए थे। पीड़ा हुई, पर गुरु महाराज ने परवाह नहीं की। जल्दी-जल्दी डेरे की ओर चल दिए।

नंदेड़ की ओर वापिस जा रहे भाई धर्म सिंह ने अपना घोड़ा दशमेश के निकट लाकर पूछा, हजूर आपने कभी खरगोश का शिकार नहीं किया। बेशक आज कोई बड़ा शिकार नहीं मिला पर इस सहे बेचारे पर क्रोध क्यों। भाई धर्म सिंह ने शिकार हुए सहे को उठाया हुआ था।

यह तुम्हारी इन दिनों की अटूट सेवा का फल है। गुरु महाराज ने फरमाया यह सेहा तेरा पूर्वज मुल्ला कराड़ है। कब से योनियों में भटक रहा है। बाबा नानक प्रति विमुख हुआ था। आज यह मुक्त हो गया है। जैसे बाबा नानक ने फरमाया था।

धर्म सिंह ने सुना और उसकी आंखें मुंद गईं। उसका सिर झुक गया। उसके हाथ जुड़ गए। उसकी आंखों के सामने से सुन्दरी, अमन, वीरां वाली, एक जलूस-अपने पूर्वजों का गुज़रने लगा।

101

नंदेड़ डेरे पर पहुंचकर भाई धर्म सिंह ने गुरु महाराज के घोड़े की लगाम पकड़ी, हाथ देकर सतगुरु का चरण रकाब में से निकाला और वे क्या देखते हैं। गुरु महाराज की पसली में से तो खून रिस रहा था। ज़ख्म खुल गया था। घोड़े से उतर, अपने तम्बू तक पहुंचते-पहुंचते जैसे खून की धार बह निकली हो।

गुरु महाराज निढाल अपनी सेज पर पड़ गए। बहुत पीड़ा हो रही थी। लहू था कि रुकने में आ ही नहीं रहा था। शाही ज़र्राह भी बादशाह के बाकी अमले के साथ हैदराबाद के लिए जा चुका था। गुरुसिक्ख इकट्ठे हुए। जो कुछ किसी की समझ में आया, उपचार किया गया, पर खून था कि एक वेग की तरह रिसता जा रहा था। हर किसी के हाथ पांव फूल गए थे। हर कोई अपनी-अपनी समझ के मुताबिक इलाज बता रहा था। हर कोई जो किसी से बन पड़ता, कर रहा था।

गुरु महाराज को लगता जैसे वह नीले आकाश में चढ़ते-उभरते जा रहे हों। फिर उन्होंने इशारे से गुरुसिक्खों का ज़ख्म को छेड़ना रोक दिया। पलंग के पास खड़े गुरुसिक्ख खामोश थे। गुरु महाराज के नैन जुड़े हुए। बूंद-बूंद लहू पसली में से टपक रहा था, एक सक्ता-सा छा गया था। जैसे क्षण-भर के लिए समय रुक गया हो। हवा थम गई थी।

और फिर गुरु महाराज के होंठ खुले, धीमे से, मधुर आवाज़ आई। जो कुछ दशमेश ने बोला उसे गुरुसिक्खों के द्वारा इन शब्दों में कलमबद्ध किया गया :

आगिआ भई अकाल की तबी चलाइउ पंथ।
सभ सिक्खन को हुकम है गुरु मानिओ ग्रंथ।
गुरु ग्रंथ जी मानिओ प्रगट गुंरा की देह।
जो प्रभ को मिलबो चहै खोज शबद में लेह।

(पंथ प्रकाश)